

सातवा अंग्रेजी संस्करण १९५८

प्रथम हिन्दी संस्करण १९५३

द्वितीय हिन्दी संस्करण १९५४

तृतीय हिन्दी संस्करण १९५७

चतुर्थ हिन्दी संस्करण १९५८

पंचम हिन्दी संस्करण १९६०

अनुवादक
नरोत्तम भागव

सम्पादक
प्रभदयाल मेहरोत्रा

(C) १९६०, द अपर इण्डिया पब्लिशिंग हाउस लिमिटेड
लखनऊ

मुद्रक
द अपर इण्डिया पब्लिशिंग हाउस लिमिटेड
लखनऊ

अनुवादकीय

राजनीति-शास्त्रके गिज्ञका और विद्याधियाम डा० आगीवात्म् के ग्रन्थ 'पोनिटिकल थ्यारी' का बहुत मान है। यह ग्रन्थ लेखककी महान् प्रतिभा और विस्तृत ज्ञानका अच्छा प्रतिबिम्ब है। डा० आगीवात्म् की विद्वत्ताका ताहा देग और विज्ञामें सबन सभी सांख्य मानत हैं। अय त विज्ञान् हानेके अतिरिक्त बह एक आत्मा व्यक्तित्व भी हैं। स्वतन्त्रचिन्तन और मादाजीवन उनके स्वभाव क अंग हैं। 'पोनिटिकल थ्यारी' में उद्धान विषया का विवेचन किया है विषय पर विज्ञाना क मत लेकर उनकी मत्पनाको तक की कर्नागी पर बसा है और फिर स्वय अपने निणय किय हैं। इस पुस्तकका उद्देश्य केवन यही नहीं है कि विद्यार्थी इस पत्रकर परीक्षाम उत्तीर्ण जे जाय प्रविनु यह भी है कि महान् विचारकाके सम्पकम आकर विद्यार्थी भी स्वतन्त्र चिन्तन म विज्ञान करने जों और स्वयसिद्ध के बजाय तक सिद्ध की आदत डालें। मगन चिन्तनकाकी शैली का अनकरण करत हम मा महान् हा सकत हैं। मौनिकता ही महान विचारकाकी शैली है वह हमारी भी हा सकनी है।

इसी मुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'पोनिटिकल थ्यारी' का हिन्दी सम्करण राजनीति-शास्त्र पाठका के हाया म है। अनुवाद करना सरत काय न था। विश्वविद्यालयकी गिज्ञा तथा पगीशाका माध्यम हिन्दी हा जान के कारण 'पोनिटिकल थ्योरी' क हिन्दी संस्करणका मांग दिन प्रतिदिन बढ़ रही थी। इसी मांग को पूरा करनेके लिए दीर्घ और कठिन परिश्रम के बाद 'राजनीति-शास्त्र' प्रकाशित हुआ। इसके अब एक चार संस्करण हाया-हाय बिक चुक हैं। यह पंचम संस्करण है जो पहले के संस्करणों स कहा अपिब गुड सरल और सुखीय है। हरेक छात्र इस पुस्तक का पत्रकर विषय को अच्छी तरह समझ सकना है। विद्यार्थियों के लाभ क लिए टिप्पणियाँ और अनुक्रमिका भी दे दी गयी हैं।

मेरा विश्वास है कि यह पुस्तक अध्ययनशील विद्यार्थियोंके लिए तथा राजनीति शास्त्र का ज्ञान प्राप्त करनेके इच्छुक पाठका के लिए बड काम की और उपयोगी सिद्ध होगी।

१८ जुलाई १९१०

—नरोत्तम भागव

विषय-सूची

अध्याय

पृष्ठ

- * १ राजनीति शास्त्र का स्वरूप विस्तार और पद्धतियाँ
(The Nature Scope and Methods of
Political Science) १२१
- पारिभाषिक शब्दावली १ राजनीतिक चिन्तनका महत्त्व ५
राजनीति शास्त्रका विस्तार और अर्थ शास्त्रानामे सम्बन्ध ६
राजनीति शास्त्रकी पद्धतियाँ १५।

- २ राज्यका स्वरूप (The Nature of the State) २२ ४३

राज्यकी परिभाषाएँ २३ राज्य समाज सरकार राष्ट्र और
राष्ट्रीयतामें भेद २४ राज्यके सम्बन्धमें एकतरफा या भ्रामक
विचार २९ राज्यकी स्वरूपका व्याख्या ३३ राज्यके मूल
तत्त्व ३६ राज्यका अर्थ सिद्धान्त ४५ महत्त्व और
सीमाएँ ४२।

- ३ राज्य की उत्पत्ति (The Origin of the State) ४४ ६४

राज्यकी प्रारम्भिक या प्रागैतिहासीय उत्पत्ति ४४ देवा उत्पत्ति
सिद्धान्त ४५ सामाजिक सन्धि सिद्धान्त ४८ शक्ति-सिद्धान्त
४४ विवृत्तताएँ एवं मातृसत्ताक सिद्धान्त ५६ इतिहासीय
या विनासकारी सिद्धान्त ५९ राज्य निमाणक आधार ६०।

- ४ राज्य का इतिहासीय विकास (The Historical
Development of the State) ६५ ७७

पूर्वका प्रारम्भिक साम्राज्य ६५ मूलतः नगर राज्य ६६
सामन्तिक साम्राज्य ६७ सामान्तिक राज्य ६९ सामन्त
शाहीका उदय और उदका अर्थ ७० आधुनिक युगका राष्ट्रीय
राज्य ७१ बिन्दु-समय ७४ राज्यक विकासकी सामान्य रूप
रेखा ७५।

- ५ हाब्स लॉक और रूसो का सामाजिक सविदा सिद्धांत
(The Social Contract Theory of Hobbes
Locke and Rousseau) ७८ १९
- प्राकृतिक अवस्था और प्राकृतिक विधि ७८ सविदा का स्वरूप
८० सम्प्रभुता ८२ राज्य और सरकार के प्रकार ८५
व्यक्तिगत स्वतंत्रता और अधिकार सिद्धान्त ८८ हाब्स लॉक
और रूसो के सिद्धान्तों में सत्यता अथवा ९ लोकसम्मतिक
सिद्धान्त ९२ लोकसम्मतिकी विशेषताएँ ९५ लोकसम्मतिक
सिद्धान्त में सत्यापन ९७ ।
- ६ राज्य का उद्देश्य और औचित्य (The End and
Justification of the State) १०० ११९
- अराजकतावादी दृष्टिकोण १०० धार्मिक दृष्टिकोण १ ३
नवनि सिद्धान्त १०४ सविदा सिद्धांत का दृष्टिकोण १ ६
उपयोगितावादी दृष्टिकोण १०७ संगठनकी आवश्यकता १०९
मनार्थनानिक दृष्टिकोण १ ९ आत्मशास्त्री दृष्टिकोण ११
राज्य का उद्देश्य ११२ राज्य साम्य है या साधन? ११६ ।
- ७ राज्य का उचित कार्य-क्षेत्र (The Proper Sphere
of State Action) १२० १४७
- व्यक्तिवादी सिद्धान्त १२१ समाजवादी सिद्धान्त १२९
व्यक्तिवादी और समाजवादी सिद्धांतों का मूल्यांकन १३१
आदर्शवादी सिद्धान्त १३२ गायोवादी अर्थनीति १३७ अन्य
सिद्धान्त १४० सांख्यिक विचारण १४० राजकीय कार्यों का
वर्गीकरण १४५ ।
- भारत में सामाजिक विधान (Social Legislation
in India) १४८ १५३
- समाजवादी समाजवादी स्वरूप १५२ ।
- समाजवाद का मूल्यांकन (Appreciation of
Socialism) १५४ १६२
- समाजवादी अर्थ रूपता १५६ परिभाषा १५५ समाजवादी
विचारों का विकास १५५ समाजवादी तथा अन्य व्यवस्थाएँ

१-६ समानवाचका कायक्रम १५ समानवाचन नाम १५७
समानवाचका का मन्त्रादेश १५८ समानवाचका महत्त्व १५०।

८ अधिकार-सम्बन्धी सिद्धान्त Theories of Rights) १६० १८१

नर्तक अधिकार सिद्धान्त १८६ अधिक अधिकार सिद्धान्त
१७० अधिकार का द्विहानीय सिद्धान्त ३४ अधिकार का
सामाजिक कल्याण या सामाजिक वायस्थापन सिद्धान्त १७५
अधिकार का आत्मवाच्यता या व्यक्तित्व सिद्धान्त १७३।

९ विविष्ट अधिकार (Particular Rights) १८२ २२८

जावनका अधिकार १८२ जावनक अधिकारम निहित धारणाए
१८ स्वतन्त्रताका अधिकार १९० स्वतन्त्रताका अर्थ १९०
स्वतन्त्रताका विभाग १९२ स्वतन्त्रता और सत्ता १९६
स्वाधीनता और विधि १९७ स्वतन्त्रता और समानता १९
स्वतन्त्रताका राजकाय नियमन २०१ सम्प्रतिक अधिकार
२२०।

१० सम्प्रभुता (Sovereignty) २२९ २४९

सम्प्रभुताकी परिभाषा २२९ सम्प्रभुताका विपत्ताएँ २३१
सम्प्रभुताके विभिन्न अर्थ २२६ सम्प्रभुताकी स्थिति २२९
ऑन जॉन्टिन का सम्प्रभुता सम्बन्धी सिद्धान्त २४२।

११ राज्या तथा संविधाना का वर्गीकरण (Classifica-
tion of States and Constitutions) २५० २६९

राज्याका वर्गीकरण २५० संविधान क स्वतन्त्र तथा परिभाषा
२५७ संविधानाके भेद २५९ एतामक तथा मन्त्राचक राज
२६३ प्रसिद्धि २६८।

१२ सरकारका संगठन (Organization of Govern-
ment) २७० ३५६

विधायिका २७० सरकारक प्रशासकिय विभाग द्वारा बनाया
गया विधिया २७१, जनता संग विधि विभाग २७१
विधायिकाका संगठन ३ तथा दूरगमन आकाश ३ ३५,

विधायिका के अधिकार और कर्तव्य २७७ विधायिकाकी कार्य प्रणाली २७९ समिति प्रणाली २८१ सदस्यी अवधि २८१ विधायकाका वेतन २८२ विधायकीके विभागाधिकार २८३ विधायिका और नायपालिकाके पारस्परिक सम्बन्ध २८४ निर्वाचक-मण्डल २८४ मताधिकारके सिद्धान्त २८९ राजनीतिक दल २९६ नायपालिका ३ ३ मन्त्रिमण्डलीय सत्तरीय अथवा उत्तरदायी कार्यपालिका ३१० अध्यक्षीयक नायपालिका ३१२ अध्यक्षीयक सरकारक गुण ३१२ दोष ३१२ एकात्मक तथा बहुल कार्यपालिका ३१३ कार्यपालिकाकी कार्यविधि २१४ नायपालिकाकी दक्षिण और नाय ३१५ प्रशासकाय सभा ३२१ नायपालिका ३३४ पवित्रताक पुनश्चरणका सिद्धान्त २४९।

१३ लोकतन्त्र (Democracy)

३५७ ३९५

लोकतन्त्र पर पुनर्बिचार ३५७ लोकतन्त्रका अर्थ ३५० लोकतन्त्र क प्रत्यक्ष और प्रतिनिधिमूलक स्वरूप ३६० सरकारके प्रकार ३६१ लोकतन्त्रका व्यापक अर्थ २६२ लोकतन्त्रक समयनम दासत्रीय तक ३६३ लोकतन्त्रके विरुद्ध तक ३६७ लोकतन्त्रकी आलोचनाआका मूल्यांकन ३७४ उपचार और निष्पत्ति ३७९ लोकतन्त्रकी सफलताक लिए आवश्यक बातें २८४ लोकमत पर टिप्पणी ३८७।

१४ स्थानीय स्वशासन (Local Self-Government) ३९६ ४०६

स्थानीय स्वशासनका अर्थ २९६ स्थानीय स्वशासनकी व्याख्या ३९८ स्थानीय स्वशासनका महत्त्व ३९८ स्थानीय शासनका ढाँचा ४०१ स्थानीय शासनके नाय ४०४।

१५ लोक-कल्याणकारी राज्य (Welfare State) ४०७ ४१२

कल्याणकारी राज्यका अर्थ ४०७ व्यक्तिवादी राज्य और कल्याणकारी राज्यम अन्तर ४ ९ साम्यवादा राज्य और कल्याणकारी राज्यम अन्तर ४ ९ व्यक्तिवाद और साम्यवादम समझौता ४०९ कल्याणकारी राज्यकी विभापताएँ ४१०, भारत और कल्याणकारी राज्यकी धारणा ४१२।

राजनीति-शास्त्र का स्वरूप, विस्तार और पद्धतियाँ

(The Nature Scope and Methods of Political Science)

राज्य और सामन्तकी समस्याओंका अध्ययन करनेवाले विद्वानकी राजनीति-शास्त्र कहते हैं। पारसियाय देशकी राजनीतिक विचारधाराका आरम्भ प्राचीन यूनानके नगर राज्यामि हुआ था। वस था पूर्वके नाग यूनानियान भा पहले राज्य और उसकी समस्याओं पर विचार करने लग प पर उनकी विचारधारा में राजनीतिक अनिश्चित धर्म कल्पना और अधविश्वासका समावेश था इसलिए पूर्वक राजनीतिक विचारधाराका विकास विपुल राजनीति-शास्त्रक रूपम नहा हा सका। राजनीति और धर्म इनके अधिक परस्पर पुन मिन थ कि राजनीतिक अनग करके उस पर विचार हा नहा किया गया। फल यह हुआ कि हम एक स्वतंत्र विज्ञानक रूपम विकसित करनेका प्रयत्न न हा पाया। राजनीति ही नहा समूच समाज शास्त्रका धर्म-शास्त्रका भग समझा जाता था। यूनानियाने ही सबसे पहले राजनीति-शास्त्रका धर्म-शास्त्र अधविश्वास और काल्पनिक कथाओंसे अनग करके त्त गूढ़ और व्यवस्थित विज्ञानक रूपम विकसित किया। अपन युक्तिमय (rational) और सामाजिक दृष्टिकोणक कारण यूनानी इन कामक लिए उपयुक्त भां थे।

पूर्वक हिन्दुओंके आरम्भमें ही राज्य शासक-गणतंत्र सरकार शासक और शासितक विषयम बहुत अधिक साधा और विचारा हे। पर इन सब विषयका मिलाकर भी सम्पूर्ण राजनीति-शास्त्र नहा बन पाया। पूर्वक प्रसिद्ध विचारक चीनके कन्फ्यूटियस और भारतक कौटिल्य (चाणक्य) न राज्य-विद्वानकी अपना शासन-बना क विषय पर कहा अधिक ध्यान दिया है।

पारिभाषिक शब्दावली (Terminology)

राजनीति-शास्त्रका अध्ययन आरम्भ करते ही हमारे सामने राजनीति राजनीति शास्त्र और तुलनात्मक सरकार जस गणतंत्र गूढ़ सृष्टिक अध जानकी कठिनाई आता है। इन शब्दोंके ठीक अर्थ जान बिना हम राज्य-सम्बन्धी समस्याओंका अध्ययन ठीकम नहा कर सकत। यद्यपि राजनीति विज्ञानका आरम्भ यूनानके प्राचीन इतिहासक है तथापि अपन वर्तमान रूपमें य एक आधुनिक विज्ञान ही है। इनविष

नया हाना चाहिए (A historical investigation of what the State has been an analytical study of what the State is and a politico-ethical discussion of what the State should be)।

सिजविक लिखते हैं कि राजनीति-दशानस असग राजनानि गाम्त्रम हम विविध काटिया या प्रकाराका अध्ययन करत हैं। पर इन कोटियाका आदग रूप होना कुछ जरूरी नही है। राजनीति शास्त्र समानताओं और असमानताओंको छाजना है तथा व्यवस्था वर्गीकरण कार्य या प्रभावकी छानबीन करता है।

वे राजनीति-दशान (Political Philosophy) एक और गण्य है राजनीति-ज्ञान (Political Philosophy) जिसम हम राज्यतत्वके अध्ययनम धर्म उत्पन्न होता है। कुछ अप्रज विचारक राजनीति-दशानको राजनीति शास्त्र (Political Science) का प्रधान अंग मानत है। राजनीति-ज्ञान दर्शन शास्त्रकी एक शाखा है। दशान शास्त्र समस्त विषयका विवेचन करता है और राजनीति शास्त्र विषयके एक अंग—राज्य—का। इस दृष्टिकोणका आधार यह विश्वास है कि दशान-शास्त्र समस्त ज्ञानका एकीकरण है। अतः राज्यके अध्ययनको उसका एक उप विभाग मानना चाहिए। इस दृष्टिकोण से हमारा मतभ्रम इमनिष्ठ है कि वर्तमान युग विविध अध्ययन का युग है। इस युग की भाँति यह नहीं है कि समस्त मानवज्ञान का एक मानकर उसका अध्ययन किया जाय। युग की भाँति तो यह है कि मानवज्ञान के विविध विषयों का अलग-अलग विविध अध्ययन कर उनका विकास किया जाय। अलग विषयों की तरह राजनीतिक चिन्तन के विकास के लिए भी विविध अध्ययन और सीमा निर्धारण की आवश्यकता है।

✓ ज एच० हैलावेल ने अपने ग्रन्थ वर्तमान राजनीतिक चिन्तनकी प्रमुख धाराएँ (Main Currents in Modern Political Thought) में ठीक ही कहा है कि राजनीति-ज्ञानका सम्बन्ध राजनीतिक सम्प्रदायों से उठना नहीं है जितना उन सम्प्रदायों से निहित विचारों और आकांक्षाओं से। उन्हींके सम्बन्ध में 'राजनीति-दशानकी शिखर' इसमें कहा है कि तन्मय हैंसे घटित हान हैं जितनी इसमें कि क्या घटित होता है और क्या घटित होता है ?

यारापके लक्षकों में प्रायः राजनीति-शास्त्र तथा राज्य शास्त्र या राजनीति-दशान में अन्तर किया है यद्यपि इस विभक्तिका स्पष्ट निश्चय कर सजना कठिन है। अपने वर्तमान प्रयागमें राजनीति-दशानकी अपभवा राजनीति-शास्त्र अधिक व्यापक है और उमरा अथ भी अधिक स्पष्ट और सुनिश्चित है।

राजनीति-ज्ञान राज्य की मूलभूत समस्याओं का परिहारा अधिकार और कर्तव्यके प्रश्नों तथा राजनीतिक आदर्शोंका विवेचन करता है। एक प्रकारसे यह राजनीति-शास्त्रसे प्राचीन भी है क्योंकि इसकी मौलिक भावनाएँ ही राजनीति-शास्त्र की आधार हैं। फिर भी यदि राजनीति-दशानका कल्पनात्मक और अस्पष्ट नही बन जाना है तो इस राजनीति-शास्त्रकी विचार-विभूतिका उपयोग करना ही

होया। राजनीति-शास्त्र और वास्तविक राजनीतिक परिस्थितिभावा पारस्परिक प्रभाव एक दूसरे पर बराबर पड़ता रहता है।

४ राज्य सिद्धान्त (Theory of State) राजनीति-ज्ञानकी अपणा राज्य विद्वान्' शास्त्र अधिक उपरस्त है यद्यपि ज्ञानका विषय एक ही है। राजनीति ज्ञान का सम्बन्ध सिद्धान्तो विचारा और आवाजाअसि है। यह भावपरक और कल्पनात्मक (abstract and speculative) होने के कारण स्पष्ट और मुनिश्चित नहा है। पर 'राज्य-सिद्धान्त अथवा 'राजनीति शास्त्र' अधिक स्पष्ट और मुनिश्चित है। 'राज्य सिद्धान्त न तो विभिन्न सरकारके स्वरूप-संगठन का अध्ययन है और न सरकारका तुलनात्मक अध्ययन। यह काम तो राजनीति-शास्त्रकी उम शाखाका है जिस तुलनात्मक राजनीति कहने हैं। इसी प्रकार शास्त्र-सिद्धान्त राज्य अथवा विधिसे इतिहासीय विकासका अध्ययन भी नहीं है। यह आत्म शास्त्रके चित्रणका प्रयत्न भी नहीं है। यह शासन-कला या प्रशासनका अध्ययन भी नहा है। यद्यपि राज्य सिद्धान्तका समझनेके लिए इन सब विषयोंका साधारण ज्ञान आवश्यक है पर इसका सम्बन्ध किसी राज्य विधानके स्वरूप-संगठन अथवा कार्यासे नहा है। यह शासन मूलभूत तत्त्वका अध्ययन करता है और इसका आधार शास्त्रके अज्ञात और वर्तमान स्वरूपका अध्ययन है।

राजनीतिक चिन्तनका महत्त्व (Value of Political Thought)

आजकल कुछ मात्रा में राजनीति शास्त्रक अध्ययनका महत्त्व कम करनेका प्रवृत्ति है। यह ज्ञान राजनीति-शास्त्रका भावपूर्ण (abstract) और अनुपयोगी विषय मानकर उसका अध्ययन व्यर्थ बनाना है। राजनीति-शास्त्रके अध्ययनका महत्त्व कम करनेकी इस प्रवृत्तिका कारण सिद्धान्त-शास्त्रका मजबूत उद्घाटनकी आगत है। और यह आगत आजकल यथायथानी मात्रिक और औद्योगिक समाजकी विपत्तिका है। आइए बातें के इस अध्ययन हम महसूस हैं कि सामाजिक जीवनके अमूर्त महत्त्वक प्रति ध्यावहारिक दृष्टिकोण रखने हुए राजनीति शास्त्रका अध्ययन मरुत और मारपूज ज्ञाना ही है।

अपना पुस्तक राजनीतिक चिन्तनका इतिहास (History of Political Thought) में प्रोफेसर गन्त ने उन शर्तोंका संकलन किया है जो राजनीति-शास्त्रक अध्ययनक पण और विषयम विषय जाते हैं। इन शर्तोंकी-अर्था हम सम्पन्न करेंगे। राजनीति-शास्त्रक अध्ययनके विषयम कहा जाता है कि राजनीति शास्त्रका सम्बन्ध वास्तविकताम बन्ध कम रहता है व्यवहारम इसका प्रमाण हा ही नहा सकता यह विधि-कल्पनाओं और आदर्शों (absolute concepts) का ही विवेचन करता है पर अनिश्चित और विवादास्पद प्रस्तावों निश्चित उपर पेन में समझ और बहुधा ध्यावहारिक राजनीतिक लिए धातक है। राजनीति-शास्त्रके विरोधा इसमें

की इस मुश्किलका भलीभाँति प्रयाग कर सकते हैं कि इसमें कुछ भी नवीन सत्य और सारपूर्ण नहीं है।

ऊपर निम्ने आरोपका खण्डन करनेके लिए राजनीति-शास्त्रके अध्ययनकी कुछ उपयोगिताओंकी खर्चा भी जरूरी है। राजनीति शास्त्रका अध्ययन राजनीतिक गण्डोको सटीक और मुनिरिचन अर्थ देता है और हमारे विचार को स्पष्ट और निश्चित बनाता है। इससे इतिहासकी व्याख्याम सहायता मिलती है। विगत राजनीतिक विचारधाराआके ज्ञानसे वर्तमान राजनीति और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धोको समझनेमें बहुत बड़ी सहायता मिलती है। रचनात्मक राजनीतिक प्रगति (constructive political progress) का आधार एसा स्थापक राजनीति-शास्त्र ही है जिसका प्रयोग वर्तमान परिस्थितियों और आवश्यकताओमें किया जा सके। राजनीतिक चिंतन उच्च प्रकारकी बौद्धिक सफलताका प्रतीक है। अन्तमें यदि मानव कल्पना-शक्तिसे सरकारका संगठन और विभास सम्भव है तो राजनीति-शास्त्रके अध्ययनसे अधिक अन्य कोई भी अध्ययन उपयोगी नहीं है। इस प्रकार राजनीति शास्त्र नितान्त व्यावहारिक और महत्वपूर्ण है। यह ठोस और व्यावहारिक विषयका सैद्धान्तिक अध्ययन है।

यह आरोप सही नहीं है कि राजनीति-शास्त्र वास्तविक परिस्थितियोंसे अत्यधिक परे है। हम शुद्ध सटीक परिभाषा (accurate definition) और गम्भीर विश्लेषणकी आवश्यकता है। विवेकपूर्ण राज्य-ममज्ञता (statesmanship) को अस्पष्ट और प्रायः परस्पर विरोधी सहज प्रेरणाओ (intuitions) से कुछ और अधिक को जरूरत है। उसे चाहिए गम्भीर दर्शन (sound philosophy) और नैतिक मूल्योंकी संयोजना (scheme of moral values) और राजनीति शास्त्र हम यही देनेका प्रयास करता है। राज्य-ममज्ञता मुख्यतः एक नैतिक कार्य (moral task) है। चूंकि राजनीतिके कुछ सैद्धान्तिक विवेकक विद्या-दग्मी हो गये हैं इस कारण समूचे राजनीति-शास्त्रकी निन्दा करना उचित नहीं है। स्वभावतः राजनीति-शास्त्र हमें ही हमें स्पष्ट उत्तर नही दे सकता। इससे राजनीतिक विवादोंमें भ्रम भसे ही न हो पर इससे कमसे कम पारस्परिक सम्मान और सहनशीलताम सहायता तो मिलती ही है। यदि यह सत्य है कि जहाँ व्यवहार-परस है वहाँ सिद्धान्त-परस भी होना चाहिए तो व्यावहारिक राजनीतिके लिए राजनीति शास्त्रका अध्ययन नितान्त उपयोगी है।

राजनीति शास्त्रका विस्तार और अन्य शास्त्रोंसे सम्बन्ध (Scope of Political Science and its Relation to Allied Sciences)

श्रीमत्सर गूडनाउ का दावा है कि राजनीति शास्त्रके निम्नलिखित तीन स्पष्ट भाग हैं—
(१) राज्येच्छाकी अभिव्यक्ति (The expression of the State will)

(२) अभिव्यक्त राज्येच्छाकी विषय-वस्तु (The contents of the State will as expressed) और

(३) राज्येच्छाका कार्यान्वय (The execution of the State will)।

यहूँले भागमें राज्य सिद्धान्त और व समी विधिक परे रीति रिवाज (extra legal customs) और संस्यार्ण शामिल हैं जो किसी देशकी राजनीतिक पद्धतियों प्रभावित करती हैं। दूसरा भाग वास्तुतः विधिका हा पयय है। सासके सम्बन्ध शासन-व्यवस्थाके सहो सिद्धान्तके निर्धारण और उनके व्यावहारिक प्रयोगके हैं।

सुक्ष्म राजनीति शास्त्रके सम्बन्धमें प्रोफ़ेसर गढ़नाउ की धारणा कुछ सहीय है। उनके विवेचनमें सामक स्वरूप और उसकी विशेषताओं तथा अधिकारों और कृतव्यक्ति पारस्परिक सम्बन्ध जैसे प्रश्नोंको कोई स्थान नहीं है।

राजनीति-शास्त्रक अतिरिक्त अन्य शास्त्र भा मनप्यत्र सामाजिक जीवनके सम्बन्ध रखत हैं और इसलिए राजनीति-शास्त्र अन्य शास्त्रास निरपेक्ष नहीं है। मानव-मात्र के पारम्परिक सम्बन्धका विवेचन करनेवाले अनेक शास्त्रास से एक होनेके कारण राजनीति-शास्त्रका सम्बन्ध अन्य सामाजिक शास्त्रासके साथ पढ़ता है। इसीलिए पॉलब्रनर का कहना है कि राजनीति-शास्त्रका गहरा सम्बन्ध है अथशास्त्रके साथ विधिक साथ चाहे वह प्राकृतिक विधान हो या संहिताबद्ध विधि (Law either natural or positive) हो वा नागरिकके पारस्परिक सम्बन्ध का विवेचन करती है इतिहासके साथ जो इस आशयके सम्य दत्ता है राजनीति-शास्त्र और विद्यमान नीति शास्त्रके साथ जिससे इसे अपने कुछ सिद्धान्त प्राप्त हात हैं (२३ २९)।

१ राजनीति-शास्त्र और इतिहास राजनीति-शास्त्र और इतिहासका आपस में बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिसका अर्थात्त इय एक वाक्यमें लगया जा सकता है कि 'इतिहास बिना राजनीति है राजनीति वतमान इतिहास है।' बात का कहना है 'राजनीति-शास्त्रके बिना इतिहास निरूपस है इतिहासके बिना राजनीति-शास्त्र निरूपस है (History without Politics has no fruit, Politics without History has no root)। यही फिर कहते हैं 'इतिहासके उदार प्रभावके बिना राजनीति बरंर है और इतिहास राजनीतिके साथ अपना सम्बन्ध भूना देनेसे साहित्य मात्र रह जाता है। इतिहास राजनीति-शास्त्रका वह तन्त्र देता है जिसके आधार पर राजनीति-शास्त्र विचारित हाता है। चीने के कथनानुसार इतिहास और राजनीति शास्त्र अन्तमें एक सम हो जायय। पर यह वसम्भव नहीं हो कठिन अवयय जान पड़ता है। यद्यपि दोनों बिधाएँ एक दूसरे पर निर्भर करती हैं और एक दूसरेकी पूरक हैं पर फिर भी दोनोंमें कुछ मौक्तिक अन्तर है।

(क) विवचना-पद्धतिका अन्तर (Method of Treatment) इतिहास वननात्मक (narrative) होता है और उसमें घटनाएँ बाल-बनके अनुसार ही जानी हैं पर राजनीति-शास्त्र केवल उन्हीं घटनाओंको मठा है जिनका सम्बन्ध राजनीतिके विकाससे होता है। राजनीति-शास्त्रकी

पद्धति चिन्तनमूलक है। इतिहास द्वारा दी गयी सामग्रीका उपयोग करते हुए यह सामान्य विधियाँ और सिद्धान्तोंकी खोज करता है।

(ग) विस्तारका अन्तर (Difference in scope) इतिहासका क्षेत्र अधिक व्यापक है क्योंकि यह सामाजिक जीवनके आर्थिक धार्मिक तथा सैनिक पहलुआँ पर विचार करता है। पर राजनीति-शास्त्रकी इन विषयोंमें वहीं तक रुचि है जहाँ तक ये विषय राज्यके स्वरूप और राजनीतिक नियंत्रणके विकास (development of political control) पर प्रकाश डालते हैं।

(घ) उद्देश्यका अन्तर (Difference in their end) इतिहास राजनीति-शास्त्रकी अपेक्षा बहुत कम दार्शनिक है। इतिहासका सम्बन्ध ठोस तथ्यात्मक रहता है। पर राजनीति-शास्त्रका सम्बन्ध आदर्शों और सूत्रम प्रकारान्तर (abstract types) से रहता है। राजनीति-शास्त्र बतलाता है कि राज्यका कैसा होना चाहिए पर इतिहास बतलाना है कि राज्य इस समय कैसा है और पहले कैसा था।

निष्कर्ष यह है कि राजनीति-शास्त्रको इतिहासका उपयोग उसीका अतिक्रमण (to transcend it) कर जानके लिए करना होता है। इतिहासका काम नतिक नियम देना नहीं है।¹ पर राजनीति-शास्त्रके विज्ञानका ऐसे निर्णय देने ही होते हैं। यहाँ राजनीति-शास्त्र धर्म-शास्त्रसे मिला जाता है और अर्थशास्त्र तथा समाजशास्त्रमें अलग हो जाता है।

✓ लाइब्ररी का कहना है कि राजनीति-शास्त्र इतिहास और राजनीति अतीत और वर्तमानके बीचकी चीज है। एकसे तथ्योंको पाकर वह उन तथ्यात्मक प्रयोग दूसरे पर करता है।

२ राजनीति-शास्त्र और अर्थशास्त्र (Political Science and Economics) राजनीति-शास्त्र और अर्थशास्त्रका सम्बन्ध बड़ा नैसर्गिक का है। दोनों का एक दूसरे पर काफी प्रभाव पड़ता है। बहुत अर्थों तक दोनोंका विषय क्षेत्र भी एक ही है। सम्पत्तिका उत्पादन और वितरण राज्यकी विधियोंसे प्रभावित होता है। राज्यके भीतर सारे आर्थिक कार्य उन नियमोंके अनुसार और उन शर्तोंके अनुकूल होते हैं जिन्हें राज्य अपनी विधियों द्वारा निश्चित करता है। दूसरी ओर राजनीतिक गतिविधियाँ पर आर्थिक कारणोंका गहरा प्रभाव पड़ता है। हमारे आर्थिक जीवन पर राजनीतिक परिस्थितियाँ और विचारोंका प्रभाव पड़ता है। आजकलकी राजनीतिके कुछ महत्वपूर्ण प्रश्नोंका सीधा सम्बन्ध अर्थशास्त्रमें है—जैसे प्रत्यूक्त-विधि (tariff)

¹ सिद्धांत के दार्शनिक राजनीतिक संस्थाओंके अन्तिम उद्देश्य या परिणाम और उनमें सन्तुलन, भय-बुरे और सही-गलतके मानदण्डका निर्णय इतिहास नहीं करता।

laws) श्रमिक-विधि (labour legislation) और गवर्नमेंट-स्वामित्व (government ownership) वगैरह। जेना विद्याशास्त्राका सम्बन्ध इतना गहरा है कि एक गवर्नमेंट पहलके बगैरानिक लेखक अथ-शास्त्रको राजनीति शास्त्रकी शाखा ही मानत थ। अथ-शास्त्रका नाम ही राजनीतिक अथ-शास्त्र (Political Economy) रखा गया था। अठारहवा गवर्नमेंट तक अथ-शास्त्रका राजनीतिशास्त्र (Statesmanship) का अंग माना जाता था।

यद्यपि दोनों शास्त्राका बड़ा नजदीकी सम्बन्ध है तथापि दोनोंमें कुछ मौलिक अन्तर है। इस अन्तरकी खोज करते हुए आइवर वाउन का कहना है कि अथ-शास्त्र का सम्बन्ध वस्तुओंमें है और राजनीति-शास्त्रका सम्बन्ध व्यक्तियोंमें है। एक का सम्बन्ध भावों और दामों (prices) में है और दूसरेका सम्बन्ध मान और महत्व (values) में है। यदि अथ-शास्त्र व्यक्तियोंमें सम्बन्ध रखता है तो व्यक्तियोंके नाते नया बन्धक उन वस्तुओंके नाते जिन्हें वे उत्पन्न करते बचन और उपयोगमें लाते हैं। राजनीति-शास्त्र भी वस्तुओं पर विचार करता है पर बवल उसी ह तक जिम हद तक वस्तुओंका सम्बन्ध मनुष्य और ननिष्ठतामें जाता है। यही कारण है कि राजनीति शास्त्र एक सद्धान्तिक आदर्श-शास्त्र (normative science) विज्ञान हा जाता है पर अथ-शास्त्र एक व्याख्यात्मक विज्ञान (descriptive science) ही रह जाता है। किसी ने विनोयम ठीक ही कहा है कि अर्थ-शास्त्री बठ ध्यक्ति है जो दाम तो सब वस्तुओंका जानता है पर महत्व एक का भी नहा।

इस युगका यह एक गम लक्षण है कि अथ-शास्त्र उत्तरात्तर रूपमें एक आदर्श-शास्त्र सद्धान्तिक विज्ञान (normative science) बनता जा रहा है और सम्पत्तिक उत्पादनका ही विवेचन न करके उसके उचित विवरणका भी विवेचन करने लगा है।

३ राजनीति शास्त्र और समाज शास्त्र (Political Science and Sociology) जो स्थान समाज-शास्त्रका मानसिक विभागमें है वही स्थान समाज-शास्त्रका सामाजिक विभाग में है। परस्पर सम्बन्धित विभिन्न विभाग की विषय सामग्री का एकीकरण ही समाज शास्त्र का उद्देश्य है। इस प्रकार सामाजिक व्यापकता जेनोकी विभायता है। राजनीति-शास्त्र समाज-शास्त्रकी अंगेना अंगीण है और साधारणतया समाज-शास्त्रका उपाग है। समाज-शास्त्र मौलिक सामाजिक विज्ञान है। समाज-शास्त्रका क्षम इतना अधिक ध्यानक है कि आजकल के लेखक उसका राजनीतिक पक्षका अलग करके उसका अध्ययनगत सामाजिक जीवनक कुछ पहलुओं तक ही सीमित कर जेना पसन्द करते हैं। आइवर वाउन का कहना है कि 'उन सामाजिक साम्य-सिद्धान्त सिन्धाना जिनमें समाज-शास्त्रक प्राथमिक सिद्धान्तोंका भी ज्ञान प्राण नभे किया है वसा ही है जैसे उन सामाजिक व्यापक या अर्थशास्त्रिक विभाग जेना जिन्हें न्यूटन के गति सिद्धान्तका ज्ञान न हा।'

- (क) समाज शास्त्र अपने अधिकतम व्यापक अर्थ में समाजके सभी स्वरूपों और पक्षोंका अध्ययन है जबकि राजनीति शास्त्र केवल राज्य शासन व सरकारका अध्ययन है। इसी बातको हम दूसरे शब्दोंमें इस प्रकार कह सकते हैं कि समाज शास्त्र मनुष्यके सभी सामाजिक सम्बन्धोंका विवेचन करता है जबकि राजनीति-शास्त्र मनुष्यके केवल राजनीतिक सम्बन्धों का ही विवेचन करता है। प्रारम्भिक अवस्थाके राज्यके बारेमें यह भ्रम ही सच नहीं है पर वर्तमान राज्यके बारेमें यह बिल्कुल सत्य है। राज्य अपनी प्रारम्भिक अवस्थाआम राजनीतिक संस्थाकी अपेक्षा सामाजिक संस्था अधिक था। गिन्नास्ट के शब्दोंमें समाज शास्त्र समाजका विज्ञान है राजनीति-शास्त्र राज्य अथवा राजनीतिक समाजका विज्ञान है। समाज-शास्त्र मनुष्यका एक सामाजिक प्राणीके रूपमें अध्ययन करता है और चूंकि राजनीतिक संगठन एक विशेष प्रकारका सामाजिक संगठन है इसलिए राजनीति-शास्त्र समाज-शास्त्रकी अपेक्षा अधिक विंगिष्ट शास्त्र है। या जैसा कि क्रिनेनबर्ग ने कहा है 'जबकि समाज शास्त्रमें विभिन्न वर्गों और समाजोंका विवेचन होता है राजनीति-शास्त्रमें एक विंगिष्ट सच अर्थात् राज्यका विवेचन होता है।
- (ख) समाज-शास्त्र संगठित समुदायोंके अलावा असंगठित समुदायोंका भी अध्ययन करता है। पर राजनीति-शास्त्रका सम्बन्ध केवल संगठित समाजसे ही रहता है। यह केवल ऐसे समाजोंका ही अध्ययन करता है जिन पर राजनीतिक संगठनका प्रभाव पड़ चुका होता है। इस प्रकार राजनीति-शास्त्रका जन्म समाज-शास्त्रके बाद हुआ है।
- (ग) समाज-शास्त्र नागरिकोंके वैधिक (legal) या दमिष्ठ साध्य (coercive) सम्बन्धोंके साथ-साथ परम्पराओं या चारों (customs manners) पर तथा आर्थिक जीवनके विकासका भी अध्ययन करता है। राजनीति-शास्त्रमें नागरिकोंके वैधिक सम्बन्धों की ही विवेचना होती है।
- (घ) राजनीति-शास्त्रमें मनुष्योंके जातवृत्तकार किये गये कामोंका ही अध्ययन होता है। पर समाज-शास्त्र इसके साथ-साथ अनजानमें किये गये कार्योंका भी विवेचन करता है।
- (च) राजनीति-शास्त्रका आरम्भ मनुष्यको राजनीतिक प्राणी मानकर हुआ है। पर समाज-शास्त्र इसके पहलेकी स्थितिका विवेचन करके बतलाता है कि मनुष्य कैसे और क्यों राजनीतिक प्राणी बन गया।
- (छ) समाज-शास्त्र केवल इस बातका अध्ययन करता है कि क्या हो चुका है और क्या हो रहा है। क्या होना चाहिए इसका अध्ययन वह नहीं करता। राजनीति-शास्त्र हमने हम अपने एक पहलुमें इस बातका

विवेचन करता है कि क्या किया जाना चाहिए।^१

४ राजनीति-शास्त्र और आचार-शास्त्र या नीति शास्त्र राजनीति शास्त्रम राजनीतिक व्यवस्थाका और नीतिशास्त्र या आचार-शास्त्र (Ethics) म नैतिक व्यवस्थाका विवेचन होता है। दोनों ही म याम-अन्याय उचित और अनुचित का विचार होता है। मोनाका सम्बन्ध इतना गहरा है कि जिनका राजनीति शास्त्रको आचार या नीति-शास्त्रकी ही एक शाखा मानते थे। उनका विश्वास था कि राज्यको नागरिकोंको मद्गुणोंकी शिक्षा देना चाहिए। प्लेटो से अरस्तू मुख्यत इस बातम आग माने जाते हैं कि उन्होंने राजनीति-शास्त्र और आचार-शास्त्रको अलग-अलग कर दिया। पर उन्होंने राजनीति-शास्त्र और नीति-शास्त्र मे जो अन्तर किया बहु विषय (substance) का न होकर व्याख्या पद्धति या रीति (methodology) का ही है। अरस्तू भी राजनीति-शास्त्र और आचार-शास्त्रमे बहुत नज़दीकी पारस्परिक सम्बन्ध मानत हैं। और राजनीतिक प्रश्नों पर मनुष्यके उच्चतम नैतिक नियमका प्रभाव पड़ने देते हैं। उनकी सम्मतिम राज्यका उद्देश्य सावजनिक कल्याण या अच्छा जीवन है।^२ मकिमावेली (Machiavelli) पश्चिमके प्रथम प्रसिद्ध लेखक हैं जिन्होंने राजनीति शास्त्रको स्पष्टतः आचार-शास्त्रसे अलग कर दिया। उनके अनुसार धर्म और नतिकता (religion and morality) राज्यके नियामक (masters) तो किसी प्रकार हैं ही नहा बल्कि वे विवसनीय पथनिर्देशक भी मन्त्री हैं। वे केवल उपयोगी सेवक और एजेण्ट हैं।

आधुनिक विचारधारा सामान्यतः राजनीति-शास्त्र और आचार शास्त्रम धनिक सम्बन्ध बनाये रखनेके पक्षमे है।^३ लाइ एक्नन तो यहाँ तक कहते हैं कि यह पता लगाना महत्वपूर्ण नहीं है कि सरकारें क्या निर्धारित (prescribe) करती हैं बल्कि यह कि सरकारानो क्या निर्धारित करना चाहिए। एक दूसरे लेखकका कहना है कि राजनीति शास्त्र और आचार-शास्त्रको अलग करना दोनोंके लिए ही घातक है। आचार-शास्त्रम अलग होकर राजनीति-शास्त्र बालूकी अस्थिर नीब पर टिकता है। आचार-शास्त्र राजनीति-शास्त्रसे अलग होकर सकीर्ण और भाव-भ्रम हो जाता है। इसका परिणाम होता है मान मूल्योंका व्यावसायीकरण और उनकी विहृति।^४ अइवर ब्राउन का मत है कि राजनीति-शास्त्र और आचार-शास्त्रके बीच परिमाणका अन्तर है गुणका नहीं। बल्कि 'राजनीति-शास्त्र आचार-शास्त्रका ही व्यापक रूप है। यह आग

^१ हमसका मत जिनका उद्धरण कननबग ने दिया है इसके विपरीत है। उनका कहना है यह आरोप कि समाज शास्त्र हमे आदर्शोंके स्थान पर कारे तन्म्यों और पूषक महत्व और उपयोगिताके स्थान पर एकरूप सिद्धान्तोंके अतिरिक्त और कुछ नहीं देता बल्कि एक इस वाक्यमे ही निम्न-भिन्न किया जा सकता है कि 'एसा नहा है हमार मार्ग समाप्त भावसे हमारे भीतर सत्रिय रहने है।

^२ फ्रॉय के मतानुसार जो बाल नैतिक दृष्टिसे अनुचित है वह कभी राजनीतिक दृष्टि से न्याय-संगत हो ही नहा सकती। पर यह सबदा व्यावहारिक सत्य मन्त्री है।

कहते हैं। आचार-शास्त्र राजनीति शास्त्रके बिना अपूर्ण है क्योंकि मनुष्य एक सामाजिक जीव है और वह एक दम अकेला रह ही नहीं सकता। नीति-शास्त्रके बिना राजनीति शास्त्र व्यर्थ है क्योंकि उसके अध्ययन और उसकी सफलताका मूल आधार हमारी नैतिक मान-संज्ञाकी व्यवस्था या अर्थात् उचित-अनुचितकी धारणाएँ हैं।

राजनीति-शास्त्रको मज़ा मा गांधी की स्थायी देन राजनीति के आध्यात्मिकरण का उनका आग्रह है अर्थात् उनका इस बात पर जोर देना कि साथ अहिंसा प्रेम और अपरिग्रह जैसे नैतिक और आध्यात्मिक नियमोंका मनुष्यक सामाजिक जीवनमें पालन हो।

राज्यके औचित्यका निराय अन्तम इस धारणा होता है कि राज्य अपने लक्ष्यों और उद्देश्योंका पूरा कर सकल होता है। इस प्रकार राजनीति शास्त्र और आचार-शास्त्रके सम्बन्धमें सामाजिक होना जरूरी है। फिर भी दोनों शास्त्रोंकी विषय-सामग्री बहुत अन्तर है। **बर्कलिन** का कहना है कि आचार-शास्त्रमें एक राजनीति यह सीखता है कि अनक मार्गों में कौन सा मार्ग वास्तविक है और राजनीति शास्त्र उसे बतलाता है कि कौन सा मार्ग अपनाता सुलभ होगा।

५ राजनीति शास्त्र और मनोविज्ञान (Political Science and Psychology) मनोविज्ञान अपने वर्तमान रूपमें एक नवीन विज्ञान है। और उसके समर्थक मनुष्यके भ्रूणगत और सामाजिक जीवनके हर पहलूम मनोवैज्ञानिक तरीकाका इस्तेमाल करनेकी कोशिश कर रहे हैं। **अर्नेस्ट बार्कर** ने ठीक ही कहा है कि 'मनुष्यके क्रिया कलापाकी गुंथी सुलझाना मनोवैज्ञानिक सकेतोका प्रयोग करना आजकल का एक फलन हो गया है। यदि हमारे पूर्वज जैविकीय दृष्टिकोण में (biologically) मानते थे तो अब हम मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोणमें मानते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आजकल राजनीतिमें जिन मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोणोंका प्रयोग पर इतना जोर दिया जा रहा है वह बहुत उपयोगी है। हाँ सकता है कि राजनीति-शास्त्र इतना अधिक समय तक दृष्टान्त-शास्त्रके प्रभावमें रहा है कि उसमें मानव व्यवहारके तथ्योंकी ओर काफी ध्यान नहीं दिया है। हम अपने मस्तिष्कको अपने निरीक्षणके दरिये ही स्मृति देती हैं। जब तक हम यह न समझ लें कि मनुष्य व्यक्तिगत रूपमें और समाजके समूहके रूपमें विभिन्न परिस्थितियोंमें किस प्रकार व्यवहार करता है तब तक हम राजनीति-शास्त्रके अध्ययनमें बहुत दूर तक नहीं जा सकते। मानव व्यवहारका ठीक-ठीक समझने के लिए हम प्रकृति प्रवृत्ति अनुकरण और मुद्राओं आदि को जानना होगा। किसी भी सरकारका स्थायी और वास्तविक जनप्रिय बननेके लिए यह जरूरी है कि वह जनताके मानसिक विश्वास और नैतिक भावनाओंको प्रतिबिम्बित करे। मैं अपने सरकारका लुबा (Le Bon) के नामों 'जाति'की मानसिक प्रवृत्तिका अनुरूप होना चाहिए (२२ ३६)। जन मनोविज्ञान जिनके धर्मका मनोविज्ञान तथा सम्मानकी भावना आदि के अध्ययनके द्वारा ही होना चाहिए घटनाओंके समझनेमें सहायता मिलती है।

साम ही यह भी याद रखना चाहिए कि राजनीति-शास्त्रम मनाविज्ञानक महत्त्व को बहुत अधिक बढ़ा चढ़ा कर रह जाना आसान है। बाकर उन अपनी पुस्तक 'इंग्लण्ड का राजनीतिक चिन्तन स्तरमें आज तक (Political Thought in England Spencer to Present Day)' में मनावज्ञानिक तरीके की शायिया श्म प्रकार बतसायी हैं—

(१) मनावज्ञानिक वस्तुज्ञाना मूयाजन न ता करता है और न कर सकता है। मूल्याकन ता नीति शास्त्रियाया काम है। मनाविज्ञानता वस्तुआके वास्तविक रूपम सम्बन्ध रखता है और नीति शास्त्र उनक आत्मा रूपम। इसलिए राजनीति शास्त्र का मनोविज्ञानकी महायता न सकर नीति शास्त्रकी महायता सती चाहिए।

(२) मनाविज्ञान सम्य जीवनकी ध्यास्या असम्य प्रवृत्तियाकी गणनासाम करना चाहता है—उच्चतरकी निम्नतरम। यन् मही तरीका नया मालूम पड़ता। निम्नतर की ध्यास्या उच्चतर माध्यमम करना सही तराबा है। मनष्य बन्दरका विनयण करता है न कि बन्दर मनुष्यका। सम्य जीवनकी ध्यास्या तिहासके पहन क कालक जीवनकी परिस्थितियास करना असगत है। यत कहना अनुचित है कि बहा स्थिति विवकपूर्ण है तिमकी प्रारम्भिक अवस्थाना हम पता हा। प्रकृति प्रवृत्ति मुसाव ओर अनुकरणका अस्तित्व मनुष्यकी बुद्धि न तात है। कोई ना वात आत्मा रूपम हातस अन्तिम या सुबत अच्छी नहा हा जाता।

(३) मैकडूगन जस नामी मनावज्ञानिक न यह ता बतलाया है कि समाजम काम करनेवालो प्रवृत्तिया कब और कभ शुरू हुइ पर वह यह नह बताने कि इन प्रवृत्तियाका सवार समाजम कैम हाता है। वह म्क एसी याशानी तैयारी जार योरस करन हुए तियाया दत है तिम वह कभी शुरू नहा करते (३)। सभा मनावज्ञानिक तथ्याका सकलत करनक वात् भी एक मौलिक प्रश्न यह रह जाता है कि आखिर इन तथ्याका किया क्या जाय ? इस पर मनाविज्ञान साभोग है।

(४) कर्तलिन क अनुसार मनाविज्ञानका सम्बन्ध मानसिक श्रियाआम है और उनहा अध्ययन व्यक्तिक मन-मस्तिष्कका ध्यानम रखकर उसीक सम्बन्धम हा सजता है। राजनीति-शास्त्र सामाजिक प्राणियाकी प्रवृत्ति या इच्छा-जनित सम्बन्धका अध्ययन करता है। अर्थात् मनाविज्ञानम व्यक्तिक श्रवितक रूपम और राजनीति शास्त्रम व्यक्तिका सामाजिक जीवन रूपम अध्ययन हाता है।

६ राजनीति-शास्त्र और विधि (Political Science and Law) उभय सामाजिक तथ्य (phenomenon) और विधि मध्या गता हा है। राग्दकी पूण व्याख्याम इन गता दृष्टियागाता समाजम जस्ती है। विधि दृष्टियाणस राज्य एक व्यक्ति इय मानम है कि अधिरारा और कनध्याक बचन जमक लिए भी है। राज्य हाण और राग्दक विद्व अज्ञानममि मूरदम बराय जा सजता है। परिभाषाक रूपम इसी वातका इस प्रकार ना कहा जा सकता है कि 'राज्य किमी निश्चित क्षणम

बसनेवाला मनुष्याका निगम (corporation) है जिस शासनके मौलिक अधिकार प्राप्त है (१९) ।

‘याय-शास्त्रका परिभाषाम विधिकी विद्या कह सकते है जोकि शुद्ध अयमें राजनीति-शास्त्रका ही भाग है। पर अपनी व्यापकता और तकनिकल स्वरूपक कारण इसका अध्ययन एक पूयक शास्त्रकी भाँति किया जाता है।

सविधान शास्त्र (Constitutional Law) राज्यके विभिन्न अंगकी परिभाषा करता है उनके आपसी सम्बन्धका और राज्य तथा व्यक्तिके सम्बन्धको तय करता है। अन्तराष्ट्रीय विधि (International Law) राज्याके पारस्परिक सम्बन्धका विवेचन करता है।

पश्चिमी विधि-शास्त्रक विकासमें स्टाहक^१ सिद्धान्तका और रामक ‘याय-शास्त्र (Jurisprudence) का बहुत बड़ा हाथ है। हेनोवेल का कर्ना है कि पाश्चात्य सम्यताका स्तोत्रक विचारधाराकी मुख्य देन है विश्व-बन्धुत्व (universal brotherhood) और विवेक-सगत सावभौम विधि (universal law of reason) है। उहाकी राय है कि रामवासाके विचाराने अनुसार राज्य एक वैधिक साम्राज्य है पर ईसाई मतक अनुसार यह प्रेमजन्य साम्राज्य है।

७ राजनीति शास्त्र और भूगोल (Political Science and Geography) मनुष्य पर उन भौतिक परिस्थितिया और भौगोलिक दशाभ्रका काफी असर पड़ता है जिनके बीच वह रहता है। किसी देशकी जलवायु प्राकृतिक विभाग और भौतिक विभाषताका वहाँकी जनताने चरित्र संस्थाया और सफलताओं पर पड़नेवाल असर को बढ़ा घटा कर बताना आसान है। यद्यपि मनुष्यके जीवनमें इन बाहरी परिस्थितिया का महत्वपूर्ण हाथ रहता है पर यह याद रखना जरूरी है कि सम्य मनुष्य प्रकृतिके हाथको कठपुतली नहीं है। जानवरोंकी भाँति वह प्रकृतिका अध-अनुकरण नहीं करता। अपनी बुद्धि और दूरदर्शिताके बल पर वह प्रकृतिको अपने अनुकूल बनाकर अपना प्रयोजन सिद्ध कर लेता है।

किसी देशकी राजनीतिक संस्थाया और वहाँकी जनताके राष्ट्रीय चरित्र पर भूगोलका क्या असर पड़ता है इस प्रश्नकी ओर ध्यान देनेवाले प्रारम्भिक लेखकोमे भरस्त्रु भी एक प। आधुनिक लेखकाम बोडी (Bodin) ने सातहवां शताब्दीमें इस विषयकी ओर ध्यान दिया। उनके बाद बोडी ने सा यहाँ तक कहा कि जनवायु और सरकारके स्वरूप एक दूसरेसे सम्बन्धित हैं। उनकी राय थी कि गरम जलवायुके लिए साम्राज्यी टण्डी जलवायुके लिए अगलीपन और समशीतोष्ण जलवायुके लिए अच्छी शासन प्रणाली (good polity) बिल्कुल स्वाभाविक है। उनकी यह भी राय थी कि छोटे देशके लिए ताकत और बड़े देशके लिए राजतंत्र सर्वोत्तम है।

पश्चिमी शास्त्राने मध्यम टॉमस बकम ने ‘सम्यताका इतिहास (History of

^१ यूनान की एक दासनिक विचार-पद्धति ।

(Civilisation) नामक अपनी पुस्तकमें प्राकृतिक परिस्थितियों और राष्ट्रीय चरित्र के बाचके सम्बन्धको बहुत ही बड़ा-बड़ाकर बताया। उन्होंने उदाहरण के लिये कहा कि सोगोके जातीय चरित्र और सम्प्राप्तिके निमाणमें भूगोलका सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। उन्होंने जलवायु भोजन धरती और प्रकृतिक सामान्य स्वरूपके प्रभावों पर खास तौरसे ध्यान दिया। उनकी इस उद्यम रायसे आजकल बहुत कम लोग सहमत हैं।

अत्युक्ति का बावजूद यह निस्सन्देह सही है कि भौगोलिक परिस्थितियों ने नीति निर्धारण पर बहुत अधिक प्रभाव डाला है। यह प्रभाव कुछ अर्थों तक राजनीतिक समस्याओंके स्वरूपों पर भी पड़ा है (२३ ४२ ६६)। इसका साथ ही हम निश्चिन्त रूपसे यह कह सकते हैं कि सामाजिक और राजनीतिक सम्प्राप्तिके निमाणमें भूगोल का वह स्थान अब नहीं है जो पहले था।

राजनीति शास्त्रका पद्धतियाँ (Methods of Political Science)

सभी लम्बे स्वीकार करते हैं कि राजनीति-शास्त्र एक अनिश्चित (inexact) विज्ञान है। यह परम सत्यका अपना लम्ब नहीं बनाता। यह आंशिक सत्यको खोज करता है। इसलिए लगभग सभी राजनीतिक प्रश्नोंके कारण मनमद होना अक्षय्य-भावी है। राजनीतिक तौर पर आज जो बात ठीक जान पड़ती है मुश्किल है वही बात आज से सौ साल बाद ठीक न लगे। राज्यके कारण कोई भी सिद्धान्त अंतिम सत्य नहीं माना जा सकता। इन्हीं कारणोंके कारण कुछ विचारक राजनीतिक सिद्धान्तोंके अध्ययन का विज्ञान या शास्त्र कहना शुरू कर चुके हैं। यह सही है कि राजनीति-शास्त्र गणित-शास्त्र भौतिक-शास्त्र या रसायन-शास्त्रकी भाँति निश्चित (exact) नहीं है। पानीपतका घाटकर तुनिया भरम और सब कहो ग और दा मिलकर चार ही होत है। हाइड्रोजन (Hydrogen) का दस अणु और ऑक्सीजन (Oxygen) का एक अणु जब कभी आत्म-रासायनिक तरोटसे मिल जाते हैं तब पानी बन जाता है। यह विधि सघार भरमें सब कहा और हर समयके लिए है। पर परिवर्तनशील मानव स्वभाव और व्यवहारके कारण इस प्रकारकी विधि हम समाज-शास्त्रके अध्ययन में नहीं मिलती। राजनीतिक तथ्योंके गुण निश्चित निकात बना और निश्चित बारीक-बारीक सही निश्चितशी कर सकना यदि असम्भव नहीं तो कठिन जरूर है। फिर भी काफ़ी समय तक राजनीतिक तथ्योंका नैतिक अध्ययन करनेके बाद हम ऐसे सामान्य विधान और सिद्धान्त निर्धारित कर सकते हैं जिनमें शासनकी व्यावहारिक समस्याओंका सुलझानमें सहायता मिल सकती है।

हम मानव-समाज या राजनीतिक व्यवस्थाके साथ उस प्रकारके प्रयोग नहीं कर सकते जिस प्रकारके प्रयोग एक वैज्ञानिक भौतिक और रासायनिक द्रव्यके साथ करता है। विभिन्न शासनप्रणालियोंके प्रभावोंका ज्ञानके लिए हम मनमाने ढंगसे एक राज्यमें साक्षर और दूसरेमें अज्ञानकी स्थापना नहीं कर सकते। भौतिक

तथ्या और सामाजिक सभ्यताम मौलिक अंतर होना है। फिर भी प्रत्येक विधि एक प्रयोग ही है। और एक सतर्क विचार्यी विषय तथ्यके आधार पर सामान्य निष्पत्ति निकाल सकता है। राजनीति-शास्त्रके अध्ययनसे हम जिन निष्कर्षों पर पहुँचते हैं वे गणितके समान निश्चित नहीं होते। फिर भी इसमें हम सम्भाव्य सत्यों (probable truths) की खोजमें सहायता तो मिलती ही है। और सम्भाव्यका ज्ञान' जैसा कि समुएल बटलर ने कहा है जीवनका मुख्य पथप्रदर्शक है। मौलिक शास्त्रम भविष्यवाणी निश्चयात्मक हो सकती है। राजनीतिम भविष्यवाणी किसी भी हालत में सम्भाव्यम अधिक नहीं हो सकती (७)।

आजकालके बहुतम विचारवाने व्यावहारिक निष्कर्षकी प्राप्तिके लिए उन तरीकों पर विचार किया है जिनके द्वारा राजनीतिक सभ्यताका सफल और वर्गीकरण किया जा सके। अगम्स कोर्ट के मतानुसार प्रधान रीतियाँ हैं—पर्यवेक्षण प्रयोग और तुलना। अरबनी का मत है कि गणितिक और इतिहासीय पद्धतियाँ सही पद्धतियाँ हैं। अन्य आधुनिक विचारवाने मतम निगमनात्मक रीति (deductive) और स्वतन्त्र तुष्ट-सद्धान्तिक पद्धति (dogmatic method) की अपेक्षा आगमनात्मक (inductive) या व्याप्तिसूचक (pragmatic) पद्धतियाँ द्वारा राजनीति-शास्त्रम वचार्थ परिणाम अधिक यकीनी तौर पर निकाल जा सकने हैं। जिन पद्धतियाँ विचारक सामान्यन पसन्द करते हैं वे ये हैं—

- (१) प्रयोगात्मक पद्धति (experimental method)
- (२) इतिहासीय पद्धति (historical method)
- (३) तुलनात्मक पद्धति (comparative method)
- (४) पर्यवेक्षणपरक पद्धति (method of observation) और
- (५) गणितिक पद्धति (philosophical method)।

इनमें म प्रथम चार पद्धतियाँ बहुत अधिक समानता हैं और इसलिए ये चारों एक काटिम रखी जा सकती हैं। पाचवी पद्धति की अपनी अलग श्रेणी है। इन दाना प्रकार की पद्धतियाँ मिलनेसे ही महत्वपूर्ण नतीजा निकल सकता है। आगमनात्मक (inductive) और निगमनात्मक (deductive) पद्धतियाँ एक दूसरकी पूरक हैं।

१ प्रयोगात्मक पद्धति (The experimental Method) जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है ऐसे शास्त्रम जिनका विषय मानव समाज हा जानबूझ कर प्रयोग करनेका मौका बहुत कम रहता है। मानव-प्रेरणाओं और मानवीय महत्त्वोंका एक सामान्यिक द्रव्यकी तरह न ता खाना-नापा जा सकता है और न सर्जित-बद्ध किया जा सकता है। फिर भी मभी विधियाँ नीतियाँ और राजनीतिक पद्धतियाँ प्रयोग के आवश्यक बसक भीतर ही रहती हैं और इन प्रयोगोंके अध्ययनमें राजनीति-शास्त्र वचार्थ मनीने निकाल सता है। अपने चारों ओर सगानार होनेवाली राजनीतिक घटनाओं और नवीन प्रवृत्तियों (innovations) पर ध्यान देकर उनमें नतीजा निकाल

लना उसका काम है। सरकारें हमारा जनसमुदायक साथ प्रयाग कर रही हैं। इतिहास बन्त बड पमाने पर होनवाता प्रयोग है।

आजकाल हम अनजानम क्रिय गय प्रयाग पर भरासा नहा करते। जब आर जहां परिस्थितिमा गौका दनी है हम अपन पिछन अनुभवक आपार पर जानबुझकर राजनीतिक प्रयाग करत है। १८३९ ई० की उरहम रिपोर्टके आधार पर बनावडाका दिया गया उत्तरदाया स्वायत्त शासन अथवा भारतका श्रिय गय बधानिक सघार और बधानिक उगत दी गयी पूण रवतत्रता इसक उदाहरण है। इस प्रकार राजनीति शास्त्रम प्रयागात्मक पद्धतिका स्पष्ट और निश्चित स्थान प्राप्त है।

२ इतिहासीय पद्धति (The Historical Method) इतिहासीय पद्धति का प्रयागात्मक पद्धतिका ही एष स्वरूप समझना चाहिए। राजनीति शास्त्रके विद्यार्थी क लिए इतिहासका ठीक तरहस अध्ययन बहुत उपयोगी है। यह हम राजनीतिम जल्न वादीम क्रिय गय एकतरफा निणयासे बधाता है। राजनीतिक संस्थाआ और पद्धतिया क जन्म विकास और उन्धानके अध्ययन का महत्व इस बातम हे कि हम इसस भविष्य क पथ प्रदानके लिए निष्कण तिकान सकत है। इतिहास हम बवन बोती हुई मानें ही तत्रा स्पष्ट करता यह भविष्यकी व्यवस्था बनना पुना भी है।

इतिहासीय पद्धति प्रधानत आगमनात्मक (inductive) है। इसका आधार परबणण और इतिहासीय तथ्योंका अध्ययन है। इस पद्धतिनी सबसे बडी कमजारी यह है कि यह महत्वा और मूयाका विचार न तो करती है और न कर सकती है। हम नमीनेो दार्शनिक या नतिक पद्धतिसे पूरा बनना पडता है त्रिनम उह्या और महत्वा का विवचन रहता है। फिर भी अप्रत्यक्ष रूपम इतिहासीय पद्धति हम कार्योकी भलाई व सुगईका फसता करनक सायक बना दनी है। इतिहासीय पद्धति का प्रयाग करत म निम्नलिखित सावधानिया बरतना विद्यार्थी क लिए लाभदायक हागा-

(क) उसे ऊपरी समानताआ (superficial resms blancs) और सादृश्या (parallels) क भ्रम म न पडना चाहिए।

(ख) उसे वर्तमान और भविष्यका निधारण बवन अनीतम हा न करना चाहिए। इतिहासीय पद्धतिमा सहीग रुढ़िवा न बना देना चाहिए। कोई बात पडत कभी किसी एक खास उगत हा चुवी है सा इसक मान यह नहा है कि वर्तमान कालम भी वह उसी उगसे हो।

(ग) उस अपने पूव कल्पित विचारका इतिहास झाप समवन इउनक प्रथाभनय बधना चाहिए। उसका दुष्प्रियाग एकदम बधानिक या निष्पत्त हाता चाहिए।

(घ) उस मान रखना चाहिए कि 'इतिहासकी पुनरावृत्ति हाता है' वाता कहायत अर्प-सत्य ही है। वा अर्प-सत्य यह है कि इतिहासकी पुनरावृत्ति कभी नरा हाती। इतिहासीय परिस्थितिया कभी भी ठान उगी प्रकार दुवार नहा उपस्थित

है। हम नदीकी उसी धाराके दो बार टुकरी नहीं लगा सकते (७) ।

३ तुलनात्मक पद्धति (The Comparative Method) तुलनात्मक पद्धति इतिहासीय पद्धतिकी पूरक है। इस पद्धतिका प्रयोग अस्तु के युगसे होना आ रहा है और आधुनिक युगमें यह टोकूवीन वाइस तथा अन्य विचारकोने इसका सफल उपयोग किया है। यदि हम विभिन्न घटनाओंकी ठीकसे तुलना नही कर सकते तो इतिहासका अध्ययन व्यर्थ है। तुलनात्मक पद्धतिमें हम घटनाओं का वर्णन करने कारण और प्रभाव निर्दिष्ट करने और सामान्य सिद्धान्तकी स्थापना करनेमें सहायता मिलती है। इसमें हम बड़ी संख्यामें तथ्यों का संग्रह करते हैं उन्हें क्रमबद्ध करते हैं और उन सबमें पाये जानेवाले समान तथ्योंको खोज निकालते हैं।

इस पद्धतिका लाभप्रद उपयोग करनेके लिए हमें समानताओंके साथ ही विभिन्नताओं पर भी ध्यान देना चाहिए। हम निष्कर्ष निकालनेमें जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए। जिन तथ्योंसे हम सामान्य तत्व निकालने हैं उनमें आपसमें बहुत अधिक विभिन्नता नहीं होनी चाहिए। तुलनाएँ बहुत दूर तक नही घसीटी जानी चाहिए और तुलनाएँ खींचतान कर नही करनी चाहिए। अस्पष्ट और अपूर्ण सामग्री पर निर्भर हाथर सामान्य सिद्धान्त नही बनाने चाहिए। यह अधिक लाभप्रद होगा कि हम अपनी छानबीन उसी सामान्य तत्व सीमित रखें जिनका विकास समान इतिहासीय पृष्ठभूमिमें हुआ हो और जो समयके विचारमें नजदीक हो।

सादृश्य पद्धति (analogical method) तुलनात्मक पद्धतिका एक विशेष रूप है। यह राजनीति-शास्त्रमें बहुत उपयोगी है क्योंकि सादृश्यको एकरूपता (identity) की सीमा तक न पहुँचा दिया जाय। दो चीजोंमें सादृश्य स्थापित करने का अर्थ उनमें एकरूपता कायम करना नहीं है। सादृश्य प्रमाण नहीं है। यह हम सम्भाव्यता काय करता सकता है निश्चयका नहीं।

४ पर्यवेक्षण पद्धति (The Method of Observation) तुलनात्मक पद्धतिकी तरह पर्यवेक्षण पद्धति भी आगमनात्मक (inductive) है। प्रेसीडेण्ट जीवित का कहना है कि 'राजनीति एक पर्यवेक्षणात्मक विज्ञान है प्रयोगात्मक नही। और पर्यवेक्षण पद्धति ही अनुसंधानकी सच्ची पद्धति है। उनका कहना है कि एक पुस्तकालय राजनीति शास्त्रकी प्रयोगशाला सीमित क्षमता ही है। 'राजनीतिकी वास्तविकीके ज्ञान' के लिए पुस्तकें पढ़ना-संख्या उतना ही मौलिक खोज है जितना व भूगोलशास्त्र (Geology) या खगोलशास्त्र (Astronomy) के लिए होती है। उनका यह भी कहना है कि राजनीतिकी सत्याओंकी वास्तविक काय-विधिकी प्रयोगशाला पुस्तकालय नहीं बल्कि राजनीतिकी जीवनका बाहरी सतार है। इसी कारण सामान्य और पर्यवेक्षणका मौलिक काम होना चाहिए। वाइस न पर्यवेक्षण पद्धतिका

बहुत अधिक अनुसरण किया है। राजनीतिक सत्पात्रक वास्तविक कार्य-कलापात्रा निष्पन्न पत्रवेक्षण इसका आधार है। अपन महान् ग्रन्थ *The American Common Health* और *Modern Democracies* के लिखनके पहलु ताड ब्राइस न सम्बन्धित देशा का भ्रमण किया वहाके राष्ट्रीय नताओंके बातों का सरकारीका वाय-विधिपात्रा निरीक्षण किया और तब निष्पन्न निकाल। निस्सन्देह एसी पद्धति जो स्वय अपन पत्रवेक्षण और चिन्तन पर निर्भर हा ग्रहा करन और प्रकाश करन योग्य है। इसका सीधा सम्बन्ध वास्तविकतापरि र्जना है और इसके विरुद्ध यह आरोप नहा लगाया जा सकता कि यह मात्र मूर्ख (abstract) और सिद्धान्तवादी है (It is in living touch with facts and is free from the charge of being abstract and doctrinaire)। फिर भी इस पद्धतिका प्रयोग सावधानीके साथ किया जाना चाहिए। जब तथ्य बहुत अधिक और परस्पर विरोधी हा ता निर्णित और विवेक-सम्पन्न व्यक्ति ही सही निष्पन्न निकाल सकता है। सही प्रमाणाका ब्यारन और मकलित-सामग्री का सही मन्तव्य लगान की सामर्थ्य उसमें होनी चाहिए। अपना दृष्टिक अनुकूल चीजोंको दल उन और अपनी दृष्टिके विपरीत चीजोंकी ओरस आसों बन्ध कर लेनकी क्षमता र्जना है। उसी प्रकार सार्व्हीन चीजोंका उ सेने और तब पूरा सामग्रीका सा देनेका भी सुतरा र्जना है। निष्पन्नैह तथ्याका समग्र करन पहला कतव्य है। पर तथ्य स्वय और बचन बहुत कम प्रयोगा है। उनका सहा व्याख्या करनके लिए और उन्हें सजीव और वास्तविक बनानेके लिए एक मूर्खदशी और समय दिमागकी उम्बरत है।

२ वाचनिक पद्धति (The Philosophical Method) वाचनिक पद्धति ऊपर बतायी गयी पद्धतियोंके विपरीत निगमनात्मक पद्धति है। इसी मित्त और सिद्धविक इस पद्धतिके प्रधान पोरक और विषयक हैं। यह पद्धति वाचनिक और नैतिक आधार पर उभरके स्वरूप और उद्देश्य पहले निर्दिष्ट करती है और फिर इस उद्देश्यकी पूर्तिक लिए सर्वोत्तम उगकी राजनीतिक सत्पात्रा की खोज करती है। यह मूर्खकल्पनाओं (abstract concepts) का सेकर बनती है और फिर इतिहासक वास्तविक तथ्योंके जनना मल मित्तन का प्रयत्न करती है। इस पद्धतिय मुख्य सुतरा यह है कि 'नूर' की 'युगानिया' और धन्य की 'रिपब्लिक' की भांति ही राजनीतिका विद्यार्थी कल्पना प्रमाण और स्वल्पनाओं बन जाना है। इतिहासीय तथ्योंके दूर हाकर सासना आत्माकी बन जानेका भी सुतरा र्जना है। यूनानी वाचनिकोंके युगस लेकर मध्य-युगक शास्त्र प्रमिता और अद्युनिक-युगके विचारका ने भी एक आत्मा प्रकारक राज्य की स्थापना पर बध्न् ध्यान दिया है।

निष्पन्न एक सत्रक विद्यार्थी इतिहासीय और वाचनिक पद्धतियाका मित्तन का प्रयत्न करेगा। उस निगमन द्वारा प्राप्त सिद्धान्तोंका जननव शाप प्राप्त वास्तविक तथ्योंकी कसौती पर कमाना चाहिए और जीवनके तथ्योंकी व्याख्या मूर्ख या वाय कारणानुगत नरें सिद्धान्त (abstract or a priori principles) आधार पर करनी

चाहिए। उस वास्तविकताकी बढाव भूमि पर क्रम जमाये हुए बुद्धिवा आममान तक ऊंची उगान भरने देना चाहिए। उसे यथार्थ और आत्मका सुन्दर सन्तुलन बनना प्रयत्न करना चाहिए। उस एम यथार्थवादको ठुकरा देना चाहिए जो अपनी दृष्टि-परिधिसे बाहर किसी तथ्यको स्वीकार न करे और ऐसे आदमको भी उस बाई स्थान न देना चाहिए जो असाध्य हो। उस अरस्तू और धर्म एसे विचारका अनुकरण करना चाहिए जिन्होंने अपनी पुस्तकाम इतिहासीय और धार्मिक पद्धतिया का प्रयोग किया है।

स निष्कर्षकी दृष्टिसे यह कुछ चिन्ताकी बात है कि आजकल बहुतस अमेरिकी ललक प्राथमिक सिद्धान्तका छाडकर पद्धतियों (methods) प्रविधिया (techniques) और कौशल (skills) पर अधिक जार दते हैं और महत्वके मूल्यांकन की परवाह नहीं करने हैं। इसका विरुद्ध जैसा कि डा० मैकफ्रसन न अमेरिकन पालिटिकल साइम रिव्यू (Vol. XLVIII June 1954) में कहा है कि प्रेट प्रिटेनम गूढ अध्यावहारिक प्रयोगोंको कम महत्त्व दिया जाता है और राजनीतिक सस्याजा और पद्धतियोंका परीक्षण इस दृष्टिसे करनेकी प्रवृत्ति अधिक है कि इनसे कौन-सा उद्देश्य सिद्ध होना है और कौन-सा होना चाहिए। विन्तक राजनीति शास्त्री न प्रविधिया (techniques) में पीछे अधिक परेगान नहीं हाते। उस दैगम मूल्यांकन प्राप्त निष्कर्षों का मान है और वास्तविकताकास अलग गूढ प्रयोगात्मक गैनी पर स्पष्ट अविश्वास मानता है।

अमेरिकाम भी प्राक्सर ४० एच० हैलावन जैम ललक है जा ठीक ही कहते हैं कि सामाजिक शास्त्रका नयी शोध प्रविधियों (new research techniques) की उतनी जरूरत नहीं है जसा कुछ लोग समझते हैं परन्तु उन्हें ऐसे विश्वास की जरूरत अवश्य है जा तक-सगत सिद्धान्तों पर आधारित हा। (११ २ पृष्ठ ४२६)।

SELECT READINGS

BARKER L.—*Political Thought in England Spencer to Present Day*—
Chs 5 and 6

BARNES H E.—*Sociology and Political Theory*—Ch 2

BROWN IVOR.—*English Political Theory*—Ch 1

CATLIN G E G.—*The Science and Method of Politics*—Chs 1 3

GARNER J W.—*Political Science and Government*—Chs 1 3

GETTELL, R G.—*Introduction to Political Science*—Ch 1

GETTELL, R G.—*Readings in Political Science*—Introduction

GILCHRIST R.N.—*Principles of Political Science*—Ch. 1

HALLOWELL, J H.—*Main Currents in Modern Political Thought*—
Chs. 1 3

- LEACOCK S — *Elements of Political Science*—pp 3-12
MERRIAM C.E.—*New Aspects of Politics*—Chs 3-4
POLLOCK G — *Introduction to the History of the Science of Politics*—
Ch 1
SEELEY J — *Introduction to Politics*—Lectures 1 and 2
SIDGWICK H — *Elements of Politics*—Ch 1
WILLOUGHBY W W — *The Nature of the State*—Ch 1

राज्य का स्वरूप (The Nature of the State)

सामाजिक संस्थाओं में स राज्य सबसे अधिक व्यापक (universal) और शक्तिशाली है। जहाँ कहीं भी कुछ समय तक मनुष्य एक साथ रहे हैं वही हम सगठन और सत्ता का प्रयोग देखने का मिलता है और यही दोनों राज्यकी नींव हैं। सत्तारम ऐसे लोगों का एक ही उदाहरण है जिनका समाज तो है पर राज्य नहीं और ये लोग एस्किमो है जिन्हें टॉयबी (Toynbee) ने 'गुठित सम्यतावाले' कहा है (७९)।

जैसा कि यूनानी लेखकों ने हम बताया है राज्य स्वाभाविक तथा आवश्यक दोनों है। सिरस स्वाभाविक हो सकता है पर आवश्यक नहीं। राज्य स्वाभाविक इस माने में है कि इसका जन्म मनुष्यों की मूल प्रवृत्तियों से और इसका विकास क्रमश हुआ है। अरस्तू का कहना है कि मनुष्य स्वभावतः राजनीतिक प्राणी है। उनकी राय है कि परिवार का विकास होने से गाँव बनता है और जब कई गाँव मिल जाते हैं तो नगर या राज्य बन जाता है। प्रत्येक नगर प्रकृति की ही रचना है। अरस्तू का कहना है कि राज्य में रहना और मनुष्य होना एक ही बात है क्योंकि यदि कोई राज्य का सदस्य नहीं है या राज्य का सदस्य होने लायक नहीं है तो वह या तो देवता है या जानवर वह या तो राज्य के ऊपर है या नीचे। आधुनिक लेखक सभी-सभी मनुष्यों को राजनीतिक प्रवृत्तियों की शर्षा करते हैं। इससे उनका मतलब है कि राज्य की जड़ें मनुष्यों की प्राकृतिक प्रवृत्तियों में हैं और उसे आसानी से निमूल नहीं किया जा सकता। राज्य का विकास होता है वह स्थायी है और एक बार नाश कर दिये जाने पर वह फिर प्रगट होता है। यदि यह कहा जाय कि राज्य परिवार की तरह स्वाभाविक संस्था नहीं बरन् मनुष्यों की कुछ जम्हिरों का कृत्रिम रूप है तो हमारा उत्तर यह है कि मनुष्यों के लिए कृत्रिम होना स्वाभाविक है (३७)। पर हमारा विश्वास है कि राज्य कृत्रिम नहीं है। हम राज्य में ही पैदा होते हैं। यह हमारी इच्छा पर नहीं है कि हम चाहें तो राज्य में पैदा हों और न चाहें तो न हों या जिस राज्य में चाहें पैदा हों। राज्य से सम्बन्ध तोड़ने का अधिकार भी हमें नहीं है। स्पेंसर का यह कहना गलत है कि व्यक्ति को 'राज्य की उपयोग करने का अधिकार है'।

मनुष्यों के उत्थान और विकास के लिए राज्य आवश्यक है। इसके बिना मनुष्य पूर्णता नहीं प्राप्त कर सकता। अरस्तू का कहना है कि राज्य की स्थापना हमें जितना

रखनेके लिए हातो है और जीवनका मुखा बनावक लिए यह कायम रखा जाता है। उन्हूक साम्ये जीवनकी साधारण आवश्यकताअसि तो राज्यका जमहाना है और फिर अच्छे जीवनक लिए उसका अस्तित्व बना रहता है। दूसरे नदामे आधिक आवश्यकताअसि पूर्ति ही राज्यक जन्मका मुख्य कारण है। पर यह कायम इसलिए रहता है कि इसक बिना मुखी सम्य और मुसम्बुत जीवन सम्भव नही है। अरस्तू क गृह प्यगै की समय राज्यकी आवश्यकता इसलिए है कि कोई भी मनुष्य स्वतः पूरा नहा है। मनुष्यको अपने विनासकी मजिनम जिस सामाजिक सहयोग और प्रयासकी जरूरत पगी है राज्य उसा सहपाग और प्रयासका प्रक रूप है।

राज्य सभी सामाजिक सम्याअसि सबसे अधिक व्यापक और सम्पिणाती है यह स्वाभाविक और आवश्यक है। आइय अब देखा जाय कि राज्य है क्या ?

राज्य का परिभाषाएँ (Definitions of the State) राज्यकी परिभाषा विभिन्न दृष्टिकानामे की गरी है और इस कारण इसकी बहुतरी परिभाषाएँ हैं। सबसे अधिक सन्तोषजनक परिभाषाअसि स हम कुछ का उल्लेख करेग। हॉलैण्ड (Holland) राज्यकी परिभाषा करते हुए कहते हैं कि राज्य बहुसंख्यक मनुष्याका एक समुदाय है जिसके अधिकारम आमतौर पर एक भू प्रदेश रहता है जिसम बहुमत की इच्छाका या बहुमतके बल पर कुछ व्यक्तियोंके एक निश्चित बगकी इच्छाका बाबबाला उन लोगोंके ऊपर रहता है जो उस इच्छाका विरोध करत हैं। फिलमोर (Philmore) न अन्तराष्ट्रीय विधिका दृष्टिम विचार करत हुए राज्यकी परिभाषा इस प्रकार की है 'राज्य वह जन समाज है जिसका एक निश्चित भू भाग पर स्वायी अधिकार हा जो सामान्य विधियो आज्ञा और रीति-रिवाजा द्वारा एक राजनीतिक सूत्रम बधा हो जो एक संगठित सरकार के द्वारा स्वतंत्र सम्प्रभुता उपभाग कर रहा हा जिसका नियन्त्रण अपनी सीमाके भीतरके सभी व्यक्तिया और वस्तुआ पर हो और जो युद्ध छडने क शान्ति स्थापित करन तथा सकारक सभी समुदायसि सद प्रकारके अन्तराष्ट्रीय सम्बंध स्थापित करनम समय हा।'

बॉम (Burgess) राज्यका एक संगठित इकाईक रूपम माना जानवाका मानव जातिका कोई अंग विगेय बतात है। यह परिभाषा बही है जो ब्लन्ची (Bluntschli) ने दा है जिसने अनुसार 'राज्य एक निश्चित भू भागम रहनेवाले राजनीतिक तोर पर संगठित जाणाका समुदाय है। विल्सन (Wilson) की परिभाषा सूत्रम और सरल होता है। उनक अनुसार राज्य एक निश्चित भू भागम विधि स्थापित करनेके लिए संगठित जनसमुदाय है।

आधुनिक सतर्कों द्वारा दी गया परिभाषाओंम गार्नर (Garner) और मैकजवर (MacJuer) की परिभाषाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं।

गार्नर कहते हैं 'राजनीति-शास्त्र और सांख्यिक विधिके विचारम राज्य एते मोडोका समुदाय है जो साधारणतया बड़ी सम्यामे हा जिसका एक निश्चित भू प्रदेश पर स्थायी अधिकार हा जो बाहरी नियन्त्रणम स्वतंत्र या संपन्न स्वतंत्र हो और

प्रयोग करता है। सामाजिक कर्तव्याका उल्लंघन करनेके अपराधम समाज किसी भी व्यक्तिको जलम बंद नहीं कर सकता। अर्नेस्ट बाकर की भाणम समाजका क्षेत्र है सहयोग इसकी शक्ति है सद्भावना और लचीलापन इसकी पद्धति है। राज्यका क्षेत्र है यात्रिक कार्य-शीलता शक्ति है बल प्रयाग और कठोरता इसकी पद्धति है। मैकाइवर के शासन 'राज्य एक सगठन है जो न तो समाजका समवयस्क है और न समाजके समान व्यापक'। उसका सगठन समाजके भीतर निश्चित उद्देश्याकी प्राप्तिके लिए किया जाता है (५५ ४०)। समाजके लिए राज्यके महत्वको बाकर ने इस प्रकार स्पष्ट किया है समाज राज्य द्वारा कायम रखा जाता है और यदि समाज इस प्रकार कायम न रखा जाय तो इसका अस्तित्व ही न रहे (३ ११८ १९)। इटाकी दीवार म दूटे यदि समाज है तो उनके बीचम लगी सीमेंट राज्य जा इटाको यथास्थान बनाय रखती है ताकि दीवार ज्यादा लचीली कायम रहे।

बाकर ने अपनी नयी पुस्तक 'प्रिन्सिपल्स ऑफ सोशल एण्ड पॉलिटिकल थियरी' म राज्य और समाजक भेद को निम्नलिखित तीन शीपकाम साफ-साफ बतलाया है (१) उद्देश्य या काय (२) सगठन और बनावट (३) पद्धति। उद्देश्यकी दृष्टिसे राज्य एक अधिक सभ्या है। काय और व्यवस्थाको स्थायी ढंगसे निर्माण कर उमे लागू करना उसका उद्देश्य है। और वह अपने इस अधिक उद्देश्यको पूरा करने के लिए ही काय करती है। किन्तु समाज अनेक समस्याओंसे बननेके कारण अधिक उद्देश्य से भिन्न अथ विविध उद्देश्या की पूर्ति करने का प्रयत्न करता है। ये विविध उद्देश्य हैं बौद्धिक भक्ति धार्मिक आर्थिक कलात्मक और मनोरंजनत्मक। राज्य और समाजकी सदस्यता दिस्तुल एक-सी हो सकती है। पर उनके उद्देश्य भिन्न होते हैं। 'राज्यका अस्तित्व एक ही महान् उद्देश्यके लिए होता है। समाजके उद्देश्य अनेक होते हैं कुछ बड़े और कुछ छोटे पर सब मिलकर व्यापक और गहरे हो जाते हैं।'

सगठनके विचारसे राज्य एक अकेली अधिक सभ्या है जबकि समाजके भीतर अनेक सभ्याएँ रहती हैं।

२ राज्य और सरकार (The State and Government) जहाँ तक पद्धतिवा सम्बन्ध है जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है राज्य बल और दबाव का प्रयोग करता है। समाज एच्छिक सहयोगकी पद्धति अपनाता है। जिन उद्देश्याके लिए समाजका अस्तित्व है वे उद्देश्य समझाने-बुझानेकी पद्धतिको आवश्यक बनाते हैं। समाजके भीतर अनेक सगठन हानके कारण सदस्योंको मीका रहता है कि बलका प्रयोग किये जाने पर वे एक सभ्या को छोड़कर दूसरीमें शामिल हो जाय।

अपने साधारण कार्यालापम हम राज्य और सरकार शब्दका प्रयोग एक ही अर्थम अन्त-बन्धन किया करते हैं। पर घोषणा-विचार करते ही वह स्पष्ट हो

* बाकर 'प्रिन्सिपल्स ऑफ सोशल एण्ड पॉलिटिकल थियरी' पृष्ठ ४२।

जाता है कि ये दोनों एक ही नही हैं। सरकार राज्यका यत्र या साधन है 'राज्य स्वयं एक मान्य व्यक्ति है जो अस्थाय अद्वय और स्थिर है। सरकार एतद्वय है सामाजिक भीतर यह राज्यकी प्रतिनिधि है। सीमाके बाहर हो जान पर यह अव्यक्त है।' म्यासे गंग में सरकार एक मन्त्रीय यत्र है। सरकार राज्यका ध्यावहारिक सगन्त है जो राज्यका निधारित करता है उसका प्रकाशन करता है और उस पूरा करता है। सरकार राज्यके उद्देश्य और लक्ष्यकी पूर्तिका साधन है।^१ सरकार बिना राज्य का कोई अस्तित्व नही है। राज्य अधिकतर मूर्ख धारणा है पर सरकार वास्तविकतम्य है। राज्य स्थायी और स्थिर है सरकार अस्थायी और परिवर्तनशील है। सरकारमें परिवर्तन हाउ रहते हैं। पर इन परिवर्तनसे राज्यके म्यापिन्वम कोई अनर नही पड़ता।

राज्योंके अस्तित्व समाप्त हानके मह्य तरीक ये हैं —

(१) पराजय वाद विजयी राज्यम मिला लिया जाना।

(२) स्वध्यायुक्त दूसर राज्यम मिल जाना।

(३) राज्यकी धरती या निवासियाका विनाग।

इनके क्रमिक उदाहरण हैं —

(१) १८६६ में पराजित हनोवर राज्यका प्रयाक राज्यम मिला लिया जाना।

(२) इटलीक छान-छान राज्याका इनातिमन राज्यम मिल जाना या मिय और सीरिया गरा सयुक्त अरब गणराज्यका निर्माण (१९५८)।

(३) विलियम ऑरेंज (William of Orange) की यह धमकी कि वे नादरलण्डम् (Netherlands) के बाघोंको ताइकर राज्यका विनाग करेगा पर उस स्थान से पराजित न हान देगा।

सरकारके अधिकार मौलिक नही हैं। ये अधिकार उन राज्यम मिलत हैं। सरकारक काय तीन प्रकारक होते हैं। गणन-स्वयम्या सम्बन्धा (executive) विधि-निर्माण सम्बन्धी (legislative) और न्याय-स्वयम्या सम्बन्धी (judicial)। सरकारके किनी राष्ट्रकी प्रतिमाका पत्रा चलता है।

३ राज्य राष्ट्र और राष्ट्रियता (The State Nation and Nationality) उन्नति गणतन्त्र राज्य राष्ट्र या राष्ट्रियता गणतन्त्रा प्रयोग बहुधा एत ही अर्थ म हुआ है। आज भी राजनीतिक विचारक माधारणतया 'राष्ट्र' और

^१ मयुक्त राज्य अमेरिका क सर्वोच्च न्यायालय द्वारा परॉइडम्टर बनाम गीनगा क मजदम (११४ म० एम० २७०)।

^२ प्रोफेसर लास्की (Laski) सरकारको राज्यका प्रतिनिधि या एजेंट बहते हैं। उसका अस्तित्व राज्यके उद्देश्यकी पूर्तिके लिए हाता है। सरकार स्थान दबाव हासनेवाली सर्वोपरि शक्ता नही है वह तो केवल गणतन्त्र है जो गणतन्त्रके उद्देश्यको कार्य-रूप देता है (१० २१)।

आधार शक्ति नही इच्छा (will) है। शक्ति रायका चिह्न है। विवेकशील नागरिक सुव्यवस्थित राज्यकी आज्ञा इसलिए मानते हैं कि वे महसूस करते हैं कि रायकी आज्ञा मानकर वे अपनी अन्धाइयों और स्वार्थरहित व्यक्तिगत इच्छाओं का अनुगमन करते हैं। राज्यकी आज्ञा मानना उस हानतम बहुत ही उचित होता है जब हम आज्ञाका पालन करते समय यह अनुभव करते हैं कि सुव्यवस्थित राज्यके बहने पर चलकर हम सबकी भलाई करते हैं और सबकी भलाई ही व्यक्तिगत भलाई भी है।

हैलोवल (Hallowell) ने इस दृष्टिकोणकी ठीक ही आनाचना की है कि राजनैतिक शक्तिके लिए सपर्ये है। उनका कहना है कि इस विचारधाराके शक्तिका प्रयोग किया जाना चा माना गया है पर इन पर विचार नहीं किया गया है कि शक्तिका प्रयोग क्या किया जाता है।

(३) ग्रोशियस (Grotius) और अल्थ्यूसियस (Althusius) जैसे विचारक रायको कल्याणकारी व्यवस्था मानते हैं। इस सिद्धान्तका एक रूप यह है कि राज्य एक सार्वजनिक उपयोगिता कम्पनीकी भाँति है। हम निस्संकोच कह सकते हैं कि राज्यके धारे में यह अत्यन्त सकीण दृष्टिकोण है। इसमें सन्देह नहीं कि सार्वजनिक कल्याण करना राज्यका महत्त्वपूर्ण कर्तव्य है। पर राज्यको पू० पी० एलेक्ट्रिक कम्पनी जैसी सार्वजनिक उपयोगिता कम्पनिका समान मान लेना विफल प्रलट है। राय किसी भी मानव कम्पनी नहीं है। रायका सदस्य होना या न होना हमारी इच्छा पर निर्भर नहीं करता। हम जन्मा राज्य के सदस्य होते हैं। हम जब चाहें तब रायमें प्रवेश नहीं कर सकते और जब चाहें तब हम छूट नहीं सकते। रायका कम्पनी माननेवाला दृष्टिकोण इस सम्पत्तिके भुला देता है कि सार्वजनिक-कल्याणकी व्यवस्था हानिके क्षय-साय रायका अपना जीवन अपनी इच्छा और अपना व्यक्तित्व होना है और ये चीजें राज्यके व्यक्तिगत सदस्योंके जीवन इच्छा और व्यक्तिगतसे भिन्न होती हैं।

जब एक बार ससारमें बहुतसे लोग 'कल्याणकारी राज्य' या 'मंगलकारी राज्य' को अपना ज्ञान मानकर उसका स्वागत करते हैं तब दूसरी ओर मनुष्य राज्य अमेरिका के बहुतसे भाग इस अभिप्राय मानते हैं। इसका कारण यह है कि अमेरिकामें कल्याणकारी राज्यका अर्थ अगर साम्यवाद नही तो समाजवाद जरूर समझा जाता है। और कहा व्यक्तिवादी पूँटभूमिके कारण इन दानाका तीव्र विरोध है। पर इसके साथ ही अमेरिकाकी अपनी व्यापक योजना भी है जिसमें सामाजिक सुरक्षा कृत्रिम स्तर तक निःशुल्क शिक्षा और 'टेनसी वैली अपॉरिटी' के नाम से प्रसिद्ध एक विशाल नदी घाटी (जलविद्युत्) योजना शामिल है। भारतमें अधिकांश लोग कल्याणकारी राज्यका एक सराहनीय सत्य स्वीकार करते हैं। इस सम्पत्ति अनेक दिशाओंमें विचारकर सामाजिक धर्मके क्षेत्रमें राज्यके कार्य-क्षेत्रका विस्तार निहित है।

(४) कुछ ऐसे भी लेखक हैं जिनकी रायमें राज्य एक धीमा कम्पनी जैसी संस्था है जिसका उद्देश्य पारस्परिक सुरक्षा है। मोभाग्यसे ऐसे लोगोंकी संख्या घट रही है।

हबर्ट स्पेंसर (Herbert Spencer) इस सिद्धान्तक प्रधान पापक थ। उनकी सम्मति म राज्य पारस्परिक आरक्षणके लिए एक समुक्त मुरगा-कम्पनी (Joint stock protection company) है। हम पहले ही देख चुके हैं कि राज्यकी तुलना किसी कम्पनीसे नहा की जा सकती बीमा कम्पनीसे तो और भी नहा। इस प्रकारक विचार राज्यके प्रति न्याय नही करते। राज्यम व्यक्ति और समाजके हितोमे गहरा सम्बन्ध है और उन्हें एक दूसरेसे स्पष्ट तौर पर अलग नहा किया जा सकता। यदि पारस्परिक मुग्गामान राज्यक अस्तित्वका उद्दय है तो फिर समुक्त समाजके विद्व

जबकि बुराई (necessary evil) मानते हैं।

बहु राज्यके प्रत्येक

उत्पन्न करता है कि राज्य एक बुराई है पर फिर भी मनुष्यकी स्वाधपलता और लाभ के लगे आवश्यक बना लिया है। उनका तर्क है कि यदि प्रत्येक व्यक्तिको स्वच्छन्द छुड़ दिया जाय तो बहु दूसरेको हानि पहुँचाकर भी अपना लाभ करने की शक्ति करेगा और तब समाजम शान्ति और व्यवस्था न रहेगी। इस प्रकार मनुष्यकी कमजोरियोंके कारण राज्यकी आवश्यकता पड़ती है। स्पेंसर ही नहीं बेंथम (Bentham) जैसे विवेकज्ञान विचारक भी इस दृष्टिकोणके पोषक हैं। जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है हम राज्यका एक बुराई या आवश्यक बुराई मानना भी भूत समझते हैं। हम उन आदर्शवादिनाम महमन है जो राज्यका निश्चित रूपस एक अच्छाई (positive good) मानते हैं। राज्य मनुष्यका सबसे अच्छा मित्र इसलिए है कि राज्यको महापताके बिना मनुष्यक व्यक्ति बना पूर्ण विनाम अमम्भव है।

(७) कुछ नरमरूपक अराजकतावादी व्यक्तिवादियों के सिद्धान्तम थाई परिवर्तन करके कहते हैं कि राज्य एक बुराई है पर एक न्तिन इसकी आवश्यकता न रह जायगी। उन् मानव-स्वभावकी परिवर्तनशीलता पर ज़रूरतम ज्यादा भरोसा है। उनका विश्वास है कि ज्यादा-ज्यादे मनुष्यका नैतिक विकास हुआ जायगा त्यों-स्यों राज्यकी आवश्यकता कम हाती जायगी और अन्ततः अन्ततः राज्य धीरे धीरे समाप्त हो जायगा। अराजकतावादी साम्यवाद जैसे उच्च अराजकतावादी (extreme anarchists) राज्यका गत प्रतिगत बुराई मानते हैं और कहते हैं कि जितनी जल्दा राज्यस छुटकारा मिले उतना ही मनुष्यके नैतिक विकासके लिए अच्छा होगा। यद्यपि इस अराजकतावादी सिद्धान्तम बहुत कुछ आकर्षण है पर हम यह तो मानते हैं कि हमारा कि इस सिद्धान्तम इस तथ्यकी उपेक्षा की गयी है कि राज्यका मूल आधार मनुष्यके स्वभावम है। हमारी प्रवृत्तियों (instincts) और हमारी तर्क-बुद्धि अराजकतावादीके इस कथनका माननेको तयार नहा है कि राज्य एक बुराई है और उसम भला कुछ भी नहा है। एक विचार जिसकी पुष्टि एक अगले अध्यायम की गयी है यह है कि सत्ताकी आगमना फलन स्वाभाविक है और सत्ता और स्वतंत्रता एक दूसरेकी विरोधी न हाकर पूरक ७।

(८) कुछ आधुनिक लम्बक राज्यका निगम (corporation) जसी सस्था मानना पसन्द करते हैं। सामान्यत यह बहुलवादी दृष्टिकोण (pluralistic point of view) है। इस दृष्टिकोणके अनुसार राज्यको परिवार गिरजाघर ट्रेड यूनियन सामाजिक क्लब आदि एसी स्थायी सस्थाओंके स्तर पर उतारना होगा जिनके हमारी विभिन्न अभिप्रेतियाकी पूर्ति होती है। हम इस विचारको माननेम असमर्थ हैं क्योंकि हमारा विश्वास है कि राज्य अपनी विगपताआम अन्तिय है। अपन क्लबका यह अकना ह। राज्य स्वत एक क्लब है। यह सबको समेट लेनेवाली सस्था है। यह सर्वोत्कृष्ट सस्था है। यह सब कहनेका अर्थ यह नहा है कि हम रूढ़िवादी अर्थवादी (orthodox monistic point of view) का पूरा-पूरा समर्थन करनेका तयार हैं। हम यह महसूस करते हैं कि अब वह समय आ गया है कि हम स्वीकार कर सना चाहिए कि समाजके विभिन्न स्थायी सथाका माना जीवनम एक निश्चित और खिण्ड स्थान है और उनको मयासम्मव अधिक-अधिक आन्तरिक स्वाधीनता मिलनी चाहिए ताकि वे अपन उद्देश्योंकी सन्तोषजनक पूर्ति कर सकें। फिर भी विभिन्न छोटी-बड़ी सस्थाओंके पारम्परिक सम्बन्धोंको और उनकी सही-सही स्थितिका कायम रखनेके लिए एक सर्वोच्च सगठनकी आवश्यकता है। उसी सगठनका नाम राज्य है।

(९) आधुनिक सत्ताधिकारवादी (totalitarians) व्यक्तिगत समस्त जीवनकी राज्यकी अधिकार-सीमाओं भीतर मानते हैं। मनुष्यके जीवनका कोई भाग एसा

^१ इस सिद्धान्तके अनुसार राज्य ही समाज के सब संघाम सर्वे गणित-सम्पन्न है। अर्थ सथाका अस्तित्व राज्यकी इच्छा पर है।

नहा है जिस वह अपना कह सकें। वह राज्यके लिए हा जीता है और राज्यक लिए ही मरता है। असातिनी न सर्वाधिकारवाणी दृष्टिकोणको इन गणोम व्यक्त किया है। सब कुछ राज्यक भीतर राज्यके बाहर कुछ भी नहीं और राज्यके विरुद्ध कुछ भी नहा। उन्मान दणक यवकषि सामन आदन रला षा विन्वास करा यागा मानो और युद्धरत हाअ (to b lieve to obey, to fight) ।

सर्वाधिकारवादी (totalitarian) दृष्टिकोणका मतप्रब है व्यक्तिके जीवन पर राज्यका पूण नियंत्रण (regimentation)। यह व्यक्तिके मूल्य और महत्वका स्वीकार नहाँ करता जिसका परिणाम यह हाता है कि व्यक्ति राज्य रूपी मनीनका एक पुर्जा बनकर रह जाता है।

राज्यकी स्पष्ट यथाय ध्यास्या (A Positive Statement of the State)

१ राज्यकी प्राथमिकता (Priority of the State) राज्य मानवीय सघाना सर्वोच्च रूप है। राज्यक बिना मनुष्यका जीवन अपूण है। व्यक्तिने आत्म वाष (Self realization) और आ म-विकासके लिए राज्य वातावरण तयार करता है। जगा कि अरस्तू न कहा है परिवार और राज्यका अन्तर मात्राभा नना है, किस्मका है। परिवारका अस्तित्व जीवनकी भौतिक आवश्यकताओका पूरा करनेके लिए और राज्यका अस्तित्व नैतिक और मानसिक आवश्यकताआषी पूतिक लिए है। अरस्तू का कहना है कि नगर (या राज्य) की कल्पना परिवार या व्यक्तिकी कल्पना स पहले की है कयाकि सम्पूणके वा- ही उमर अगाकी कल्पना की जा सकती है। इस प्रकार राज्य व्यक्तिक प्रवकी शीज है। मनुष्यका स्वभाव साथ मिलकर रहनेका है। अरस्तू के कथनको हम दूसरे ढंगम इस प्रकार कह सकते हैं कि सामाजिक जीवनकी प्रवताक द्वारा ही मनुष्य सभी प्राणिया म धठ बना है। विधि और न्यायक बिना मनुष्य निहृष्ट प्राणी ही होता। राज्य ही व्यक्ति वास्तवम मनुष्य बनता है। राज्य के बिना वह मनुष्य बननी समता रमन हुए भी प- ही बना रहता है।

अरस्तू न राज्यक धारम जो बात कही है वही बात महात्मा गांधी धाम समुदाय के धारेम कहत है। लेकिन राज्यक जिस आ-वाणी सिद्धान्तका उपर विवचन किया गया है उसके मुकाबलम महात्मा गांधी की विचारधारा दानिक अराजकतावादस अधिक मेल साता है।

२ राज्य इच्छा और बुद्धि-रम (The State as Will and Mind) इस प्रकार राज्यकी कल्पना मनुष्यक प्रवकी है। इसक मान यह नहीं है कि राज्यका उद्देश्य व्यक्तिक उद्देश्यस पुषक या विपरीत है। सहा मानाम दानोंका उद्देश्य एक ही है—मानव ध्यक्तित्वका विनाग। उपर जा क- कहा गया है उसम यह स्प- है कि यह विनाम सभग अनाए एवान्तम सम्भव नहीं है। वा- भी मनुष्य अपन आम म पूण न- है। इनके प्रमाण परिवार विभिन्न सामाजिक मग-न और राज्य-क-

जसा कि लॉर्ड (Lord) न कहा है राज्य व्यक्तिकी सञ्ज्ञावा ही नितान्त आवश्यक स्वरूप और उमीया तत्त्व है। राज्य कुछ अगमि एक याह्य सगटन है जो मनुष्यकी शान्दत (universal) और स्थायी आवश्यकताएँ पूरी करता है और कुछ अगमि राज्य व्यक्तिका ही सामाजिक स्वरूप है। राज्य व्यक्तिकी नतिक और विवेकपूर्ण सञ्ज्ञावाना विकास और उनकी पूति है। यह व्यक्ति के विभिन्न हिता और उद्देश्या ना विवेकपूर्ण सगटन है।

३ राज्य क रूपमें शक्ति (The State as force) राज्य व्यक्ति की शक्ति और शारस्त्रिक वन दोनोंका प्रतीक है (२४)। राज्य नागरिकोंके शारीरिक वनकी प्रगता है। राज्यके लिए शक्ति वनका प्रयोग अनिवाय है। आशिरकार असामाजिक और दुराग्रह प्रग इच्छाओंको दबाने के लिए राज्यके पास शक्ति होनी ही चाहिए। राज्य व्यक्तिका उसके सब्बे स्वल्पम परिचित करता है। राज्य द्वारा प्रयोग की गयी शक्ति ही व्यक्तिका उस निम्न स्तरस जिमकी ओर वह विवेक रहित शान्दम साधारणतया प्रेरित हुता है ऊपर उठावर उस उच्च स्तर पर ल जाती है वहाँ व्यक्ति वन व्यक्तिकगत बन्ध्याणको सामाजिक बन्ध्याणका ही स्वाभाविक अग समक्षनर्ग समर्थ हाता है। हीगल (Hegel) का यह वचन वास्तवम बहुत सारपूर्ण है कि अपराधाको दण्ड पानेका अधिकार है।

४ राज्यकी अद्वितीयता (The uniqueness of the State) राज्य ही एक ऐसा सगटन है जा वगसि ऊपर उठकर पूरे समाजका प्रतिनिधित्व करता है। सामाजिक शान्दिक राजनीतिक आधिक शिदा सम्बन्धी या किसी अग प्रकारके सगटनम व्यक्तिव सम्पूर्ण व्यक्ति-वनका समावेग नहीं हो सकता। शुरुमारी फॉलेट (Miss Follett) के प्रभावपूर्ण शान्दम 'सघाकी मिया देनेसे राज्य नहा वन सकता वनानि शान्द भी मघ या कुछ सत्राका समुदाय मेर सम्पूर्ण व्यक्तिवको समाविष्ट नहीं कर सकता जबकि एक आदा राज्य मेर सम्पूर्ण व्यक्तिवकी भाग करता है। एक सब्ब राज्यका सभी हिताका सवलन करना पडता है। विभिन्न वफादारिया (loyalties) को अपने अधिकारम लेकर राज्य उन्हें एक बनाता है। मेरी विभिन्न शिष्टाएँ हैं। यदि म उन्हें एक न बना सकू तो मेरा जीवन विमाजित और आवश्यक हीन हा जाय। एक सब्ब राज्यके प्रति मेरी शक्ति इसलिए है कि वह मेर विविध स्वल्पाको सवलित करता है वह मेरे बहुमुली व्यक्तिवका प्रतीक है वह हम बहुमुली व्यक्तिवका महत्व प्रगन करता है और इसष कारण हम अपनेको पहचानन लगते हैं। यदि आप मुन मेर बहुमुली व्यक्तिवके साथ राज्यविहीन श्यानम छोड़ देने हैं तो वहा मेरी आत्मा अपन सत्य और आश्रयके लिए सरसती है। मेरी आत्माका निवास राज्यम है।

५ राज्य मानव सम्बन्धीका व्यवस्थापक (The State as an Adjuster of Relationships) राज्यके सम्बन्धम ऊपर जा कुछ कहा गया है उसग एक शिष्टा यह शिष्ट वना है कि मनुष्यके सामाजिक सम्बन्धोंकी वयास्थान रखनेके लिए

हम एक सषोर्परि सगठन अर्थात् राज्यकी आवश्यकता है (५५)। राज्यक बिना हमारा जीवन अस्व-व्यस्न हो जाना है। राज्य हा मतभङ्गाको दूर करता है और मनुष्य के बहुमुखी जावनना एकरूपता और महत्व प्रदान करता है। आजकी दुनियांम जहा निष्ठाआका सधम निरन्तर बढ़ रहा है, मनुष्यक विविध सम्बन्धका आपसम ठाक रखनेक लिए राज्यकी अत्यन्त और अविकाधिक आवश्यकता है। परिवार घात्मिक सस्यान दृढ मूनियन सामाजिक कनब आत्मिको यथास्थान कायम रखना और समाज की शान्ति भंग न होत बना, राज्यका काम है।

६ राज्य और सावभौम हित (The State and Universal Interest) राज्य मनुष्यके उर्द्धा हितको चिन्ता कर सकता है जिनका सम्बन्ध किसी व्यक्ति बिशय या समुदाय बिशयम न होकर सधस हाता है। राज्य नागरिकके जातिगत या धर्मगत हितको पूरा करनेकी जिम्मेदारी नहा न सकता। इस कायके लिए परिवार, धर्म-सस्यान, दृढ मूनियन और सास्कृतिक सध आदि हैं। गानर (Garner) के कयनानुसार किसी स्व-शात्रय सधका उद्देश्य एक या कुछ हितकी प्रति तक ही सीमित है राज्य बिशय हितके बजाय सामाय या सावजनिक हितके लिए उत्तरदायी हाता है (२३ ९३)। यही कारण है कि ब्रिटन में दृढ मूनियनाको राजनातिक कर लगानेकी इजाजत नहा है। लास्की (Laski) के गण्यम 'राज्य समाजके सभी सकीण स्वार्थोसे ऊपर है और वह गुणिका प्रयाग उन स्थायी हितोंकी वदिके लिए करता है जिनके लिए मनुष्य एक साथ मिलकर रहते हैं (५० २९)।

७ राज्य और नतिकता (The State and Morality) राज्य मनुष्यके बाहरी आवरणका ही नियमन कर सकता है प्ररका (motives) का नहा। प्ररक एकत्र आन्तरिक होनेके कारण राज्यके कार्यधानम नहा हात। राज्य इस प्रश्न पर बिचार कर सकता है कि कोई काय किस अभिप्रायसे किया गया है। अभिप्राय पर बिचार करते समय यह मासुम किया जाना है कि काय जानबूझ कर किया गया था या सदायका हो गया था। प्ररक पर बिचार करत समय कायके आन्तरिक और नतिक पक्ष पर बिचार करना पडता है। यह सही है कि राज्य एक नैतिक और आध्यात्मिक सस्या है तथा व्यक्तिके व्यक्तित्वका ही विस्तृत रूप है। पर उसका साधन तो शक्ति ही है जो इतनी अधिक बाहरी हाती है कि राज्य केवल बाहरी आवरण और अभिप्रायका ही नियमन और नियमन कर सकता है प्ररकाका नहा। फलत राज्य स्वयं नैतिकता लागू नहा कर सकता। यह सो केवल ऐसी परिस्थितिपा पैदा कर सकता है कि मनुष्य नतिक बन सक। टी० एच० ग्रीन (T H Green) ने ठीक ही कहा है कि 'राज्य केवल उहा कायोंका करने या न करनेका आग्र दे सकता है जिनका करना या न करना समाजके नतिक हितम आवश्यक हो—उन कायोंके करने या न करनेम प्ररक चाह जो भी रहे (२९)। सीवी-सागी भाषाम इसका अर्थ यह है कि राज्यका केवल उली कायोंका कराना चाहिए जिनका किया जाना समाजके अर्थ जीवनके लिए अनिवार्य है अथवा जिनका बिना अच्छा सामाजिक जीवन सम्भव न

हो। कुछ लोग बुरी नियतसे इन कार्यों का नहीं करेंगे। ऐसी स्थितिमें राज्यको बस प्रयोग द्वारा इन लोगोंको बाध करनेके लिए मजबूर करना होगा और ऐसा करनेमें यदि कोई खतरा पैदा होता है तो उसे दूर करना होगा।

उक्त विवेचनका सारांश यह है कि राज्य अपने आपमें एक उद्देश्य नहीं है। यह एक साधन है जिसके द्वारा मनुष्यकी सामूहिक आवश्यकताएँ एक व्यवस्थित और न्यायपूर्ण तरीकेसे पूरी की जा सकती हैं। राज्यके बिना व्यक्ति तुच्छ और गौरवहीन हो जाता है। राज्य ही सामाजिक व्यवस्थाका कायम रखता है। बल प्रयोग (compulsion) अनुनय (persuasion) और अधिकार आदिक विवेकपूर्ण प्रयोग से राज्य ऐसे सामाजिक कल्याणकी वृद्धि कर सकता है जिसमें व्यक्तिका सच्चा कल्याण निहित है। व्यक्तिके व्यक्तित्वका दवाने या कुचलनेका अधिकार राज्यका नहीं है। प्रत्येक व्यक्तिके अच्छे जीवनके लिए कुछ परिस्थितियाँ नितान्त आवश्यक होती हैं। जब तक किसी राज्यमें ये न्यूनतम परिस्थितियाँ न पायी जायँ तब तक उस राज्यका अस्तित्वका औचित्य नहीं है।

राज्यके मूल तत्त्व (Essential Elements of the State)

१ जनसंख्या (Population) राज्यके मूल तत्त्व है जनसंख्या मूलतः, सम्प्रभुता और सरकार। यह तो स्पष्ट है कि जब तक लोग एक साथ मिल कर नहीं रहते तब तक राज्य नहीं बन सकता। यद्यपि राज्यके निर्माणके लिए आवश्यक निवासियोंकी संख्याका प्रश्न केवल एक सैद्धान्तिक प्रश्न है फिर भी प्राचीन संसदोंने इस पर बहुत ध्यान दिया है। प्लेटो ने अपनी पुस्तक लॉज (Laws) में लिखा है कि एक जादूरा राज्यमें रहनेवालोंकी संख्या ५४० होनी चाहिए। अरस्तू (Aristotle) की राज्यमें एक लाखकी संख्या बहुत अधिक थी। ब्रांम यूनानी नगर राज्यके महान् प्रशासक रुसा (Rousseau) ने मुसगलिन जन-समाजवादी प्राचीन नगर राज्योंका फिरसे प्रचलित करना चाहा था। वह उस हज़ारकी संख्या आदेश मानता था। आकार या निवासियोंकी संख्याके विचारसे आजकलके राज्योंमें इतना अधिक अंतर है कि एक ओर तो भारत इस ओर चीन ऐसे विगत राज्य हैं और दूसरी ओर मोनाको (Monaco फ्रांसके दक्षिणमें) तथा सैन मरिनो (San Marino इटलीके उत्तर) जैसे विस्तृत छोटे राज्य। मरिनो राज्यकी आबादी १३ ५०० तथा क्षेत्रफल केवल ३६ वर्ग मील है। जीरो मोनाको राज्यकी आबादी २ ००२ तथा क्षेत्रफल ३६६ एकर है।

वर्धक दृष्टिकोणसे राज्यमें निवासियोंमें मूल तत्त्वके रूपमें शासन और शासित शक्ति शामिल हैं। राज्यके निवासियोंका दोहरा व्यक्तित्व होता है। राज्यके निवासियोंके रूपमें निवासी नागरिक होते हैं। राज्यके शासनवाला के रूपमें वह राज्य की प्रशासक होते हैं। नागरिक और प्रशासक भूत करनेका धर्म है।

(Rousseau) को है। नागरिकों के रूप में लोगों को अधिकार प्राप्त हैं और प्रजा के रूप में उनके कर्तव्य होत हैं।

२ भू-क्षेत्र (Territory) इसमें कोई सन्देह नहीं कि भू-क्षेत्र के बिना राज्य ही नहीं रह सकता। किन्तु भी सभी राजनीतिक विचारकों इस पर एकमत नहीं हैं। आधुनिक राज्य के लिए सा निम्नलिखित बातों का एक निश्चित भू-क्षेत्र जरूरी है कि जिस पर उसका एकलव्य अधिकार हो। प्राचीन राज्य के विपरीत आधुनिक राज्य का स्वरूप भिन्न है। साम्राज्यीय साम्राज्य राज्य नहीं बन सकता भले ही एक नया या मुन्विया के आधीन उनमें किसी प्रकार का राजनीतिक संगठन हो। प्रोफ़ेसर इलियट (Prof. Elliott) के अनुसार सत्ता या अपना सीमाशंक नीचे सर्वोपरि सत्ता तथा बाहरी नियंत्रण में पूर्ण स्वतंत्रता आधुनिक राज्यों के जीवन का एक मौलिक सिद्धान्त रहा है (१९)।

एक निश्चित भू-क्षेत्र आधुनिक राज्य के लिए इतना अधिक अनिवार्य है कि कोई भी न पृथक् और असम्बद्ध राज्य एक ही भू-भाग पर अपने अधिकार-क्षेत्र का दावा नहीं कर सकता। क्वन एक ही अर्थात् आम पड़ता है। यह प्रपत्ति है मध्य राज्य (Federal State), जहाँ दो राज्य एक ही प्रदेश पर अधिकार रखते हैं। प्रोफ़ेसर इलियट का कहना है कि यदि यह स्वीकारा जाए कि 'व एक दूसरे से सम्बद्ध राज्य हैं। और जो अधिकार-क्षेत्र एक निश्चित अधिकार क्षेत्रों द्वारा सावधानीपूर्वक संभाले गए हैं।

३ सम्प्रभुता (Sovereignty) सम्प्रभुता और विधि का कानून राज्य का जो विद्यमान (distinguishing characteristics) हैं। सम्प्रभुता के माने हैं मानसौम-सत्ता—अन्तिम अधिकार क्षेत्र का कोई अंग नहीं। राज्य के अतिरिक्त अन्य सत्ता के पास जनता हो सकता है भू-क्षेत्र और किसी प्रकार का कोई दबावपूर्ण संगठन भी हो सकता है पर उनके पास सम्प्रभुता नहीं होती। अन्ततः राज्य के प्रत्येक व्यक्ति और समुदाय को राज्य के आगे सब कुछ मानना पड़ता है। इस हम आन्तरिक सम्प्रभुता कहते हैं। बाहरी सम्बन्धों में आधुनिक राज्य अन्तिम अधिकार रखने का दावा करता है। राज्य अन्तराष्ट्रीय परम्परा और समझौते का पालन भी ही करे पर जब तक कि वह सरकार एक वास्तविकता नहीं हो जाती तब तक पृथ्वी पर कोई दूसरी शक्ति नहीं है जो राज्य को उससे अधिक शक्ति प्रदान करे। संगठन इस विषय का हमें बाह्य सम्प्रभुता कहते हैं। अपनी ही सम्प्रभुता के कारण आधुनिक राज्य आन्तरिक मामलों में सर्वोच्च तथा अन्तराष्ट्रीय नियंत्रण स्वतंत्रता का दावा करत है। लास्की (Laski) के अनुसार अपनी सम्प्रभुता के कारण ही राज्य अन्य मन्त्रा प्रशासन मनुष्या द्वारा बनाये गये सत्ता के विरुद्ध है (२०-२१)।

सम्प्रभुता के बारे में होब्स (Hobbes) बेंथम (Bentham) और ऑस्टिन (Austin) के परम्परागत विचार लुइस (Lewis) ने इस प्रकार प्रकट किये हैं।

समाजके प्रत्येक सभ्यके जीवन अधिकारों और कर्त्तव्यों पर सम्प्रमुका पूरा अधिकार है। मैकाइवर (MacIver) तथा अन्य अनेक आधुनिक लेखक इस विचारसे सहमत नहीं हैं। मैकाइवर की रायमें राज्य एक संघ है, जो अपने ढंगका बेजोड़ और अत्यन्त महत्वपूर्ण है पर फिर भी अत्यन्त संघाकी भाँति यह एक संघ ही है (५५ अध्याय १२)। तेईसवें अध्यायमें हम इस दृष्टिकोणकी आलोचना करेंगे।

✪ सरकार (Government) जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं सरकार राज्यकी राजनीतिक संस्था है। यह राज्यकी सम्प्रभुता सम्पन्न इच्छाको कार्यान्वित करनेका साधन है। यदि जनतन्त्रीय राज्यमें अन्तिम सम्प्रभुता जनताके हाथोंमें रहती है तो नैधानिक सम्प्रभु (legislative sovereign) सरकार है। सरकारके बिना राज्यकी कल्पना महा की जा सकती क्योंकि सरकारके द्वारा ही राज्य अपनी इच्छा प्रकट करता है और उसे कार्यान्वित करता है। यह जरूरी नहीं कि सरकार किसी खास विस्म की ही हो। सरकारका स्वरूप राज्यक स्वरूप पर निर्भर करता है और राज्यका स्वरूप राज्य निवासियोंके चरित्र और उनकी राजनीतिक विचारधारासे बहुत कुछ निर्धारित होता है।

राज्यका जड़िक सिद्धांत (The Organic Theory of the State)

प्लेटो के युगसे लेकर आज तक प्रायः सभी राजनीतिक विचारक सामान्यरूपसे समाज और राज्यकी तुलना एक सजीव शरीरसे करते आ रहे हैं। कुछ लोगोंने तो यह तुलना करनेमें बहुत सावधानी बरती है पर कुछ अन्य लोगोंने यह तुलना इस तरह बिना सोचे समझे की है कि राजनीतिशास्त्रके गम्भीर सख्तोंमें से अधिकतर इस धारणाको व्यर्थ मानकर अस्वाभाविक धर देनेके पक्षमें हैं।

प्लेटो ने राज्यकी तुलना एक बड़े डीनगोल वाले मनुष्यसे की थी। उनका कहना था कि राज्य और व्यक्तिके कार्य समान्तर होते हैं। उन्होंने इस विभाजनका आधार मनुष्यको आत्माके तीन गुणों बुद्धिमत्ता (wisdom) साहस (courage) और इच्छा (appetite) का बनाया था। वह व्यक्तिको राज्यका सूक्ष्म स्वरूप मानते थे—यदि राज्य समस्त विश्व है तो व्यक्ति उसका सूक्ष्मतम अणु है। अरस्तू ने राज्यके गठनकी तुलना व्यक्तिके शरीरकी गठनसे की है और उनका पक्का विश्वास था कि व्यक्ति वास्तवमें समाजका एक स्वाभाविक अंग है। सिसरो (Cicero) ने जो अपने अनेक राजनीतिक विचारके लिए यूनानी विचारकों पर निर्भर करते थे राज्यके प्रधानकी तुलना शरीर पर शासन करनेवाली आत्मासे की थी। ईसाई धर्म के प्रसारके प्रारम्भिक दिनोंमें सन्त पॉल (St. Paul) गिरजाघरको ईसासतीह का जीवित घाटीर मानते थे। इसी उपमैके आधार पर मध्यकालीन लेखकोंमें आध्यात्मिक (spiritual) और धर्म-निरपेक्ष (secular) मामलोंमें मनुष्यकी निष्ठा पर धर्म और राज्यके दावोंके बारेमें विवाद उठ खड़ा हुआ था।

आधुनिक युगके प्रारम्भिक सत्रकोमें से हॉब्स (Hobbes) और रूसो (Rousseau) ने राज्यके जैविक स्वरूप पर बहुत ध्यान दिया है। हॉब्स ने राज्यकी तुलना लेवाथान (Leviathan) नामक एक ऐसे दैत्यकी है जो एक कृत्रिम मनुष्य है यद्यपि शक्ति और आकारमें साधारण मनुष्यके बरत बड़ा है। उन्होंने राज्यकी कमजोरियाँकी तुलना मानव शरीरकी बीमारियाँके साथ बड़ा धाराकीस की है। राज्यको भी फोड़ चर्मरोग और प्लूरिसी जैसी बीमारियाँ होनेकी कल्पना उन्होंने की है। राज्यके संगठनकी व्यक्तिके शरीर-अङ्गके साथ यह तुलना बहुत ही विनोदपूर्ण है क्योंकि यह एक ऐसे व्यक्ति द्वारा की गयी है जो उस सामाजिक सविदा सिद्धान्त (Social Contract Theory) का पापक है जिसके अनुसार मनुष्यने अपनी इच्छामें जानबूझ कर राज्य का निर्माण किया है। ^{समूह} का पदना है कि राज्य और मानव शरीर दोनों शक्ति और इच्छा से ही संचालित होत हैं। राज्यकी वैधानिक शक्ति की तुलना मनुष्यके हृदयके और काय-कारिणी शक्तिकी तुलना मस्तिष्कमें की गयी है।

उन्नीसवा सताब्दीके राजनीतिक चिन्तनका आरम्भ प्रतिक्रिया म्यूल्य इस धारणा के विरोधमें हुआ कि मनुष्यने कृत्रिम तौर पर राज्यका निर्माण किया है। इस प्रति क्रियाने इस सत्यको सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि राज्य मनुष्यकी शक्ति से होकर मानव-श्रद्धा तथा शक्ति अनायास और अवश्यम्भावी विकास है। इस प्रयत्नमें समाज की जैविक स्वरूपवाली पुरानी धारणाएँ फिर जार पकड़ा और यह धारणा विनोदकर जमन आश्चर्याचालिकोंके चिन्तनका एक मौलिक अंग बन गयी। फीशे (Fichte) के प्रकारके सैद्धान्तिकोंमें से एक थे और उन्होंने साफ-भाऊ बताया कि व्यक्ति और समाज एक दूसरे पर आश्रित हैं। उनका कहना था कि समाज पर व्यक्तिकी स्वतः और अपने आपमें कोई अंग और महत्त्व नहीं है। वह समूह समाजका अनिवार्य अंग है। उन्हींके सङ्ग्राम शरीरमें उसका प्रत्येक अंग निरन्तर समूहके शरीरको कायम रखता है और समूहके शरीरका कायम रखनेमें स्वयं भी कायम रहता है, ठीक वही सम्बन्ध व्यक्तिका राज्यसे है। इस प्रकार प्रारम्भिक आदर्शवादी राज्यको एक नैतिक गठन (moral organism) मानने थे।

जर्मन सेराफिमि से ब्लन्त्स्ली (Bluntschli) ने राज्यके इस जैविक सिद्धान्त पर अपने पूर्ववर्ती सत्तकोंसे भी अधिक जोर दिया। उन्होंने तो यहाँ तक कह डाला कि व्यक्तियोंकी भाँति राज्यमें भी लिंग भेद होता है। उनका कहना था कि राज्य पुंलिंग है और धर्म-संस्थान (धर्म) स्त्रीलिंग और इन आधार पर मिनियाँको राजनीतिक अधिकार न्ये जानका वह प्रबल विरोध करते थे। इस अत्युचितपूर्ण विवेचनका बावजूद राज्यकी जैविक सिद्धान्त सम्बन्धी चर्चा का धारणा में सच्चाई भी है जिस पर ध्यान दिया जाना चाहिए। उनका कहना है कि राज्य एक नैतिक और आध्यात्मिक व्यस्तित्व है। वह कहते हैं कि 'जैसे एक लड़का तब तब-विन्दु-आना सच ही नहीं है उससे कुछ अधिक है जैसा पत्थरकी एक मूर्ति पत्थरके टुकड़ोंका सग्रह मात्र न होकर उसमें कुछ शक्ति है जैसा मनुष्य कापा (cells) और रधिर-नापाया (blood

corpuscles) वा समुदाय ही न हाकर उसस कुछ अधिक है उसी प्रकार राज्य बाहरी विधिया (external regulations) वा सप्रह-मात्र नहीं है उसस कुछ अधिक है (२२ १*)। राज्य मस्तिष्क और इच्छाका आवीकरण है। यह समाजका सत्रिय रूप है।

उन्नीसवीं शताब्दीके ससर्जोमे हर्बर्ट स्पेंसर (Herbert Spencer) एक ऐसे लम्बक हैं जो व्यक्ति और समाजके गठनाम सूक्ष्म समानता बताने हुए भी तुलनाकी मौलिक बातको भूल जाते हैं। उन्होंने जबकि समानताका उपयोग अपनी पुस्तक निश्चित व्यक्तिवादी धारणाओंका सिद्ध करनेके लिए किया। पहलेके एक निबंधम इस सादृश्यका प्रयोग इतना अदरसा किया गया है कि देखके लाइनाकी तुलना जीवित शरीरकी घमनिया और गिराओसे की गयी है। धनकी तुलना रधिरकोषाओं (blood corpuscles) से और टनीप्राफक तारोंकी तुलना स्नायुओंसे की गयी है। स्पेंसर का सूत्र यह है एक सजीव सगठनका विकास होता है निमाण नहीं। उनका उपदेश यह है कि चूकि राज्य एक सजीव सगठन है इसलिए उसे स्वतः अपनी इच्छाक अन फूस विवसित होने देना चाहिए उम कृत्रिम माधनाका आश्रित नहीं बनाना चाहिए। निष्पुलक गिना अनिवाय-स्वच्छता सावजनिक पुस्तकालय सावजनिक उद्यान आदि जीव सगठनके स्वतः विकासम बाधा डालते हैं और इसलिए अनचित है। स्पेंसर यह भूल जाते हैं कि चूकि राज्य एक अत्यन्त विकसित और सम्पन्न सगठन (organism) है इसलिए इसकी सही तुलना छत्रिक (Jelly fish) अस सरल जीव-सगठन से नहीं की जा सकती। उसकी सही-सही तुलना एक विकसित और सर्वधित जीव-सगठनके साथ ही हो सकती है—जैसे उद्यानका एक पौधा या पानतू जीव। एक उच्च-स्तरके सगठनका विकास हाता है और निर्माण भी। पर स्पेंसर का राज्य सगठन सदा छत्रिक स्तर पर ही रहना चाहता है। इसके अतिरिक्त स्पेंसर की तुलनाका अन्तरसा मान लेनेका अर्थ तो यह होगा कि राज्यम व्यक्तिकी प्रधानता न होकर समाजवादके सिद्धान्तको अधिक बल मिनेगा और व्यक्तिके जीवनम राज्यका हस्तान्तर बढ़ जायगा। पर स्पेंसर अतिवादी व्यक्तिवादीके पोषक हैं और नैसर्गिक अधिकारके सिद्धान्तको मानते हैं। बार्कर (Barker) ने ठीक कहा है कि स्पेंसर राज्य के जबकि स्वरूपवाल सिद्धान्तको जहाँ वह उपयोगी हाता है वहाँ स्वीकार कर लेते हैं और जहाँ वह उपयोगी नहा हाता वहाँ छोड़ देते हैं।

जबकि सिद्धान्त में सत्यां (Elements of truth in the Organic theory) राज्य की उपर्युक्त धारणाने बारेमें जो पहली बात कहने की है वह यह है कि सादृश्य (analogy) और तर्क (argument) एक ही चीज नहा हैं। दानो म समानता स्थापित कर देने से दोनों म युक्ति-युक्त सम्बन्ध स्थापित हो जाना जरूरी नहीं है। इस साधारण सत्य का स्वीकार न कर सकने के कारण ही स्पेंसर और शैफिले (Schaefle) जैसे समकोने राज्य की वैदिक स्वरूप वाली धारणाका राज्य प्रयोग कर 'मदिका स्थापने मगिना की कहावत चरितार्थ की है।

हमें यह याद रखना चाहिए कि आखिरकार तुलनासे केवल कठिन चीजें आसान और अस्पष्ट बातें स्पष्ट ही हो सकती हैं। तुलना प्रमाणका स्थान नही ले सकती।

समाज या राज्य पूर्णरूपण शरीर-सम्मान नही है। वह कुछ बातोंमें शरीर सम्मान जैसा है और कुछ बातोंमें वसा नही है।

(१) एक भौतिक जीवकी भांति राज्यमें भी जीवन विकास और उत्थान के नियम लागू होते हैं। कुछ लम्बाईकी ही म हां मियाकर हम यह कथनका तयार नही है कि प्रत्येक राज्य युवावस्था प्रौढ़ावस्था वृद्धावस्था पतन और नाशका अवस्थाओंमें गुजरता है। समाज में ज्ञानवान परिवर्तन प्रायः अदृश्य होते हैं और उनकी सही सही नापतौल नही हो सकती। इनलिए प्रौढ़ावस्था बढ़ापा और मृत्यु जैम राज्यका प्रयोग हम ठाक तरह समाजक वारस नही कर सकते। फिर भी हमारा विदाम है कि सभी समाज और राज्याका अपना जीवन अपनी इच्छा और अपना स्वाधिन्य होता है और यह सब उस समाज या राज्यक किसी भी समदक सम्भ्याक जीवन और इच्छा में भिन्न होता है।

(२) व्यक्तिकी भांति समाजके सभी अंग एक दूसरेसे सम्बन्धित रहते हैं और एक दूसरे पर निर्भर हैं। अंग एक दूसरे पर निर्भर रहने के साथ ही साथ समूह पर भी निर्भर रहते हैं और समूह समाज अंग पर आश्रित रहता है। प्रत्येकका कल्याण सबके कल्याणमें निहित है। व्यक्तिक कल्याणका समाजक कल्याणक साथ गहरा सम्बन्ध रहता है। जिस अंगमें व्यक्तिक सम्बन्ध होता है उस अंगमें शय समाजका भी सम्बन्ध होता ही है यद्यपि समाजमें अनुभूतिकी गहराई तनी अधिक नही होती त्रितनी व्यक्तिमें होती है। समाज असम्बद्ध और विखर हुए व्यक्तिवाका जन्मदा नही है। वह शारीरिक इकाई और सजीव संगठन है। जीवनके उन क्षणमें जिसमें मिन (Mill) आत्मपरक (self regarding) कहते हैं समाजकी व्यक्ति प्रति शिथिल शारी होती है। जैसे परिवारका अपने सम्बन्धों के व्यक्तिमें हिताका ध्यान रखना पड़ता है वैसे ही समाजका भी व्यक्तिमें हिताका ध्यान रखना पड़ता है।

(३) व्यक्ति और समाज दोनों में विभिन्न अंग होते हैं। ये अंग योग्यतानुसार विभिन्न काम करते हैं। सारा शरीर आंग कान या पेट नही बन सकता। सन्त पात्र (St. Paul) के प्रभावशाली वाक्योंमें 'शरीर एक अंग नही है वह अनेक अंग है। यदि पर यह कहने लगे कि कूकि हम हाथ नही हैं इसलिए हम शरीर नही हैं तो क्या वह शरीर न रहेगा? यदि कान कहने लगे कि कूकि हम आंग नही हैं इसलिए हम शरीर नही हैं तो क्या वह शरीर न रहे जायगा? यदि सारा शरीर आँसू बन जाय तो मुने कौन? यदि सारा शरीर कान बन जाय तो सूप कौन? वे सब अंग तो अनेक हैं पर शरीर एक है। अंगों हाथोंमें मंत्र नही कह सकता कि हम तुम्हारी जरूरत नही है और न फिर ही परा स पत्र कह सकता है कि मुझे तुम्हारी बाईं जरूरत नही है। यदि एक अंगका कष्ट होता है तो सभी अंग उस अंगको शलते हैं। यदि एक अंगका सुख होता है तो सभी अंग इस सुख का आनन्द लते हैं।

तुम्हारा जो ऊपर बतल गया सामाज्य सन्ध्यामे भाग ले जानसे कठिनाइयाँ पना होनी निश्चित है। राज्य एक संगठन सा है पर इसके माने यह नही है कि वह एक भौतिक दातार है। वह एक मानसिक व्यवस्था है—एक सामाज्य उद्देश्यके लिए विभिन्न मस्तिष्काका संगठन है (२)। राज्य मस्तिष्कोकी आत्म निर्णायक व्यवस्था है और मस्तिष्क स्वयं भी आत्म नियम करनेमें समर्थ होते हैं। राज्य एक मानिक एवना नही है।

महत्त्व और सीमाएँ (Value and Limitations)

गट्टेल (Gottell) न भविक सिद्धान्तके महत्त्व और सीमाओं के बारेमें नीचे लिखे निष्कर्ष निवाले हैं

- (१) यह सिद्धांत इतिहासीय और विवासवादी दृष्टिकोणाका महत्त्व बताता है।
- (२) यह प्राकृतिक और सामाजिक वातावरणके प्रभावा पर जोर देता है।
- (३) यह सिद्धान्त इस बात पर जोर देता है कि नागरिक और राजनीतिक संस्थाएँ एक दूसरे पर निर्भर रहती हैं।
- (४) यह सामाजिक जीवन की मौलिक एकता और समाजके विभिन्न अंगके पारस्परिक सम्बन्धों पर जोर देता है।
- (५) यह सिद्धांत हमें सिखाता है कि समाज बिलेरे हुए सम्बन्धहीन व्यक्तियोंका समूह मान नहा है। यह साफ-साफ बताता है कि एक प्रभारमे प्रत्येक व्यक्ति पृथक्-पृथक् रूपसे समाज पर और समूहा समाज प्रत्येक सदस्य पर निर्भर है।
- (६) इस सिद्धान्त का विवास है कि मनुष्य स्वभावतः एक राजनीतिक प्राणी है और सभी मनुष्योंमे पायी जानेवाली सामाजिक संगठनकी प्रवृत्ति ही राज्यका निमाण करती है।

पर इसके साथ ही साथ राज्य और व्यक्तिके बीच बताया गयी अनेक तुलनाएँ यहुना साध साधकर जुटायी गयी और परस्पर एक दूसरेके विरुद्ध जान पड़ती हैं। इनमें कुछ ये हैं

- (१) राज्यकी इच्छा हमेंगा ही व्यक्तियोंकी इच्छाके समान नहीं होता।
- (२) व्यक्तिके शरीरका विकास अपने आप स्वतः होता है। राज्यके विकास का बहुत अर्थों तक संचालन और नियंत्रण हमें जानबूझ कर करना पडता है।
- (३) राज्यके शरीर सिद्धान्तमें यह खतरा है कि राज्यके महत्त्वका बढ़ते बढ़ते हम राज्यको ही लक्ष्य न मान बैठें और यह भूल जाय कि राज्यके अस्तित्वका उद्देश्य उसके व्यक्तिगत संस्थाना कल्याण है। दूसरे शब्दोंमें यह है कि समाजके लिए व्यक्ति का बलिदान न कर लिया जाय।
- (४) राज्यमें व्यक्तिके जीवनका उद्देश्य समाजके जीवनको सना बनाय रखना

ही नहा होता। प्रत्येक व्यक्तिको वाफ़ी हृद तक स्वयं अपने जीवनका निमाण करना होता है। प्रत्येक व्यक्तिकी अपनी चतना और अपनी इच्छा होनी है। पशुआके शरीरके कोशिकाओं (cells) के बारेमें यह सही नहा है।

(५) एक भौतिक शरीरके अणुओंका यदि काटकर अलग कर लिया जाय तो शरीरका नाग हो जाता है। चामका अणु यानी सदस्य जब राज्यस अलग हा जाता है तो चामना नाग नही होता।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उससे निश्चय यह निकलना है कि राज्यका जैविक सिद्धान्त बहुत सचीला है अतः इसका प्रयोग बहुत सावधानीसे किया जाना चाहिए। गुलनाको बहुत दूर तक नहा पसीटना चाहिए। सभी जगह इसके प्रयोगसे अवयम ही विवेकहीन और हास्यास्पन्न नतीज निकलेंग।

SELECT READINGS

- BARKER E — *Political Thought in England Spencer to Present Day*—
pp 175-183
- FOLLETT, M. P — *The New State*—Chs 23 28
- GARNER, J. W — *Introduction to Political Science*—Ch II
- GARNER J. W — *Political Science and Government*—Chs IV VII
- GETTELL, R. G — *Introduction to Political Science*—Chs. II IV
- GETTELL R. G — *Readings in Political Science*—Chs. II IV
- GETTELL, R. G — *Problems in Political Evolution*—Ch III
- GETTELL, R. G — *History of Political Thought*
- GILCHRIST R. N — *Principles of Political Science*—Ch II
- LASKI H. J — *The State in Theory and Practice*—Ch II
- LEACOCK, S — *Elements of Political Science*—Ch I
- MACIVER R. M — *The Modern State*—Introduction
- MACIVER R. M — *The Web of Government*—Ch XIII
- ROUSSEAU J. J — *The Social Contract*—Chs II IV and V
- SEELY, J — *Introduction to Political Science*—Chs. I II
- WILLOUGHBY W. W — *The Nature of the State*—Ch II

राज्य की उत्पत्ति (The Origin of the State)

राज्य की उत्पत्ति पर विचार करते समय राज्य की प्रारम्भिक (प्रागतिहासीय) काल की उत्पत्ति और इतिहासीय काल के विकास के भेद का भली प्रकार समझ लेना आवश्यक है। प्रारम्भिक उत्पत्ति का प्रश्न बहुत कुछ वात्पनिक है। इसको समझने के लिए हमें प्रागतिहासीय युग और आन्ध्र मनुष्य का अध्ययन करना होगा। हम इस बात का कार्य प्रामाणिक पान नहीं है कि राज्य का जन्म कैसे हुआ। आधुनिक समाज शास्त्र (sociology) जाति विद्या (ethnology) मानव विज्ञान (anthropology) और विधि शास्त्र (law) के इतिहास के अध्ययन में घंघल अतीत पर कुछ प्रकाश पड़ता अवश्य है परन्तु उमम हम राज्य की प्रारम्भिक उत्पत्ति के सम्बन्ध में पूरा पान प्राप्त नहीं होता। इस अनिश्चित स्थिति के होने हुए भी हम इतना ता निस्संकोच कह ही सकते हैं कि जहा कहा भी मनुष्य एक बड़ी समस्या में माय रह है बही का राज्य अस्तित्व रहा है—चाह वह प्रारम्भिक रूप में रहा हो या कुछ विकसित रूप में। प्रारम्भिक राजनीतिक संस्थाओं के विषय में कोई निश्चित इतिहासीय प्रमाण न मिलने के कारण इस बात के लिए हम विवग हैं कि उम घुंघते अतीत का जा कुछ थोडा बहुत पान हम है उमी के आधार पर हम राज्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनुमान लगायें और उमके सामाज्य सिद्धान्त की विवेचना करें।

राज्य की प्रारम्भिक या प्रागतिहासीय उत्पत्ति (The Primary or Pre historical Origin of the State)

राज्य की प्रारम्भिक अथवा प्रागतिहासीय उत्पत्ति के सम्बन्ध में इतिहास और राजनीति शास्त्र के लेखकों ने निम्नलिखित सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है

- (१) ऀवी उत्पत्ति सिद्धान्त (The Divine Origin Theory)
- (२) सामाजिक सन्धि सिद्धान्त (The Social Contract Theory)
- () शक्ति सिद्धान्त (The Force Theory)
- (४) पितृसत्ताक एक मातृसत्ताक सिद्धान्त (The Patriarchal and the Matriarchal Theories)।

पोलिटिकल थियरी (Political Theory 1939), के सल्लक ज़ननबर्ग (Kranen burg) ने उन सभी सिद्धान्तों को तीन भागों में बाटा है (१) धर्म प्रधान सिद्धान्त (२) प्राकृतिक नियम सम्बन्धी सिद्धान्त और (३) शक्ति सिद्धान्त ।

१. शक्ति सिद्धान्त (The Divine Origin Theory) राज्य की प्रारम्भिक उत्पत्ति के सम्बन्ध में यह सबसे पुराना सिद्धान्त है । इस सिद्धान्त के अनुसार राज्य की स्थापना स्वयं ईश्वर अथवा किसी अन्य दैवी-शक्ति द्वारा होता है और वही उस पर शासन करता है । राज्य का शासन या तो ईश्वर स्वयं करे या किसी ऐसे शासक द्वारा करायें जिन ईश्वर का प्रतिनिधि महाद्युत या पादरी माना जाता है और ऐसी राज्य को धर्मशासन या ईश्वर शासन राज्य कहते हैं । शक्ति सिद्धान्त या धर्मशासन का यह सिद्धान्त उतना ही पुराना है जितना कि राज्य का वैश्विक और यह सिद्धान्त लगभग सभी आग्नि जातियों में पाया जाता है । यह तो एक प्रामाणिक सत्य है कि राजशाक्ति के प्रारम्भिक स्वरूप किन्हीं अदृश्य शक्तियों से सम्बन्धित माने जाते थे । उस समय के शासक धर्मगुरु और राजा अथवा जादूगर और राजा के सम्मिश्रित स्वरूप होते थे ।

प्रारम्भिक काल में शक्ति सिद्धान्त के प्रधान पापक यहनीं थे । उनके धर्म ग्रन्थ Old Testament में बराबर इस धारणा के उद्धरण मिलते हैं कि ईश्वर स्वयं राजाओं का चुनता है नियुक्त करता है, बरखास्त करता है और उनका हत्या भी करता है । राजा अपने कामों के लिए कबल ईश्वर के प्रति ही उत्तरदायी माना जाता है । यूनानी जोरों रामथे शासक का कबल अप्रत्यक्ष रूप में ही शक्ति मानते थे । यद्यपि उन्हीं धार्मिक विचारों का राजनीति से अलग नष्ट किया था किन्तु फिर भी वह राज्य का अनुपस्थित राजनीतिक प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति मानते थे ।

गुरु के ईसाई धर्मगुरु भी शक्ति सिद्धान्त के प्रबल समर्थक थे । उनके उपदेश मन्थ पात (St. Paul) द्वारा रामवासियों का शिष्टे गव निम्नलिखित उपदेश पर आधारित था 'प्रत्येक प्राणी का देव शक्ति के अधीन रहना चाहिए क्योंकि परमात्मा के अलावा दूसरी कोई शक्ति है ही नहीं । जो ना शक्तियों हैं परमात्मा की ही हैं ।'

आइड टस्टामन्ट और ईसाई धर्मगुरुओं की शिक्षाओं ने मध्य युग में धर्म और साम्राज्य के बीच होनेवाले विचारों के सम्बन्ध में तथाकथान तत्काल पर महारा प्रभाव डाला । इन तत्कालों में बुद्ध ने ता देव शक्ति सिद्धान्त का प्रयोग राज्य पर धर्म का प्रभुत्व स्थापित करने और बुद्ध ने धर्म पर राज्य की शक्ति स्थापित करने के लिए किया ।

प्रोटेस्टन्ट-रिफॉर्मेशन (Protestant Reformation) ने शक्ति सिद्धान्त

^१ रोमन् १३ : १ (Romans 13 : 1) पर इन बातों को आसानी से भुना लिया गया कि उन्हीं धर्मग्रन्थों में यह भी कहा गया है कि हम मनुष्य के बजाय ईश्वर की आज्ञाओं का पालन करना चाहिए । (Acts 5 : 29)

का और इससे सम्बन्धित राज्यके प्रति सविनय आनापालन या राज्य-शक्तिके प्रति अविराधक मिद्धान्तको बहुत बल दिया यद्यपि धार्मिक मामलोंमें यह आन्दोलन व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य और व्यक्तिगत विवेक शक्तिवा फलपानी था। धीरे-धीरे दैवी उत्पत्ति सिद्धान्तन अधिकाधिक रूपमें राजाओंके दैवी अधिकार सिद्धान्त (Theory of the Divine Rights of kings) का रूप ले लिया। सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दीके इंग्लैण्डके बारेमें यह बात विशेष रूपसे सत्य है। इस सिद्धान्तके अन्य मुख्य समर्थक प्रथम स्टुअर्ट राजा जेम्स प्रथम (James I) और राबर्ट फिल्मर (Robert Filmer) थे। फ्रांस में बूससे (Bousset) ने भी चौदहवें सूर्य के निरंकुश शासनका समर्थन करनेके लिए इसी सिद्धान्तका सहारा लिया।

राजाओं का दैवी अधिकार सिद्धान्त (The Divine Right of Kings)

लॉ ऑफ फ्री मोनार्कीज (The Law of Free Monarchies) नामक अपनी पुस्तकमें जेम्स प्रथम ने इस सिद्धान्तका स्पष्ट विवेचन किया है। उनका दावा है कि राजाका अपनी सत्ता सीधे ईश्वरसे प्राप्त होती है इसलिए राजा अपनी प्रजा और विधि-मानासे ऊपर है। वह केवल ईश्वर और अपनी आत्माके ही आधीन है। प्रजाके प्रति उगका कोई अधिक उत्तरदायित्व नहीं है। उसका केवल यही उत्तरदायित्व है कि वह मुचाह रूपमें शासन करे और ऐसा करना ईश्वर के प्रति राजा का नैतिक उत्तरदायित्व है। राजा विधि बनाता है विधिया राजाका नहीं बनाती। राजा प्रत्येक व्यक्तिका स्वामी है और उसके जीवन और मरण पर उस पूरा अधिकार है। अपने प्रथम शुरुसे अन्त तक जेम्स प्रथम यह दावा करता है कि राजा बुद्धिमान और अच्छे हाते है और प्रजा भूढ़ और निर्बल होती है। उसका कहना है कि राजा सम्पूर्ण देशके लिए एक महान् शिक्षक होता है। उनका मत है कि स्वतंत्र राजतंत्र (free monarchy) वह राजतंत्र है जो मनमाने ढंगसे शासन करनेके लिए स्वतंत्र हो।

यदि राजा बरा हो तो भी प्रजाका उसके विरुद्ध विद्रोह करनेका अधिकार नहीं है। राजाके प्रति बिद्रोह करना स्वयं ईश्वरके प्रति बिद्रोह करना है क्योंकि राजा तो ईश्वरका ही प्रतिनिधि है। दुष्ट राजा प्रजाके पापके प्रायश्चित्त स्वरूप ईश्वर द्वारा प्रजाके लिया गया दण्ड है। इसलिए इस दण्डना समाप्त करनेका प्रयास करना गलत-दानुनी है। अगले जन्म मिलनेवाले दण्डका भय ही दुष्ट राजा पर एकमात्र अङ्ग है। यह दण्ड निश्चिन्त रूपसे अत्यन्त भयानक हाता है। जेम्स प्रथमने इस तथ्य की समीक्षा इन प्रभावशाली शक्तियों की है। राजाओंको देवता कहना बिल्कुल ठीक है क्योंकि वे पृथ्वी पर दैवी शक्तिका तरह ही व्यवहार करते हैं। जैसे ईश्वरकी शक्तिके बारेमें विचार करना नास्तिकता और पासक है ठीक उसी तरह प्रजाके लिए यह विचार कि राजा क्या कर सकता है और क्या नहीं कर सकता दुस्साहम और मानहानि है। 'राजा पृथ्वी पर ईश्वरकी सजीव मूर्ति है।

राजाओंके दैवी अधिकार सिद्धान्तकी प्रमुख विषयवस्तुएँ इस प्रकार हैं

(१) राजसत्ता ईश्वर द्वारा नियुक्त है

(२) यथानुगत अधिसार नहा छाड़ जा सकतें

(३) राजा नवन इन्वरक ही प्रति उत्तरदायी है एक

(४) नियमानुसार अधिष्ठित राजाके विरुद्ध विद्रोह पाप है (G P Gooch)।

यह बहुत सम्भव है कि इस सिद्धान्तके समयकाको स्वयं ही इसके सभी अतिगायकित पूरा दावोंमें पूरा विश्वास न रहा हो। मध्य युगमें इस सिद्धान्तके इतने प्रबल समर्थनका एक मुख्य कारण यह था कि यह उस वैयक्तिक सम्प्रदायके विरुद्ध राज्यको बल देता था और पोपके अधिसार दावका या अनुचित विस्तार हो रहा था उस पर इस सिद्धान्तसे रोक लगती थी। इस सिद्धान्तका समर्थन करने समय तब यह मूल मने कि इसके कारण राजाके भी अत्याचारी हो जानेका भय है। आगे चलकर इसी सिद्धान्तका उपयोग जनताकी राजनीतिक जागृति व प्रजातन्त्रात्मक विचारों को दवानेके लिए और निरदुष्ट शासनका समर्थन करनेके लिए किया गया। अठारहवां शताब्दी अन्तमें जाकर इस सिद्धान्तका उपयोग और व्यवहारमें हानिसारक मानकर त्याग दिया गया। ऑस्ट्रिया जर्मनी और रूस जैसे देशोंमें यह सिद्धान्त कुछ समय तक जोर माना जाता रहा।

आजकल राजनीतिक विचारक्रम का उत्पत्ति सिद्धान्त और दली अधिकार सिद्धान्तके समर्थन में हैं। इन सिद्धान्तोंका अधिक विस्तारसे आलोचना करना व्यर्थ है। इतना ही कहना पर्याप्त है कि यद्यपि सामान्यरूपसे विचारक परिवार और राज्य जैसी मानव-संस्थाओंको उद्देश्य और शासनात्के अनुकूल ही मानते हैं फिर भी राज्य एक इतिहासीय विकास और मनुष्योंके राजनीतिक प्रयत्नोंका फल है। गिन्सब्रॉउट के अनुसार इस सिद्धान्तके पतनका निम्नलिखित कारण हैं

(१) सामाजिक सहिष्णु सिद्धान्तका उदय और उसके अन्तगत स्वीकृति (consent) की मरता।

(२) आध्यात्मिक शक्ति (spiritual power) से अलग सामाजिक शक्ति (temporal power) की प्रधानता या दूसरे शब्दोंमें, धर्म संस्था (Church) व राजका वृद्धकरण।

(३) प्रजातन्त्रके उदयमें निरदुष्ट शासनके सिद्धान्तका विरोध।

राजनीति-संज्ञके एक सिद्धान्तके रूपमें इस विचारधारा पर ग्रोतियस (Grotius) हॉब्स (Hobbes) और लॉक (Locke) ने बड़े प्रहार किए। फिर भी इसी उत्पत्ति सिद्धान्तमें कुछ मात्रा तक ये उनमेंसे कुछ निम्नलिखित हैं

(१) जिस समय मनुष्य अथस्तम्य अवस्थासे गुजर रहा था और एक धर्म-निरपेक्ष सौरिण सत्ता तथा स्वनिर्मित विधायी आजा-शासनका उस अभ्यास न था या तब सामाजिक व्यवस्था बनाय रखनेमें राज्य देवा उत्पत्ति सिद्धान्तन तिस्र-देह महत्त्वपूर्ण योग दिया जाता। अराजकता का समाप्त करने और व्यक्ति सम्पत्ति और सरकारी प्रति सम्माननी भाषणाका महत्त्व रखने इतने यही मन्त की।

(२) इसकी मर्यादा इस अर्थमें भी की जा सकता है कि व्यवस्था आर

अनुशासनकी प्रवृत्ति मनुष्यमै स्वाभाविक और बहुत गहरी हाती है और यह राजनीतिक सगठनके रूपमें प्रकट होती है।

(३) इस सिद्धान्तका सबसे बड़ा महत्व इस बातमें है कि यह सिद्धान्त अप्रत्यक्ष रूपसे राजनीतिक व्यवस्थाके नैतिक आधार पर और देता है। यह इस बात पर भी जोर देता है कि सरकारका अस्तित्व प्रजाके कल्याणके लिए है अपनी सत्ताके उपयोग करनेके तरीकाके धारण निररुण शासककी भी ईस्वरके प्रति नैतिक जिम्मेदारी है।

२ सामाजिक सविज्ञान सिद्धान्त (The Social Contract Theory) इस सिद्धान्तकी भावना यह है कि राजकीय जन्म जानबूझकर किये गये करार से हुआ है। यह करार आदिम मनुष्याने उस समय किया था जब वे प्राकृतिक स्थितिको पार कर रहे थे। यह सिद्धान्त मानता है कि मानव इतिहासमें ऐसा भी युग था जब राज्य या राजनीतिक विधिवा अस्तित्व नहीं था। कुछ लेखकजान इस पूर्वनागरिक या पूर्व राजनीतिक युगका पूर्व-सामाजिक भी मानते हैं। इस प्राकृतिक अवस्था में मनुष्याके आपसी सम्बन्ध प्राकृतिक नियमके अनुसार चलते थे। सामाजिक सविज्ञान सिद्धान्तके समयके इस विषय पर एक मत नहीं है कि यह प्राकृतिक नियम वास्तव में किस तरह का था यह प्राकृतिक अवस्था या तो अत्यन्त आदर्श थी या बहुत असुविधाजनक व असह्य थी। इसलिए लागाने दीर्घ ही इस प्राकृतिक अवस्थासे छुटकारा पाकर प्रसविदा (covenant) द्वारा राजनीतिक समाजकी स्थापना की। प्रसविदा के फलस्वरूप प्रत्येक व्यक्तिका अपनी प्राकृतिक स्वाधीनता अर्थात् या पूर्णतः छाड़नी पड़ी और इसके बदले में उस राजनीतिक विधि द्वारा मिलनवाली राजकीय छत्रछाया और सुरक्षा मिली।

इस सविज्ञानी व्याख्या इस सिद्धान्तके समयके अनेक प्रकारसे करते हैं। कुछ लोग इस सम्य समाजकी स्थापनाका ही श्रेय देते हैं पर कुछ अन्य लोगकी रायमें इसके कारण सम्य समाजकी स्थापना सा हुई ही साथ ही शासका और शासितामें एक ऐसा करार भी हुआ जिसमें एक विधायक प्रकारकी सरकार बनी। पहले प्रकारकी सविज्ञान का सामाजिक सविज्ञान और दूसरे प्रकारके सविज्ञानको राजनीतिक या सरकार सम्बन्धी सविज्ञान कहते हैं। प्रारम्भिक या सामाजिक सविज्ञान ता व्यक्तिगत बीच एक दूसरेके साथ या सम्मिलित रूपमें उस समय हुई जब वे प्राकृतिक अवस्था पार कर रहे थे। दूसरे राजनीतिक या शासन-सम्बन्धी सविज्ञान का पन्ना है—(१) प्रजा अपने सामूहिक रूपमें और (२) शासक या उमका प्रतिनिधि। एक दूसरा मतमें सामाजिक सविज्ञान सिद्धान्तके समयकाम यह है कि कुछ लोग तो इस सविज्ञानको एक इतिहासीय तथ्य मानते हैं और दूसरे लोग इसे इतिहासीय कल्पना मानते हैं जिसका उद्देश्य एक नैतिक नैतिक आर सन्देश देना है। प्रथम प्रकारका विचारधाराके समयके लोक और दूसरे मतके पापक पान्त (bapt) हैं। काट का सम्मिलित यह सविज्ञान कबसे एक सुक्ति-संगत विचार है। इस सिद्धान्तके व्यावहारिक रूपके सम्बन्धमें भी यह

समयकाले मात्र है। हाथम इसके निरङ्कुण राजतन्त्र लोक बयानिक सरकार या सीमित राजतन्त्र और क्सा साकप्रिय सम्प्रभुता (popular sovereignty) के समयकाले प्रयोग करते हैं। साराग यह है कि इस विद्वान्तका प्रयाग इस धारणाके समर्थनमें किया गया है कि शासन सत्ताका न्याय-संगत हानक लिए अन्तिम रूपम शासितोंका समयन प्राप्त करना आवश्यक है। साधारणतया इन विद्वान्तस जनताके अधिकारों और उनकी स्वाधीनताकी रक्षा हुई है और शासकका स्वच्छावाग्मिता पर रोक लगी है। इस विद्वान्तन राज्‍यके प्रति सामान्य अवहलनाकी भावना भी उत्पन्न की है क्योंकि यह विद्वान्त राजका एक कृत्रिम सत्‍या माननके साथ ही शासन को व्यक्तिकी प्राकृतिक स्वाधीनता पर गक मानना है।

सामाजिक सविदा सिद्धान्तकी आलोचना सामाजिक सविदा सिद्धान्त पर इतिहासाय (historical) अधिक (legal) एवं दार्शनिक (philosophical or rational) इन तीन दृष्टिकागति प्रहार किये गये हैं।

नननबग (Kraenenburg) के सत्‍यम इस सिद्धान्तके निगमनात्मक पद्धति (deductive system) का कृत्रिम अधिक और आगमनात्मक (inductive system) विचार पद्धतिका बहुत कम प्रयाग हुआ है (४५ c)।

(क) इतिहासाय

(१) सामाजिक सविदा-सिद्धान्तकी एक आलोचना या स्वयं समझम आती है यह है कि इस सिद्धान्त का कोई सम्प-युग आधार नहा है। यह अनुमान करना कि आदिम मनुष्योंने किसी खास समय इकट्ठे हानक आपसम करार या सविदास राज नीतिक समझकी स्थापना की इतिहासका जनत पढ़ना है। सविदाका विचार आदिम मनुष्यके कानके बाहरकी बात है। आज तक कोई इन बातका एक भी उगाहरण नहा दे सका कि आदिम अवस्थाका पार करनेवाले मनुष्योंने कहां जानबूझ कर आपसी करारके द्वारा राज्यकी स्थापना की हा। यह सब है कि सन् १६२० के मस्साचुस करार (Mayflower Compact) के और सन् १६३६ के प्रोविडेंस करार (Providence Agreement) के जैसे उगाहरण सामाजिक सविदाकी एतिहासिकता के पक्षमें दिये जाते हैं। पर यह माग रचना चाहिए कि जिन सामोने ये सविदाए की थीं वे प्राकृतिक अवस्था को पार नहीं कर रहे थे। वे तान पहल दूसरे सामोने रहे रहे थे वही की राजनीतिक सम्प्राप्ति होती थीति परिचिन थे और जिन विचारा और संस्थाप्राप्ति वे पहलम जानने में उन्हाका वे नये भू भागामि प्रकलित भर कर रहे थे।

(२) सामाजिक और राजनीतिक सविदाओंके ना इतिहासीय उगाहरण हैं पर ये सब सविदा एम सामोने हुए हैं या पहलम सम्प सामाजिक जीवन बिता रहे थे। ऐसे उगाहरण सामोने इतिहासीय उत्पत्तिका समझाका किसी प्रकार ना हय नहीं

करते हैं। यथा क्वचन शासक और प्रजाके अधिकारा और कनध्याकी व्याख्या भर करत हैं। शासकीय सविज्ञता वास्तविकता है पर सामाजिक सविदा कवल कल्पना है।

(३) इस सिद्धान्तके अनुसार आदिम मनुष्यका दृष्टिकोण व्यक्तिगत ही अधिक था। यह सिद्धांत मानता है कि आदिम मनुष्य एक स्वतंत्र व्यक्ति था और दूसरे स्वतंत्र व्यक्तियों के साथ स्वैच्छापूर्वक करार कर सकता था। परन्तु आग्नि कालके सम्बन्धम की गयी राजसि यह सिद्ध नहीं होता। आदिकालकी विधियाँ व्यक्तिगतकी अपना सामुदायिक अधिक थीं। व्यक्तिकी मरना बहुत कम थी। परिवारको ही समाज की इकाइया माना जाता था। सम्पत्ति पर सबका स्वामित्व था। विभिन्न रिवाजा (customs) के रूपम थी। व्यक्तिका समाजम एक निश्चित स्थान था। ऐसी परिस्थितियोंम राज्य जैसी एक महत्वपूर्ण सस्याके सम्बन्धम व्यक्तियों द्वारा स्वैच्छापूर्वक कोई सविदा करना एक विचारसूयम ध्यान जान पडती है।

(स) वधिक

(१) यदि तकके लिय हम मान भी ल कि आग्नि मनुष्य अपनी सामाजिक धरनाम दतना आग बढ चुका था कि यह सविज्ञा कर सके कि भी उस सविदाका किसी प्रकार भी वधिक महत्व नहीं है। किसी भी सविदाके बंध होनेके लिय यह आवश्यक है कि उसके पीछे राज्यकी स्वीकृतिका बल हो। सामाजिक सविदाके पीछे ऐसी कोई शक्ति नहीं थी क्योकि सविज्ञा राज्यका स्थापनाके पहलकी चीज थी बादकी नहीं। टी० एच फ्रीन के दृष्टान्तम अस्थायी नागरिक सत्ताकी स्थापना करनेवाली सविदा बंध सविज्ञा नहीं हो सकता। ऐसी सविज्ञा करनेवाले व्यक्ति ऐसी स्थितिम नहीं हैं कि वे कोई बंध सविज्ञा कर सकें (२९, ६४)। ऐसी सविज्ञाके पीछे ऐसी कोई शक्ति नहीं होनी जो उसे बंध बना सके।

(२) इस प्रकार यदि प्रारम्भिक सविज्ञा ही अवध है तो उसके आधार पर की गया कानूनी सभी सविज्ञा उसी प्रकार अवध हागी जोर ऐसी सविदाप्रति प्राप्त होने वाले अधिकारका कोई वधिक या कानूनी आधार न होगा।

(३) कोई सविज्ञा केवल उन्हीं लोगों पर लागू होनी है जो स्वैच्छापूर्वक इस स्वीकार करते हैं। पर यह सामाजिक सविज्ञा तो उन पीढ़ियों पर भी लागू मान ली जाती है जिनका उसम कोई हाथ ही नहीं रहा। यदि पूर्वज लट्टे अगूर लायें तो धार्यें लकिन उनके वंशजों का क्या मजबूर किया जाय कि वे भी लट्टे अगूर खाकर मृत लट्टे करें। इसका उत्तरम यह लकें गया जा सकता है जैसा कि सॉर ने कहा है, कि राज्य म रहने के अर्थ यह है कि रहनेवाला हम मूल सविज्ञाको मौन स्वीकृति देता है। पर यह उत्तर तो स्पष्टन कठिनाइमि बचकर निकलनेका एक उपायमात्र है। वास्तविकता तो यह है कि मूल सविज्ञा करने वालोंके मरते ही राज्यको समाप्त हो जाना चाहिए था और प्रत्येक नयी पीढ़ीका एक नया सविज्ञा करना चाहिए। यह तो स्पष्ट है कि ऐसी

परिस्थितिमें राजनीतिक मसाला महत्व कम हो जायगा और यह भी सम्भव है कि राज्यरा ही अन्त हो जाय।

(ग) दार्शनिक

सामाजिक सविन्य सिद्धान्तके विरुद्ध दार्शनिक आपनियों तो इतिहासीय और वैदिक आपत्तियोगि भी अधिक महत्वपूर्ण हैं। जसा कि पहले कहा जा चुका है सविन्य सिद्धान्तके अनेक समर्थक मानते हैं कि सविन्य केवल इतिहासीय कल्पना (fiction) है पर फिर भी वे लोग इसका उपयोग कुछ दार्शनिक सिद्धांतोंकी पुष्टिमें करते हैं। आलोचनाएँ इस प्रकार हैं—

(१) इस सिद्धान्तमें यह मान लिया गया है कि राज्य और व्यक्तिका सम्बन्ध स्वच्छापूर्वक विभा गया सम्बन्ध है। भावधानताके भाव विचार करनेके बाद यह बात ठीक नहीं उतगती। हम ठीक उसी प्रकार राज्यक सदस्य हैं जिस प्रकार परिवारके। वस्त्रेकी परिवारकी सदस्यता और माता पिताकी आज्ञा माननेका उसका नतव्य उसकी स्वच्छा पर निर्भर नहीं होता। हम राज्यमें पैदा होने हैं और सामान्यतः राज्यको अपनी इच्छानुसार नही चुनते। यदि हम बादमें नागरिकता बप्तते भी है तब भी हम राज्यमें ही रहते हैं। राज्य मनुष्यकी कृत्रिम रचना (artificial creation) नही है। राज्यकी सत्स्यता एच्छित नही है। यदि राज्य एक कम्पनी या व्यापारिक संस्थाकी तरह स्वच्छाने बनाया गया संगठन होता ता व्यक्तिको यह स्वतंत्रता होनी कि वह जब चाहे उसमें शामिल हो जाय और जब चाहे उससे अलग हो जाय। राज्यके प्रति नागरिकक कर्तव्य करार पर आधारित नही है। यदि राज्यके हर कामका औचित्य प्रत्येक नागरिककी स्वीकृति पर निर्भर हो तो राज्यका जीवन ही असम्भव हो जाय क्योंकि राज्य ही कोई ऐसा विषय हो जिसे समस्त नागरिकाका समर्थन प्राप्त हो। व्यक्तिकी स्पष्ट स्वीकृतिको ही राजनीतिक कर्तव्यका आधार माननेवाला स्पेन्सर (Spencer) जैसा व्यक्तिवादी भी इस स्थितिकी व्यर्थता स्वीकार करता है। सामाजिक सविन्य सिद्धान्तके समर्थक इस कठिनाईका हल करनेके लिए कहते हैं कि मूल संविधानके लिए तो सबसेसम्मत स्वीकृति आवश्यक है पर उसके बाद बहुमत ही का समर्थन पर्याप्त है। यह तर्क-भंगत नही है। यदि हम सर्वसम्मत स्वीकृति का आरम्भ करते है तो क्या अन्त तक हम निवाहना उचित नहीं है? एहमञ्च मन क प्रसिद्ध और प्रभावपूर्ण दार्शनिक 'मैक न समझना चाहिए कि राज्य भी मित्र और बर्सेरी बपड़ा या सम्बाहु जैसे व्यवसायमें भाग्येदागीका करार माथा है और उसमें अधिक बुद्ध नहीं जिनमें कि मौन पर लाभके लिए लोग जब मन चाहें शामिल हो जाय और जब चाहें छोड़ दें। यदि राज्य किसी अर्थमें सामंदायी है तो वह एक उच्च नागरिकी और म्यायी सामंदायी है। पुन बर्ष के नागरिकों में यह सामंदायी समस्त विधानकी सामंदायी है सभी कलाकारकी सामंदायी है समस्त

सद्गुणाकी साक्षदारा है और सब प्रकारकी पूर्णताकी साक्षदारी है और क्योंकि इस साम्प्रदायीके उद्देश्योकी पूर्ति अनेक वीक्षित्यामे भी नहीं हा सकती इसलिए यह साम्प्रदायी बेबन उही लोगोके बीचकी नहीं है जो जीवित हैं बल्कि यह साम्प्रदायी उन सबके बीचकी है जो आज जीवित हैं जो मर चुके हैं और जो भविष्यमे जन्म लेंगे। इस प्रकार व्यवित रायना सदस्य स्वैच्छापूर्वक किय गये सम्बन्धन कारण नहीं है। यह जन्मसे ही रायका सदस्य है। उसके कर्तव्य विज्ञा समझोते या स्वीकृति पर निर्भर नहीं हैं बल्कि उसके कर्तव्याका आधार है, सार्वजनिक हित या समाजकी आवश्यकताएँ या उपयोगिताएँ (२२ ११३)।

(२) प्राकृतिक अवस्था और प्राकृतिक नियमोकी पूरी धारणा ही मुक्ति-संगत नहा है। क्योंकि इस धारणामे यह मान लिया गया है कि राज्यकी स्थापनाके पहले जा कुछ था वह सब प्राकृतिक या स्वाभाविक था और उसके बाद जा कुछ हुआ वह (राज्यकी स्थापना सहित) सब कृत्रिम है। इस प्रकार एक तरहसे कुम्हारीसे इतिहासका दा हिस्साभ काट डालनेका कोई आधार नहा है। हमारी आजकी सम्मता उतनी ही स्वाभाविक है जितनी पिछले समयमे कभी बबरता स्वाभाविक थी। मनुष्य स्वयं प्रकृतिका ही एक अंग है और राज्य मनुष्यकी प्रकृतिका सर्वोच्च विकास है। राज्यका विकास हुआ है वह मनीनसे बलकर नहा बना। राज्यके सम्बन्धमे लोग जान बूझकर सोच नहीं करते बल्कि यह समझोता था मनुष्यके स्वभावम ही है (२८ ६९)।

डुगुई (Duguit) सामाजिक सविज्ञान सिद्धान्तका सर्वस सिद्ध न हो सकने वाली परिफलपना कहकर अस्वीकृत करते हैं क्योंकि इस सिद्धान्तम यह मान लिया गया है कि सविज्ञाना विचार प्राकृतिक अवस्था कही जानेवाली स्थितिम भी मनुष्यों के निमागुम मौजूद रह सकता है। उनके अनुसार यह असम्भव है क्योंकि जा लोग पहलेसे समाजम नहा रह रहे हैं उन्हें सविज्ञानके सम्बन्ध और उत्तरदायित्वाका बाध हो हा नहा सकता है।

यदि हम यह मान भी लें कि एक प्राकृतिक राज्य था जिसका शासन प्राकृतिक नियमों अर्थात् स्वाभाविक नैतिक नियमोके अनुसार हाता था तो ऐसी हासतम राज्यकी स्थापना करना आग बढ़नेके बजाय पीछे हटना है। क्योंकि हृदयसे उत्पन्न और स्वीकृत नैतिक नियमोके बदले राज्यकी दायित्वो अपनाता अवश्य ही एक कष्टम पीछे हटना है। जसा कि प्रीन ने कहा है 'प्राकृतिक नियमो द्वारा शासित एक समाजको जिसमें कि मनुष्यकी अन्तरात्माके अतिरिक्त किसी दूसरी दायित्वके नियमणकी आवश्यकता न हो छोड़कर एक राजनीतिक समाजकी ओर कदम बढ़ाना अवश्य ही पठन हागा। वह समाज तो ऐसा है कि उसने स्थान पर एक नागरिक शासन स्थापन करनेका कोई कारण ही नहीं हा सकता (२८ ७२)।

एक बात और है यदि प्राकृतिक अवस्था ऐसी थी कि जिसमें लोग आपसमें सविदा कर सकते थे तो इसका माने सा मही हाते हैं कि लोगोंको सावजनिक हित का ज्ञान था। इसका अर्थ यह है कि लोगोंको समाजकी सत्ता और व्यक्ति के कर्तव्यों का भी ज्ञान था। यदि ये चीजें मौजूद थीं तो फिर उस अवस्था और नागरिक तथा राजनीतिक राज्यमें कोई अन्तर नहूँ रह जाता। फिर तो यह राजनीतिक राज्य ही है। भले ही उसका नाम कुछ और हो। एक राजनीतिक समाजके लिए जो तन्त्र आवश्यक है वे सब इस प्राकृतिक अवस्थामें मौजूद थे।

(३) सामाजिक सविदा सिद्धान्तमें अधिकारोंके सम्बन्धमें एक भ्रान्त धारणा है। टी० एच० ग्रीन ने ठीक ही कहा है कि सविदा सिद्धान्तमें सबसे बड़ी भुक्ति यह नहूँ है कि यह अनतिहासिक है बल्कि यह है कि इस सिद्धान्तमें अधिकारों और कर्तव्यों की सम्बन्धना समाज से असम्बद्ध स्वतन्त्र रूपमें की गयी है। किसी भी व्यक्ति-संगत विचारसे अधिकारोंका आधार समाजकी स्वीकृति ही है। अर्थात् समाज एक ऐसे सार्वजनिक कल्याणको स्वीकार करता है, व्यक्तिवा कल्याण जिसका स्वाभाविक और अविभक्त अंग होता है। अधिकार उन्हीं लोगोंके बीच सम्भव है जिनकी प्रवृत्तियाँ और इच्छाएँ विवेकपूर्ण हों। पर सामाजिक सविदा-सिद्धान्तके अनुसार समाजके पूर्ण अवस्थामें भी अधिकारोंका अस्तित्व सम्भव है। हमारी रायमें ऐसे अधिकार अधिकार हैं ही नहीं। साम्यमें शक्ति मात्र है। ग्रीन कहती हैं कि 'एसी प्राकृतिक अवस्थाओं जो सामाजिक अवस्था नहीं हैं प्राकृतिक अधिकारोंके अधिकार मानना एक आत्म-विरापी आधारहीन बात है। समाजके सन्ध्यामें सावजनिक कल्याणके ज्ञान के बिना अधिकार ही ही नहूँ सकते (२९, ४८)। सविदा-सिद्धान्तके सर्वप्रथम आलोचकोंमें से एक जर्मन लेखक वॉन हालर (Von Haller) इस सिद्धान्तकी आलोचना करते हुए कहते हैं कि यह कहना कि व्यक्ति और राज्यमें सविदा हुआ उतना ही व्यक्ति-संगत है जितना यह कहना कि व्यक्ति और सूर्यमें सविदा हुआ कि सूर्य उस गर्मी लाया करे।'

सिद्धान्त में सत्य का भाग यद्यपि राज्यकी उत्पत्ति तथा समाज में मनुष्योंके पारस्परिक मही सम्बन्धोंकी व्याख्या करनेवाले एक सिद्धान्तके रूपमें सामाजिक सविदा-सिद्धान्त भुक्तिपूर्ण है और आजकल इसका कोई समर्थक नहीं है, फिर भी इसमें सत्यका कुछ अंश है। यदि हम इस सिद्धान्तका ठीक-ठीक समझना चाहते हैं—विनाशकर जिस रूप में सत्रहवाँ और अठारहवीं शताब्दीमें इसकी व्याख्या की गयी थी—तो यह आवश्यक है कि हम यह समझें कि इस सिद्धान्तका प्रतिपादन करनेमें इसने समर्थका का क्या उद्देश्य था। वे लोग राजनीतिक सत्ता और उसकी आजा-याजन की—जिसे अब तक दोषी विधि कहा जाता था—अधिक सन्तानजनक और मानवीय

^१ अंग्रेजों द्वारा धरती पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ़ सॉवरेनीटी सिन्स रॉसो (History of Sovereignty since Rousseau) में उद्धृत पृष्ठ ६२।

ध्यास्या करना चाहते थे। दैवी अधिकार-सिद्धान्त शासककी आज्ञाका चुपचाप पालन करनेके लिए प्रजाका मजबूर करता है। उसक स्थान पर सामाजिक सविदा सिद्धान्तने इस मौनिक सत्यकी स्थापना की कि राज्यको मनमाना शासन करनेका अधिकार नहीं है और प्रजा राज्यकी आपापालन इसलिए करती है कि वह राज्य सत्ताको अपनी स्वीकृति से चुकी है। इस सत्यकी ध्यास्या करके सामाजिक सविदा सिद्धान्तने आधुनिक लोकतन्त्रकी स्थापनाम सहायता दी। इस सिद्धान्तने व्यक्तिकी महत्ता और इस सम्भावना पर धन दिया कि प्रत्येक मानव प्रयत्न द्वारा राजनीतिक मस्थाग्राम सशोधन हो सकते हैं। इस सिद्धान्तने यह भी घोषणा की कि राजनीतिक सत्ता अतन्त्र जनताक हाथाम ही निहित है (२४-२५)। यही कारण है कि स्वतन्त्रताक समर्थकोने इसे पसन्द किया क्योंकि इस सिद्धान्तन निरंकुश सत्ताके अधिकारों पर रोक लगानेके उपाय सुझाये। जो लोग तर्कम रुचि रखते थे उन्हाने इस सिद्धान्तको अच्छा समझा क्योंकि सविदावाद विषादका विषम हो सकता है उसकी आलोचना की जा सकती है उसम सशोधन किये जा सकते हैं जब कि दैवी विधि के सम्बन्धमें कुछ किया ही नहीं जा सकता। यदि हम इस सिद्धान्तक इतिहासीय पक्ष पर ध्यान न दें तो भी यह इसलिए आकर्षक है कि यह मानव अनुभव क एक महत्त्वपूर्ण पक्ष पर प्रभाव डालता है (५४-५३)।

३ बल सिद्धान्त (The Force Theory) बल सिद्धान्तके अनुसार राज्य उच्चतर शारीरिक बलका परिणाम है। राज्यका जारम्भ बलवानों द्वारा क्रम जोरोंका अपन अधीन कर लेनेसे होता है। यह कल्पना तो स्वाभाविक है कि आत्मिक कालम अति बलवान मनुष्य दूसराको डरा कर उन पर एक प्रकारकी सत्ता कायम कर लेता था।^१ यही बात शायद उच्चतर जातियाँ एक उपजातियाँ दूसरी जातियाँ और उपजातियाँके सम्बन्धके बारेम भी सही है। इसी अनुमानके आधार पर बल सिद्धान्त के समर्थकाना कहना है कि सभी राज्योंका जन्म बल प्रयोगके फलस्वरूप हुआ है।

इस सिद्धान्तके प्रबल समर्थक आपनहीमर (Oppenheimer) ने अपनी पुस्तक दि स्टेट्स म राज्यके उत्पत्तीके विभिन्न अवस्थाओंका वर्णन किया है। इस सिद्धान्तके दूसरे प्रमुख समर्थक जेंक्स (Jenks) ने अपनी पुस्तक हिस्ट्री ऑफ पॉलिटिक्स (History of Politics) म लिखा है कि यह सिद्ध करनेमें जरा भी कठिनाई नहीं है कि आधुनिक राजनीतिक समुदायोंके अस्तित्वका ध्येय सफल यद्दाको है। इस सिद्धान्तके अनुसार युद्धसे ही राज्यका जन्म होना है। इस सिद्धान्तके समर्थकोंका कहना है कि जिस सैनिक राज्य निष्ठा और प्रादेशिक विश्वपता (military allegiance and territorial character) का हम आधुनिक राज

^१ वॉल्टर (Voltaire) का सूत्र है "पहला राजा कोई भ्रातृघाती योद्धा था।"

नीतिक ममाजकी मौलिक विशेषताएँ मानते हैं उसने दो आधार हैं—एक यादवने साथ उसक अनयापियका सम्बन्ध और युद्धमें विजय जिसके द्वारा विभिन्न जातिया और देशोंके लोग एक ही शासककी प्रभुताके अधीन हा जाते हैं।

कुछ लेखक 'बल' शब्दका प्रयोग इतने व्यापक अयम करते है कि वे शारीरिक बलके अलावा बद्धि बल और धम-नन्वसे प्राप्त होनेवाले बल भी इसमें शामिल करते है।

द्विती उत्पत्ति सिद्धान्त और सामाजिक सविज्ञ सिद्धान्तकी तरह इस सिद्धान्तके ममभव भी इससे राज्यक इतिहासीय विकासकी व्याख्या और राज्यके अन्तिमवय तकपूण औचित्य सिद्ध करते है। यह सिद्धान्त भी उन जना सिद्धा ताकी भाति दाता ही मामलाम श्रुतिपूण है। व्यावहारिक रूपम बल सिद्धान्तका मतलब केवल यह है कि सरकार मनुष्यके बल प्रयोगका परिणाम है। इस प्रकारक विचार हबट स्पसर परी प्रारम्भिक रचनाआम मिसते हैं। वह कहते हैं कि 'सरकारका जन्म बुराग्यासि हुआ है और उन बुराइयाकी छाप अब भी इस पर है। हम मानते है कि बल राज्य के निमाणम एव महत्वपूण तत्व रहा हांगा परन्तु इस ही एक मात्र कारण मान लना स्पष्ट मून है। प्रारम्भिक राजनीतिक समाजाक निर्माणके अ म कारण भी रहे हांग। राज्यके विकासम बल और विजयका जितना हाय रहा हांगा उतना ही हाय स्वेच्छा स आपसम मित्र जानेका भी रहा हांगा। विजयके बाद राज्यका विकास बलकी अपेक्षा सपज्ञीत और मल मिलापम अधिक हुआ हांगा बल-सिद्धान्त पारस्परिक सहयोग तथा उची प्रकारक उन अय शान्तिमय तरीकाका महत्व बहुत घटा दना है जिन्दान राज्यक विकासम निरचय ही महत्वपूण याग लिया है।

आन्तरिक अयता (internal unisty) और बाहरी आक्रमण (external attack) स सुरक्षाक हेतु राज्यक लिए शक्ति एक अनिवार्य तत्व है। 'शक्ति बिला राज्य अस्वात्मक शक्तिवाका शिकार हो जायगा और उसका अस्तित्व एीम ही समाप्त हो जायगा।' परन्तु अकेले शक्तिको ही राज्यकी इतिहासीय उत्पत्ति तथा आपूर्तिक जालम उसके बने रहनेका कारण नहीं माना जा सक्ता। न्याय रहित शक्ति अपने सर्वोत्तम रूपम भी केवल अस्थायी है 'याय-युक्त शक्ति राज्यका स्थायी आधार है (२० ७९)।

सामाजिक सविज्ञ-सिद्धान्तकी भाति बल-सिद्धान्तका उपयाग भी विभिन्न जह-घासि किया गया है। कुछ सागाका कहना है कि शक्ति राज्यका जन्म शक्तिता हुआ है इसलिए लोगोंका राज्यकी आज्ञा आज्ञा मूदकर माननी चाहिए। यह स्थिति तो बिलुप्त युक्तिहीन मालूम होती है। जसा कि रूसो ने साफ-साफ कहा है (६७ पु० १ अ० ३) सवम अधिक बलवान अन्तिमका अधिकार तो अधिकार है

१ 'मायम के सहयागा एंजेलम न मिला है बिना बल और सौह-बढारताके इतिहासमें कभी को सक्नता नहा मिली।

ही नहीं। बल पर आधारित अधिकार तो तभी तक टिकना है जब तक बल रहता है। परन्तु वह अधिकार ही क्या जो बलसे समाप्त होते ही समाप्त हो जाय? पुन हूमो के 'गोपेन' बल शारीरिक है उसके सामने झुक जाना विवशताकी बात है स्वेच्छाकी नहीं अधिकसे अधिक यह बुद्धिमत्ताका काम है। दारूके कुछ ईसाई धर्माधिकारियों (Church fathers) ने भी बल सिद्धान्तका उपयोग किया है परन्तु उनका उद्देश्य राज्यको ध्वनना करना था। उनका कहना था कि राज्यका आधार पान्विक बल (brute force) है और चर्च या धर्म ईश्वरकी वृत्ति है और इसलिए राज्यसे अछूट है। व्यक्तिवाद्याँ और समाजवाद्याँने भी अपने-अपने सिद्धान्तोंके समर्थनमें बल-सिद्धान्तका उपयोग किया है। व्यक्तिवादियाँका तर्क है कि जैसे राज्य प्रबल शक्तिका परिणाम है वैसे ही समाजमें भी सबसे नेत्र व्यक्तिको ही दोड़में विजय मिलनी चाहिए। इसका अर्थ है कि समाजमें अनियंत्रित प्रतियोगिता (unrestricted competition) और व्यक्तिगत उद्यमको खुली छूट मिले। समाजवादी इस तर्क पर यह कह कर घाट करते हैं कि व्यक्तिवादका अर्थ है बल का अनुचित प्रयोग इसलिए राज्यको चाहिए कि वह अपने उच्चतर बल प्रयोगसे बलवानों द्वारा कमजोरोंका 'गोपण' किया जाना रोके और श्रमिकाँके साथ ग्याय करे।

४ पितृसत्ताक एव मातृसत्ताक सिद्धान्त (The Patriarchal and Matriarchal Theories) प्रायः सभी लोग इस बातपर एकमत हैं कि राज्य की उत्पत्तिको विकासके रूपमें समझना चाहिए। परन्तु विकासके क्रमके सम्बन्धमें काफी मतभेद है। इसी मतभेदके तिलसिलेमें हम पितृसत्ताक और मातृसत्ताक सिद्धान्तोंकी चर्चा सुनते हैं।

पितृसत्ताक सिद्धान्त सर हेनरी मेन (Sir Henry Maine) इस सिद्धान्तके मुख्य समर्थक हैं। वह इस सिद्धान्तकी परिभाषा इस प्रकार करते हैं 'पितृसत्ताक सिद्धान्त यह सिद्धान्त है जो समाज का आरम्भ एक पुत्र परिवारोंसे मानता है जो सबसे अधिक आयुवाल पुरुष वंशके नियंत्रण व सन्तुष्टायाम एक साथ रहते हैं। उनका विद्वान्त है कि राज्य परिवारका ही विस्तृत रूप है। उनकी धारणा है कि प्रारम्भिक परिवार एक पुत्र उसकी पत्नी और बच्चाका था। इस एक परिवारसे जल्दी ही कई परिवार हो गये और प्रारम्भिक पिता या वंशका सबसे बूढ़ पुत्र्य इस समय पितृसत्ताक परिवारका एक और शासक हो गया। एक परिवारमें पुरुषोंमें या एक ही पुत्रसे व्यक्तिगत सम्बन्ध जोड़े जाते हैं। राज्य केवल पितृसत्ताक परिवारका उत्तरोत्तर विभास-मात्र है। इस विभासका मत न इस प्रकार बताया है 'प्रारम्भिक इकाई एक ऐसा परिवार है जो सबसे बड़े पुरुष-पूर्वजक सामान्य शासनमें बंधा हुआ है। कई परिवारोंको मिलाकर वंश या कुटुम्ब बनता है। वंशों या कुटुम्बोंको मिलाकर एक कबीला या जाति बनती है। कबीलाको मिलाकर राज्य बनता है (२८ ८५)।

यह सिद्धान्त चीन मोनिक मायताका पर आधारित है

(१) पितृसत्ताक परिवारका आधार स्थायी विवाह और गोत्र-सम्बन्ध था,

(२) राज्य ऐसे व्यक्तिगणोंका समूह था जो प्रारम्भिक परिवारके एक सामान्य पूर्वजके वंशज थे और

(३) पितृसत्ताक परिवारके प्रधानक व्यापक और असीमित अधिकार राजनीतिक सत्ताके मूल स्रोत थे। यह प्रधान करते समय अपने तमाम बान्धुनी अधिकार अपने उत्तराधिकारीका द जाता था।

सिद्धान्तके समर्थनमें प्रमाण पितृसत्ताक सिद्धान्त के समर्थक अपने सिद्धान्तके समर्थन में हिब्रू, यूनानी, रामबासी तथा भारतीय जायों के पारिवारिक इतिहासका उदाहरण देते हैं। हेब्रू लोगोंमें परिवारके सबसे बड़े पुरुषका परिवारक सभी लोगों पर निरन्तर अधिकार रहता था। उसकी सत्ता सर्वोपरि होती थी। उसका परिवार पर अधिकार मातिकके रूपकी अपना प्रतिनिधिदे रूपमें अधिक होता था। एथेनवासियोंमें 'परिवार' तथा भाग सम्प (brotherhoods) ह्रात थे राममें पान्या पोतेसताक (patna potestas) मानी पिताक अधिकारन परिवारक मुनियामको परिवारके सदस्या पर असीम अधिकार दे रम थे।^१ भारतमें भी जहाँ समूह परिवार की प्रथा है एक परिवार में ही बहुतसे सदस्य रहते हैं। इस परिवारमें पिता और माता विवाहित लड़के और उनका परिवार अविवाहित लड़के और अविवाहित लड़कियाँ विधवाएँ और बूढ़ आश्रित सभी एक साथ रहते हैं। दूसरी और तीसरी पीढ़ीके चचेरे भाई भी भाई कहलाते हैं। ऐसे परिवारको आधार मानकर पितृसत्ताक सिद्धान्तके समर्थक यह अनुमान लगाते हैं कि समय बीतने पर परिवार बन्दर नागरिक समाज बन गया और पिता या सबसे बड़ा पुरुष सन्स्य राजा या प्रधान बन गया।

सिद्धान्तकी आलोचना

(१) आदिम मनुष्यके इतिहासकी आधुनिक साक्ष्ये पना चरना है कि पितृसत्ताक परिवारका रिवाज किमी भी हालतमें साक्षेणिक (universal) नहीं था। कुछ लोगोंका कहना है कि मातृसत्ताक पद्धति जिनमें माताके माध्यमसे सम्बन्ध माना जाता है पितृसत्ताक पद्धतिसे पहले की है। मातृसत्ताक सिद्धान्त क प्रबल समर्थक मक्लेनेन (McLennan) का दावा है कि बहुपतित्व (polyandry) और मातृसत्ताक परिवार समाजमें आरम्भमें ही थे और आगे चलकर बहुपतित्व एक पत्नीव्रतमें और मातृसत्ताक परिवार पितृसत्ताक परिवारमें बदल गये।

(२) मातृसत्ताक सिद्धान्तके एक और प्रबल पाठक जैक्स का कहना है कि मेन की यह धारणा कि परिवार बड़कर गाँव और गाँव बड़कर इबोल हा जाते हैं

^१ सिड्ग्विक (Sidgwick) का कहना है कि स्त्री बच्चा और अपने बगजों पर पिताका अधिकार इतना अधिक होता था कि व्यक्तिगत सम्पत्ताका कोई व्यक्ति अधिकार ही नहीं था। इस पूरा अधिकारके साथ इतना ही व्यापक उत्तरदायित्व भी था। परन्तु मनुष्यके बान्धु पिताके इस अधिकारमें एक बहुत बड़ी पायली मग जाता थी (Development of European Polity Page 47)।

वास्तव्यम उम्टा है (२२ ११८)। जॅक्स का कहना है कि जाति या कबीला ही प्रारम्भिक संगठन है उसके बाँध बना या गात्र है और उसके बाँध परिवार है। अपने इस कथन की पुष्टि में जॅक्स ने आस्ट्रेलिया और मलय द्वीप समूह की आदिम जातियों के कुछ समाजों के उदाहरण दिए हैं।

(३) अस्थायी जातियाँ में बहुपतित्व और अस्थायी विवाह प्रथा (transient marriage relationships) और स्त्रियाँ के उचित सम्बन्ध जुटाने के रिवाज में मालूम होता है कि पितृसत्ताक परिवार प्रथा हमें गाँव में मिला थी।

(४) इस सिद्धान्त की सबसे गम्भीर आलोचना यह है कि इसमें यह नया मालूम होता कि राज्य की उत्पत्ति कैसे हुई। यह सिद्धांत कबल यह अनुमान करता है कि समाज का और विघ्नरूप से परिवार का आरम्भ कैसे हुआ।

मातृसत्ताक सिद्धान्त मातृसत्ताक सिद्धान्त का संकेत उन जगहों प्रथाओं में मिलता है जो आस्ट्रेलिया के आदिवासियों भारत के कुछ समुदायों में तथा कुछ अन्य अथवा अल्प जातियों में प्रचलित हैं। जगहों लागू के जीवन से एक समाज का पता चलता है जो पितृसत्ताक समाज से अधिक आदिम और अस्थायी हैं। मानवसत्ताक समाज की मौलिक विघ्नपूर्ण निम्नलिखित हैं

- (१) अस्थायी विवाह-सम्बन्ध
- (२) स्त्री के माध्यम से सम्बन्ध-सूत्र
- (३) मानसता (maternal authority) और
- (४) सम्पत्ति और अधिकार पर केवल स्त्रियाँ का ही उत्तराधिकार।

मातृसत्ताक सिद्धान्त के कुछ लेखक ऊपर कही गयी चारों विशेषताओं को आवश्यक समझते हैं परन्तु कुछ अन्य लेखक इस सिद्धान्त का अर्थ 'मातृसत्ता' (mother right) और मातृ सम्बन्ध (mother relationship) से ही समझते हैं 'मातृशासन' (mother rule) में नहीं। उनका दोना विचारों में दूसरा विचार अधिक मुक्ति भंगत मालूम देता है।

उनकी सीमित अर्थ में मातृसत्ताक सिद्धान्त के अनुसार मातृसत्ताक परिवार पितृसत्ताक परिवार से पूर्व का है। यह मान लेना स्वाभाविक है कि आदि समाज में एक पति और बहुपतित्व की प्रथा की अपेक्षा बहुपतित्व और अस्थायी विवाह का अधिक प्रचलन था। वीमाह विवाह (Vemah marriage) का भी रिवाज था, जिसके अनुसार पत्नी के ही परिवार में पति मिला लिया जाता था। एसी परिस्थितियों में माना सं ही बना माना जाता था क्योंकि उसी जॅक्स ने बताया है एसी हालतों में मातृत्व (motherhood) का एक निश्चिन्त तथ्य था परन्तु पितृत्व केवल अनुमान की बात ही बनती थी। मैनावर (MacIver) का कहना है कि स्त्री शक्ति की प्रतिनिधि या माध्यम (agent of transmission) मानी गयी है शक्ति की संचालिका या प्रयोजन (wielder) नहीं। इस प्रथा से स्त्री को पत्नी और माता के रूप में एक सामाजिक प्रतिष्ठा मिली जो व्यक्तिगत प्रतिष्ठा से अधिक थी (५५ २९)। कुछ

समय मात्र आन्ध्र मनुष्य खानाबनोए और गिरागे जीवन के बजाय घरवाह और सतिहर जीवन व्यताठ करन लगा और तब मानसत्ताक समाज का म्यान पितृसत्ताक समाज ने ले लिया (५१ ५१)।

आलाचना

(१) यद्यपि सत्तार क कई भागा म बहुपतित्व की प्रथा पाया जाती है परन्तु इस बात का कोई प्रमाण नहा है कि यह प्रथा मभी जगह प्रचलित थी या समाज का प्रारम्भिक अवस्था म आवश्यक थी।

(२) पितृ और मात सम्बन्धा क अतिरिक्त और भी गतिता और तत्वा का हाय राजतातिक संगठन बनान म रदा हागा।

(३) पितृसत्ताक और मानसत्ताक दाना ही सिद्धान्त एक बहुत बडा काम करन की वाणिग करन हैं। य दाना सिद्धान्त यह बनान की वाणिग करत हैं कि मानव समाज का आरम्भ कस हुआ। परन्तु हम जिन प्राचीन स प्राचीन समाज की कपना कर सकत हैं मानव जातिकी उत्पत्तिम और उसम सन्धिया अन्तर करर रदा हागा।

(४) दाना सिद्धान्त राजनीतिक हान क बजाय सामाजिक अधिक हैं। य राज्य की उत्पत्ति क बजाय परिवार की उत्पत्ति का विवचन करन हैं। साठन काय और उद्दय म परिवार और राज्य पयक-पुयक हैं।

पितृसत्ताक और मानसत्ताक सिद्धान्त क बारे म हम जिन निष्पत्त पर पहुचत हैं यह सबसे अच्छी तरह मीकाक (Leacock) के गाना म हम तरह व्यक्त किया गया है आन्ध्र परिवार या गुटका एक ही स्वम्प नहा था। कदा मानसत्ताक सम्बन्ध का प्रचलन रदा है ता कहा पितृसत्ताक शासन का। इसम म काई भी एन दूसरे को हटा कर वतका स्थान म सक्ता था। वास्तव म हम यह स्वीकार करना पडता है कि मानव समाज का 'आरम्भ' नाम की काई बन्तु है ही नहा। अधिक स अधिक हम इतना ही कह सकते हैं कि समय बीतने पर एक-मली प्रथा या आघारित परिवार सबसे अधिक प्रचलित हा गय यद्यपि संगठन क अन्ध प्रकार आज भी सबर सब समाप्त नहीं हो गय हैं। श्री रलन्वामी का कहता है कि मानसत्ताक और पितृसत्ताक समाज का विकास साथ-साथ समानान्तर रूप म हुआ है परन्तु पितृसत्ताक सम्बन्ध-पुन तन्व और प्रबल होत हैं।

इतिहासीय या विकासवादी सिद्धान्त (The Historical or Evolutionary Theory) ऊपर जिन पांच सिद्धान्तों की सर्षा का गयी है व बहुत कुछ कल्पना-मूलक हैं। इन पांच सिद्धान्त क मुजाबत म इतिहासीय या विकासवादी सिद्धान्त मान्य है जो राज्य की उत्पत्ति की ठीक-ठीक विवचना करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार राज्य इतिहासीय विकास या क्रमिक विकास का परिणाम है। यह विकास बराबर होना रदा है। इसका आरम्भ बिना एक विंगप समय स हुआ—एगा नहीं कहा जा सक्ता। बगैस (Burgess) के मतानुसार 'मानव प्रकृति के सावनीम

(universal) सिद्धान्तोंकी प्रतिक पूर्णता ही राज्य है। एक अकेले ऐसे कारणकी खोज करना ही ध्येय है जो सभी राज्याकी उत्पत्तिकी समस्या एक दममे हल कर दे। विभिन्न कारणसे राज्यकी उत्पत्ति हुई होगी। वही पर एक कारण रहा होगा और वहा पर दूसरा। जो भी हो राज्यको मनुष्य ने जानबूझ कर नही बनाया है ठीक उसी प्रकार जिस प्रकारसे भाषा मनुष्य द्वारा जान बूझ कर नही बनायी गयी है। राजनीतिक चेतनाके विकासमें बहुत समय लगा होगा और प्रारम्भिक राज्यका विकास धीरे धीरे इस चेतनाके विकासके साथ-साथ हुआ होगा।

राज्य निर्माणके आधार (Factors in State Building) सभी राज्योंकी उत्पत्तिका एक ही कारण बूँद निकालनेकी कोशिश करना ध्येय है। इससे अधिक लाभदायक उन तत्वोंकी खोज है जिनसे प्रारम्भिक राज्य बना था। जैसा पहले कहा जा चुका है राज्य-निर्माणके विभिन्न कारण रहे हाने और उनकी परिस्थितियाँ भी भिन्न रही हानी। यह जानना कठिन है कि राज्याकी उत्पत्ति कब और कैसे हुई। निम्नलिखित तत्वोंका राज्यके निर्माण पर प्रभाव पडा है—

(१) वंश सम्बन्ध (kinship)

(२) धर्म और

(३) राजनीतिक चेतना।

१ वंश-सम्बन्ध इसमें तबतक भी सन्देह नही कि सामाजिक संगठनका उच्च वंश सम्बन्धन हुआ। रक्त-सम्बन्ध चाहे वह वास्तविक रहा हो या कल्पित एकता का सबसे मूल्यपूर्ण मूल था। इसने जातियों एवं उपजातियोंको एक सूत्रमें बाँधा। लेकिन कथन वंश सम्बन्ध ही राज्यका निर्माण नही हो सकता था। लोगाम सामाजिक संगठन सामाजिक हित और सामान्य उद्देश्यका विकास भी जरूरी था। वंश-सम्बन्ध (kin relationship) ने बड़ी मुश्किलसे सामाजिक सम्बन्ध (social relationship) को अपना स्थान लेने दिया हाना। ^{1/2} मैकाइवर का कहना है कि वंश-सम्बन्ध समाजका निर्माण करता है और समाज अन्ततः राज्यका निर्माण करता है (५५, ३३)।

यह प्रथम वंश-सम्बन्ध पिताने माध्यमसे न होकर माताके माध्यमसे था। मनुष्य गिकारी और खानाबखान था अनएव बहुपत्नित्व और अस्थायी विवाहका रिवाज रहा होगा। गिर भी बच्चोंकी सुरक्षा और आर्थिक आवश्यकताके कारण माताएँ और बच्चे एक दूसरेके प्रतिष्ठ रूपसे बँधे रहे हाने। जैसे जैसे सत्ता और संगठनका विकास होता गया मनुष्यने अपने दारिद्रिक बलके कारण समुदायोंपर प्रधानता पायी। जिन अन्य कारणाने विस्तृतताका समाजकी स्थापनामें मनुष्य पहुँचाई व ध्येय—जंगलों जानवरों का पालन-पोषणका जाना सम्पत्तिमंडलि (जायन्तदका अधिकार धरणाही व्यवसायोंका विकास और दास प्रथाका आरम्भ) इन सब कारणोंमें जायन्तदका अधिकार पाप सबसे अधिक महत्वपूर्ण था। जायन्तदकी सुरक्षाके साथ ही उस पर अधिकार रखना और ठीक प्रकारसे उसका उपयोग करना बहुत जरूरी था और इनका मतसब या समाजमें पुष्पकी बढ़ती हुई प्रधानता।

पितृसत्ताक समाजका संगठन पुरुषोंके माध्यमसे निश्चित हुानेवाला सम्बन्धोंके आधार पर हुआ। स्त्रियों अधिकाधिक रूपसे सम्पत्ति माना जाने लगा। मन्त्रियोकी आज अपने गिरोहमें बाहर की जाने लगीं जिससे विवाह-सम्बन्ध अधिक म्यायी हो गया और बहुपत्नी प्रथाका चलन सामान्य हो गया। कुलपति या परिवारके पिताका अपने पुरुष वंशजोंके धारीर और जीवन पर पूरा अधिकार था। उसका मरने पर यह अधिकार सबसे बड़ पुरुष वंशजको मिलता था। पुरुष वंशानुक्रमको कायम रखनेके लिए गोत्र सेनेकी प्रथा बहुत प्रचलित थी। इस पितृसत्ताक समाजका विकास इनना न हो सका कि वह राष्ट्रका रूप ग्रहण कर ल। यह समाज कई पितृसत्ताक समूहोंमें बँट गया जो अपने प्रारम्भिक समूहोंके प्रति किसी न किसी रूपमें यत्नादार थे। इन समूहोंके प्रधानाने बड़ लोगोंकी एक समिति बनाया होगी जो कुलपतिको मदद करती होगी। यह कुलपति ही आगे चलकर जातिका प्रधान बन गया। कुलपतिक पास सेना म्याम और धर्म तीनोंके अधिकार रहते थे। य शासन या प्रधान समाजके कल्याण की अपेक्षा कुछ इन्तै-गिने लोगोंके विषय अधिकारा और शक्तियोंका सुरक्षाका ओर अधिक ध्यान देते थे।

पितृसत्ताक समाजमें रिवाज या प्रथाओंका बहुत महत्वपूर्ण स्थान था और उन्हें विधिका स्थान दे रखा था। अभी तक नतिकता या वधिवत्ताकी कोई निश्चय भावना न थी। वैयक्तिक उद्योग (individual initiative) और जिम्मेदारी की भावना बिल्कुल न थी। पितृसत्ताक कानून कुलपति या परिवारका पिता (Patriarch or House Father) ही लागू करता था जो न्यायाधीश भी था और फ़ैसल पर अमल करानेवाला भी। यायाधीश और अपराधी दाना ही प्रथाओंसे बँधे थे। प्रथा ही मनुष्योंकी शासन थी। धीरे धीरे प्रथाने कानून या विधिका रूप धारण कर लिया। उस समय तक राज्य अपने प्रचलित अर्थोंमें कहा नहा था उसका कुछ विधायक तत्व उत्पन्न था। मैकाइवर ने ठीक कहा है कि यह साधना बड़ी भारी मूल है कि जिस किसी भी जगती जातिमें हम कोई मुखिया मिन वहाँ हम राज्य मान लें। हम यह नहीं कह सकते कि कब और वहाँ राज्यका आरम्भ हुआ। नवृत्त और अधीनताकी विद्वेष्यायी प्रवृत्तिमें यह निहित है। पर जब सत्ता सरकारका रूप धारण कर लेती है और प्रथा विधि बन जाती है तभी राष्ट्रका जन्म होता है (५५ ४२)।

पितृसत्ताक समाज आजकलके समाजसे निम्नलिखित अन्तर्गत भिन्न था (३९ अध्याय ८)

(१) बहुसमाज प्रादेशिक (territorial) न होकर वैयक्तिक (personal) था। समुदायकी संरक्षिताका आधार स्थान या प्राण (locality) न होकर रक्त सम्बन्ध—वास्तविक या कल्पित—था। समूचा समुदाय अपना संगठन उपजाया था कायम रखन हुए एक जगहसे दूसरी जगह आकर बस सकता था। प्रारम्भिक कालके राजा अपनी प्रजाके राजा होत थे, किसी निश्चय भू भागके नहा।

(२) उग समाजम दूसराब निए स्थान नहा या और उस अपन सदस्योको सस्या बढानेकी शालसा नही थी। अजनवियाको प्राचीन शहरकी चहार-दीवारीसे बाहर रहना पडता था। गाद लिय जान पर ही वे समुदायम सम्मिलित हा सकत थे।

(३) उस समाजम प्रतियागिताकी गुजाइश नही थी। प्रयाए ही समाजके जीवनकी आधार था। समाजका बंधन सबके ऊपर एक-सा था और समाज ही सबके सामाजिक कर्तव्य और उसके प्रतिफल (rewards) निश्चित करता था। परिवर्तन या प्रगतिका बुरा माना जाता था।

(४) उस समाजका दृष्टिकोण सम्प्रदायवादी था यह जल्द ही नही कि उग साम्यवादी कहा जाय। वह समाज एम गुटाका एक समुदाय था जिनका उद्भव एक ही था। इम समुदायका आरम्भ एक कुटुम्बसे हुआ और फिर क्रमशे गाँव या निवाय (guild) और अन्तम जाति या नगरकी स्थिति तक विकसित हो गया। जीवनका आदम पारस्परिक सहयोग या स्वाधीनता नही। अहस्तक्षेप नीति (laissez faire) समाज के लिए अपरिचित थी। उस समाजमें व्यक्तिगत उद्योगका कुचलने और बुद्धिबलके मनमाने प्रयोग पर बंधन सगनेही प्रवृत्ति थी। पितृसत्ता समाजकी स्वाधीनता का अथ व्यक्तिगत स्वतंत्रता न हाकर सामुदायिक स्वतंत्रता था। पितृसत्ता समाज और आधुनिक समाजके बीचका समय सामन्तवादका युग था और पितृसत्ताक विचार राज्यके ठीक प्रकार विकसित हा जानेके बाद बहुत समय तक प्रचलित रहे।

घम सामाजिक चेतनाके प्रादुर्भाव और इस चेतनाके फलस्वरूप राज्यक निर्माणका दूसरा कारण घम है। जसा कि गटल (Giddell) न कहा है—वश सम्बन्ध और घम एक हा घातके दा पहनू हैं। आत्म मनुष्यका सत्ता और अनुशासनका आणी बनानेम और उसम सामाजिक एकताकी भावनाका विकास करनेम का सम्बन्धकी अंगेना सामान्य उपासना (common-worship) अधिक जरूरी थी। इस सामान्य उपासनाक बाहरके लोग अजनबी ही नही गनु तक मान जाते थे।

जैक्स (Jenks) का कहना है कि पितृपूजा (ancestor worship) सर्वत्र पितृसत्ताक समाजका घम माना जाता थी। पितृ पूजाका अर्थ है निरन्तर पूजकाकी पूजा करना। पितृसत्ताक समाजक मनुष्यका विचार था कि उसक पूर्वजाका अस्तित्व निरन्तर कायम है। क्वात्रि वह सपनाम अपन पूजकाका देखता रहता था। वह अपन पूजकाके लिए बलि देना था उसका पूजा करता था और पूजकाकी प्रयाशाका पालन करता था ताकि उसके दिवंगत पूजक उससे मर न हा जायं। इस प्रकार पूजकोके बलि देना पितृसत्ताक समाजक घमकी एक प्रमुख विशेषता बन गयी। पूजकोके बलि भाग ले धीरे धीरे एक धार्मिक कृत्यका रूप धारण कर लिया। यह पितृसत्ताक घम सामुदायिक सभी लोग पर दृढ़ताके साथ लागू किया जाता था।

का सम्बन्ध और धमम आपसमें दृढ़ता गहरा सम्बन्ध था कि कुमपति ही—जो भाग धनकर जातिका प्रधान हा गया—महापुरोहित भी होता था। यह परिवारका (बामें जातिका) प्रधान था। वह प्रयाशाकी रक्षा और उनकी व्याख्या करता था।

वह महापुराहित होनेके साथ हा बहुधा जादूगर या चिकित्सक भी होता था। उस शासकको साधारण भाग भय और आत्मीय दृष्टिमें देखते थे। उसका शासन अत्यन्त कठोर होता था और इसमें उसका धर्म बड़ी सहायता मिलती थी। उन प्रारम्भिक दिनोंमें निरकुलता बेचल बुरी ही नहीं थी उसमें अन्धार्ई भी थी। उसने जाति संपन्नका मजबूत बनाया और मनुष्योंका अधिकार और उत्तरदायित्वका भावी बनाया। गुस्म निरकुलता ही प्रगति और स्वाधीनताकी मूल्य बड़ा सहायक थी। यहाँ नारण है कि धर्म और राजनीति बहुत समय तक एक साथ मिलकर चल और आज भावें एक दूसरेसे एकत्र अलग नहीं हैं।

जब विनृसत्ताक जाति नयी-नया जातियाँ मिननम या विजय प्राप्त करके बढ़ने लगीं तब जा नयी स्थिति पदा हुई उमका नुकावना पिनसत्ताक धर्म न कर सका। इसी अवस्थाम प्रकृतिकी पूजा आरम्भ हुई। प्रारम्भिक अपरिष्कृत ब्रह्मवाद (crude animism) में प्रकृतिकी उपासना जाति युगमें भी प्रचलित थी पर अब वह अपन विकसित रूपमें बड़ी आनानीमें पूज उपासना में घुल मिल गयी और सामन विधिष लिए निष्ठा (sanction) का काम करने लगी। धार्मिक और राज नीतिव विचाराम बार्ई भू नहू किया जाना था जोर विधि तथा मत्ताकी आपाआवा पालन अधिकतर इन विचारामक कारण किया जाना था कि सामकम दयी गकिउ है और प्राचीन प्रथाएँ पवित्र हैं (२४ ६५)।

३ राजनीतिक चेतना राज्यके विकसितता तानरा कारण यह है कि मनुष्य न प्रारम्भिक युगमें व्यवस्था और सुरक्षाकी बात अधिक उल्लेख ममती और इसक साथ ही साथ बलवान और चतुर लोगोंमें गति और अधिकारकी नालसा पैदा हुई।

जैसे ही मनुष्यन गिकार करनेकी और खानाखानाका आनंद छाडा और धरागाही और सतिहर जीवतका जपनाया वग ही उमक जीवतम अदक परिवर्तन हुआ। आराना बढ़ने लगी पदामिपति सम्बन्ध बडने मग सम्पति एकत्र हो हान लगी आयनाकी भावना अब पकडने लगी और अधिक जावतता विचार हुआ। इन सब परिवर्तनमें यह उल्लेखी हो गया कि बार्ई एसा व्यवस्था हा जिमने ममानम आन्तरिक व्यवस्था कायम रहे और व्यक्ति तथा सम्पत्तिकी सुरक्षा हो सक। इस व्यवस्थाना और बल उम समय मिला जब मनुष्यन यह जनमक किया कि परिवार तथा विवाह जम सामाजिक सम्बन्धोंका नियमन करनेक लिए एक अधिकारयुग सस्या का उल्लेख है। सावजनिक सुरक्षा और आक्रमणके समय उल्लेखी सामूहिक कारवाइयों के लिए भी एसा सस्याकी आवश्यकता प्रतीत हुई और इनमें भी सम्बन्ध बन मिला।

राज्य-सम्पाक निमाणम गतिनकी अजागाका बान बडा हाम था। इस अजाडा का पूरा करनेका सबने अन्दा अवसर सनिक कारवाइयमें मिला। कमसे कम कुछ अवसरों परता 'युद्धने ही राजाका जन्म दिया। आरम्भके पारिवारिक मण्डलका स्थान धीरे धीरे गुड राजनीतिक मण्डल में मल गया। सकन यद-नायक राजा या सामन्त बन

गये और समाजम बर्द बग पदा हो गये। यकिन अधिकाधिक रूपसे कुछ चुने हुए वर्गों के हाथमें चली गयी जो अपने लिए विनाय असामान्य अधिकारोंका दावा करने लगे।

इस प्रकार वर्ग-संगठन घर्मे और ब्यवस्था तथा सुरक्षाकी आवश्यकतासे वह संगठन बना जिसमे साधारणतया राज्यका जन्म हुआ (२४)। इन सधके कारण विधिकी जरूरत पगे और इस विधिको लागू करनेके लिए सरकारकी जरूरत पडी। राज्य हम राजनीतिक बिकासका अंगला बरदम था।

SELECT READINGS

- GETTELL R G -- *Introduction to Political Science* -- Ch VI
 GETTELL R G -- *Readings in Political Science* -- Ch VI
 JENKS E -- *The Ship of State* -- Ch III
 CRANENBURG R -- *Political Theory* -- pp 3 19
 MACIVER R M. -- *The Web of Government* -- Ch II
 LOWIE R. H -- *Origin of the State*
 OPPENHEIMER F -- *The State*
 SIDOWICY H -- *Development of European Polity* -- Lecture III
 WILLOUGHBY W W -- *The Nature of the State* -- Chs III VI

राज्य का इतिहासीय विकास

(The Historical Development of the State)

अभी तक हमने राज्य का उत्पत्ति और प्रारम्भिक राज्य का बनाने का तन्त्रिक सम्बन्ध में प्रचलित कल्पनामूषक सिद्धान्तों का विवरण किया है। अब हम इतिहासाय कात्मक रूप से राज्य का विकास पर विचार करेंगे। इन क्षणों का विचार करने के लिए हमारा पास ठोस सामग्री है।

१. पूर्व का प्रारम्भिक साम्राज्य (The early Empire in the Orient)
आग्नि पितृसत्ताक अयन्यास विवक्षित हानवान पहलू राज्य का स्वरूप विनापके पूर्वक दृष्टि में साम्राज्यवादी था। पितृसत्ताक समाज के पास न तो इतनी भूमि थी और न इतनी जनसंख्या कि वह एक राज्य बन सके। ऐसा मानना है कि वास्तविक या काल्पनिक रक्त सम्बन्धों परम्पर बंध हुए विभिन्न कुटीरों और विभिन्न राज्यों के बीच कील-झान प्रारंभ थे। परन्तु इनसे ही राज्य का निर्माण नहीं हो सका था। राज्य के निर्माण के लिए यह जरूरी था कि कुटीरवादी मनुष्य विस्तृत निम्न और उत्तर दायि ववा आनी बन विजय और प्रभुत्व कायम करके ही उन इन धानों का भागी बनाया जा सके था।

बड़ी-बड़ी मरिचाम साथ जानवान पूर्वक गमे और उपजाऊ मदानाम तथा मरिचका और वेरुके पठारों में आग्नि सम्प्रदाय और आदिम राज्य का उत्पन्न हुआ। यह ऐसे क्षण थे जहाँ कमसे कम महत्वपूर्ण अधिकतम अधिक उत्पन्न सम्भव था। यहाँ की आवासीय शैली थी। बहुत जल्द ही लोग प्रारम्भिक पारिवारिक और धार्मिक संगठन को पार करके नया राजनीतिक व्यवस्था में आ गये। शक्ति के साथ बढ़ने वाली जनसंख्या ने और नए नए प्रयोगों की दुर्लभ बनाने वाली जनतापुत्रों में एक बहुत बड़े दासवादी उत्पत्ति में योग दिया। जिनके पास आबायकता में अधिक सम्पत्ति अवकाश और शक्ति थी वे आसानी से दूसरों पर हावी होकर निरंकुश सत्ता कायम कर सके। सामाजिक विभेद और जाति प्रथा का प्रचलन शुरू हुआ। इस परिस्थिति में बहुत जल्द विनाम साम्राज्य का विकास हुआ। यह सभी साम्राज्य—सुमेरियन असीरियन पर्सियन या फारस का साम्राज्य मिस्र और चीन के साम्राज्य—नगरों का केंद्र बनाकर विस्तृत हुए। प्रारम्भिक साम्राज्य का छाहकर अब सभी साम्राज्यों में मोगातिव सम्बन्ध और संगठन बहुत कम हो गए थे। उनका मुना भय और निरंकुशता पर

ही नहीं थी। पारम्य साम्राज्य ही एकता और स्थिरता कुछ हद तक पायी जानी थी। अथ सभी साम्राज्यों का नाम अधिनगर राजत्व समूल करना और मजिब भर्ती करना था। न तो वहाँ एक सामान्य उद्देश्य था और न एक सामान्य योजनाएँ। सत्ताएँ राजवर्ग के सम्बन्ध में ही व्यक्तिगत प्रतिस्पर्धी धारण और सत्ता के लिए आपस में लड़ने लगे थे। व्यक्तिगत स्वतंत्रता और मजिब राजनीतिक प्रगतिक लिए सजाया नहीं था। प्रारम्भिक साम्राज्य इस प्रकार अस्थिर ही रहे। यह अधिक से अधिक अर्ध-स्वायत्त (semi independent) राज्यों का एक मिश्रित मण्डल बन गया। साम्राज्य-सत्ता केवल एक राजवर्ग के दूसरे राजवर्ग ही नहीं बल्कि एक नगर के दूसरे नगर के बीच बँटती रहती थी (५५-५६)। इन सब दृष्टियों के हाथ हुए भी प्रारम्भिक साम्राज्य न सागरों की सीमा-वापस की भाँति बनाकर राजनीतिक विकास को सहायता दी।

२. यूनान के नगर राज्य (The Greek City States) राज्य के विकास की दूसरी महत्वपूर्ण अवस्था यूनान में मिलती है। यद्यपि यूनान में सम्यता का विकास प्रकृतियों की वजह से कुछ घाट में हुआ किन्तु भी सम्यता के आरम्भ ही जान पर उसका विकास सदा ही हुआ। यूनान की भौगोलिक परिस्थितियों राजनीतिक अधिकार और उनके प्रयोग के लिए बहुत उपयुक्त हैं। सारा देश पर्वतों और सागरों के कारण अनेक घाटियों और द्वीपों में बँटा हुआ है। उसकी प्राकृतिक अवस्था विभिन्न प्रजातियों के लिए बड़े-बड़े पहाड़ और नदियाँ नष्ट हैं और न कोई ऐसा प्राकृतिक कारण है जो मनुष्यों की क्रियाशीलता को रोक सके। यूनानियों का धर्म तथा जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण प्राकृतिक था। वह अपने दकताओं से नहीं डरते थे। चूँकि वे प्रकृति के उष्ण कटिबंधीय देशों (tropical countries) की भाँति उत्तर नहीं थे इस कारण लोग उपनिवेश बनाने तथा ध्वंस करने करते थे। पितृसत्ता के बन्धीला या जातिवादी नष्ट-ध्वंस प्रदर्शकों पर अधिकार कायम किया। उन्होंने पहाड़ियों के आसपास गाँव बनाये जिससे उनकी रक्षा आसानी से कर सकें। इनमें से कुछ कबीले विजय द्वारा कुछ राजसत्ताओं तथा कुछ स्वतंत्र या अर्ध-स्वतंत्र कारण एक में मिल गये। परन्तु उनमें राष्ट्रीय एकता की भावना विकसित नहीं हो पायी। उनमें अतः एक स्थिर स्थानीय देशप्रेम (local patriotism) की भावना ही बनी रही।

यूनानियों ने अपने स्वतंत्रता और स्वायत्त नगर राज्यों में या नगर समुदायों में कई प्रकार के राजनीतिक नगरीय विकास किए। इन सभी में साम्राज्य के विकास के लक्ष्य निहित थे। केवल स्पार्टा (Sparta) ही बराबर शक्तिशाली बना रहा और अपने शासन और सरकार का ज्यादा ध्यान बनाय रहा। इसके विपरीत दूसरे राज्यों में राजनीतिक विकास का साधारण क्रम राजतंत्र से कुलीनतंत्र कुलीनतंत्र से निरकुलीनतंत्र और सब प्रकार का (२ अ० १)।

यूनानी नागरिक अपने राज्य के प्रति बहुत सजाया होता था। नगर के जीवन में पूरा भाग लेना उनका जीवन का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य था। नागरिकता एक बंधन

क रूपम धा आर नगभण एक ध्यवसाय धा (५५ ८४)। यूनानी नग नगरका एक नतिन मस्या मानत ध। नगर अनेक धायों और बनध्याका पूरा करता धा। वास्तव म नगर समाजका पूरा जीवन धा। व एक सर्वांगीण साम्रदारी (all inclusive partnership) धा। यूनानियाका विवाम धा कि राज्यग अनग रहकर कई ना ध्यक्ति जीवनकी पूणता प्राप्त नहा कर सकता। यूनानियाके जीवनका दृष्टिकोण कारम्भमे अन्त तक सामाजिक धा।

इस तरह जहाँ एक आर यूनानिक नगर राज्य राजनीतिक विकास और ध्यक्तिगत स्वाधीनताकी खाती पर ध दूसरी आर उनम अनेक सम्भीर प्रटिया भी थीं। पहली प्रुति ता य धी कि य नगर राज्य नाम प्रधा पर आधारित ध और दूसरी यह थी कि यूनानी धारसम मि नकर एक सम्मिलित राष्ट्र न बन सक। उनम कभी भी एक सब सामाय राजनीतिक अतना का विकास नहा हा पाया जा सभी यूनानियारा एक राज नीतिन सूत्रम योध गेती। नगर राज्याने गिधिल और लचर मन बनाया परन्तु इसम काग अधिर कुद्र न कर पाय। आपसम बहुधा हानेवान युद्धान एक न करके सब बड-बड नगर समाकी धक्षिका नष्ट करनिया। नगराकी सीमाक भीतर बव रहनक कारण ही लोगम दूसर नगरा और गव दुनियाक प्रति सत्र उपसा और नियथात्मक भायना (attitude of bitter exclusiveness) थी। यही कारण धा कि यूनानकी धक्ति कम हातो गयी और एक न्तिन मह आसानीस मकदूनियो (Macedon) और फिर रोमका सिकार हा गया।

३ रोम का विश्व साम्राज्य (The World Empire of Rome)
यूनान क नगर राज्यकी भांति रोमके राजनीतिक जीवनका आरम्भ भी एक नगर राज्यक रूपम हुआ धा। रोमके नगर राज्यका निर्माण उन अनेक कबीलाम हुआ जा टाइवर नगर उपजाऊ मदानम स्थित आसानीसे रचा करते याग्य सात पनाडिया पर अयना पठा त्रिप हुए ध। आरम्भम इन नगर समाका कई विगय महत्त्व न धा पर धपनी केगीय स्थितिक कारण और दगरी एकसात्र जहाडरानीके याग्य महत्त्व पूण नरीके ऊपर स्थित हानक कारण य नगर राज्य बहुत शीघ्र एक प्रधान राज्य बन गया। वहाँ रहनवाले विभिन्न कबीलाम एक सामान्य धार्मिक उपासनाके कारण एकताकी भावना मुदुड हा गयी। आरम्भम बहाका शासन राजनयाय धा। राजा ही न्यायकता शासन और धम-गक धा। राजनीतिक सताम कुलीन वगका भा भाय धा इस कुनान वगका पैट्रीशियस (Patricians) कहते ध। आरम्भम भूमि धोग सम्पत्ति रहित साधारण वक्का त्रित प्लीबियस (Plebeians) बहा जाता धा इन अधिकारामे कुछ हिस्सा न मिसा लकिन शासन असन अयन लिए कुछ विगय अधिकार प्राप्त कर लिये।

यूनानी नगराकी भांति रोम भी प्राग्भिन्न प्रवृत्ति सामन्तरीय शासनकी ही आर थी। मन् ५० ई पू० के लगभग राजनयका अन्त हा गया और दा प्रधान ध्यायकताका सहित गणतन्त्रकी स्थापना की गया। इन ध्यायकताका शासन को मन्

(consuls) बड़ा जान लगा। इस परिवर्तन के बाद दो कंसुलरिया तक कुलीनवर्ग और सामान्य वर्ग (Patricians and Plebeians) के बीच राजसत्ता के लिए सघप होता रहा। युद्ध के आर्थिक परिणामों के कारण सघप तीव्र से तीव्रतर होता गया और अन्ततः दोनों वर्ग मिलाकर एक नागरिक समाज में परिणत हो गये जिसमें दोनों वर्गों को ही समान राजनीतिक तथा नागरिक अधिकार थे। इस परिवर्तन से सरकार में भी परिवर्तन हुआ जिसके अनुसार दो 'कॉन्सुल' में से एक को सामान्य (प्लीबियन) वर्ग से होना आवश्यक हो गया।

अब रोम अपनी सीमा के बाहर के प्रदेशों को अपने मित्तान की सोचन लगा। इटली की प्राकृतिक परिस्थितियाँ यूनान पर विजय पाने में सहायक थीं। सबसे पहले रामन अपने पड़ोसी इटालियन राज्यों को अपने मित्तान लगाया। सन् ९० ई० पू० तक— सामाजिक युद्ध (The Social War) के बाद (जो आठ इटालियन कबीलों का रामन के प्रति गम्भीर विद्रोह था)—पो नदी के दक्षिण के सभी प्रांत पूर्ण नागरिकता प्राप्त कर चुके थे। यूनान की अपेक्षा रामन की नागरिकता अधिकारों की व्यवस्था अधिक स्पष्ट तथा समयानुसार बनाने वाली थी। जसा कि मैकाद्वर न कहा है आरम्भ से ही रोम के लोग अपनी संपत्ति के कारण नागरिक अधिकार (वानतुव) समस्त समानता के अधिकार) और राजनीतिक अधिकार (सम्प्रभुता सम्पन्न सत्ता की सदस्यता के अधिकार) में स्पष्ट भेद कर रहे (५५-९७)। इटली के कुछ नगरों को नागरिक अधिकार तो दिये गए परन्तु राजनीतिक अधिकार नहीं दिये गए।

इटली का जीत लेने के बाद रामन बहुत जल्द पश्चिम में अपने एकमात्र प्रतिद्वंद्वी कार्थेज नगर को बरबाद कर एक बहुत बड़ी सामुद्रिक शक्ति बन गया। सिकंदर के साम्राज्य के कई प्रदेश रोम के शासन में आ गये। ईसा के पूर्व की पहली शताब्दी के समाप्त होते-होते लगभग समस्त सम्पूर्ण पश्चिमी समुद्र एक राजनीतिक व्यवस्था में बंध गया।

साम्राज्य को एक सुव्यवस्था में रखने के लिए एक प्रभावपूर्ण केंद्रीय शासन और नियंत्रण की व्यवस्था की गयी। जीत हुए नए भाग प्रशासित किए गए। हर प्रदेश में एक रामन अधिकारी को जिसे 'प्रोकंसुल' (proconsul) कहते थे राजनीतिक तथा नागरिक मामलों में पूर्ण अधिकार मिले हुए थे। उस पर शक्य एक ही अनुज्ञा था और वह अनुज्ञा इस बात का डर था कि कहीं ऐसा न हो कि अपने काम में व्यवधान प्रहण कर लेने के कारण रामन में उस पर अभियोग लगाया जाय। स्वयं रोम में गणतंत्र का स्थान तानाशाही सैनिक शासन ने सँ लिया था। सम्राट सर्वशक्तिमान बन गया। जनप्रिय परिणामों का कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं रह गया था। सैनिक प्रमुख स्थान प्राप्त था परन्तु इस पर भी सम्राट का नियंत्रण रहता था क्योंकि वह ही सीनेट की भयानक और महत्ता निपातिल करता था। अन्त में सम्राट का शासन ही विधि माने जाने लग गया।

दूसरी शताब्दी के अन्त तक विभिन्न प्रदेशों के निवासियों को भी रामन की नागरिकता

मिल गयी। राज्यके सभी सभ्य सम्राट्ने शासनम समान प्रजाध रूपम आ गये। एही बीच इस पुरान सिद्धान्तका स्थान कि शासकको प्रजाके ही अधिकार प्राप्त होते हैं, 'वी उत्पत्ति सिद्धान्त' ने ले लिया। सम्राट्की मत्ता ईश्वर द्वारा प्रदत्त मानी जान लगी। कुछ समय तक सा मन्त्राट्का ईश्वर ही मानकर पूजा जाने लगा। बाद म जब ईसाई धर्म राज-धर्म हो गया तब 'वी उत्पत्ति सिद्धान्तकी ध्याय्या इस प्रकार की गयी कि मन्त्राट्पृथ्वी पर परमात्माका प्रतिनिधि है। इस प्रकार प्राचीन लोकतन्त्राय नगर राज्य एकलत्राय विभव-साम्राज्य बन गया। स्वतन्त्रता लोकतन्त्र और स्थानीय स्वाधीनता (local independence) का मान धर गया और उनक स्थान पर एकात्मक व्यवस्था विश्वविधि और विश्व-सुखक रामन आत्म्य की प्रतिष्ठा बढ गयी।

सभ्यताका प्रथम मुख्यस्थित और सुशासित राज्य दूनका स्थापना गीरव रामका ही प्राप्त है। रामका शासन पश्चिमम पाच सौ वर्ष तक और पूर्वम उड हजार वर्ष तक आयम रहा। रामन साम्राज्यकी व्यवस्था पद्धतिक अनुसार हा धर्मातिक धर्म-संघ (church) ने अपना सगटन किया। रामकी व्यवस्थाका नी देखकर पूरे मध्ययुगमें एक विश्वव्यापी साम्राज्यकी भावना सागके मस्तिष्कम घूमती रही। रोमका विधि उसने उपनिषद और नगरपालिकाका शासन-व्यवस्था आधुनिक युगको विरासतक रूपम मिली है। मन्त्रभता और नागरिकताके मुगटित आत्म्य और विभिन्न ज्ञानियाम राजनीतिक एकात्मता स्थापित करनेकी पद्धतियाँ रामकी कुछ महत्वपूर्ण सन्तानाए हैं।

इन महान् सफलताओंके बावजूद रामका साम्राज्य स्थायी या शीघ्रजीवी न हा सका। उसने पतनक कारणाम से कुछ धर एकताकी प्राप्तिके लिए व्यक्तिगत स्वतन्त्रताका बलिदान, शासनकी हृदयहीन दक्षता (soulless efficiency) आ उसकी शिथिलतायो उष्णवर्षोंका नतिक पतन महामारिका साम्राज्यका कमजोर आधिष आधार साम्राज्यक उत्तराधिकारका निर्गम करनेवाली विधिका अभाव एव धार्मिक अन्धवस्था और बबर जातियाँके हमन। यद्यपि इन तथा अन्य कारणामे रामका पतन हो गया पर पतनक बाद उसका प्रभाव नाम और यग पहनकी अवस्था अधिक गहिरागतो हो गया। यूनान और रामकी सन्तानाओं और अमरलगाओंकी मुलता करते हुए मन्त्रभता ही कहा है। यूनानने एकता रहित प्रजातन्त्रका विकास किया और गमने प्रजातन्त्र रहित एकात्मता कायम की (२४-५९)।

४ साम्राज्यिक राज्य (The Feudal State) रोमन पतन का मतलब यह हुआ कि पश्चिमम पारापम राज्य का हो अन्त हो गया। एक साथ अनेक तक अन्त-व्यस्तता रही। राम पर उत्तरम हमन करतबान बरर संपूर्ण अब भा बढायती किन्ता बिना रहे ध और एव मन्त्रभता सभ्यता म भावी क पना न नहा कर पाय ध। उन्हें स्थानीय स्थापना और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता बहुत मिल था। तन्त्र राजा कथन सन्तान पुढनायक ही ध। स्वतन्त्र व्यक्तिता का ममस्त सामाजिक कार्यामि भाग लेने का अधिकार था।

जब एम गोगावा सम्पर्क रोमरी राजनीतिक पद्धतिमे हुआ जिसकी विगपनाए—व्यवस्था एकता और केन्द्रीयकरण था तब सघप अनिवार्य हो गया। इस सघपस समझौतेक रूपम सामन्तशाहीका उदय हुआ। यह सामन्तशाही ट्यूटानिक नागाके कृषायनी समाज और रोमन साम्राज्यक बीच समझौता सी थी सामन्तशाही की निग करना और राज्यक विकासम इसने महत्वका काम करना ता ब न आसान है। यह ठीक ही कहा गया है कि सामन्तशाही राजनीतिक पद्धति है ही नह। परन्तु रोमके पतनके बाद समाजम जब अराजकता पम गयी थी तब सामन्तशाही ने ही योरोपके लागका शान्ति और मुग्धा हो और राज्य-यत्रको बनाय रखा। सीमित अर्थम यह मगठिन अव्यवस्था थी। रोमन साम्राज्यका और आधुनिक राष्ट्रवाकके बीच सामन्तशाही अन्तवामीन व्यवस्था रही है।

सामन्तशाहीका उदय और उसका अर्थ (How Feudalism arose and what it meant) रोमन साम्राज्यके पतनके बाद उसने विस्तृत प्रदेश गकिन शान्ति सामन्तके अधीन हो गये। प्रत्येक सामन्त स्वयं एक सत्ता बन गया और उसने अपने अधीन प्रदेशका छोटे-छोटे जागीरदारामे बाँटकर अपने चारों ओर एक समाज तयार कर लिया। प्रधान सामन्त (tenant in-chief) ने अपनी जमीन जागीरदारामे बाँट दो जागीरदारने अपनी जमीन उमादारामे बाँटी और जमीदारने अपनी जमीनका नौकरा और दामा (vassals and serfs) म बाँट दिया। इस प्रकार भूमि पर प्रभुत्व स्वामिन्के आधार पर गकिन-सम्पन्न लोगका एक समाज उठ खड़ा हुआ। एक कठोर षग व्यवस्था कायम हुई और 'राज्य समाजम विलीन हो गया। मन्िक मया तथा अ य प्रकारका सवाभका अधिकारी निरटलम सामन्त होता था। राजा या प्रधान सामन्तका नौकरा व दासने निम्न बर्ग पर अप्रत्यक्ष ही अधिकार होता था। समाजका प्रत्येक षग सबग पत्रन अपने ऊपरके बर्गका सबग पत्रला सेवक और स्वामिभवन होता था। इस सीमित स्वामिभक्तिका परिणाम यह हुआ कि उस समय के लाए एक एसी सर्वोच्च समाजी कल्पना नह कर पाय जिगका साधमीम प्रभुत्व हो। रोमके आगान बड परिधमसे एक समान और निष्पक्ष विधि का निमाण किया था। सब लोग इस विधि का ही मानन लग थे। पर सामन्तशाही युगम लाग एक बार फिर रीति रिवाजका वा ही विधि मानने लग और रोमक लोग का सारा परिश्रम व्यर्थ गया। साम तारादी विचारने रहन रहन वास्तविक राजनीतिक प्रगति सम्भव नह थी। फिर भी सामन्तशाही अराजकताका समानार्थी (synonymous) नह माना जा सगता। योगपद लागका शान्ति और मुग्धा दार उमने अपन अम्नित्व का शोकिय सिद्ध कर दिया। यह अम्नित्व बहानी और स्वीकृति पर आधारित था। बादम विगनकर इत्येवम जहा अपन उपरके जागीरदारकी अगभा सम्राज्य प्रति वगानीका अधिक महत्व दिया गया सामन्तवादन एक राष्ट्रीय राज्यक विकासमे गहायना दा।

ईगई धर्म-गप (Christian church) एक दूसरी गम्पा थी, जा अपनेको उग

अध्यवस्थाकें बाह्य भी जावित रह सका जा राम साम्राज्यक पतनक बाद फली थी। ईसाई उमका आरम्भ समाजक निम्न वर्गमें एक सामान्य धार्मिक विवासेके रूपमें हुआ था पर कुछ ही शताब्दियाम वह एक प्रबल धर्म हो गया। सन् ५२७ इस्वीमें रोमके सम्राट् कान्स्टान्तिन (Emperor Constantine) ने ईसाई धर्म स्वीकार कर दिया। चीफा गठान्तीय अर्थ तक पूरे रामन समारम यही एक स्वाइन धर्म रह गया। ईसाई धर्म-सभ ने अपना मग्यन रामन साम्राज्यक ढग पर किया था। जब रामन साम्राज्यका पतन हो गया तब अनेक मन्त्राज्यका स्थान ग्रहण कर पाराय म शान्ति और व्यवस्था कायम की। सम्पूर्ण मध्ययुगका मन्वा अधिधम अनेक राज्य पर अपना नियन्त्रण रखा और स्वयं एक मन्त्रिगणकी लौकिक सत्ता बन गया जिसके पास पयापन सम्पत्ति विगयकर भू-सम्पत्ति थी। जसार्कि फिनिम (Fines) ने कहा है मध्ययुगम अथ एक गण्य भी नथा था बल्कि दाम्भविक राजमनाक म्यात पर बनी जासन्ति था। राज्य नामस पुकारी जानबाना जा गण्ययत्ता या (क्याकि धर्म सभस अलग किसी दूसरे समाजका म्यति ता स्वाकार हो नर की जाती था) वह बान्धवम इस धर्म-सभका पुनिस विभागमात्र था।

सामन्तवाङ्ग धर्म-सभका बड़ा सहायक था यह इमतिा कि धर्म-सभका राजनीतिक हित इसीमें था कि पश्चिमा याराप बराबर विभाजित बना रह ताकि एक एमा मामान्य राजनीतिक गक्ति स्थापित न हो सक जा धर्म-सभ से अधिव गक्तिवान हो और उमक मन्त्र चोड गदाना विराध कर सके। जब तक पाप पाप्य और मन्त्रिगणकी और राज महागत्र कमडार रह चीर जब तक धार्मिक अधिकारियाक प्रति जनताका अथ शिवाङ्ग बना रहा तब तक धर्म-सभकी प्रभता भी बना म्ता। परन्तु चौथवा गठान्ति क आमगान हो पाकी सताक बुने अिन आरम्भ हो गये और उमके बाह्य फिर कभा पापक पन्ना यह प्रतिष्ठा और अधिकार न भित जा सातव धर्मगे (Georgy VII—१०३३ १००५) और तीयर इनासेंट (Innocent III—११९० १२१६) का मिल चुक था। दा इतिहासीय घटनाजान धर्म-सभक अधिकार और उमकी प्रतिष्ठाका कम कर दिया। इनमें से पहली घटना था फ्रान्सक धार्मिक गठान्ति गठान्ति पापका एविनात नामक म्यातम बन्नी बनाकर रखा जाना त्रिन बरीलनिवा बन्नी बान (Babylonish Captivity)—१, १७५) कहत हैं आर दूसरी घटना म्तर बाह्यी महान् मन्त्र (The Great Schism—१३०५ १५१५) था जब फ्रान्स और कभी-कभी सान प्रतिष्ठाकी व्यक्ति पाप हान का शवा करत रह आर इनके लिए थापसम मगडने रह। उमक बाह्य तुरन्त ही आनवान प्राम्म्य धर्ममुधार (Protestant Reformation) ने सभकी लौकिक सत्ताका तगमग समाप्त हो कर दिया और इस प्रकार राष्ट्रीय राजतन्त्रा क निग माल मदार हो गया।

धार्मिक युग का राष्ट्रीय राज्य (The National State of Modern Times) पुनर्जायन (Renaissance) और धर्ममुधार (reformation) कालमें ही आमतौर पर आधुनिक धर्मका आरम्भ माना जाता है। अनेक आनवानने पश्चिमी

पारापके जीवनम नयी स्फूर्ति भर श्री और उसने अन्तिम विकास और महत्त्वपूर्ण राष्ट्रताआके युगम प्रवर्ग किया। एसी हालतम सामन्तवाण बहुत दिन तक टिक नहा सकता था। जब तक परिस्थितियाँ अनिश्चित रही और सब जगह अव्यवस्था और गड़बड़ी फनी रही तब तक सामान्वाद् बढ़ा उपयोगो रहा। पर परिस्थितियाँके मुधरने ही व्यवस्था स्थापित होते ही और जाति घम प्रयोग और भाषाके आधार पर लोगामे एकताकी भावना उत्पन्न होने ही सामान्वाद्को समाजकी एक उच्चतर व्यवस्थाका जगह देनी पडी।

मध्ययुगके समाप्त होनेके पहले ही कई शक्तिया इस नये युगको जानेम सहायक हू । रामका घम-साम्राज्य (The Holy Roman Empire)—ईसाई धर्म-सभके पापकी प्रभुता—अपने बँधवके मुनहरे नाम भी बहुत कुछ बनावनी ही था। उसके पीछ कोई असली अधिकार सता नही थी। इस घम-साम्राज्य और पोपकी सत्ताके बावजूद इंग्लण्ड फ्रांस और स्पेनमे राष्ट्रीय राजका उदय हो रहा था। नगर बढ रहे थ और व्यापारकी वृद्धि हो रही थी। पापकी जबरन और उद्दण्टता मरी माँगाम राजाओके आममम्मान और स्वाभिमानका ठस लगन लगी और वे लोग पोपके अधिकारोंसे अपने आपको घीरे-धीरे मुक्त करके अपने अपने देशामे वास्तविक शासन बनने लग। जनता शान्ति और सुरक्षा चाहती थी और इसलिए उसने भी पूरी बफादारीसे अपने राजाओंका साथ दिया। लोगाने अपन राजाआका अपनी राष्ट्रीय भावनाका प्रतीक माना और वे राष्ट्रीय भावनासे प्रभावित होने लगे। धारुइके प्रयोग राष्ट्रीय राजस्वम वृद्धि और स्थायी सेनाके निमाणके कारण राजाआका अपने सामन्ता पर आधिपत्य मूक्ति मिली। सतवर्षीय-युद्ध (The Hundred Years War) और गुलाबो के युद्ध (Wars of Roses) ने सामन्ताके अधिकारोंको और उनका राजनीतिक महत्ता का और कम कर दिया। पण्टवा शताब्दी समाप्त होत-हाने सामन्तशाही ताकत बहुत कुछ समाप्त हो गयी।

इस प्रकार प्रोटेस्टण्ट रिफार्मेशन के आते-आते युगांतरकारी राजनीतिक परिवर्तनाक लिए मन्तन सवार हो गया था। मुयारक मुख्यत धार्मिक उपदेशक थ। उन्हान चर्च भ्रष्टाचार उमके झूठे उपदेश उसरी लौकिक शता और उसकी अतुन सम्पत्तिके क्षिणाफ घोर बढ छुड दिया। उन्हान एने सिद्धान्तारा प्रचार किया जिनरा मनुष्यके धार्मिक जीवन पर हा नहा बल्कि उनक राजनीतिक सम्बन्धा पर भी गहरा असर पडा। ये सिद्धान्त मुख्यत यह थ—हर मनुष्यका मनुष्य होनेके नाते मान और महत्त्व व्यक्तिगत विद्व और व्यक्तिगत स्वाधीनताका सम्त्व और पालनी या पुराहितरी मन्त्रक बिना ईश्वरग सौधा सम्बन्ध कायम करन का हर व्यक्तिना अधिकार। इन उपदेशामे ही आधुनिक युगक राजनीतिक द्वात्रम व्यक्तिनया और राष्ट्रवाण आन्दे आन्दाननाका जन्म हुआ। मध्ययुगकी शासित शासी धारणाओं—विश्वव्यापी साम्राज्य और विश्वव्यापी घम मध—पर इन उपदेशाम पात्रक प्रहार किये।

मुधारकाके उपस्थापना तात्कालिक परिणाम यह हुआ कि राष्ट्रीय सभ्यता का विकास हो गया। सभी बड़े उपस्थापकान अपने अनुपायिका राजाका आगा आस मोचकर माननेका आदेश दिया। उनका कहना था कि जो भी मना है वह ईश्वर द्वारा नियुक्त है। उनका कहना था कि राजनीतिक सत्ता अन्तिम तीर पर ईश्वरकी इच्छान ही प्राप्त होनी है और जिन राजाआका आगा हम मानते हैं वे राजा भी अधिकारमे ही राज्य करने है। उनके उपस्थापने इंग्लैंड और फ्रान्स एका गहरा प्रभाव डाला कि इंग्लैंडमे ट्यूडर और स्टुअर्ट बाका और फ्रान्समे क्यापियन (Capetian) बा का निरकुण शासन स्थापित हुआ। फ्रान्सके चौथे लई ने ता यहा तक कह डाला मैं ही राज्य हूँ। मुधार आन्धाननका जिम्मा यह थी कि राज तन्वीय देणोंमे राजतन्त्र और अभिजात तन्वीय दण्डाम अभिजाततन्त्र (aristocracy) का समर्थन किया जाय। दाना ही नियतियामे राजनीतिक सत्ताका निरकुण बनाना ही इन उपस्थापका सार था।

पर इस प्रकारकी निरकुणताको भीम्र ही चर्चीनी मिन गयी। जम ही नागाम जाणति फनी और उन्हें अपनी शक्ति और अपने महत्त्वका ज्ञान हुआ वम हा जनता राजकी बात चुपचाप माननेक कतय पर मन्ह और अधिकधिक राजनीतिक अधिकार और मुविधाआकी माग करने लगी। इसका नतीजा यह हुआ कि राजनीतिक अधिकारोंके लिए राजाआ और जनताम एक लम्बा संघर्ष आरम्भ हुआ। निरकुण राजतन्त्र और लोकतन्त्रके बीच युगम मुधार आन्धाननके व्यक्तिगत महत्त्वका सिद्धान्त बहन और पकड़ा। माधारण व्यक्तिम आन ऊपर एक नया विश्वास पना हा गया और यह यह अनुभव करने लगा कि शासनका अन्तिम शासिकाकी भवाइ के लिए ही अपनी भलाईके लिए नहा। इस प्रकार मुधार आन्धाननके उपस्थापका अन्तिम परिणाम यह हुआ कि इसमे व्यक्तिगत स्वाधीनता और लोकतन्त्रके सिद्धान्त का मन मिला।

जनताका एक मूखम शोधनके लिए और सामन्तशाहा का अन्वयका और फूले स्थान पर व्यवस्था और एरता कायम करनेके लिए राजतन्त्राये निरकुणता निस्सन्देह आवश्यक थी। पर इस संघर्षके पूरा हान ही उसका कायम रखनेका कोई कारण नहा रह गया था। इंग्लैंडमे बहुत पहन ही लोकतन्त्रीय आन्धानन शुरू हा गया। वह जमना शास्त्रिमम तरीकेमे बराबर बढ़ना ही रहा। फ्रान्समे इस आन्धानन ने एक दिवक फासिता रूप ले लिया। अन्य देणोंमे राजाओंने जनताकी इच्छाके आग धुने टक मिय। वे शासनत्रीय सरकार अधीन नाममात्र शासन बन गहनका राठी हा गय। लोकतन्त्र इस आन्धानन इतनी गहरी अँजमा सा और इतने अच्छे ढास काम किया कि अब कुछ बयों पूर तर शासनतन्त्राये राष्ट्रीय सरकारकी ही राज्य के विरामकी उचिततम अवस्था माना जाता रहा था। उदाहरण स्वरूप बयम (Bentham) आगा करते थे कि यह बुराईयामे भरी एक दुनियाका गहरा बाका बात बिद्यापक टाक कर सेंग।

६ विश्व सघ (The world Federation) निस्सन्देह लोकतन्त्रीय राष्ट्रीय राज्य (Democratic National State) के पक्ष में बहुतसे तर्क उपस्थित किये जा सकते हैं। जिस राज्य की प्राकृतिक सीमाएँ निश्चित हों तथा जहाँ की जनता में एकता हो वहाँके लोगोंका अपना शासन स्वयं करने तथा एक सम्प्रभु राज्य स्थापित करने का अवसर मिलना चाहिए। अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सद्भावना बनाये रखनेके लिए यह आवश्यक है कि हम प्रकारके स्वायत्त (self-governing) और आत्मनिर्णय (self-determination) के अधिकारोंमें पूर्ण सम्मिलित स्थापना का जाय। परन्तु गत दशकोंके इतिहासमें यह पता चलता है कि हम नीतियाँ परिणाम अवश्यम्भावी रूपसे प्रतिस्पर्धा प्रतियोगिता और कभी-कभी युद्ध भी होता है। इन औपनिर्णयिक साम्राज्यों में उस भौतिक आधार और जातीय एकताका प्रायः समाप्त कर दिया है जिन पर कि राष्ट्रीय राज्य आधारित होते हैं। राष्ट्रीयता के विचारों और राष्ट्रीय सम्प्रभुताकी सर्वांगताको हटाने में विज्ञानका शोका आविष्कारों यात्रा की सुविधाओं परस्पर मेल-जोल यातायात विचारोंका आदान-प्रदान तथा विज्ञान अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय और बढ़ी-बढ़ी समस्यायाने बहुत महायत्नाएँ की हैं। इन सबमें तो समारंभों बहुत छाटा बना दिया है और ये एक प्रकारके विव्यमधकी स्थापना की ओर इंगित करते हैं। यह तो भविष्य ही बता सकता है कि हम विव्यमध का क्या स्वरूप होगा। किसी न किसी रूपमें एक विश्व सरकार अवश्यम्भावी जान पड़ती है। विश्व मधक मान्य समधक ज० नाम्नी का विश्वास है कि परल मामला का छाटकर दोप बासा के लिए समारंभ सभी देशोंके त्रिण सामान्य नियमों की अन्तर्गत धरावर चढ़ती जा रहा है। उनका मत है कि अन्तर्राष्ट्रीय मामलोंमें राज्य की सम्प्रभुता धार धीरे-धीरे खत्म जानी जा रही है क्योंकि अब उसकी उपयोगिता समाप्त हो चुकी है। राजन्य व्यक्ति को साम्राज्यवादी धारणाएँ नहीं धरने मधवादी की सम्प्रभुता की आवश्यकता है।

क्लरेंस ए० स्ट्रीट (Clarence A. Streit) ने अपनी पुस्तक 'यूनिफ़न नाउ (Unite Now)' में वर्तमान लोकतन्त्रीय शासन की सघीय एकताको कल्पना की है। उनका तर्क यह है कि राष्ट्र सघ (League of Nations) की विफलताका कारण यह था कि वह सघ सरकारका सघ था जनताका नहीं। निरस्तुन सत्ता ना आधुनिक परिस्थितियोंमें विस्तृत अनुपपन्न मानने हुए वह सघीय सगरी एक विश्व सरकार का मोह करते हैं। यह सघा सगठन अपन सन्स्य राष्ट्रोंके सभी बाहरी सम्बंधोंका नियमन करेगा। सब परलू मामल सन्स्य राष्ट्रोंके गुण रहेंगे। सगारंभ सर-साक सघीय सग भा सगम शासित हो सगेंगे पर उह अपनको नाकर्तव्य पक्ष धारित करना होगा और सबके साथ शासित करने रहनेका इच्छा प्रकट करेगी होगी। इस विव्यमधमें सामान्य नागरिकता सामान्य मुद्रा सामान्य डाक-स्यवस्था सामान्य आदान-निदान पर और सुरक्षा का सामान्य प्रबंध होगा। सन्स्य राष्ट्रोंके उपनिर्णयों का प्रबंध नयी सघ सरकार द्वारा उद्घोषित करेगी कि उन्ने अन्तर्गत अन्तर्गत स्वायत्त

समय बना दिया जाय। इस योजनाकी सामान्य रूपरेखाका समपन लायानस कर्टिस (Lionel Curtis) तथा इर्नस्ट डे क्लूड अ य विचाररूपाने किया है। इस योजना का कार्यान्वित करनेके उपाय साचनक लिए और समारके प्रभावशाली राजनीतिन के सम्मुख उस गराक लिए इन लागाने अपना एक मध नी बना लिया है।

समारके अ य भाग लावतनीय ग्राके इस बि'व सप्रको पवित्रताका गग रचन वालोंका मध रहेंगे क्याकि इस गन्के कई देग जातीय भावनाआमे भर एए अग्रामक और साम्राज्यवाणी है। दो धकिनपाके मधयंका मौजूदा हागतम पविचमक गानतय घानी राज्या का सय हास्यप्रद भावूम पडता है। फिर भी इन गेगान नाग (N A T O) की स्थापना कर सी है जिनकी उपयोगिताकी परीक्षा अभी तक नई हा पायी है। यह भावा विदवममका सनिक-सूत्रगापी (military fore runner) है परन्तु आजक अमो-यागिन समारम और स्पुलनिक (Spulnik) रॉकेट तथा गाइडड मिमिन्स (guided missiles) क यगम यह एक अमगन बान भावूम घानी है।

राज्यके विकासकी सामान्य रूप रेखा

राज्यके विगानके अध्मपतमे गन्त के अनुसार निम्नलिखित पाच निष्कय नियरत है (२४ ६५ ६७)

(१) अ य सगटनाकी तरह राज्यका विकास नी साधारणमे जटिनकी आर हुआ है। पहनकी अगता अत्र सरकार अधिकाधिक जटिन और पचीना हा गया है। इनक साथ ही सरकारके विभिन्न अगम गचना बडी है और व एक दूमर पर अधिक आगिन एन लग हैं। सरकारके विभिन्न अग विभिन्न कार्य सम्पत्त करत है पर उनक पीछ एक मौलिक एकता है। राज्यकी सभा जा पहन अर्नि धन और अनियमित थी अत्र अधिक निरिचन और नियमित हा गयी है। पगत निररुग और स्वे-छाघारी सामनकी सम्भावनाए वरावर पन्ना जा रही हैं।

(२) राज्यके विकासका अ य यह हुआ है कि राजनीतिक यनना और उन्मयूण त्रियागीनताका विकास हुआ है। प्रथम राज्यका तम मनुष्य द्वारा जानबूझकर त्रिय गग पायी ग नग हुआ था बलिन उसकी उत्पत्ति प्राकृतिष कारणमे हुई थी। बुकि मनुष्य एक सामाजिय शशी है अत किमा एमी गगन सताका सगटन उसके लिए स्वाभाविक था जा समाजका एक सूत्रम अ य रग मक। पर ज्या गया राज्यका विकास जाना गया और मनुष्य अधिकाधिक बुडिमान जाना गया त्या-त्या उगम यह याग्यता आती गयी कि बहु राज्यक अति-वक कारण का मात्र निवाच और राज्याम अपन आगोंक अनुकूल गुपारकर। राज्यका गगाका आपार अधिक यक्ति-अगत और स्थायी हा गया। अनयाम राजनीतिन यनना के प्रनारम साकतयका निर्माण हुआ।

(३) साधारणतया राज्यके विकासके पतस्वरूप एक राज्यके अधीन क्षत्रयम का

विस्तार हुआ और अधिक जन-समुदाय उस राज्यके अधीन हा गया। आज जिन बातों में बड़-बड़ राज्योंको सम्भव बनाया है उनमेंसे कुछ ये हैं परिवहन (transport) और संचार (communications) के सुलभ और शीघ्रगामी साधन अमूलपूर्व आर्थिक उन्नति स्वायत्त शासन का विकास तथा विधि और व्यवस्थाके प्रति आधुनिक नागरिककी बढ़ती हुई निष्ठा।

(४) राज्यके विनाशसे बड़ा-बड़ा राज्यकी मता कम हो गया और बही-कही यह सत्ता उसी मात्राम बड़ भी गयी। गुरुम राज्य और धर्मका विकास साथ-साथ हुआ पर आज सभी सम्य दशोम धर्म और राज्य एक दूसरेसे अलग हैं यद्यपि नाज़ी जर्मनीमें धर्म राज्यका ही एक विभाग हो गया था। यह धारणा ख़ोर पकड़ती जा रही है कि चूँकि धर्म और नैतिकता मुख्यतः मनुष्यके आन्तरिक जीवनमें सम्बन्ध रखते हैं इसलिए उन पर राज्यका भीषा नियंत्रण जहाँ तक हा सके कम से कम रहे। फिर भी उसके साथ ही साथ मनुष्यके जीवनको धार्मिक और नैतिक बनानेके लिए राज्य जा कुछ भी कर सके उस करना चाहिए। इस प्रकार व्यक्तिका निजी जीवन राज्यके नियंत्रणमें अधिकाधिक मुक्त होता जा रहा है। आमतौर पर यह माना जाने लगा है कि राज्यका व्यक्तिके पारिवारिक जीवन भांजन केशमूपा आदिकी रुचि अरुचिमें तब तक हस्तक्षेप नहूा करना चाहिए जब तक कि ये चीज़ें समाजकी व्यवस्था और सुरक्षाके प्रतिबल न हों।

दूसरी ओर यह मोग निरन्तर बढ़ती जा रही है कि राज्यका सामाजिक कल्याण के उस धात्रम अधिकाधिक हस्तक्षेप करना चाहिए जहाँ व्यक्ति या तो अपना कल्याण ख़ुद नही कर सके या नही करना चाहते। उन प्रकार सभी आधुनिक राज्याम गिला मनाई अपाहित्रोपी देखरेख अपराधियोंको दण्ड देना और अपराधानो रोकना आदि राज्यके उचित काम समझ जाने हैं। आजकल मोग यह पग बढ़ते हैं कि राज्यका काम-धन्दा उस समय तक बढ़ता जाय जब तक कि राज्यके कामोंको जनताका पूरा-पूरा समर्थन मिलता जाय और राज्यकी कायपासिका मनमाने ढंगसे काम न करे।

(५) इस युगकी सबसे महत्वपूर्ण देन यह है कि राज्यकी सम्प्रभुता और व्यक्ति की स्वाधीनताके बीच अधिकाधिक मात्राम समझौता हा गया है पर आधुनिक निरंकुश राज्य (totalitarian states) इस के अपवाद हैं। आदिम मनुष्यका विधि और सत्ताना महत्व समझानेके लिए परम्पराओंका बठोर पालन और निरंकुश साधन ज़रूरी थे पर इस उद्देश्यके पूरा होने हो यही बानें व्यक्तिकी स्वाधीनता और राज्यकी एवनाम बापन बन गया। पूर्वके साम्राज्यामि उद्देश्य पूरा हा जानेसे बाद भी निरंकुश शासन कायम रहा। मूलानके मगर राज्याने व्यक्तिगत स्वाधीनताका विकास ता किया पर एकता प्राप्त न कर सके। रोमम संघटन और व्यवस्था तो कायम कर ली गयी परन्तु स्वतंत्रताका सीमित कर दिया गया। व्यक्तिगत स्वतंत्रता और राज्य सम्प्रभुता के बीच सामंजस्य स्थापित करनेका जिम्मा अन्तम ट्पटन

जातिके लोगोम लिया। इसे पूरा करनेके लिए उन्होंने आधुनिक लोकतन्त्रवाणी राष्ट्रीय राज्यकी स्थापनाकी है। विस्तृत भू प्रदेशमि लोकतन्त्रकी स्थापनाके लिए स्थानीय स्वायत्त और प्रतिनिधित्वक सिद्धान्तोंका मिलाकर एक एमा संगठन बनाया गया जो व्यक्तिकी स्वतन्त्रताको नष्ट किये बिना सामाजिक कार्योंक एकरता स्थापित कर सकता। भविष्यकी समस्या यह है कि बलती हुई परिस्थितियाम व्यक्तिकी स्वतन्त्रता और राजसत्ताके बीच सन्तुलन कैठ कायम रखा जाय। आधुनिक युगम कोई भी दो राज्य इस प्रश्न पर एकमत नहा है कि इस सन्तुलनका उचित रूप क्या हो आर इस कसे प्राप्त किया जाय।

SELECT READINGS

- DEALEY J A — *The Development of the State*—Ch II
 FOWLER W W — *The City-States of the Greeks and Romans* —
 Chs IV VI
 GETTELL, R G — *Introduction to Political Science*—Ch VI
 GETTELL R G — *Readings in Political Science*—Ch. VI
 JENKS E. — *History of Politics*—Chs VIII XII
 JENKS E. — *Law and Politics in the Middle Ages*
 MACIVER R M — *The Modern State*—Chs I IV
 SIDGWICK H — *The Development of European Polity*
 STEPHEN C A — *Union Now*

हॉब्स, लॉक और रूसो का सामाजिक सविदा सिद्धान्त

(The Social Contract Theory of Hobbes
Locke and Rousseau)

राजनीति शास्त्रका प्रारम्भिक ज्ञान रखनवान भी जानत है कि हॉब्स (१५८८-१६७९) लॉक (१६३२-१७८४) और रूसो (१७१२-१७७८) के नाम सामाजिक सविदा सिद्धान्तके साथ अभिन्न रूपमें सम्बन्धित हैं। इंग्लैण्डमें हॉब्स तथा लॉक ने और फ्रांसमें रूसो ने इस सिद्धान्तको अन्तिम रूप दिया। सामाजिक सविदा सिद्धान्त की महत्ताका समझनके लिए हम इन लेखकोंके विचारोंका सशुद्ध विवेचन करेंगे।

(क) प्राकृतिक अवस्था और प्राकृतिक विधि (The State of Nature and The Law of Nature)

हॉब्स हॉब्स ने प्राकृतिक अवस्थाका बड़ा दयनीय चित्रण किया है। सचिन् रूसो ने अपने निबन्ध 'जसमानता' (Inequality) में प्राकृतिक अवस्थाका आनन्दमयी बतयाया है यद्यपि वास्तव में अपने प्रथम 'सामाजिक सविदा' (Social Contract) में इस विचारमें सगाधन कर दिया। लॉक ने हॉब्स और रूसो के विचारोंका मान अपनाया है। सारांशमें हॉब्स प्राकृतिक अवस्थाका अगहनीय साँच अशुभविधाजनक और रूसो सुखी और शान्तिमय मानते हैं। हॉब्स के विचारमें प्राकृतिक अवस्थामें मनुष्य सगातार मध्य करता रहता है क्योंकि मनुष्य स्वभावमें स्वार्थी है। उनके अनन्तर मनुष्यका जीवन लम्बा, दृष्टि मन्त्रा वचर और अशुभ (solitary, poor, nasty, brutish and short) है। प्रथम मनुष्य दूसरोंका दुश्मन है (३५)। मनुष्य गुप्त पाठना है और मुख्यतः प्राकृतिक विधि वही दूसरों पर अधिकार जमाना चाहता है। सचिन् वही दूसरों पर अपना अधिकार नहीं जमा पाता क्योंकि हॉब्स के अनुसार प्राकृतिक

^१ क्रानेनबर्ग (Kranenburg) के पश्चिम 'हॉब्स' मर्यादाकार मनुष्यकी सनना में भय ही सबसे अधिक सन्निपाती है और इसलिए भयके कारण ही मनुष्य राज्य और सरकारकी सृष्टि करता है (४५)।

अवस्थाके मभा मनुष्य शारीरिक और मानसिक शक्तिम करव उराव बराबर जान है। माग एक दूसरसे करन। इस भयक कारण हमारा युद्ध का जलन बना रहता है। इसका मतलब यह नया कि नाग हर समय आपसम महन करन है बरन इसका अर्थ यह है कि सधपकी प्रवृत्ति हमारा रहती है। एसा अवस्थाम उद्यागक त्रिण कार्ग गजाता नहा है। जिस भाग सका मारा जा बुद्ध धीन सजा धाना यही उस समय का नियम रह जाना ह। एम कार्योंकी राक्षधाम करनक त्रिण कार्ग विधि नहा हाना। हाँथ्य यह अनुमान करनक शायी नहा है कि मनुष्य इस स्थितिस नी आरम्भ करव आगे बढा है। वर ना कवा यह सिन्धाना चाहन है कि किमा जगम भी यानि वरुन समय मर काव ध्यवस्थिन मरवाग न रह ता यह स्थिति पना ना सकती है।

सामाजिक सविज्ञान सिद्धान्तक लक्षकाका अनुमान है कि प्राकृतिक अवस्थाम प्राकृतिक विधिया था। पर उन विधिया का आधार क्या था इस बारेम यह एकमत नहा है। हाथ्य प्राकृतिक विधिया का अनुस्ता या दूरदगिना की विधिया मानत है जबकि साक का रायम प्राकृतिक विधिया मनुष्यकी आन्तरिक नतिकताका विधिया है। हाँथ्य ता साफ-साज कहत है कि मनुष्यका प्राकृतिक शक्ति ना उसके प्राकृतिक अधिकार हैं। उनका कहना है कि प्राकृतिक अवस्थाम न कोई नतिकता हो सकती है और न उत्तरदायित्वका विचार। विधि और सरकारकी स्थापनाक वाग ही यह सम्भव है। जब तक कार्ग विधि नहा है तब तक सभी नाम एक समान अर्थ और उचिन हैं। प्राकृतिक अधिकार यही है कि हर मनुष्यका अपनी जीवन रक्षाकी पूरा स्वतंत्रता है। प्रकृतिकी पहली विधि यह है कि हर मनुष्यको शान्तिमे स्थापनाका प्रयत्न करना चाहिए। दुसरी विधि यह है कि मनुष्यका दूसराके साथ मिलकर अपने प्राकृतिक अधिकारोंका धाननके त्रिण तैयार रहना चाहिए। तीसरी विधि यह है कि मनुष्यका अपन करार पूरे करने चाहिए। चौथी और अन्तिम विधि यह है कि मनुष्यका कृतनता प्रकट करनी चाहिए अपान भलाईक वरन भलाई करनी चाहिए। ह्यावल (Hallowell) का कहना है कि हाथ्य की पद्धतिम कतम्य और स्वाध एक हा गप है।

साँच प्राकृतिक अवस्था और प्राकृतिक विधियाके बारेम नाक के विचार विरुद भिन्न हैं। वर प्राकृतिक अवस्थाका पद्धकी अवस्था नहा मानता। वह अवस्था शान्ति सद्भावना पारस्परिक महायता और सुरक्षाकी अवस्था है। वह स्वतंत्रता (liberty) की अवस्था है स्वच्छन्दताकी नहा। इन अवस्थाम अधिकार माग प्राकृतिक विधिया अपान् आन्तरिक नैतिकताक नियम की मानत हैं। परन्तु कृद हनी माग भी हान है जा दूसराक त्रिण अनुविधाए रंग करते हैं। पन्त शान्ति प्रिय सोगाको मद्रकुर हापर विधि का अपन हापामे बना गइता है और यह उम गापागण मनुष्यको हमसा समता है जा अपने धरम पूरी तरह स्वतंत्र रहना चाहता है। इसक अतिरिक्त माग अपन ही मामरम मही राय नहा शायम कर पान। इस प्रकार प्राकृतिक अवस्थाकी वहा एक बुराई है कि उसम विधि और रायकी कार्ग

सबमाय पड़ति नहीं है।^१ इन कमियांको दूर करनेके लिए लागू प्राकृतिक अवस्थाका छोड़कर सविदाके द्वारा नागरिक समाजका निर्माण करते हैं। लॉक का यह सिद्धान्त हॉम्स के सिद्धान्तसे कहीं अधिक अवास्तविक है।

रूसो (Rousseau) रूसो ने अपनी पुस्तक 'डिस्कोर्स ऑन इनिक्वैलिटी' (Discourse on Inequality) में प्राकृतिक मनुष्यको एक 'नोबल बर्बर (noble savage)' के रूपमें चित्रित किया है। प्राकृतिक अवस्थामें लोग साधारणतया आत्मनिर्भर तथा सन्तुष्ट थे। उनका जीवन ग्रामीण जीवन की भांति सुखी तथा सरल होता था। सम्पत्ताके उत्पत्तिके साथ ही असमानता भी फैलती है। कला तथा विज्ञानका विकास होता है तथा निजी सम्पत्तिके आरम्भ होता है। श्रमका विभाजन भी शुरू होता है। इन सब बातोंके कारण नागरिक समाजकी स्थापना जरूरी हो जाती है। इस प्रकार राज्य एक बुराई है किन्तु मनुष्यकी असमानताके कारण राज्य अनिवार्य हो जाता है। रूसो ने अपनी पुस्तक 'सोशल कॉन्ट्रैक्ट' (Social Contract) में राज्य सम्बन्धी अपने विचारोंमें सन्तुष्ट कर यह स्वीकार किया है कि नागरिक राज्यमें लाभ प्राकृतिक अवस्थाके लोभसे कहीं अधिक है। उन्हींके मतमें 'सामाजिक सविदासे मनुष्य अपनी प्राकृतिक स्वच्छन्दताको और अपनी पसन्दकी सारी वस्तुओंको अपने बन्धन में कर लेना असंभव अधिकारको खा देता है। इसके बदले उसे नागरिक स्वतन्त्रता मिलती है और अपनी सम्पत्ति पर अधिकार मिलता है। हम प्राकृतिक स्वतन्त्रता और नागरिक स्वतन्त्रताका अन्तर तथा फर्क द्वारा प्राप्त वस्तु और सम्पत्तिमें फर्क समझ लेना चाहिए ताकि मनुष्यको नुकसान न हो। व्यक्तिकी अपनी शक्तिकी सीमाके अभावमें प्राकृतिक स्वतन्त्रताकी कोई सीमा नहीं होती। लेकिन नागरिक स्वतन्त्रता लोकसम्मति (general will) द्वारा सीमित होती है। सम्पत्ति (possessions) का आधार किसी वस्तुका अपनी ताकतसे हथिया लेना है। सम्पत्ति (property) का आधार एक निश्चिन्त स्वत्व (अधिकार) होता है जिसे सब स्वीकार करते हैं (६७ खं० १ अ० १३)।

(ख) सविदाका स्वरूप (Nature of the Contract)

हॉम्स हॉम्स एक सविदाका हाना बताते हैं जिसे प्रारम्भिक या सामाजिक सविदा कहते हैं। लोक की सम्पत्तिमें दा सविदाएँ हानी हैं। एक सामाजिक और दूसरी शासकीय (governmental) रूसो की रायमें भी सविदा एक ही हानी है। हॉम्स जब सविदाकी चर्चा करते हैं तो हमें याद दिलाना नहीं करना कि सविदा

^१ लॉक के अनुसार प्राकृतिक अवस्थाकी तीन कमियां यह हैं

(१) एक व्यवस्थित निश्चिन्त और प्रतिष्ठित विधान

(२) एक निश्चिन्त और निष्पक्ष न्यायाधीश

(३) सही दण्डका कार्यान्वयन और उसका समर्थन करनेवाला शक्ति।

कार्य सरकार बननी है या नही। वह सविशाका बहुत कुछ एक इतिहासीय कल्पना मानत हैं पर यह कल्पना कवन इस मध्यकी आर मकेत करनका दग मान है कि सरकारका आधार बेबन गकिन ही नहा है। इसका आधार बहुत कुछ जनताकी इच्छा या मम्मति है। इसके विपरीत याक सविशाका एक इतिहासीय धरना मानत हैं उनका विचार है कि दाम्त्वमे लाग एक समय किमी स्थान पर एकविन हुए य और आपमम परार करक उहोने सरकारकी स्थापना की।

हॉल्स का विचार है कि यह सविशा प्राकृतिक अवस्थाका पार करनवान मनुष्या के बीच हुई थी। यह सविशा जनता और शासकके बीच नहा हुई थी बल्कि यह सविशा लागने म्य आपमम सामक निरुवन करनके लिए की थी। यह परार कुछ इस प्रकार हुआ—हर व्यक्ति हर दूसरे व्यक्तिम कहता है कि अपन ऊपर शासन करनका अपना अधिकार मैं अमुक व्यक्ति या अमुक समितिका सौपना हू और उम अपन ऊपर शासन करनका अधिकार देना हू बगैरे कि तुम भी अपना अधिकार उस सौपा और उमे अपन ऊपर शासन करनका अधिकार दा (३५ ख० २ अ० १७)।

व्यक्ति अपन सारेके सारे प्राकृतिक अधिकार शासकका सौप देता है। भागे बनकर हॉल्स ने अपन इस विचारम कुछ परिवर्तन किये हैं। शासक स्वय सविशाम भाग नहा मना वह ना सविशाका परिणाम-भाज है। वह निरनुच है। एक बार उम सक्ति और अधिकार द गिय जानेके बाद जनता उसस इहें आपम नहा स मकती इसलिये जनताको बिगाह करनका अधिकार नही रहना। नागरिक समाजका निर्माण करनेवाली सविशा सरकारका भी स्थापना करती है ब्याकि हॉल्स क मनानुसार राज्य और सरकारके बीच कोई अन्तर नहा है। कवन एक सविदा स्वीकार करनका परिणाम यह है कि जब कोई सरकार बलट दी जाती है तब राज्य भी नष्ट हा जाता है और समाजम अराजकता फैल जाती है। यह धारणा यक्तिमगन नहा मासूम दना। इस भूनका सुधार सौंठ न दो सविशाओंकी पल्पना करक किया है परन्तु यह दाना सविशा प्रत्यस न हाकर अप्रत्यस हैं।

सौंठ सौंठ न जिन दो सविशाओंका उल्लेख किया है उनमय पहली सविदा द्वारा नागरिक समाजकी स दूमरी द्वारा सरकारकी स्थापना हाती है अर्थात् पहली सविशा जनताके बीच हुई थी और दूसरी एक धार समस्त जनता तथा दूमरी आर शासकके बीच हुई। हॉल्स के धयनानुसार, सरकारकी स्थापनाक बाद ही नागरिक समाजकी स्थापना हुई। परन्तु सौंठ क अनुसार सरकारकी स्थापना बादम हुई और यदि सरकार भग हा जाय ता उमका यह अर्थ नहा कि नागरिक समाज भी छिन्न-भिन्न हा जायगा। साधारणतया एक सरकारके भग होनेका अर्थ यही है कि समाजको उसव स्थान पर दूमरी सरकार बनानी पडवी। सविशा क मनानुसार नागरिक अपन सम्पूर्ण प्राकृतिक अधिकारका समर्पण नहा करत। स अपने प्राकृतिक अधिकारामे स कुछका एक सामान्य मलाको इसलिये द दन है जिनमे कि उनके गद अधिकार। पर सौंठ न भाय। यदि शासक इन अधिकारकी रणा नहा कर पाता है ता जनताका अधिकार है

कि उसका हटाकर दूसरी सरकार बना ल। इस तरह लोक अपने सिद्धान्तको एक सीमित राजनयका आधार बनाता है क्योंकि उसका उद्देश्य १९८८ ई० में हुई रक्तहीन राज्यक्रान्ति (Bloodless Revolution) का समयन करना था। इस प्रकार लोक भी दुष्टिम यह सविन्य एक सीमित सौदा है। सम्पत्तिके अध्यायमें वह कहते हैं कि सरकारको उतना ही राजस्व श्रम्यादि लेना चाहिए जितना उसके नाय संवादनके लिए आवश्यक है। उससे अधिक लेना सरकारका सब तक अधिकार नहीं है जब तक कि सम्पत्तिका मानिक अपनी स्वीकृति न दे द। सरकारके सम्बन्धमें यह धारणा विज्ञान अवास्तविक है वधिय शक्ति ही अन्तिम शक्ति नहीं है।

रूसो रूसी के अनुसार यह शक्ति नागरिकोंके धर्मिक स्वल्प तथा उनके सामूहिक स्वल्पके बीच हुई। अर्थात् क ख ग घ आदि अपने प्राकृतिक अधिकारा (natural rights) का क+ख+ग+घ के सामूहिक स्वरूपका सौंप देने है। इस प्रकार कोई भी पाटम नहा रहता वरन् प्रत्येकको लाभ ही हाता है क्योंकि जब उनमें से किसी पर आक्रमण हाता है तो सारा समाज उसकी रक्षा करता है। राज्यका प्रत्येक नागरिक राज्यकी सम्प्रभुताके एक अंगका स्वामी हाता है। सबके लिए यह अंग बराबर होता है और उसको छीना नहा जा सकता। रूसो कहता है हममें से हर एक अपने शरीर और अपनी शक्तिको लोकसम्पत्तिकी श्रेष्ठमालम समाजको समर्पित कर देता है और अपने सामूहिक स्वल्पमें हम हर सदस्यका समाजक अविभाज्य अंगके रूपमें मानते हैं। प्रत्येक मनुष्य अपनेका अर्थ सब ब्यक्तियोंके हाथोंमें समर्पित ता कर देता है परन्तु सब पूछा जाय ता वह पहनेकी तरह ही स्वतंत्र रहता है। रूसी हम सविन्यका सच्ची इतिहासीय पन्ना नहा मानते हैं।

(ग) सम्प्रभुता (Sovereignty)

हॉम्स हॉम्स का विचार है कि प्राकृतिक अवस्थाम रहनेवाले लोग असंगठित और परस्पर मुट्टे रत ब्यक्तियोंके झुण्ड-भाज य। इसलिये हॉम्सके सामने यह एक समस्या थी कि ब्यक्तिपापा एक एसा समुदाय कैसे बन सकता है जिसमें सबकी एक सम्मति हो। इसी समस्याका हल वह सामाजिक सविन्य में पाते हैं जिसमें एक राजाका नियोजन हाता है जो एक ही सम्मति (will) के रूपमें समाजका शासन करता है। सविन्यकी शक्तके अनुसार यह एक सम्मति ही समस्त सागा की ब्यक्तिगत सम्मतिपापा का स्थान लेता है और उनका प्रतिनिधिय करती है।

शासन जनताका प्रतिनिधिय कैसे करता है—इस प्रश्नके उत्तरमें हॉम्स ने यदाय ब्यक्ति और कल्पित ब्यक्तिके वधिय भेद (legal distinction) की आरम्भक किया है। एक एगी सामूहिक सस्याको जिसके पास अधिकार और शक्ति है हम कल्पित ब्यक्ति कहते हैं। यह सस्या अपने प्रतिनिधि द्वारा ही कार्य करती है। हॉम्स हम प्रतिनिधि को कल्पित ब्यक्ति मानते हैं। हॉम्स का कहना है कि यदि विभिन्न

सम्मतियों मिलकर एक ही व्यक्ति को नियुक्त करें (हॉब्स के जनमत लागू नहीं करते हैं) ता वह बहुत-सी सम्मतियों मिलकर एक हो जाती है। उनका प्रतिनिधि उनकी अनन्त सम्मतियों की धार में बोलना व कार्य करता है। इस हेतुसिद्धतम इस प्रतिनिधि का एक कल्पित व्यक्तित्व ही जाना है। इस दंगाम प्रत्येक व्यक्ति का विचार यो होगा — मरा प्रतिनिधि जा कुछ करता है वह मेरे द्वारा किये गये व समान है और जो कुछ वह करता है उसका उत्तरदायित्व मेरे ऊपर है। सारी जिम्मेदारी मुझे स्वाकार करनी चाहिए। इस प्रकार नामक द्वारा किया गया काम जनता ही करती है और इसलिए शासक अपने प्रतिनिधि स्वरूप में अलग होकर कुछ नहीं कर सकता। हॉब्स का कहना है कि यही एकमात्र उपाय है जिससे समाज में एकता रह सकती है। एकता सामान्य प्रतिनिधि ही निहित रहती है न कि व्यक्तियों में। इस प्रकार हम कहते हैं कि हाब्स के सिद्धान्त में अनेक सम्मतियों का स्थान पर एक सम्मति का प्रतिस्थापन (substitution) होता है परन्तु रूसो के अनुसार अनेक सम्मतियों एक सामान्य सम्मति (general will) में रूपान्तरित (transform) और हस्तान्तरित (transmutate) हो जाती है।

ध्यान देने की मुख्य बात यह है कि सत्ता चाह जिसके हाथ में रहे वह पूर्ण (absolute) अविभाज्य (indivisible) और अत्येय (inalienable) होती है। सत्ता का निर्माण ही समाज बनता है। सम्प्रभु ही राज्य का नीतिक तत्व निहित है। हॉब्स का कहना है कि शासक एक कुछ या अनेक हो सकते हैं। वह स्वयं एक ही शासक होना अधिक उपयुक्त समझते हैं क्योंकि उनके अनुसार राजतंत्र के निम्न लिखित लाभ होते हैं

- (क) राजा का व्यक्तिगत स्वार्थ जनता के हित के साथ घुलमिलकर एक रूप हो जाता है।
- (ख) अन्य प्रकार की सरकारों की अपेक्षा राजतंत्र अधिक सुविधापूर्वक कार्य कर सकता है और
- (ग) राजा के अपने तौर-तरीकों में व्यापक रहने की अधिक सम्भावना है।

निम्नाह हॉब्स के इन तर्कों में कुछ बच है। हॉब्स का वास्तविक उद्देश्य नहीं निरंकुशता का सम्पन्न करना था। लेकिन ऐसा करने में उन्हें अपना ममयक निरंकुश राजतंत्र दूसरे समयकों में कोई सहायता नहीं मिली क्योंकि वे लोग चाहते थे कि राजा की अधिकारों में बल पर घातक करे। इन लोगों का तर्क यह था कि यदि राजा की अधिकारों का घातक जनता की इच्छा ही है तो जिस अनजान राजा को सत्ता दी है वही जनता एक दूसरे सविधानों द्वारा कुछ या अनेक लोगों को सत्ता सौंप सकती है। राजतंत्र के विरोधियों ने भी हॉब्स से कोई सरोकार नहीं रखा क्योंकि वे भाग राजा की शक्ति का सीमित करना चाहते थे।

हॉब्स का कहना है कि शासक सर्वोच्च विधायक (supreme law maker) है। वह अपनी प्रजा के साथ कार्य सम्पादन नहीं कर सकता क्योंकि वह उनका प्रतिनिधि है।

वह नैतिक भूलें भन ही कर डाल पर अधिक (legal) अत्याय उसस हा ही नहीं सक्ता। वह अपने कामोके लिए केवल परमात्मा के ही प्रति उत्तरदायी है। हॉम्स का यह कथन उस सिद्धान्तमे बन्न मिनता-जुनता है जो कहता है कि राजा कोई गलती कर ही नहा सक्ता। राजा धर्मविधि निमत्ता हानके कारण विधि से उपर है। वह अपन का किसी भी प्रकारके बाधसे नही बाध सक्ता। यह सनाका सर्वोच्च मनापति होना है। समाज म कौन ग सिद्धान्त या धार्मिक विश्वास प्रचलित हा इसका भी वही निर्णायक है।

साँक सम्प्रभुता सम्बन्धी साँक का सिद्धान्त अत्यन्त अस्पष्ट है। एक आधुनिक सत्यक निखता है जिननी ही जयाग गहराईसे हम लोक क सिद्धान्तका मनन करते है उनना ही अधिन हम मालूम होता है कि साँक न सम्प्रभुताके विरुद्ध जयाग चाट की है और निरकुल राजतंत्रक दावके खिलाफ कम (२९)। सम्प्रभुताक सम्बन्धम परम्परागत दृष्टिकान यह है कि इस अविभाज्य और सर्वोपरि हाना चाहिए। हॉम्स आस्टिन और अथ लेखकाये भी यही विचार है। लकिन साँक का विचार इन सबके विचारोक विपरीत है। साँक सम्प्रभुताको न तो सर्वोपरि मानने है और न अविभाज्य। सम्प्रभुता एक ओर जनताम और दूसरी ओर शासकम बँटी हुई मानूम होनी है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है मूल सविन एक एसा करार है जिसके द्वारा प्राकृतिक अवस्था के स्थान पर नागरिक समाजकी स्थापना हुई। इस मूल करार के लिए समाजक प्रत्येक मन्स्य की स्वीकृति आवश्यक है चाहे वह प्रत्यक्ष रूपमे दी जाय वाह मौन रहकर। किसी देगम रहना राज्यका मौन स्वीकृति देना है। दूसरी मविदाके अनुसार शासकाकी सक्तिको भीमित किया जाता है। यदि वे अपने उत्तर दायिय और कर्तव्यको पूरा करनेमे असमर्थ हा तो वे हटाये भी जा सक्त है और उनके स्थान पर दूसरोको नियुक्त किया जा सक्ता है। इसके लिए समाजको किरसे प्राकृतिक अवस्थाम नही जाना पडेगा।

साँक के सम्प्रभुता सिद्धान्तका व्यावहारिक मतलब ता यह है कि सम्प्रभुता रहती तो जनता क पास है परन्तु उसका वास्तविक उपयोग सरकार द्वारा किया जाता है। उगाहरण स्वरूप 'इंग्लैण्डमे पार्लियामन्ट और मन्त्रान' (king and parliament) इसका उपयोग करते है। अथ सरकार अपन विरघाम या कर्तव्यका उत्लघन करनी है ता यह आवश्यक हा जाता है कि जनता सरकारमे अपनी सक्ति बापम ल ल। इस तरहस जनता निष्क्रिय साहीदारके समान है। जनता सरकारको सम्प्रभुताका उपयोग कुछ भीमात्रा तक करने दनी है। जनता उस समय तक कुछ नहीं बीननी जब तक सरकार जनता गारा निष रित सीमाआजा उत्लघन कर अपनी सक्तिका दुग्पयोग नही करनी। जब सरकार अपने अधिनाराका दुग्पयोग या अनिष्क्रमग करने लगती है तब प्रमुक्त जनता घनय हानर उस सरकारका हटाकर दूसरी सरकारकी स्थापना करनी है। यद्यपि सरकारका बन्न देने का अधिकार समाजक पाम हर समय रहता है परन्तु इस अधिकारका उपयोग करतका कोई मरघानिक मार्ग नहा है। इगी कारण

यह अधिकार किमी भी प्रकार की सरकारी अन्तर्गत एक विद्रोह या क्रांति का ही रूप सता है। साक का विचार है कि यदि क्रांति सारे समाज द्वारा मान्य है तो वह 'साधारण' है। किन्तु यह निश्चित करना मुश्किल है कि क्रांति क पीछे पूरा समाज है या नहा। जैसा कि टी० एच० सीन ने कहा है लोक अपने सिद्धान्त का अपन समयकी शक्ति अथवा शक्ति प्रगानाको सुधारनम नहीं मगाना चाहत है।

साक का सम्प्रभुता सिद्धान्तकी यह एक बहुत बड़ा मल है कि वह 'शासन' का शक्ति पर अधिक राक मगाती है। उदाहरणक लिए नाक कहत है कि विधायिका (legislature) अत्यायम आपणिया (extempore decrees) द्वारा राज्य नहा कर सकती। यथा अरुण यह हाता कि वह 'नहा कर सकनी क स्थान पर नगा करना चाहिए' कहते ब्योकि आमनौर पर माना जाता है कि अधिक 'शासन' व्यक्तिब आवन और संपत्ति हरणका निरकृण अधिकार है। परन्तु साक न 'नही कर सकती' का उन्माग किया है जिसस बहुत गडबडी पंग हा गयी है। यह एक गमी गलती है जिसका अधिकाराकी धापना पर प्रभाव पडता है। साक प्राकृतिक अधिकाराका समाजसे अलग मानत है।

रूडो जैसाकि निगा जा चहा है मविनाकी 'गर्वे' अनमार क म ग घ अपने प्राकृतिक अधिकाराको क + म + ग + घ की सामूहिक सत्ताको सौंप देत हैं। महा हमें जनप्रिय सम्प्रभुता और साकतश्रीय सरकारी आधारगिना मिनती है। प्रत्यक नागरिकका सम्प्रभुताम एक भाग हाता है और साप ही वह प्रजा भी है क्यकि 'न उस विधि का मानना पडता है जिम उमन म्बन सम्प्रभुके रूपम बनाया है। रूडो हाँम क इस विचारन मरुमन है कि सम्प्रभुता सम्पूर्ण अविन्द्य और अरुण है। किन्तु जहाँ हाँम न सम्प्रभुताको गलत स्थान पर अर्पातु राबाभ माना है वहा रूडो सम्प्रभुताका निवाम पूरे राजनीतिक समाजम मानत हैं। यद्यपि साक की राजसत्ता और सरकार के विमरुबो रूडो ग्रहण करते हैं किन्तु रूडो सरकारी उतनी अधिक शक्ति नहा देत जिनकी लोक दते हैं। रूडो के अनुसार सरकार दूमरुमि प्राप्त शक्ति है जो हमेगा सम्प्रभु जनता (sovereign people) की सदाक अधीन रहती है। साक क बिपरीत रूडो का सम्प्रभु हमसा कर्मजीन और जागरण रूडो है। व (सम्प्रभु) सरकारके अन्वयिक अत्याचार करनके परत ही सक्रिय हो जाता है।

लोकसम्मति का सिद्धान्त राजनीति शास्त्रको रूडो की मबो बनी दन है। 'सार सम्मति ही सम्प्रभुताका प्रकट स्वरूप (manifestation) है और यह सम्पूर्ण राज नातिक समाजमें निहित है।

{ लोकसम्मति सिद्धान्त का निरूपण इस अध्यायक अन्तम किया गया है। }

(घ) राज्य और सरकार क प्रकार (Type of State and Government)

राज्यके प्रकारके सम्बन्धम हाँम साक और रूडो के दृष्टिकरणमें मौलिक

विभिन्नता है। हॉग्स का सिद्धान्त निरंकुश राजतन्त्रका सॉक का सिद्धान्त सार्वभौमिक सरकार या सीमित राजतन्त्रका तथा रूसो का सिद्धान्त लोकप्रिय सरकार विनापक प्रत्यक्ष लोकतन्त्रका समर्थन करत हैं।

सरकारके सम्बन्धमें भी इन तीनों विचारकोंकी धारणाएँ मौलिक रूपसे भिन्न हैं। हॉग्स ने राज्य और सरकारके बीच कोई भेद नहीं किया है। उसके अनुसार वास्तविक (de facto) सरकार सदैव ही वैधिक (de jure) सरकार है। हॉग्स के विपरीत लॉक और रूसो राज्य व सरकारके बीच तथा वास्तविक और वैधिक सरकारके बीच भेद मानत हैं। जैसा कि कहा जा चुका है हॉग्स के अनुसार सरकार के भंग होनाका मतलब है राज्यका भंग होना और पुरानी अराजक अवस्थाम फिरसे पहुँच जाना। यह बिल्कुल गलत है। लॉक का मत है कि सम्प्रभु जनताको अपनी सरकार चुनन और असन्तोषजनक होन पर उसे बदल देनेका अधिकार है। सरकार एक न्यास (trust) और नैतिक उत्तरदायित्व है। रूसो के अनुसार सरकार जनताकी प्रति निधि या एक जीवित-यंत्र (living tool) है। वह किसी सविदाका परिणाम नहीं है। सरकारकी शक्ति सीमित तथा सम्प्रभु जनता द्वारा दी गयी होती है। इसकी कोई अपनी मौलिक शक्ति नहीं है। लोकसम्मति किसी भी समय उसको शक्तिहीन कर सकती है। सरकार के इन आश्रित स्वरूपका रूसो ने इस प्रकार बताया है कि समय-समय पर जनता दो प्रश्नोंका उत्तर देती है (६७ ख० ३ अ० १८)

(क) क्या हम वर्तमान ढंगकी सरकारको कायम रखना चाहते हैं ?

(ख) अगर हम ऐसा चाहते हैं तो क्या सरकारके रक्षक (constituent) ये ही लोग रहें जो इस समय हैं ?

जहाँ तक सरकारके अधिकारों और वर्तमानका प्रश्न है हॉग्स ने सरकारको निरंकुश अधिकार दिये हैं। यह सम्प्रभु भी है। लॉक ने सरकारका सीमित अधिकार ही दिये हैं क्योंकि उसके सविदा सिद्धान्तके अनुसार जनता अपन प्राकृतिक अधिकारों का उत्तरना ही भाग सरकारका देती है जितना नागरिक-समाजके लाभ प्राप्त करनेके लिए आवश्यक है। लॉक ने सरकारके दो अंगों—विधायिका तथा कार्यपालिका में भी भेद किया है जो हॉग्स ने नहीं किया। लॉक ने विधि निष्पाणका ही सरकार का सबसे महत्वपूर्ण काम माना है जबकि हॉग्स ने व्यवस्था और सुरक्षा को। लॉक का कथन है कि सरकारका व्यवस्था कायम रखनका काम ही साथ अच्छी तरह चालन भी करना चाहिए। शासकोंको प्रजाके कल्याण का ध्यान रखते हुए शासन करना चाहिए। यहाँ लॉक के विचार हॉग्स की अपेक्षा अधिक प्रगतिशील हैं।

रूसो के अनुसार सरकार कार्यपालिका मात्र है। विधि-निर्माण का काम सम्प्रभु जनताके हाथमें होना चाहिए। अपनी सम्प्रभु को सीमित किए बिना जनता अपनी विधि निर्माण की शक्ति नहीं छोड़ सकती। सम्मति ही विधि निर्माणका सारगर्भ है जो कि स्वभावतः किसी दूसरेका नहीं दी जा सकती और न कभी प्रतिनिधियोगी किया जा सकता है। इसीके आधार पर रूसो ने प्रतिनिधि सरकारकी बट

आपाचना की है और प्रत्यक्ष लोक-सन (direct democracy) के पथम गक्ति वाली ठक लिये है। वह एक ऐस लोकतणके पथम है जो यूनानके छोट नगर रायाम प्रचलित था। उहाके शरणि जिन कारणोंने सम्प्रभुता अविच्छद्य है उहा कारण से इसका प्रतिनिधित्व नहीं किया जा सकता। सम्प्रभुता लोकसम्मति ही निहित रहती है। लोकसम्मतिक प्रतिनिधित्व असम्भव है। तान सम्मति या ता वहा है या उसस भिन्न है तानके बीचकी बाल सम्भव नहा है। इमतिण जनताक प्रतिनिधि न ता जनताके प्रतिनिधि है और न हो सकते है (६७ ख० ३ अ० १८)।

अतः कृषो के अनुसार राजनीतिक संस्था ही सम्मतिक निवाम है और कायपालिका संस सम्मतिक कायाचित करती है। परन्तु इम भणको बन्त महन्ध पूर्ण नहीं समझा जा सकता क्योंकि ऐसा करने पर तो यह मानना पडगा कि कायपालिकाकी अपनी कोई सम्मति नहा है जो गलत है। कायपालिका एक पुलिसका निपाही नहीं है जा केवल आजापालन करती है। हर देशम कायपालिका को अपन विवेकसे काम करनेका अवसर दिया जाता है संस कारण कायपालिकाका लोकसम्मति म भी हिस्सा रहता है। दूसरी तरफ जनता कानून तो बनाती हा है साथम यह भी निष्पत्ती करती है कि कानून कैसे और किसके द्वारा लागू किये जायग। इम तरह अपनी सम्मतिक लागू करनम उसका भी हाथ हाता है। परिणामस्वरूप हम यह पता चलता है कि सम्मति और उसे कायाचित करनम जा भण हम कुडते है वह भण विस्तारम लागू नहीं किया जा सकता। विधादिका और कायपालिकाम भक्षी कल्पना करना अच्छा है परन्तु कायपालिकाको हम इतना महत्त्वहीन स्थान नहीं दे सकते जितना कृषो ने बतसाया है।

कृषो न सम्प्रभु जनताम जा विधायिका व कायपालिका (सरकार) का निपाण करती है दूसरी विनियमना यह बतलाती है कि विधायिकाको सामान्य बाता पर और कायपालिकाको विाप बाता पर ध्यान देना चाणि। इम दृष्टिकणका अपनाते पर जनक कठिनाणियाँ पैदा हो जाती हैं। वास्तवम सामान्य और विापक बाव नहीं भण करना कठिन है। यदि हम यह मान लें कि जो बात समूब समाजसे सम्बन्धित है वह सामान्य है तथा जो किगो व्यक्ति या बग विनियमे सम्बन्धित है वह विाप हाती है तो भी कठिनाई दूर नहा हानी। आपनिक राज्यम हर कानून एक विाप प्रकारका हाता है। साथम ही कानूनी बाव हा जिसका सम्बन्ध पूरेसमाजन एक-भा हा। संस कारण यदि हम विाप और सामान्य कानूनम रमा करा बनाये गय भणका मानन हैं तो हम कृषो के उग उहणका अपूरा रहन देने है जिसम उद्दान सम्प्रभुको सर्वोपरि बतानकी कल्पना की थी। सरकारको हम एक अधोनस्य भण्यक दबाय नियारमर रूपम सबसे महत्त्वपूर्ण मण्यक बना ल्या। इमके अनिश्चित सरकारका बनाना भी एक विाप काम ही है जिसे करनका जनताका कानूनी अधिकार नहा है। कृषो द्वारा इमिण भणका प्रयोग कवन द्वाण-द्वाण नगर रायाम ही किया जा सकता है।

(ड) ध्वितगत स्वतंत्रता और अधिकार सिद्धान्त (Individual Liberty and Theory of Rights)

हॉम्स अधिकारोंके घटानिक सिद्धान्तको मानते हैं और ताक प्राकृतिक अधिकारोंके सिद्धान्तको अपनाते हैं। एसो समाजकी सदस्यतासे अधिकारोंकी उत्पत्ति मानते हैं और इस प्रकार अधिकारोंके आदर्शवादी या ध्वितत्ववादी सिद्धान्त (personality theory) के लिए माग तैयार करते हैं।

हॉम्स के सिद्धान्तमें प्रजाकी वे सभी अधिकार प्राप्त हैं जो उसे विधि द्वारा मिलते हैं। जहा विधिक कोई प्रतिबंध नहा है वहा प्रजाके अपने प्राकृतिक अधिकार बन रहते हैं। इसका यह मतलब नही है कि जीवन और मृत्यु पर सम्प्रभु (sovereign) के अधिकारको छेद लिया जाता है। सम्प्रभु किसी भी समय हस्तगैप करके प्रजाकी स्वतंत्रताको सीमित कर सकता है। जहा विधिना नियंत्रण नही है वहा प्रजाको अधिकार प्राप्त हैं। हॉम्स के विचारमें सत्ता और स्वतंत्रता परस्पर विरधी हैं।

हॉम्स की रायमें सम्प्रभुके अधिकारोंकी कोई सीमा नहा है। यद्यपि कभी-कभी विधाय परिस्थितियोंमें ध्वित्व आशापासनकी सीमाएं हाती हैं। यह बात सविदा में ही निहित है क्यकि सम्प्रभुताकी स्थापना जीवनकी सुरक्षा व समृद्धि के लिए ही हुई थी।

(१) इसलिये यदि शासक ध्वित्वके जीवन पर हमला करना है तो आशा पालनका आचार ही समाप्त हा जाता है। यह एक विरधीभावकी स्थिति है। भल ही ध्वित्वका 'यायपूषक मौलकी सत्ता' दी गयी हो फिर भी अपनी जानकी रक्षा या प्रयत्न करना न्यायसंगत माना जायगा। जब किसी ध्वित्वके जीवन पर हा हमला किया जा रहा हा तो उसे यह मौलिक अधिकार है कि वह बच निकले। जब दूसरेके जीवन पर हमला हो रहा हो तब वह हस्तगैप तो कर सकता है पर हमले अधिक कुछ नहा कर सकता।

(२) कुछ परिस्थितियोंमें ध्वित्व सैनिकका काम करनेमें इन्कार कर सकता है—क्यकि सविदा उसके जीवनकी रक्षा करनेके लिए हुई थी।

(३) जब सम्प्रभु अपनी शक्ति कायम रखने और ध्वित्वकी रक्षा करनेमें मग्य नहा रह जाता है सविदा समाप्त हो जाती है। इसमें यत्ना शकता है कि हॉम्स का सिद्धान्त अकाट्य तर्कों पर आधारित है। इन कुछ असाधारण स्थितियोंका ध्यान कर शासकका अधिकार हमेशा निरकुण माना गया है।

हाँस सरकारको शासिताकी स्वाइति पर आधारित बनाते हैं। ध्वित्वके वं सब अधिकार प्राप्त हैं जा उनमें राज्यता नहा सीने है। राज्यका अस्तित्व मुख्य रूपमें जीवन और स्वतंत्रताकी रक्षा करना ही है। फिर भी हाँस न साधजनिक अधिकारों पर एतन अधिन प्रतिबंध लगा सिय हैं कि उनका अस्तित्व नहा व बगवद हो जाना है।

रूसो के सिद्धान्तके अनुसार व्यक्ति नागरिक राज्यमें उनका ही स्वतंत्र है (यदि उसमें क्या नहो) जितना कि वह प्राकृतिक अवस्थामें था क्योंकि वह अपने अधिकार किसी बाहरी व्यक्तिको नहो देता है। वह इन अधिकारोंको अपने आप का और उन दूसरे व्यक्तियोंको भीषण है जिनको मिलाकर राजनीतिक समाज बनता है। रूसो के बयानानुसार समस्या यह है कि एक ऐसा संस्था बनाया जाय जो समूचा सामान्य व्यक्तिपर हस्तक्षेप आवन और सम्पत्तिकी रक्षा करे और जिसमें हर मनुष्य दूसरोंके साथ मिलकर नो स्वयं अपना ही आकांक्षारी बना रह और साथ ही उनका ही स्वतंत्र बना रह जितना पहल था। इस समस्याका हल रूसो ने सामाजिक सविधान पाया है। इस सविधानके अनुसार 'हममें से प्रत्येक अपने शरीर और अपनी समूची शक्तिको नागरिक रूपमें आत्मसम्पत्तिके सर्वोच्च नियंत्रणके अधीन कर देना है और अपनी सामूहिक सत्तामें हम हर सदस्यका समस्त अधिकार अग मानते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रूसो के अनुसार मनुष्य नागरिक राज्यमें एक स्वतंत्र व्यक्ति है। जो कुछ भी प्रतिबंध हैं वे स्वयं उसी ने अपने ऊपर लगाए हैं। वह अपने ही द्वारा लागू की गयी विधिक मानना है और यह स्वतंत्रताका अपहरण नहो है। 'एमी विकीको मानना जिसे हमने स्वयं अपने ऊपर लागू किया है स्वतंत्रता ही है।

स्वतंत्रताके इस विचारकी हम एक ही आलोचना करना चाहते हैं। वह आलोचना यह है कि रूसो पूर्ण आत्मतंत्रता पूर्ण स्वतंत्रता मान सत है। हमारा अनुभव हम बताता है कि यह हमारा नहीं नहो है। रूसो बहूतके अत्याचारकी सम्भावनाको भूल जाते हैं जिनकी आकांक्षा आधुनिक ताकतवाले द्वारा मज एम० मिन् (J S Mill) ने पूरी तरह की है। उनकी यह धारणा कि जहाँ नागरिक सत्ति है वहाँ व्यक्ति स्वतंत्र होने के लिए मजबूर किया जा सकता है आसानी से बहूतके अत्याचारका पर्याय बन सकती है। आपुनिक सौजन्यमें ऐसे अनक उदाहरण हैं जहाँ नागरिक सत्तिके अभावमें भी बहूतके अत्याचार पर अत्याचार किया है। रूसो भी अधिक बोलान और बहूत अत्याचारके लोग भी भयभीत तथा अस्वस्थ बहूत पर अत्याचार करत है। इस आलोचनाके बावजूद हम यह बहूतके मताथ नहो है कि रूसो ने स्वतंत्रताकी सर्वोत्तम व्याख्या की है। उनकी व्याख्या राजनीतिक सत्तिके एक महत्वपूर्ण प्रत्यक्ष उदाहरण है। वह प्रत्यक्ष है सामाजिक शक्ति और व्यक्तिगत उदाहरणोंके आधार पर।

होमस, लॉक और रूसो के सिद्धान्तों में सत्य का अर्थ

(Truth in the Theories of Hobbes, Locke and Rousseau)

हममें सत्य न अपने पूरे सिद्धान्तों के निश्चय के मनुष्यके रूपमें

विकसित किया है। यदि उसके सिद्धान्तकी आधारभूत मान्यताओंको हम स्वीकार कर लेते हैं तो निष्कण्य अपने आप निरन्तर आते हैं। हाँ हम एक महान् विचारक थे। अधिक सम्प्रभुता (legal sovereignty) का सिद्धान्त राजनीति-शास्त्रको उनकी एक महत्त्वपूर्ण देन है। उनकी मूल कल्पना यही है और यह एक बहुत बड़ी भूल है कि उन्होंने कानूनी सम्प्रभुताकी पूर्ण राजनीतिक सम्प्रभुता (political sovereignty) में नहीं की। आधुनिक सखक राजनीतिक सम्प्रभुता या वास्तविक अधिकार राजसत्ता से श्रेष्ठ मानने हैं। हाँ हम न राज्यकी इच्छा और शासककी इच्छाका एक मानकर गलती की है। इस तर्किकरणके कारण ही उन्हें राज्य और सरकारके बीच भेद करने में कठिनाई हुई है। उन्होंने तो यहाँ तक कह डाला है कि शासककी मृत्युके बाद राज्य समाप्त हो जाता है।

हाँ हम के कथनानुसार सम्प्रभु प्रजाका प्रतिनिधि है। हम यह मान सकते हैं कि जो सरकार जनताकी आवश्यकताओंको पूरा करनेकी कोशिश करती है मौलिक रूपसे वह जनताकी प्रतिनिधि है। परन्तु सच तो यह है कि हाँ हम ने प्रतिनिधि राज्य का उसने साधारण अर्थमें प्रयुक्त नहीं किया है। यह जल्द ही नहीं है कि सधाधिक प्रतिनिधि सम्प्रभु जनताका सही प्रतिनिधित्व करे अर्थात् उनके कल्याणके लिए कार्य करे। हाँ हम का उत्तर यह होगा कि सम्प्रभुके विधि बनानेके अधिकारों पर हम कोई रोक नहीं लगा सकते क्योंकि वह सर्वोच्च विधि निर्माता है। लेकिन प्रश्न तो यह है कि शासकके अधिकारोंका समूह कैसे किया जाय कि एक अर्द्धी सरकारकी स्थापना हो सके। दक्षिणके क्रांतिकरणमें निम्नलिखित सरकार कायकुशल बनायी जा सकती है पर आवश्यकता तो दक्षिणके क्रांतिकरण और अत्याचारके रक्षा—इन दोनों नाम समर्थन प्राप्त करनेकी है।¹

यह कहा जा सकता है कि हाँ हम का सिद्धान्त ध्यक्षिकता किमो प्रकारकी स्वतंत्रता न देकर उसे शासककी दया पर छोड़ देता है। इस सिद्धान्तके अनुसार तो व्यक्तिको उस समय तक शासकके आदेशोंका पालन करना चाहिए जब तक उसका जीवन सखक में न पड़े। जनताके अधिकारोंके समर्थन कह सकते हैं कि जब शासक निरनुदा हो जाता है और जनताके कल्याणकी अवहेलना करता है तब जनताको उसका विरोध करनेका अधिकार (right of resistance) होना चाहिए। इस तर्कके उत्तरमें यह कहा जा सकता है कि हाँ हम के ही अनुसार जब सरकारका शासन पाषण्ड न रह जाय तभी शक्तिका भंग हो जाना चाहिए। परन्तु महत्त्वकी बात तो यह है कि हाँ हम न हम दक्षिणगामी मन्त्रारणी मौलिक आवश्यकता बनायी है। उन्होंने विरोध करने के अधिकारों में होनेवाले खतरोंको अर्द्धी तरह समझा है। एक धर्मव्युत्पन्न नागरिक का स्वयं अपनेमें प्रवृत्ता चाहिए किमो स्थिति ऐसी है कि हममें गृह-युद्ध और अन्तर

¹ हैराव के कथनानुसार हाँ हम ने राज्य और समाज राज्य और सरकार अथवा विधि और नृनिष्ठाका धीष काई भेद नहीं माना है (३१ पृ०)।

घम्याका खतरा माल लेना उचित होगा? सरकारके विरोध करनेका परिणाम गृह युद्ध हो सकता है। एक बार सरकारका विरोध शुरू करनेके पश्चात् यह नहा बनाया जा सकता कि परिणाम क्या होगा। विरोध करते समय भय ही सांगकि मनम गृह युद्धकी भावना न हो पर यह सम्भावना अधिक है कि इसका अन्त गृह-युद्धम ही होगा। इसी कारण सरकारके 'यायकारी होनेकी अपेक्षा शक्तिशाली होना अधिक आवश्यक है। कभी-कभी हो जानवाल अयायपूर्ण कार्योंकी अपेक्षा शान्ति और सुरक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है। हॉब्स हमारा ध्यान इसी सत्यकी ओर आकर्षित करना चाहत है कि किन्ही भी प्रकारका विरोध सरकारका कमजोर ही बनाता है। जैसा कि आइवर ब्राउन (Ivor Brown) ने कहा है—हॉब्स अनुशासनके प्रथम महान् दार्शनिक हैं।

हॉब्स जैसे पूण व्यक्तितवाणी विचारके लिए समाजका सही अध्ययन बहुत कठिन है। हॉब्स के सिद्धान्तका आरम्भ ही गलत है। उनकी धारणा है कि मनुष्य मूलतः स्वार्थी है और वह सुख-दुःखकी भावनाओंसे ही प्रेरित होता है। परन्तु यह धारणा गलत है। इसके विपरीत प्लेटो की यह धारणा सर्वसंगत है कि व्यक्ति अपनेम पूण नहा है और समाजमे अलग उसका कोई महत्त्व नहीं है। हॉब्स के सिद्धान्तके अनुसार लोगोंको एक मूत्रम बाँधनेवाला तत्त्व अराजकताका सामान्य भय ही है इसलिए वह समाजकी एकतावा सम्प्रभुकी इच्छास मिमान के लिए बाध्य हो गये हैं और उन्होंने जनताकी उन्नति अधिक महत्त्व नहीं दिया है।

सॉक सॉक १६५५ ई० की अपेजी रा-यत्रान्तिके दार्शनिक हैं। उनकी पुस्तक *Second Treatise on Civil Government* इतिहासीय दृष्टिस बहुत प्रभावपूर्ण है। इसमे यह बहुत अच्छी तरह बताया गया है कि रा-यत्रान्तिक समय लागू के क्या विचार थे। मेखक ने अपनी इस पुस्तकमे राजनीति-शास्त्रका वैज्ञानिक अध्ययन का काम अपने राजनीतिक विचारोंका प्रचार अधिक किया है। इसमे हॉब्स की पुस्तक *Leviathan* की भाँति तर्कपूर्ण विद्वान महा किया गया है। सॉक के सिद्धांतका साह यह है कि सरकारका मूल उद्देश्य जनताकी आवश्यकताओंका पूरा करना है। यदि कोई बात जनताके हितमे होती है तो सॉक इस बातका विचार नहा करते कि यह बात दार्शनिक दृष्टिमे किननी उचित है। सॉक की दृष्टिमे व्यवस्था और मुग्गा समय उपाय जरूरी हैं। सॉक व्यवस्थाके माध्यम अथवा शासनकी आवश्यकता भी बताते हैं। शासनका जनताके कल्याणके लिए शासन करना चाहिए। इसी कारण सॉक का राजनीतिक सम्प्रभुताके अस्तित्वका स्वीकार करना पडता है हालांकि वह अधिक सम्प्रभुताके अर्थको पूरी तरहन नहा समझ पाय हैं। इस विषयमे गिनत्राइस्ट (Gilchrist) हॉब्स और सॉक के अन्तरका समझात दृष्ट करते हैं 'हॉब्स ने राजनीतिक सम्प्रभुताके महत्त्व और गतिता मान बिना ही वैधिक सम्प्रभुताका सिद्धान्त बनाया है सॉक ने राजनीतिक सम्प्रभुताके महत्त्वका स्वीकार किया है लेकिन अधिक सम्प्रभुता का पूर्णतया नहा माना है (१५-६५)। सॉक के विचारमे सॉक ने राजनीति-शास्त्र मे स्वीडिने सिद्धान्त (Theory of Consent) का एक स्थानी ध्यान दिया है।

रूसो (१) रूसो न सविद्याका तो माना है परंतु उनके विचार कहा-जही पर सविद्या सिद्धान्तके विचाराका अतिप्रमण कर जाते हैं।

(२) रूसो न सिद्धान्तम हॉमि और लॉक के सिद्धान्तके सर्वोत्तम तत्त्वाका सम वय है। जसा कि एक लेखक ने कहा है कि उन्होंने हास की प्रारम्भिक मायता और विचार दालीके साथ लॉक व निष्कर्षोका समन्वय कर दिया है।

रूसो ने हॉमि से एक निरवृत्त अविनाय और अदेय राजसत्ताका विचार लिया है और लॉक में यह सिद्धान्त लिया है कि जनताका हित अष्ट गणसत्ताकी बसौटी है। इन दाना सिद्धान्तके सम-वयने ही लोकसम्मतिक सिद्धान्त उत्पन्न होता है। रूसो लॉक की तरह जनहित पर जोर देकर ही थप नहीं हा जात वरन् वह पूरी जनताका नियंत्रण चाहते हैं। इस तरहसे रूसो के हाथम यह सिद्धान्त मौखिक रूप से लोकतंत्रीय हो जाता है और इस बातका दावा करता है कि जनता सिद्धान्तिक रूपम ही नहा वरन् वास्तविक रूपसे शासन करेगी। रूसो ने ही राजनीति ससारम लोकतंत्रीयका एक मजीब सिद्धान्तिक रूपम प्रतिष्ठित किया (Cole)।

लोकसम्मति का सिद्धान्त (Doctrine of the General Will)

आधुनिक राजनीतिक विचार विमर्शम लोकसम्मतिक सिद्धान्त बहुत महत्व रखता है। कुछ विचारक इस सिद्धान्तको यदि स्वरत्नाक नहा तो अपर्हीन अवश्य मानते हैं। लकिन इसने विपरीत अय विद्वानाकी सम्मतिम लोक-सम्मतिक सिद्धान्त प्रजातंत्र तथा राजनीति शासनकी आधारशिला है।

लोकसम्मतिकी धारणाका ठीक तरहस समझनेके लिए 'व्यावहारिक इच्छा' (actual will) और 'वास्तविक इच्छा' (real will) का अन्तर समझना आवश्यक है। यहाँ पर यह कह देना जरूरी है कि व्यावहारिक और वास्तविक शब्दाका प्रयोग पारिभाषिक अर्थम दा विभिन्न विचाराको प्रकट करनेके लिए किया गया है। इस कारण इन शब्दाका प्रयोग एक दूसरेके लिए करना जैसा कि हम सामान्य वाक्य चोत्तम किया करते हैं उचित नहा है। एल० टी० हॉबहाउस (L. T. Hobhouse) ने अपनी पुस्तक *Metaphysical Theory of the State* में यही मूल की है। वह तो यहाँ तक बड़ गय है कि जा व्यावहारिक है वही वास्तविक है और जा वास्तविक है वही व्यावहारिक है।

जो व्यक्ति इन शब्दोंका प्रयोग पारिभाषिक अर्थम करते हैं और इनका आपसम भन्ना लोकसम्मतिक आधार बनाने हैं वे मनुष्यके भीतर होनेवाले उन मध्यका उपयोग करते हैं जा मनुष्यकी मैं (I) और मुझसे भन्ना (better than I) की भावनाके भीष पना करता है। ये व्यावहारिक इच्छा का उपयोग मनुष्यकी प्रेरणात्मक और अविचार-मूलक मन्त्र या स्वाभाविक इच्छा (compulsive and

unreflective will) के रूप में करती है। यह मनुष्यकी क्षण-क्षण पर बदलनवाली इच्छा है। यह पूरे जीवनका बिम्बुम ध्यान नही रखता। यह स्वार्थका ही ध्यान रखती है और समाजके कल्याणका ध्यान नही रखती। यह व्यक्तिकी विनाशमक परिवर्तनशील (transitory) व तुच्छ (trivial) इच्छा है। यह स्वार्थ सकीर्ण तथा साम-विनाशिनी है। यह मनुष्य विचारशील है ता वह अपना इस इच्छाम छुटकारा पानकी चष्टा करता है। यह इच्छा चाह किन्ती ही प्रबल क्या न हो गयी हो मनुष्य उसका छुट कर 'वास्तविक' इच्छा का अपनाका प्रयत्न करता है। 'वास्तविक इच्छा' ही मनुष्यकी सच्ची स्वतन्त्रता व्यक्त करती है। यह इच्छा स्थायी होती है और स्थायी होनेक साथ ही स्थायी सन्ताप भी देती है। यह इच्छा स्वार्थकी बराईम मुक्त होकर गुठ हा चकी हानी है। यह मनुष्यकी सत्र इच्छा है। यह मनुष्यक स्वार्थका भी ध्यान रखती है परन्तु इसम व्यक्तिगत स्वार्थ आगे चलकर सामूहिक स्वार्थ या सामाज्य हित (common good) म परिवर्तित हो जाता है। यह इच्छा कभी भी किसी लानमाने पूरा हो जानमे मनुष्य नही हो जाती। यह संपूर्ण जीवनका ध्यान रखती है। यह एक मुक्ति-संगत इच्छा है। व्यक्ति और समाजके समन्वयके रूपम यह प्रकट होती है। यह कभी भा किसी व्यक्ति-विनाशम पूर्णरूपेण नही पायी जाती।

ऊपर बताये गये 'व्यावहारिक इच्छा' और 'वास्तविक इच्छा' के भेदकी हॉबहाउस ने बड़ी बड़ी आलाचना की है। उनका कहना है कि यदि वास्तविक इच्छा का वास्तविक विनाश आ गक ता उसका स्वरूप इतना भिन्न हो जायेगा कि हम उसको पहचान भी न सकेंगे। 'य तबम हम सहमत नही हैं बरन्कि वास्तविक इच्छा का एसा आदर्श जीवन कल्पना-आश ही है। यह तबम कि हम अपनी आलाचना अपने तब अपने विवेक और या फिर अपने अनुभव द्वारा किया करते हैं यह निश्चय करता है कि व्यावहारिक और वास्तविक इच्छाका यह न प्रामाणिक है। इस भेदको मान्यता देनेका यह अर्थ नही कि हम व्यावहारिक इच्छा का भ्रमम डालनेवाली समझते हैं जसा कि हॉबहाउस का मत है। इसे स्वीकार करनेका अर्थ सिर्फ यही है कि यह इच्छा असूय होती है। इस पर पुन विचार करना आवश्यक होता है। हॉबहाउस तो एक सभ्य ज्ञान रखते हैं और कहते हैं कि व्यक्तिका इच्छा हर समय वास्तविक इच्छा' होती है। बोसाके (Bossuet) तथा अन्य मान्यवादीके प्रति जो व्यावहारिक और वास्तविक इच्छाका प्रयोग पारिभाषिक अर्थम करते हैं यह आलाचना उचित नही जान पड़ती। हॉबहाउस मनुष्यके वास्तविक इच्छाका विनाश करने हैं माना उनम आपसम जग भी सम्बंध न हो। हॉबहाउस चाह कुछ भी नही परन्तु एक साधारण नागरिकम वास्तविक इच्छा काउा अर्थम सग पायी जाती है यद्यपि हम यह माननेको तैयार हैं कि उसका पुन विनाश ता सब देव्य व्यक्तिगत भी नही हो पाता है। व्यक्तिकी किसी इच्छाका बहुत अधिक तीव्र होना ही 'वास्तविक इच्छा' नही है। व्यक्तिकी इच्छाका सार्वजनिक हितम सम्बंध ही उस 'वास्तविक इच्छा' बनाना है। व्यक्तिका वास्तविक नागरिक कल्याणका अभिन्न अंग

है। साधारण मनुष्याम व्यावहारिक और वास्तविक इच्छा मिनी हुई होती है। यह मिली हुई इच्छा विवक्षित हाते हुए धीरे धीरे वास्तविक इच्छा में बन जाती है।

इसा वास्तविक इच्छा और कल्याण की भावना पर ही दार्शनिकाने लोकसम्मति (general will) की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है समाजका निमाण करनेवाले व्यक्तिवादी वास्तविक इच्छाओंका समन्वय या याग ही लोकसम्मति है। बासाके की परिभाषाके अनुसार लोकसम्मति समाजकी इच्छा या सभी व्यक्तिवादी सावजनिक हित चाहनेवाली इच्छा है। यह सावजनिक कल्याणकी सामान्य चेतना है (It is the common consciousness of a common end or good)। यद्यपि ऐसा क विचार लोकसम्मतिक सम्बन्धम सदैव स्पष्ट नहीं है फिर भी उनकी राजनीतिक धारणाओंम यह धारणा सबसे अधिक मौलिक है। ऐसा क अनुधार नागरिक समाजका निमाण करनेवाला मूल सिद्धांत लिए ती सबकी स्वीकृति आवश्यक है लेकिन उमवे बा लोकसम्मति ही काफी है। लोकसम्मति शब्दसे ऐसा दो बातें समझते हैं—मतदाताओं की संख्या और उससे व्यक्त होनेवाला सावजनिक हित। एक स्थान पर उन्होंने साफ-साफ कहा है कि सावजनिक हित अधिक महत्वपूर्ण है। उनके पास इस प्रकार है 'लोकसम्मतिक लिए मतदाताओंकी संख्याकी अपेक्षा सावजनिक हित अधिक जरूरी है (What makes the will general is less the number of voters than the common interest uniting them) (६७ ख २ अ ४)। फिर भी कभी-कभी यह लोकसम्मतिको बहुमतका पर्याय समझने लगते हैं। परन्तु असो की विचारधारा तभी सफल होती है जब वह संख्याके बजाय सावजनिक कल्याण या सामान्यहित का अधिक महत्व देती है।

इसका मतलब यह हाता है कि लोकसम्मतिको बहुमत या जनमतका पर्याय नहा समझना चाहिए। जब तक वास्तविक सावजनिक हित मौजूद है बहुमतसे और कभी कभी एक व्यक्तिके मतसे भी लोकसम्मति व्यक्त की जा सकती है। क्योंकि ऐसा भी हा सकता है कि बहुमत सामूहिक स्वायत्तमे ऊपर न उठ पाये। हो सकता है बहुमत सामूहिक स्वायत्तमे पाप ही ऊपर उठ पाय। फिर भी अधिक सम्भावना इसी बातकी है कि एक व्यक्तिकी इच्छा या कुछ व्यक्तिवादी इच्छाओंकी अंशका बहुमतकी इच्छा ही लोकसम्मति है। इस प्रकार लोकसम्मतिकी सिद्धान्त व्यावहारिक तौर पर लागू करनीय सरकारकी स्थापना करता है। कुनीनतय या राजतयकी अंशका लोकतंत्रीय संगठनम ही लोकसम्मति अधिक अच्छी तरह व्यक्त हो सकती है। परन्तु कुनीनतंत्रीय या राजतंत्रीय संगठनम भी जब तक समाज एक मूलम बंधा हुआ रहता है और उसम कोई हिंसक गणय नहा हाता है यह कहा जा सकता है कि लोकसम्मति अप्रत्यक्ष रूपसे विद्यमान है।

लोकसम्मति कैसे बनती है (How General will is Generated)
 असो के अनुसार किसी भी समाजम हम सबकी सम्मति (will of all) यानी समाजके

साम्यवादी व्यक्तिगत हानियों से आरम्भ करते हैं। समाज का प्रत्येक सदस्य हर सामाजिक प्रश्न पर अपने दृष्टिकोणम विचार करता है। परन्तु यदि समाज सम्य है और उसमें नागरिकताकी भावना मौजूद है तो व्यक्तियोंकी हानियाँ के स्वाभूत तब एक दूसरेका नष्ट कर देते हैं और स्वार्थपूर्ण तबके पारस्परिक संघर्ष परिणाम स्वरूप लोकसम्मतिका निमाण हो जाता है। इस प्रकार सबकी इच्छाया (will of all) की परिणति 'लोकसम्मति (general will) में होती है। इसका मतलब यह नहीं है कि लोकसम्मति एक निष्कर्षाटिका समझीता है। वह हर मनुष्यकी सर्वोच्च भावनाका प्रतीक है—नागरिकताकी भावनाका मूल रूप है। लोकसम्मतिक निणय एक आदर्श समितिके निणयोंकी तरह हैं। ये निणय समझाते न हाकर उन सब साम्यवादी सर्वोत्तम रूपकी अभिव्यक्ति हैं। विचार विमर्ग और परामर्शक फलस्वरूप प्रत्येककी इच्छाका परिवर्तन परिवर्धन और गुद्दीकरण हो जाता है।

हमो इस प्रकारकी लोकसम्मति ही सम्प्रभुता (sovereignty) का एकमात्र प्रकृत स्वरूप मानते हैं। जब सम्प्रभुता सार्वजनिक हितमें काम करती है तो वास्तविक लोकसम्मति ही काम करती है। जब तक क्रियया सार्वजनिक हितमें होती है वे लोकसम्मतिकी प्रकृत स्वरूप ही होती हैं। लोकसम्मति स्वशासनकी आधार गिता है। जब लोकसम्मति क्रियाशील होती है तब व्यक्तियों 'हरवस स्वतंत्र बनाया जा सकता है। ऐसी हानतामें व्यक्तियों निम्नस्वरोप जीवन के विचारमें स्वतंत्र करके ऊँचे स्तरक जीवन और विचारकी भित्तियें लाया जाता है। इस स्वतंत्रताकी तुलना हम या तो उन व्यक्तियों स्वतंत्रतामें कर सकते हैं जो एक सत्तरनाक पुत्र पर जानेमें रोका दिया गया हो त्रिभके खतरेको वह नहीं जानता था या फिर उस व्यक्तिकी स्वतंत्रतासे कर सकते हैं जिसे दासताका जीवन स्वीकार करनेमें रोका जा रहा हो।

लोकसम्मति की विशेषताएँ

(Characteristics of the General will)

लोकसम्मतिकी पहली विशेषता एकता (unity) है। लोकसम्मति कभी भी आरम्भविरोधितो नहीं हो सकती क्योंकि वह व्यक्ति-संगत है। उसमें विभिन्नता नहीं है परन्तु यह विभिन्नताएँ एकताका प्रयास करती है। वह राष्ट्रीय चरित्रकी एकताका निर्माण और रक्षा करती है और एक राष्ट्रक नागरिकतामें त्रिन सामाजिक गुणोंका फलनेकी हम आशा करत है उनमें उसका विकास होता है (५५ १६०)।

लोकसम्मतिकी दूसरी विशेषता उच्चका स्थायित्व (permanence) है। हम हम प्रयोग रूपमें न तो 'सार्वजनिक भावना' की मूल्यांकन पा सकते हैं और न राजनीतिज्ञोंकी दुरुव्यवस्थाओंमें। वह हम राष्ट्रीय चरित्रमें मिलती है। लोकसम्मति

उन बायों या जान्दालनकी अपेक्षा अधिक स्वाधी हाती है जिनके द्वारा उसका अभिव्यक्ति होता है (४४ १८०)।

साकसम्मतिकी तीसरी विगणता है उसका हमणा उचित या सही (right) होना क्योंकि वह हमसा पूर समाजके कल्याणकी भावनामें प्ररित होती है। प्रायः परिस्थितिमें उसका नश्य बढी हाता है चा उस परिस्थितिमें उचित और सर्वोत्तम हाता है। इसका मतबल यह नहा है कि लोकसम्मतिमें भूलकी सम्भावना होती ही नही। जसा कि रुसा ने बताया है सम्मति हमणा सही हाती है लेकिन उसका निर्देशन करनेवाला विवेक अटिपुण हा सकता है। इसलिए उसके नियममें भूल हा सकती है परन्तु उसमें नैतिक दुभाषना नही हा सकती। जनता सही लक्ष्यको लेकर चलती है भन ही वह बान्धन पयघ्न कर ले जाय। रुसा के ही शब्दोंमें जनता प्ररित ता हमणा अच्छाईमें ही हाती है परन्तु उस अच्छाईका वह हमणा दख नहा पाता। साकसम्मति हमेसा ठीक होती है पर उसका पय प्रमाण करनेवाला विवेक हमणा ठीक नही होता (६८ दूसरी पुस्तक छठा अध्याय)।

आलोचना

साकसम्मतिक सिद्धान्तकी कई तरहसे आलोचना की गयी है —

(१) साकसम्मतिको लोग व्यावहारिक जीवनमें भिन्न और एक सामिल तथा भावसूत्रमें धारणा करते हैं। इसमें आलोचकाका कहना है कि यदि साकसम्मति यहमतमें नहा बनानी जाती ता वह अथहीन है। एमी अवस्थामें न सा वह साकसम्वायी है और न सम्मति ही। उपरान्त आलोचनासे हम निराणा नही हाती क्योंकि सूक्ष्म (abstract) धारणाओंके विरुद्ध हमेसा ही एसी आलोचनाएँ की जाती हैं। इसके समकालीन कहना है कि इस सिद्धान्तका महत्त्व वहा तक है जहाँ तक इसमें जनहित हाता है। इस सिद्धान्तकी यह विगणता ही इसकी शक्ति है। हम आदर्श के पास पहुँचनेकी आणा ता कर सकते हैं परन्तु उसको पूरी तरह पा लेना और काय रूप दे पाना कठिन है। लोकसम्मति व्यावहारिक (actual) और आदर्श (ideal) दोनों ही है। व्यावहारिक रूपमें उमे किसी भी राज्यमें पूरी तरहमें नहा पाया जा सकता।

(२) कुछ समकालीन मत है कि इस सिद्धान्तके राज्यमें आसानीमें निरंकुशता भा जानना भय है। साकसम्मतिके नाम पर सवाधिक निरंकुशता कायमकी जा सकती है। स्वतंत्र बनानेके लिए विवक करना (forced to be free) इस कथनकी सबमें अधिका आलोचना हुई है क्योंकि इसमें अत्यधिक निरंकुशताकी सम्भावना है। इस आलोचनामें काफी बल है परन्तु यह अकारण्य नही है। जसा निरंकुश सम्प्रमुताका समर्थन करते हैं परन्तु साथ ही उस पर कुछ नैतिक कथन भी लगाने हैं। धूँकि लोक सम्मति में व उचित और 'यापपूर्ण' होती है इसलिए वह तमी राज्य-कायम स्थापन करती है जब जसा करना उचित हाता है। रुसा का कथन है—समाजके ऊपर

हॉम साक और उसी का सामाजिक सिद्धांत

सम्प्रभ ऐसा कोई बंधन नहीं। लागू करना जा समाजक लिए निरर्थक है और न वह ऐसा करनेकी इच्छा ही कर सकता है। इसलिए हम कह सकते हैं कि समा नागरिक स्वतंत्रता (civil liberty) की प्राप्तिके लिए व्यक्तिका बलिदान नहीं करत है। बंधनाका अभाव ही स्वतंत्रता नहीं है। राज्यक हर हस्तक्षेप का यह अर्थ नहीं कि व्यक्तिकी स्वतंत्रता छीनी जा रही है।

() लोकसम्मतिका सिद्धान्त सावजनिक हितकी धारणा पर आधारित है लेकिन सावजनिक हितकी परिभाषा करना बहुत मुश्किल है। एक निरंकुश तानाशाह भी अपने बापों का सावजनिक हितके नाम पर उचित ठहरा सकता है। यह भी पहचान नहीं कहा जा सकता कि लोकसम्मति द्वारा व्यक्ति काई बाध-विधाय सावजनिक हितम हो जाएगा। हित या अहितका निणय ता उसके परिणामसे ही किया जा सकता है। हम स्वाभाविक रूपसे यह मानते हैं कि लोकसम्मति सिद्धांतकी कुछ सीमाएँ हैं परन्तु हम यह न भूलना चाहिए कि ये सीमाएँ ही इस सिद्धांतका गतिशीलता भी बनाती हैं। य निश्चितताएँ यह प्रमाणित करती हैं कि यह सिद्धान्त सिर्फ बल्बनाकी उद्धान या बोरा आत्मनः प्रयत्न ही है। यह सही है कि हम मनुष्य व उसकी संस्थाओं से काम लेना है वह तिस हालतमें भी हो। परन्तु इसके साथ ही हमारा कोई लक्ष्य भी होना चाहिए जिसका सामन रखकर हम आगे बढ़ सकें। हम लक्ष्यके साथ कह सकते हैं कि लोकसम्मतिका सिद्धान्त राजनीतिक प्रयत्नके लिए सर्वोत्तम सम्भव लक्ष्य है। यह लक्ष्य हमें योग्य तथा वास्तविक बुद्ध सीमा तक आत्मबलिदान भी चाहिए है (५ १०६)।

(५) कुछ लोगोंका यह कहना है कि यदि हम यह मान भी लें कि लोकसम्मति हमारा उचित व न्यायसंगत हाती है फिर भी यह उचित नहीं है कि सरकार हमारा ठीक और न्यायपूर्ण ढंगमें ही बाध करे। इस आपत्तिक उत्तरमें हम यह मानना कहते हैं कि राज्यका सामन-यत्र अपूर्ण ही रहता है। परन्तु हम यह भी ता नहीं कहते कि हम लोकसम्मतिकी पूरी तरह व्यावहारिक रूपमें प्रयत्न कर सकते हैं कि वह लोकसम्मतिकी अपूर्णतासे निम्नता है, जैसे हम यही आशा कर सकते हैं कि वह लोकसम्मतिकी अपूर्णतासे निम्नता है, जैसे हम यही आशा कर सकते हैं कि वह लोकसम्मतिकी अपूर्णतासे निम्नता है, जैसे हम यही आशा कर सकते हैं कि वह लोकसम्मतिकी अपूर्णतासे निम्नता है।

लोकसम्मतिके सिद्धान्तमें सर्वोच्च

(Truth in the Doctrine of the General Will)

- (१) यह सिद्धान्त हमारे राजनीतिक प्रयत्न का एक प्रमाणित करता है। यह अंगरक्षणाके बाधक प्रयत्न कर सकता है।
- (२) यह सिद्धान्त हमें बताता है कि समाजक प्रयत्न व्यक्तिकी अपूर्णतासे निम्नता है।

उन बायों या आन्तकनकी अपेक्षा अधिक स्थायी होती है जिनके द्वारा उसकी अभिव्यक्ति होती है (१६ १४०)।

साक्सम्मतिकी तीसरी बिगपता है उसका हमगा उचित या सही (right) होना क्याकि वह हमगा पूरे समाजके कल्याणकी भावनासे प्रेरित होती है। प्रायः परिस्थितिमें उसका लक्ष्य सही होता है या उस परिस्थितिमें उचित और सर्वोत्तम होता है। इसका मतलब यह नहीं है कि साक्सम्मतिकी मूलकी सम्भावना होती ही नहीं। जैसा कि रूसो ने बताया है सम्मति हमें सही होती है लेकिन उसका निर्णय करनेवाला विवेक अतिपूण हो सकता है। इसलिए उसके निर्णयमें भूल हो सकती है परन्तु उसमें नतिक दुभावना नहीं हो सकती। जनता सही सक्षमको लेकर चलती है मने ही वह बाध पथघ्न कर दी जाय। रूसो के ही शब्दोंमें 'जनता प्रेरित ता हमका अर्थात् ही होती है परन्तु उस अर्थार्थको वह हमका देख नहीं पाती। साक्सम्मति हमें ठीक होती है पर उसका पथ प्रदर्शन करनेवाला विवेक हमका ठीक नहीं होता (६८ दूसरी पुस्तक छठा अध्याय)।

आलोचना

साक्सम्मतिकी सिद्धान्तकी कई तरहसे आलोचना की गयी है —

(१) साक्सम्मतिकी साग व्यावहारिक जीवनमें भिन्न और एक सीमित तथा भावसूक्ष्म धारणा करते हैं। इसके आलोचकोंका कहना है कि यदि साक्सम्मति बहुमतमें नहीं बनायी जाती तो वह अथहीन है। ऐसी अवस्थामें तो वह साक्सम्पायी है और न सम्मति ही। उपर्युक्त आलोचनासे हम निराशा नहीं होती क्योंकि सूक्ष्म (abstract) धारणाओंके विरुद्ध हमें ही ऐसी आलोचनाएँ की जाती हैं। इसके समयवाक्य कहना है कि इस सिद्धान्तका महत्व कहा तक है जहाँ तक इसमें जनहित होता है। इस सिद्धान्तकी यह बिगपता ही इसकी शक्ति है। हम आन्तक के पास पहुँचनेकी आशा तो कर सकते हैं परन्तु उसका पूरी तरह का सना और बाध रूप दे पाना शक्ति है। साक्सम्मति व्यावहारिक (actual) और आदर्श (ideal) दोनों ही है। व्यावहारिक रूपमें उसे किसी भी राज्यमें पूरी तरहसे नहीं पाया जा सकता।

(२) कुछ भाषकोंका मत है कि इस सिद्धान्तके राज्यमें आसानीसे निरंकुशता आ जानका भय है। साक्सम्मतिकी नाम पर सर्वाधिक निरंकुशता कायमकी जा सकती है। स्वतंत्र बनानेके लिए विवक करना (forced to be free) इस कथनकी सबसे अधिक आलोचना हुई है क्योंकि इसमें अत्यधिक निरंकुशताकी सम्भावना है। इस आलोचनामें बाजी यन है परन्तु यह अकार्य नहीं है। रूसो निरंकुश सम्प्रभुताका समर्थन करते हैं परन्तु साथ ही उस पर कुछ नैतिक बाध भी लगाने हैं। चूंकि साक्सम्मति में व उचित और 'यावपूर्ण' होती है इसलिए वह सभी राज्य-कायम स्थाप करती है जब समाजकी उचित होती है। रूसो का कथन है—'समाज' उपर

होय सार और हस्तो का सामाजिक सविदा सिद्धोत

मन्त्रमु एसा काड बयन नहा लाद सकना जा ममाजक लिए निरर्थक हा और न वह एसा करनेकी इच्छा हा कर सकना है। इसलिए हम कह सकते हैं कि ससा नागरिक स्वतंत्रता (civil liberty) की प्राप्तिके लिए व्यक्तिवा बनिगन नहा करत हैं। बयनाका अभाव ही स्वतंत्रता नहा है। राज्यके हर हस्तभेय का यह अय नहा कि व्यक्तिकी स्वतंत्रता छीना जा रही है।

() लोकसम्मतिवा सिद्धान्त सावजनिक हितकी धारणा पर आधारित है लेकिन सावजनिक हितकी परिभाषा करना बहुत मुश्किल है। एक निरंकुश सानागाह भी अपन बायो का सावजनिक हितक नाम पर उचिन ठहरा सकना है। यह भी पहलस नहा बहा जा सकना कि लोकसम्मति द्वारा व्यक्त कोई काय-विगय सावजनिक हितम हा हागा। हिन या अहितका निगय ता उसके परिणामसे ही किया जा सकना है। हम स्वीकार करना पडगा कि लोकसम्मतिक सिद्धान्तकी कुछ सीमाएँ हैं परन्तु हम यह न भूलना चाहिए कि ये सीमाएँ ही इस सिद्धान्तका अक्षिणाणी भा बनानी है। ये नियमितनाएँ यह प्रमाणित करती हैं कि यह सिद्धान्त सिफ बन्धनाकी उडान या करा आग नही है। यह सही है कि हम मनुष्य व उसकी सस्याआ म काम लना है वह गामन रखकर हम आग बढ सकें। हम शकके साथ कह सकते हैं कि लोकसम्मतिवा सिद्धान्त राजनीतिक प्रयत्नके लिए सर्वोत्तम सम्भव सध्य है। यह सत्य हमम कागिन तथा नायक कुछ सीमा तक आत्मबलिगन भी चाहता है (५ १०६)।

(५) कुछ सागाका यह कहता है कि यदि हम यह मान नी में कि लोकसम्मति हमगा उचिन व न्यायमगत हाती है फिर भी यह उचरी नहा है कि सरकार हमगा ठीक और न्यायपूर्ण बंगम ही काय करे। इस आपनिक उतरम हम यह मानना तयार है कि राज्यका गामन-यत्र अपूण हो रूना है। परन्तु हम यह भी ता नही कहत कि हम लोकसम्मतिवा पूरी तरह व्यावहारिक रूपम प्रयुक्त कर सकत हैं। हम जो अपूर्ण गामन-यत्र मिना है उसस हम यही आगा कर सकत हैं कि वह नाक सम्मतिको बायाबिन करनेका यथासम्भव प्रयत्न करणा। एक निमित्त या प्रबुद्ध जनमन (educated or enlightened public opinion) म ही हम लोकसम्मति की निरन्तरम स्थितिकी सम्भाबना माननी चाहिए।

लोकसम्मतिके सिद्धान्तमे सत्यांश
(Truth in the Doctrine of the General Will)

- (१) यह सिद्धान्त हमारे राजनीतिक प्रयत्न का पथ प्रदर्शन करता है। यह हमारा सत्य निपारित करता है जिसकी प्राप्तिके लिए हम अन्यायी बनिगनाया और अगणनाप्राके बावजूद प्रयत्न कर सकत हैं।
- (२) यह सिद्धान्त हमें बान पर बाग रना है कि ममात्र जनमन्त्र व्यक्तिवाका

उन कार्यों या आन्दोलनकी अपेक्षा अधिन स्थायी होती है जिनके द्वारा उसकी अभिव्यक्ति होती है (२४ १८)।

सावगम्मतिकी तीसरी विधापता है उसका हमारा उचित या सही (right) हुना क्याकि वह हमारा पूरे समाजके ब्यापक भावनासे प्रेरित होती है। प्रत्येक परिस्थितिमें उसका पक्ष वही होता है जो उस परिस्थितिमें उचित और सर्वोत्तम होता है। इसका मतबल यह नही है कि सावगम्मतिकी भूतकी सम्भावना होती ही नही। जसा कि रूसा न बताया है सम्मति हमारा सही होती है लेकिन उसका निर्देशन करनेवाला विवेक प्रतिकूल हो सकता है। इसलिए उसके निगमन भूल हो सकती है परन्तु उसमें नतिक सम्भावना नही हो सकती। जन्मा सही लक्ष्यको लक्ष्य बनती है भले ही वह बाध पध्दत कर दी जाय। रूसा के ही शब्दोंमें जनता प्रेरित तो हमारा अच्छाईस ही होती है परन्तु उस अच्छाईका वह हमारा देख नहीं पाती। सावगम्मतिकी हमेशा ठीक होती है पर उसका पक्ष प्रदर्शन करनेवाला विवेक हमारा ठीक नहीं होता (६८ दूसरी पुस्तक छठा अध्याय)।

आलोचना

सावगम्मतिकी सिद्धान्तकी कई तरहसे आलोचना की गयी है —

(१) सावगम्मतिका लोग व्यावहारिक जीवनमें भिन्न और एक समित तथा भावभूतम धारणा कहते हैं। इसमें आलोचकाका कहना है कि यदि सावगम्मतिकी बहुमतग नही बनायी जाती तो वह अर्थहीन है। ऐसी अवस्थामें न तो वह लोकव्यापी है और न सम्मति ही। उपर्युक्त आलोचनामें हम निरागा नही होती क्योंकि सूत्र (abstract) धारणात्राक विरुद्ध हमारा ही ऐसी आलोचनाएँ की जाती हैं। इसके समर्थकाका कहना है कि इस सिद्धान्तका महत्व वही तक है जहाँ तक इसमें जनहित होता है। इस सिद्धान्तकी यह विषयता ही इसकी शक्ति है। हम आदर्श के पास पहुँचनेकी आशा तो कर सकते हैं परन्तु उसको पूरी तरह पा लेना और वास्तव रूप दे पाना कठिन है। सावगम्मतिकी व्यावहारिक (actual) और आदर्श (ideal) शक्ति ही है। व्यावहारिक रूपमें उसे किसी भी राज्यमें पूरी तरहमें नहीं पाया जा सकता।

(२) कुछ मन्त्रकाका मत है कि इस सिद्धान्तके राज्यमें आसानीसे निरंकुशता आ जानका भय है। सावगम्मतिके नाम पर सर्वाधिक निरंकुशता कायमकी जा सकती है। स्वतंत्र बनानेके लिए विवक करना (forced to be free) इस कथनकी सबसे अधिक आलोचना हुई है क्योंकि इसमें अत्यधिक निरंकुशताकी सम्भावना है। इस आलोचनामें काफी बल है परन्तु यह अकार्य नहीं है। रूसा निरंकुशता सम्प्रमुताका समर्थन करते हैं परन्तु साथ ही उस पर कुछ नैतिक बाधन भी लगाते हैं। यदि लोक सम्मति में व उचित और न्यायपूर्ण होती है इसलिए वह सभी राज्य-कायम स्थापन करनी है जब ऐसा करना उचित होता है। रूसा का कथन है— समाज के अन्दर

मध्यम एसा काउ बचन नहा सा सक्ता जा समाजक तिए निरर्थक हा और न बहु एसा बचनकी इच्छा न कर सक्ता है। इमलिए हम बहु मवन है कि समा नागरिक स्वतंत्रता (civil liberty) का प्राजिक तिए व्यक्तिना बलिगन नहा करत है। बचनका अभाव ही स्वतंत्रता नहा है। गावक हर हस्तपे का यह अर्थ नहा कि व्यक्तिनी स्वतंत्रता छाना जा रही है।

() नाकसम्मनिका मिडान सावजनिक हितका पारणा पर आधारित है लेकिन सावजनिक हितकी परिभाषा करना बहुत मन्किन है। एक निरनुग ठानागाह भी अपन बायीं का सावजनिक हितक नाम पर उचिन ठहरा सक्ता है। यह भा पहलत नहा कता जा सक्ता कि नाकसम्मनिका द्वारा व्यक्ति कई बाय-बाय सावजनिक हितम टा हागा। हिन या अहितका निगय ता उनके परिणाममे ही बिना जा सक्ता है। हम स्वाकार करना पडगा कि लोकसम्मतिक मिडानकी कुछ सीमाए है परन्तु हम यह न भूनना चाहिए कि य मामाए ही इम मिडानका गकिगानी भा बनाना है। य सिधितताए यह प्रमाणित करती है कि यह मिडान निरु बन्धनाकी न्दान या कारा आग्य नहीं है। यह सही है कि हम मनुष्य व उनका सम्बन्ध म काम लता है वह मामन रखर हम आग बड मवें। हम उनके साथ रह सक्ता है कि नाकसम्मनिका सिडान राजनीतिक प्रयत्नाके तिए सर्वोत्तम सम्भव सन्ध है। यह सन्ध 'हमन बागिग तथा गाव' कुछ माना तब आत्मबलिगन भी चाहता है (२ १ ६)।

(४) कुछ सागाबा यह कहता है कि यदि हम य मान नी नें कि नाकसम्मनिका हमना उचिन व न्यायसंगत हाती है फिर भी यह बन्धी नहा है कि सरकार हमना ठीक और न्यायगुण इगस ही बाय करे। इम आपनिक ग्तरम हम यह मानका तयार है कि राग्यका गामन-यत्र अपूण हो रहा है। परन्तु हम यह भी ता नहा कहन कि हम नाकसम्मनिका पूरी तरह व्यावहारिक रूपम प्रयत्न कर सकन हैं। हम या अपूण गामन-यत्र बिना है उसस हम यही आगा कर सकन है कि वह नाक सम्मतिकी बापाबिन बननका सपासम्भव प्रयत्न करला। एक गिगित या प्रबुद्ध जनमन (educated or enlightened public opinion) म ही हम नाकसम्मनिका की निरन्तर सिधितकी सम्भावना माननी चाहिए।

लोकसम्मतिके सिद्धान्तमे सत्यांग (Truth in the Doctrine of the General Will)

(१) यह सिद्धान्त हमारे राजनीतिक प्रयत्ना का पथ प्रदर्शन करता है। यह हमारा सन्ध निर्धारित करता है जिसकी प्राजिक तिए हम अग्यायी बनिनादया और अमरनताप्रति बावजू प्रयत्न कर सकन है।

(२) यह सिद्धान्त न बन पर डार न्ता है कि समाज अमरुड व्यक्तिना का

समूह नहीं है बल्कि उसमें आन्तरिक एकता भी होती है। यह सिद्धान्त हम बताता है कि राज्यकी भी अपनी एकता और इच्छा होती है जो उसके सन्स्थाकी व्यक्तिगत एकता और इच्छासे भिन्न होती है। निस्सन्देह अपन सदस्यसे अलग राज्यका कोई अस्तित्व नहीं होता परन्तु राज्यका जीवन किसी एक नागरिक अथवा किसी एक पीढ़ीके जीवनसे अधिक स्थायी विस्तृत और पूण होता है (५४ १३९)।

(३) यह सिद्धान्त इस सत्यकी पुष्टि करता है कि 'राज्य का आधार दण्डन नहीं बरत इच्छा है (will not force is the basis of the state)। लोकसम्मति की धारणाका यह अर्थ नहीं है कि अल्पमतवाले समुदाय पर दबाव डाला जाय। यह सिद्धान्त यह स्पष्ट करता है कि बहुमतकी नीतिका मुधार अल्पमतकी दण्डन और मूखमूख द्वारा भी किया जा सकता है।

(४) यह सिद्धान्त बताता है कि राज्य एक स्वाभाविक सन्स्था है नयाकि इसका आधार मनुष्यकी इच्छा व स्वाभाविक आवश्यकता है। 'हमारे व्यक्तित्वका स्वाभाविक विस्तार होनेके कारण ही राज्य का अस्तित्व है और इसी कारण राज्य यह दावा करता है कि हम उसकी आज्ञाएँ माना करें। (कोल)

(५) यह सिद्धान्त यह साबित करता है कि लोकतन्त्रका सच्चा आधार न तो दण्डन है और न स्वीकृति बरन् हमारी सक्रिय इच्छा ही इसका आधार है।

लोकसम्मतिको हम मानना चाहिए, इसलिए नहीं कि वह हमारे ऊपर धापी जाती है बल्कि इसलिए कि वह हमारा ही एक अविच्छेद्य अंग है। राज्यकी लोकसम्मतिकी आज्ञा मानना हम अपनी ही आज्ञा मानते हैं और हमारे अन्दर जा कुछ भी संशय है उसका अनुगमन करते हैं। लोकसम्मति व्यक्तियों उसका महत्त्व बनाती है। वह व्यक्ति और व्यक्तिगत बीच एकताकी समर्पक है।

SELECT READINGS

BOSANQUET B — *The Philosophical Theory of the State*—Ch IV pp 264-66

GARNER J N — *Political Science and Government*—pp 222-28

GETTLE R G — *Introduction to Political Science*—pp 81-87

GILCHRIST R N — *Principles of Political Science*—pp 60-65

HALLOWELL J H — *Main Currents in Modern Political Thought*—pp 77 ff 107 ff 173 ff 180-89 248 ff and 280

HOBBS T — *Leviathan*—Chs 13 14 16 17 18 and 21

JOAD C. E. M — *Modern Political Theory*—Ch I

LEACOCK S — *Elements of Political Science*—pp 24-31

LOCKE J — *Second Treatise on Civil Government*

LORD A R. — *Principles of Politics*—Chs II V

होमस सॉह ओर रुसो का सामाजिक सविदा सिद्धान्त

१९

MACIVER R M—*The Web of Government*—pp 17 20 and 449 50
ROUSSEAU J J—*Social Contract*—Bks I and II Bk III Chs. 15 17
Essays in Political Theory Presented to George H Sabine (1947)—
pp 113 129

राज्य का उद्देश्य और औचित्य (The End and Justification of the State)

राज्यका उत्पत्ति और उमर विकास पर विचार करनेकी अपेक्षा उसका औचित्य और उद्देश्यका विवचन करना अधिक महत्वपूर्ण है। कबल यह बतलाना काफी नहीं है कि राज्यका निर्माण किन कारणाने हुआ। सबसे अधिक आवश्यक प्रश्न तो यह है कि राज्यकी जरूरत ही क्या है। क्या राज्यका कोई मुक्त-संगत आधार है? क्या हम अपना काम राज्यके बिना नहीं चला सकते? अरस्तू ने बहुत पहले ही इन प्रश्नों का महत्व समझ लिया था और इसीलिए उन्होंने कहा था कि राज्य का निर्माण तो इसलिए किया गया कि हम जिंदा रह सकें और फिर इसे शायद इसलिए रखा गया कि हम मुसीबतें सह सकें। इस प्रकार अरस्तू ने राज्यका मनुष्यके अच्छे जीवनके लिए अनिवार्य बता कर उसका औचित्य सिद्ध किया था। इस तर्क के बावजूद हम यह मानना ही पड़ता है कि अच्छे से अच्छे मनुष्यों की मदद को भी राज्य द्वारा प्रयाग की जानेवाली शक्तिका औचित्य ठीक प्रकार सिद्ध नहीं किया। हमें उनकी यह बात तो माननी पड़ती है कि मनुष्यका पूर्ण और स्वतंत्र विकास अकेलेमें सबसे असह्य रहकर नहीं हो सकता और मनुष्यका अपने उद्देश्य की प्राप्तिके लिए समाजका आवश्यकता है। लेकिन राज्य द्वारा प्रयाग की जान वाली शक्ति पर उन्होंने बहुत कम विचार किया है। शायद इसलिए कि शक्तिका प्रश्न एक आधुनिक समस्या है।

राज्य मानव व्यवहारको व्यवस्थित करना है—मते ही इस कायम उमर का प्रयाग करना पड़ता है। राज्यकी इच्छा बहुत-सी बातोंमें अन्य सभी इच्छाओं का अन्त है। व्यक्ति का जीवन तथा उसकी स्वतंत्रता और सम्पत्ति में मन का अधिकार राज्यका है। राज्य करके रूपमें व्यक्तिकी सम्पत्ति नष्ट है। युद्ध-शत्रुता या अपराधके दण्ड स्वल्प उमरके प्राण नष्ट है। क्या यह सब उचित है? सभी युगोंमें अनेक बार एक आरंभ राज्यके अस्तित्वका उचित सिद्ध करने और दूसरी ओर इसके अस्तित्वको अनुचित सिद्ध करनेके प्रयत्न किए गए हैं। हम उनका निर्णयनिमित्त धर्मिकीसमें सन्निहित वर्णन करेंगे।

अराजकतावादी दृष्टिकोण (The Anarchist View) अराजकतावादी राज्यके अस्तित्वका औचित्य बिल्कुल ही नहीं मानते। उनका विश्वास है कि राज्यका कोई व्यक्ति-संगत उद्देश्य नहीं है और जिनकी ही जन्म हमें राज्यका अस्तित्व दिना

राज्य का उद्देश्य और औचित्य

मैंने उनका ही मनुष्यक विकास और उत्पत्ति के लिए अच्छा हाया। क्रान्तिकारी अराजकतावादी revolutionary anarchists) मौजूद सामाजिक व्यवस्था का हिमालयक तराईनि उमट देना चाहत हैं। राजनीति शासक अध्ययनम इस प्रकारक अराजकतावादिमि हमारा अधिक सम्बन्ध नहा है। अराजकतावादिमम टॉल्स्टोय (Tolstov) और क्रोपोत्किन (Kropotkin) जस शान्ति अराजकतावादिमि पर हम विचार करता है। व राज्य इन अधिक विरोध नहा है जिनत राज्य द्वारा उपयोग की जानेवाली शक्तिके। उनका श्वा है कि मनुष्य अपन ही प्रयत्नस वास्तविक नैतिक जीवन प्राप्त कर सकता है और नैतिकताके विनामम राजमत्ता एक बाधा है। उनके विचारम राजमत्ताके उपयोगम मभी नतिक मान्यताएँ नष्ट हा जाता है। सब तो यह है कि अराजकतावादी राज्यके नामम ही भङ्क उत्पत्त है। उनका कहना श्ना है। महा बात करनेके लिए व्यक्ति पर विश्वास करनेक बजाय राज्य उम पर अविश्वास करता है और उम दृष्टि उनका समझी श्ना है। उनका कहना है कि मर बार धर्म ही नहा हानिकारक भी है। उनकी श्वाय स्वच्छान बनाया गया मगटन समाजका नाम अशुद्धि तच्छ कर सकता है अतएव यदि राज्यका कायम रचना ही हा ता उम एव एच्छिक मगटनके रूपम रचना चाहिए। विधियाका मुयाव और परामश का रूप तथा करोंका अपन मनम निये गय दानका रूप ग्रहण करना चाहिए। दानिक अराजकतावादी याका विश्वास है कि समाज पर युक्तिविहीन शक्तिक बजाय प्रमत्ता शासन हुना चाहिए। मनुष्यका एमी शिक्षा ले जानी चाहिए कि व स्वय अपनी प्रणाम मय गिर मुन्दम् का माग अन्याय। उनकी धारणाम प्राण्य समाज प्रम मे बेधा हुआ परिवार है जिन पर अधिचार तथा शक्तिकी छाया भी नहा पडी है। एक ही प्रकारकी सरकारका वह समयन करनेका तयार हैं और वह है व्यक्तिका पूरा पूरा स्वतंत्र स्वासन। आधुनिक अराजकतावादी व्यक्तिगत सामूहिक उन ही विरोधी हैं जिनका कि धार्मिक मगुत्ति सत्ताक। बाकुनिन (Bakunin) एक एमा ममात्र शान्त य जो अराजकतावादी धर्मिक मगुत्ति सत्ताक। बाकुनिन (Bakunin) एक एमा और अनी-बगवाण (atheistic) हैं।

आलोचना

शान्ति अराजकतावादीक विन्द निम्ननिमित्त नीचे दा जा सकती हैं —
 (१) हम अराजकतावादिमि की यह बात मानना तयार है कि मनुष्य नैतिकता अधिभार स्वय ही अर्जित होता है परन्तु हम यह मानना तयार नहा कि राज्यक धार्मिक नैतिक मान्यताएँ प्राप्त नहा हा जाती हैं। राज्य सामूहिक न तो नैतिकताका साधन कर सकता है और न उमकी वृद्धि ही कर सकता है। फिर भी राज्य तमी शान्ती परिनिमित्तिया पैदा कर सकता है कि व्यक्तिगत जिन अशुद्धि जीवन

सम्भव हो जाय। इसलिये हमारा कहना है कि राज्य नैतिक मायताओंका विनाश नहीं करता—यह केवल उनका महत्व कुछ कम कर देता है। हमसे सबसे अच्छे व्यक्तिके लिए भी पुलिसका मय कभी-कभी अच्छा जीवन बितानेमें सहायक हाता है। अच्छे कार्योंकी आवश्यकता नैतिकताके विकसाममें बाधा नहीं डालती। हम राज्यकी आज्ञा पालन करके अच्छे काम कर सकते हैं।

(२) अराजकतावादियोंका यह विचार गलत है कि स्वतंत्रता ही सबथक राजनीतिक बदलाव है। हमें यह न भूलना चाहिए कि स्वतंत्रता अपने आपमें कोई उद्देश्य नहीं है—यह तो उद्देश्यको प्राप्त करनेका केवल एक साधन है। स्वतंत्रता और सत्ता एक दूसरेके विरुद्ध नहीं हैं जसा कि अराजकतावादी उन्हें समझते हैं। वे एक दूसरेके सहायक व पूरक हैं। कोई भी मानव-संस्था व्यक्तिको पूरी तरह स्वतंत्र नहीं छोड़ती। प्रत्येक समूह या सगठनसे व्यक्तिकी स्वतंत्रता पर कुछ-न-कुछ बाधन लग ही जाता है।

(३) अराजकतावादी मानव स्वभावका एक घामक चित्र खींचते हैं। उनकी धारणा है कि संगठित राजनीतिक समाज ने व्यक्तिके अधिकारको नीचे गिरा दिया है और यदि एक बार उसे हटा दिया जाय तो मनुष्य फिर पवित्र-आत्मा हो जाय। यह धारणा बहुत-कुछ असो की उस धारणासे मिलती-जुलती है जो उन्होंने अपने निबंध 'असमानता' (Inequality) में व्यक्त की है और जिसके अनुसार मनुष्य प्राकृतिक अवस्थामें आनन्दमय प्रामाणिक जीवन बिता रहा था। यह धारणा इस विद्वानकी लेकर चलती है कि सम्यक्ताका विकास हमारी सभी मीनूदा बुराइयोंकी जड़ है। परन्तु सादम रुसो सामाजिक सविदा (Social Contract) नामक पुस्तकमें अपनी इस धारणामें सुधार कर इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि नागरिक राज्य में ही अधिक लाभ हैं। एक भू-सवर् (noble savage) के गुणोंकी वास्तविक प्रशंसा करना तो बड़ा आसान है पर मानव स्वभाव और आत्मिक मानवके इतिहासका हमें जो ज्ञान है उससे यह प्रशंसा झूठी ही साबित होती है। यह कहना बिल्कुल सही है कि मनुष्य अपनी उन्नति की वर्तमान स्थिति तक संगठित राजनीतिक समाजमें ही और उसीके द्वारा पहुँच सका है।

अराजकतावादियोंकी धारणा है कि सिंगा समझाने-बुझाने और नैतिक उपदेशोंसे हम मनुष्यके स्वभावका इतना अधिक सुधार सकते हैं कि भविष्यमें एक नैतिक ऐसा आयेगा जब हम अपने आपका राज्यसे विसुप्त मक्त कर सकेंगे। हम यह अस्वीकार नहीं करना चाहते कि ऊपर बताया गये तरीकोंमें मानव-स्वभाव का सुधार किया जा सकता है। मनुष्यके स्वभावका वहाँ तक सुधार किया जा सकता है इसका अभी तक पूरा-पूरा पता नहीं लग सका है पर यह निश्चित है कि वर्तमान समय या हमारी कल्पनामें आनेवाले भविष्यमें राज्यके न रहनेसे व्यापक रूपमें व्यवस्था और गड़बड़ी ही फैलगी। मनुष्यके भीतरकी पशु प्रवृत्तियोंका विनाश करना नहीं है और राज्यकी मंगा ही इन प्रवृत्तियोंको नियंत्रणमें रखनी है।

राज्य का दृश्य और औचित्य

(५) अराजकतावादी यह मान लत है कि एक आत्म परिवारम प्रमका ही साम्राज्य रहता है। यह एक घनतन धारणा है। मता विधि और नियम य समा बाने एक आदा परिवारमें भी पायी जाती हैं यद्यपि व बाह्यम निष्ठायी नहा दत। जसा कि हर्नगो (Hearnshaw) ने कहा है मनुष्योंके स्वभावका अपराधी प्रवृत्तियाका बाबूमें रखनेके लिए राज्यकी गतिरका सुरक्षित रहना जरूरी है। इसलिए हम कमसे कम बनमान समयम सरकारकी अधीनता और विधिका बहिमनाको छा नग मकते।

(५) अराजकतावादी राज्यकी सत्ताका समान बनने टमक पान पर ध्यक्षित व विवेकका मता शायम करना चाहत हैं। लकिन जसा कि मीक ही बना गया है ध्यक्षितका विवेक बन्त ही अस्थिर, अनिश्चित और अविबदनीय होता है।

२ धार्मिक दृष्टिकोण (The Religious View) प्रारम्भिक कालम ही राज्यक अस्तित्वका समयम इन काल्पनिक आधार पर किया गया है कि राज्यको ईबल बनाया है और राज्यकी आशाआका पालन दबी रूपसे अनुकूल है। पूर्वके अधिकांश राजतंत्र धर्मतंत्र ही य। राज्यकी सत्पनाका मतलब भी धम-सपकी मत्पना था। बूक्ति राज्यका प्रयान धम-सपका भी प्रयान होता था इसलिए राज्य और धार्मिक समुदाय एक रूप थ। हिब्रू लोग (Hebrews) म धम-सपकी सबसे अधिक बिकसित हुई। हिब्रू लोग अपने आपको परमात्माका सबम प्यारा मानत थ। यूसी राज्य (Jewish state) भी दवा इच्छाका प्रत्यय परिणाम माना जाता था और धार्मिक आधार पर ही उसका औचित्य सिद्ध किया जाता था।

यूनानी लोग भा राज्यका औचित्य धार्मिक आधार पर ही सिद्ध करते थे यद्यपि उनम धम-सपकी धारणा अधिक बिकसित न हुई थी। यूनानी सामान्य देवताआकी पूजा करते थ और यह पूजा हा राज्यकी ताब थी। राज्यकी स्थापना का ध्य किनीन किमी देवताका किया जाता था और हर नगरका अपना देवता हाता था। प्लटा और अरस्तू ने जो यूनानी राजनीतिक विचारनाम सवधुष्ट हैं एर दूगल ही दृष्टिकोण रखा। व राज्यका स्वानाधिक तथा आवश्यक मानत थ। पर उहोंने राजनातिक सनाके साथ ध्यक्षित स्वतयताक माम-सपकी समस्था हन नहा की। वे इन विचारम ही मनुष्य हो ग्य कि राज्यकी उन्मि स्वानाधिक कारणाने हुई है और राज्यमे अनय मनुष्यका जीवन प्रयुग और अपहन है।

यूनानी नगर राज्यका तरह रामन राज्यका आधार भा धार्मिक हा था। रामन मायाकि भी अनय विषय दबना हाते थ और उन मानान्य देवताआकी पूजा ही उन्हें एक मूयम बाय था। आग चलकर जब राम एक साम्राज्य हा गया ना मन्नाम दबी गुण माने जान लग।

प्रोप्ये धम मुपर का आरम्भ करनेवात मार्गिन मूदर न निमा है एक ईगाई व विष यह किनी तरह भी चिन नग है कि व अनया सरकारका विराय बने—साहू कर सरकार उचित काम कर गया हा या अनचित। उन लक्षण किनी देगाि बनने मार्ग प्र भी नहीं मानत है।

आलोचना

आधुनिक वैज्ञानिक युगमें यह तर्क कोई बल नहीं रखता कि हमें राज्यकी आत्मा केवल इसलिए माननी चाहिए कि उसकी उत्पत्ति ईश्वर द्वारा मानी जाती है। इस धारणा कोई सबल प्रमाण नहीं है कि किसी भी राज्यको सीधे ईश्वर ने बनाया है। धार्मिक प्रवृत्तिके लक्षक भी अधिक ने अधिक इतना ही मानने को तयार हैं कि राज्य के अधीन जीवन सभी उद्देश्यके अनुकूल है। यदि हम तर्कके लिए मान भी लें कि राज्यको ईश्वर ने बनाया है तो भी यह सिद्धान्त राज्यसत्ताके सही और गलत स्वरूपों के नियंत्रण कोई मदद नहीं देता।

३ शक्ति सिद्धान्त (The Physical Force) राजनीतिक चिन्तनके प्रारम्भिक कालमें ही राज्यके अस्तित्वका औचित्य इस आधार पर सिद्ध करनेकी कोशिश की गयी है कि राज्य के पास प्रबल शक्ति होती है। सॉफिस्टा (Sophists) का कहना था कि राज्य या तो दुबल लोगों पर अत्याचार करने के लिए शक्ति-सम्पन्न लोगका शासन है या शक्तिशाली अल्पसंख्यकोंके विरुद्ध बहुसंख्यक दुर्बलों का संगठन है। प्रारम्भिक ईसाई धर्म-गुरुआ और मध्यकालीन धर्म शास्त्रियों ने राज्यके ऊपर धमकी दृष्टता सिद्ध करनेके लिए राज्यकी भौतिक शक्ति पर ही अधिक बल दिया। मकियावेली राज्यको केवल एक शक्ति-व्यवस्था (power-system) मानते हैं। फिर भी अपनी प्रसिद्ध पुस्तकके अन्तमें वह स्वीकार करते हैं कि राज्यकी शक्ति राज्यके स्वार्थके लिए न हाकर जनताकी प्रतिष्ठा सम्मान और कल्याण के लिए है।

आधुनिक युग में स्पिनाडा (Spinoza) मार्क्स (Marx) एंजिल्स (Engels) नीत्स् (Nietzsche) और स्पेंसर (Spencer) ने इस विचारका प्रचार किया है कि राज्य शक्तिका मूर्तिमान स्वरूप है। स्पिनाडा का कहना है कि राज्य प्रबलतर भौतिक शक्तिका शोचक है और उसका अधिकार केवल उसकी शक्ति द्वारा ही सीमित है। मार्क्स और एंजिल्स राज्यको शासक-वर्ग का केवल एक यंत्र मानते हैं। नीत्स ने 'पारोदिक' शक्तिक आधार पर ही अपने महामानव सिद्धान्त (Theory of the Superman) का प्रतिपादन किया है। स्पेंसर का मत था कि राज्य सर्वत्र शक्तिका ही धारक है और व्यक्तिगत स्वतन्त्रताके हितमें उसका नियंत्रण जाना चाहिए।

आलोचना

यह धारणा मारपीन है कि राज्यकी आत्मा हम इसलिए माननी चाहिए कि वह सर्वाधिक शक्तिशाली लोगका शासन है। इस सिद्धान्तकी गार-हीनता क्यों न इस प्रकार साफ-साफ व्यक्त की है 'जगनके एक कानेमें मूटोरों का एक दल मूस पर हमला करता है। निष्पक्ष ही मूस मजदूर हाकर अपने लक्ष्य की घंटी उड़ें दे लेती जाती है। पर यदि मूस मजदूरों ने अपनी लक्ष्य की घंटी बजा मूस ता भी क्या मूस

यह धैर्यी जगत् को दे देने की चाहि ? क्योंकि सुदरा के हाथ में विस्तृत के रूप में शक्ति है (६३ पु० १ अ० ३)। शक्ति का अर्थ सिर झुका देना अधिक-से-अधिक चतुराई का काम बढ़ा जा सकता है पर वह नैतिक संबंध नहीं है। जसा कि सासकी ने कहा है शक्ति अपने आपमें नैतिक सत्वमें हीन है (४८ ६४)। राजनीतिक पराधीनता तभी औचित्यपूर्ण है जब इसे प्रजा की सहमति प्राप्त रहती है। एमी सम्मति के अभावमें राज्य दारों का समूह है नागरिकोंका समाज नहीं। शक्ति का औचित्य वही तक है जहां तक यह मानव अधिकारोंको कायम रखती है और उन्हें बढ़ाती है।^१ १०० एच० पीन के प्रभावशाली एच०एम राज्यका निर्माण केवल सर्वोपरि शक्ति मात्र में नहीं होता बल्कि उनका निर्माण किसी निश्चित उद्देश्यके लिए एक निश्चित तरीकेसे उपचार की गयी शक्तिसे होना है। यह उपचार मिश्रित या परम्परागत विधि के अनुसार अधिकारों की रक्षाके लिए किया जाता है।

यह सिद्धान्त वास्तवमें एक शान्तिकारी सिद्धान्त है क्योंकि इस सिद्धान्तको पूरी तरह अपना लेनेका तो यह अर्थ होगा कि किसी भी वक्ते लिए शक्तिशाली होकर सरकार पर अधिकार कर लेना 'याय-नपत' है। राज्यकी शक्ति तभी तब 'यायोचित' है जब तक वह दूसरी शक्तिशाली पराजित न करे। परन्तु राज्य की शक्ति का औचित्य उस समय समाप्त हो जाता है जबकि राज्यसे भिन्न कोई भी अर्थ शक्ति कायम करके सरकार पर अधिकार जमा लेती है और तब यह नयी शक्ति स्वयं-म्याय-समत और अधिकारपूर्ण हो जाती है। हमों की तरह हम भी यह प्रश्न कर सकते हैं कि वह कौन-सा अधिकार है जो शक्तिकी असम्पत्ताक साथ ही नष्ट हो जाता है? हमों के ही शब्दोंमें यदि शक्ति ही अधिकार का आधार है तब तो शक्ति के बदलनेमें अधिकार भी बर्णित जाता है। प्रत्येक प्रबल शक्ति पहलेकी दुबल शक्तिके अधिकारकी उत्तराधिकारिणी हो जाती है। शक्तिके बल पर अक्षय्य शक्तिशाली हो जाती है और शक्तिशाली ही हमारा सही रहता है इसलिए शक्तिवान बनना ही एक मात्र लक्ष्य हो जाता है। यदि शक्तिके कारण ही हम अपना मानते हैं तो अपने विवेकसे आजापामन करनेकी कोई आवश्यकता नहीं होती और इसके साथ ही यदि हम आजापामन करनेके लिए बिना न किया जाय तो आजापामन हमारा कर्तव्य नहीं रह जाता। यह जाहिर है कि 'शक्तिमें अधिकार' शब्दका कोई महत्व नहीं—इस प्रसंगमें यह शब्द बकार है।

यह विचार अधिकसे अधिक सरकार में अस्तित्व का औचित्य सिद्ध करता है पर

^१ शक्ति और म्यायके पारस्परिक सम्बन्धकी विवेचना करने हुए पैस्कल (Pascal) ने लिखा है 'शक्तिके बिना याय-नपत है' 'याय-विहीन शक्ति अत्याचार है। शक्ति विहीन म्याय एक क्लृप्त सम्पत्ता मात्र है क्योंकि इसे आदमियाका कर्मा अभाव नहीं रहता। इसलिए हम शक्ति और म्यायका सामंजस्य करना होगा तथा कुछ तर्की व्यवस्था करनी होगी कि जिसमें याय और शक्ति एक दूसरेके योग्य हों।

राज्यके अस्तित्वका औचित्य नही। यह किसी नासक विरापके शासनको सही बताना है लकिन किसी भी संगठित राजनीतिक समाजकी सत्ताको नहीं।

४ सविदा सिद्धान्त का दृष्टिकोण (The Contract View) पश्चिमी योरोपम सत्रहवा और अठारहवाँ शताब्दीम सविदा सिद्धान्तका उपयोग राज्यके अस्तित्वका औचित्य सिद्ध करनेके लिए बहुत अधिक किया गया था। इसके अनुसार राज्यकी सत्ता इसलिए ठीक मानी जाती है कि इस सत्ताको हमने अपनी स्वेच्छासे राज्यको दिया है। ऐसा लगता है कि राज्यके अस्तित्वका औचित्य साधित करनेके लिए हमसे अच्छा कोई और तरीका नही था। यह कहा जा सकता है कि चूकि राज्यकी उत्पत्ति हम लोगोंको सम्मतिसे हुई है इसलिए हमकी आज्ञा मानना दातप्रतिपात यकिन मगन है।

आलोचना

थोड़ा-सा विचार करते ही यह स्पष्ट हो जाता है कि सविदाको राजनीतिक सत्ता का आधार बनाना युक्ति-संगत नहीं।

(१) इतिहासके अध्ययनसे हमें किसी ऐसे राज्यका पता नहीं चलता जिसकी स्थापना मनुष्याने आपसम करार करनेकी हो। राज्यका क्रमिक विकास हुआ है ऐसा नही हुआ है कि कुछ बिनाप लोगोंने किसी एक समय और एक स्थान पर मिलकर राज्य का निर्माण कर लिया हो।

(२) यदि राज्यकी आज्ञा मानना इसलिए उचित माना जाय कि वह हमारी पूरा सहमति पर आधारित है तो किसी भी विधिको लागू करनेसे पहले उसके लिए सबकी सहमति जरूरी होगी। बहुमत ही काफी नही है। अल्पमत समुदायका बहु मत द्वारा दबाया जाना किसी प्रकार भी उचित नही है। इस विचारको हवट स्मिथर ने अपनी राजनीतिक व्याख्याम अच्छी तरहसे समझाया है। एक सच्चे व्यक्तिवादकी भाति स्मिथर का कहना है कि राज्यको केवल वही बाय करने चाहिए जिन्हें जनता ने राज्यको दोगलित मौँपा हो कि वह स्वयं उन्हें नहीं कर सकती। उनके अनुसार वह बाय हैं—(क) बाहरी शत्रुओंसे रक्षा (ख) आन्तरिक शत्रुओंसे रक्षा (ग) भूमिका राष्ट्रीयकरण (स्मिथर ने अपने बान्मे मिल प्रथमि अन्तिम कार्यको हटाकर उसकी जगह करारोंका बायावन करना रखा है)। रण्यक कार्यका निमित्त करते ही स्मिथर ने कुछ एम बाधन भी लगाय हैं जा युक्तिपूर्ण नही जान पड़ते हैं। वह यह महसूस करते हैं कि इन तीन महत्वपूर्ण बायोंके सम्बन्धम भी हम किसी भी समाज म गवगभन स्वीकृति नही पा सकते। उनका कहना है कि युद्धको नतिक दृष्टिसे बुरा समननवाप ध्यतिन तथा बेचर समाज (Quakers) अपनी रक्षा हतु किय गये युद्ध का भी विरोध करेंगे। अचरपी बग आन्तरिक गुरगाने लिए किय गये बायोंका भी विरोध करेगा और प्रमाण्य बग भूमिके राष्ट्रीयकरण को पग नही करेगा। इन

कारण इन मामलों में मजसूमतिका सिद्धान्त लागू नही किया जा सकता। अब प्रश्न यह उठता है कि जब इन मामलों में मजसूमतिका आवश्यक नहीं है तो अब विषय में ही उस पर क्या अज्ञात जाय। स्पेशल सावजनिक गिना और फौजदारी विधि आदि विरोधी हैं। आजकल युगमें ऐसे बहुतसे लोग मिलेंगे जो अनिवाय मजसूमतिका फौजदारी विधिसे बुरा मानते हैं। उनका कहना है कि अगर दबाव हातना हा हो तो अनिवाय सैनिक भर्तिका बजाय फौजदारी विधि द्वारा गतिवता उपपाय करना अधिक न्याय-संगत और ठीक है। परन्तु हमें इस नीति पर पहुँचना भी पता है कि राजनीतिक सत्ता और व्यक्तिगत नैतिकता के मजसूमतिका सिद्धान्तों से हल नहीं हो सकती।

(३) यदि किसी विषय में मजसूमतिका सम्भव भी हो तो भी आधुनिक राज्याय यह इस कारण नहीं हो सकता क्योंकि किसी न किसी प्रकारकी प्रतिनिधि सरकारके द्वारा ही राज्यकी इच्छा या सम्मतिकी अभिव्यक्ति हो सकती है। वर्तमान परिस्थिति में प्रत्यक्ष लोकतन्त्र अस्मभव है। यह कहना कि एसे मामलोंमें मौन सहमति ही पर्याप्त है, जैसाकि सविदा-सिद्धान्तके समर्थक कहते हैं उचित नहीं है। क्योंकि सहमतिकी अर्थ है मनुष्यकी इच्छाकी अभिव्यक्ति और यह व्यक्तिकी मौन सहमतिके नही बल्कि उसके सक्रिय भावसे ही हो सकता है (४० ३१)।

(४) अगर सहमति स्वच्छास दी जाती है तो वह स्पेशलमें वापस आनी जा सकती है और फिर यह हो सकता है कि सहमतिके वापस लेनवाय आपसमें मिलकर एक नये राजकी स्थापना कर दें। हॉल्म ने इन कठिनाईका समाधान था और उनका दूर करने के लिए अपने कहा था कि मनुष्योंका एकद्वार आपसमें बाँधी करके करनेके बाद उसे बराबर मानन रहना चाहिए। इस प्रकारके तर्क बाँधी बन नही है। यह तो हॉल्म की बोरी कल्पना ही है जिसका समर्थन हमारे अनुभव या बुद्धिमें नही होता। मजसूमतिका सिद्धान्तके अर्थ समझनाका कहना है कि जो वाय सहमति वापस लें उन्हें राज्यमें भीतर विदेशी माना जाय। यह एक सूक्ष्मसाधन बात है। हम स्पेशल में इस दृष्टिको स्वीकार नहीं कर सकते कि व्यक्तिको यह अधिकार है कि वह अपने-आप विधायन परे (outlaw) बनाय और फिर भी राज्यमें ही बना रहें। इस तरहके अधिकार में जो प्रायः असम्भव हो जायगा और परिणाम-स्वरूप अराजकता फैल जायगी।

(५) डेविड ह्यूम (David Hume) ने मजसूमतिका सिद्धान्तकी मजसूम अधिक बढाकर आराधना की है। उनके अनुसार यह सिद्धान्त प्राक्निर्णय है क्योंकि इसमें किसी एसी गतिवता स्थापन ही नही है जो व्यक्तिको मजसूमतिका वापस लय सके। टी० एच० हीन का भी यही मत है। उनका कहना है कि प्राक्निर्णय अवस्थामें मजसूम वाय मनुष्य जिस मजसूमतिका करत हुए मान जाते हैं वह वास्तवमें मजसूम ही नही बल्कि उनमें मजसूमतिका लागू करनेकी ही कोई गति नही है। सम्प्रभुत्वका हम मजसूमतिका स्थापित नहीं है। वह अपने-आप मौजूद नही है जैसा कि जाना चाहिए था।

X उपोपनिषत्की दृष्टिकोण (The Utilitarian View) पर्यन्त

विचारकोन राज्यके अस्तित्वका औचित्य उपयोगिताके आधार पर सिद्ध करनेकी काशिश की है। उनका कहना है कि राज्यका मौलिक औचित्य इस बातमें है कि वह व्यवस्था स्थापित करता तथा विधि बनाता है बाहरी और आन्तरिक शत्रुआसे व्यक्तिकी रक्षा करता है सविदाआका पालन करवाना है व्यक्तियों और विभिन्न सभोंका सम्बन्ध व्यवस्थित करता है साहित्य कला और विज्ञानका विकास करता है और संक्षेपमें वह उस वातावरणकी रचना करता है जिसमें समाजका जीवन कमसे कम सघर्षमय और अधिक-से-अधिक कल्याण प्रवृत्त होते। लास्की ने अपनी पुस्तक 'इन्ट्रोडक्शन टु पॉलिटिक्स' (Introduction to Politics पृष्ठ ३२) में कहा है कि राज्यकी 'व्यक्तिगत औचित्य उन उद्देश्यों द्वारा ही सिद्ध किया जा सकता है जिन्हें राज्य पूरा करना चाहता है। राज्यकी विधियां ऐसी हानी चाहिए कि वह उन उद्देश्योंको पूरा कर सके जिन्हें पूरा करना उसका लक्ष्य है। राज्यका विभिन्न हितोंके सम्मानको व्यवस्थित करना पड़ता है। इनमेंसे कुछ हित व्यक्तिगत और कुछ सामूहिक होते हैं इनमें आपसमें प्रतिभोगिता भी होती है और सहयोग भी। राज्यकी यह भांग कि प्रजा उसकी आज्ञाका पालन करे उसकी उम्र क्षमता पर आधारित होनी चाहिए जिसके द्वारा राज्य नानिजारी सामाजिक भांगको पूरा करनेमें समर्थ होता है। राज्यको विभिन्न हितोंका ऐसा सम्मूलन करना चाहिए कि उसका परिणाम अथ किसी प्रकारमें प्राण परिणामोंमें अधिक मन्तोपजनक हो।

आलोचना

राज्यके अस्तित्वके समर्थनमें अथ गण हमने जितने दृष्टिकोणों पर विचार किया है उन सबमें उक्त दृष्टिकोण निस्सन्देह सबसे अधिक मन्तोपजनक है। फिर भी हमकी आलोचना इस प्रकार की जाती है —

(१) इस बातकी बहुत बड़ा आभास है कि उपयोगितावादका सिद्धान्त राज्यके प्रति एक अत्यन्त मनुष्य-दृष्टिकोण अपनाव और राज्यको मात्र मानव उपयोगिता केन्द्रित मान बढा। पिछले एक अध्यायमें हमने यह स्पष्ट कर दिया था कि राज्य भौतिक कार्योंकी पूर्तिके लिए ही स्थापित नहीं हुआ है। यह ठीक है कि राज्य का अपने सदस्योंका भौतिक कल्याण भी करना चाहिए परन्तु इसके साथ ही उसका एक नैतिक और आध्यात्मिक कर्तव्य भी है। राज्य समस्त मनुष्योंकी एक भागीदारी (a partnership in all virtue) है। राज्यके अनेक उद्देश्योंमें से एक उद्देश्य और सम्भवतः सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य यह है कि वह मानव 'आत्माकी श्रेष्ठता' (excellence of souls) का विकास करे (४)। राज्य समाजकी प्रमत्त नैतिक संस्थाओंमें से एक है। राज्यका औचित्य केवल उपयोगिताके आधार पर सिद्ध करना कुछ धमका ही है अतः यह कहना कि परिवारका अस्तित्व केवल साम्प्रदायिक गुणके लिए बचने पना करनेके लिए और मानव जातिका बचानेके लिए है। राज्य और परिवार

गनाका एक नस्तिव उद्देश्य है। दोनों ही व्यक्तिव लिए परस्पर सम्बन्धका जावन सम्भव बनाना है। फलतः व्यक्तिवके लिए आत्मानुभूति (self realization) साधन हा जानो है।

(२) उपयोगितावादी राज्यका व्यक्तिव सम्बन्धका साधन-मात्र समझन की भूल कर सकत है जबकि राज्य साध्य और साधन दाना ही है। राज्य बनमान पीढ़ी के साथ ही साथ भावी पीढ़ीवाले सम्बन्धकी भी धिन्ता करना है। इस तरहमे यह स्वयं साध्य माना जा सकता है।

इन सब श्रुतियाँके ज्ञान हुए भी हम डा० अप्पाडोराल (Dr Appadoral) के इस कथनसे सहमत हा सकते हैं कि यह सिद्धांत हम ऐसा नारा देता है जा दीप्त ही नाकप्रिय हा जाना है और जा राज्यक द्वारा किये गये कार्योंका परखनकी एक कसौटी का नाम दे सकता है।

६ सगठन की आवश्यकता (Necessity of Organization) सगठन की आवश्यकता पर जार देन वाले राज्यक उपयोगितावादी औचित्यका समर्थन विनियम प्रकारसे करत हैं। आन्तिम मानव सगठनका महत्त्व तथा समझना था। उन दिनों जो भी सगठन था वह साधारण ढंगका और बहुत कुछ प्रेरणा पर ही आधारित था। लेकिन समय युगमे सगठनकी स्थापना प्रत्येक सम्भव उद्देश्यकी पूर्तिके लिए हुई है। हमने अनुभवसे यह सीखा है कि कुछ कार्योंका एक व्यक्तिकी आशा समूह बढ़ी तरह कर सकता है। व्यवसाय के लिए कला विज्ञान और धर्म से प्राप्त ज्ञान बान मुसकी वृद्धिके लिए एक युद्ध और धान्तिवके लिए हम सगठित हात हैं। इस धान्तिका शक्तिपूत्रक स्थापित करनके लिए भी सगठित ज्ञाने हैं। आधुनिक समाजमे सगठनकी समस्या अत्यधिक है परन्तु राज्य इन सबमे धरु महत्त्वपूर्ण और व्यापक है। राज्य एक ऐसा सगठन है जिस पर अन्य सभी सगठन निर्भर करत हैं और उसमे शक्ति प्राप्त करत हैं। एमे सगठनको अपने उद्देश्योंकी प्राप्तिके लिए कुछ नियम और विधियों की आवश्यकता हाती है। साथ ही अपनी इच्छाभाका कार्य रूप देनेके लिए उमे पर्याप्त धान्तिव शक्तिकी आवश्यकता हाती है।

आलोचना

यद्यपि इस सिद्धान्तके विरुद्ध हमे कई आपत्ति नहीं है किन्तु भी उपयोगितावादी सिद्धान्तकी आलोचनाएँ हम पर भी लागू हाती हैं।

अरन्तु के समर्थन ही यह साबित करन की कोशिश की गयी है कि मनुष्यमे स्वाभाविक राजनीतिक प्रवृत्ति हाती है और वह सामन के अधीन स्वनाशन रहता है। मनुष्य का राजनीतिक प्राणी कहा गया है।

आलोचना

७ मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण (The Psychological View) (१) यदि

यह जान मान ली जायता भा इस मध्यका समाधान कैसे हांग कि समाजम ऐसे व्यक्ति भी है जा यह नही मानत कि उनका अन्दर कोई प्रवृत्तिमूलक सामाजिक या राजनीतिक भावना मौजूद है। एस्किमा लोग (Eskimoes) के इतिहासका आधार मानने पर तो यह स्वामार करना पडगा कि राज्य एक सावभौम आवश्यक्ता नहा है—क्याकि एस्किमा लोगारा समाज तो है पर उनका कोई राज्य नही है।

(२) कवन यह कहना ही काफी नहा है कि राज्यकी उत्पत्ति मानव प्रवृत्तिसँ हुई है। यह जरूरी नहा है कि प्ररणा से उत्पन्न हर वस्तु कल्याणकारी और बनाय रखन योग्य ही हो। जमा कि विनाबी (Willoughby) ने कहा है राजनीति शास्त्र म हमारी मुख्य समस्या यह है कि राजनातिक सत्ताका उपयोग मानवीय तौर पर हा और राजनातिक सत्ता तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता म सामंजस्य स्थापित हो। इस समस्याको मुलज्ञानम भनावनानिक दृष्टिकोण हमारी बाई सहायता नही करता। यह दृष्टिकोण यह नही बनाता कि राजनीतिक सत्ताका प्रयोग कैसे तथा किसने द्वारा हा और व्यक्तिगत स्वतंत्रताका साथ उसका समबन्ध कसे हा।

आदर्शवादी दृष्टिकोण (The Idealistic View) आदर्शवादी सिद्धान्त सबसे अधिक सन्तापप्रद जान पडता है। इस दृष्टिकोण के अनुसार राज्यकी आज्ञा मानना इसलिए उचित है कि राज्य हमारे सबथेठ आन्तरिक गुणाका प्रतीक है। राज्य न ता व्यक्तिका गन्तु है और न वह एक तन्त्रिय पयवेशक ही है। वह तो व्यक्ति का सच्चा मित्र है। राज्यकी इच्छा मानकर हम अपनी उन इच्छाअंका पासन करते हैं जो स्वाय रहित होकर तब हा चुकी होती हैं। अपने सच्च रूपम राज्य और व्यक्ति एक रूप हैं। हीगल के दार्शनिक 'राज्य स्वतंत्रताका यथार्थ रूप (actualisation of freedom) या स्वतंत्रता का मूर्त रूप (embodiment of concrete freedom) है।

आदर्शवादी दृष्टिकोणसँ राज्य एक नतिक संस्था है। राज्य ऐसे स्वतंत्र सामाजिक जीवनको सम्भव बनाता है जिसके बिना मनुष्यका पूरा विकास नही हो सकता। राज्य हमारा ही दूसरा रूप है। यह व्यक्तिका स्वामाधिक विकास और प्रसार है। यह मनुष्य को अपनी इच्छा और विवकका प्रकट करनेका मौका देता है। यह नैतिक जीवनकी बाहरी परिस्थितियाका तयार करता है। यह पूरे समाजका एकता स्थिरता और अधिकाधिक आम कतना प्रदान करता है (८१ १४८)। राज्य अधिकाराका व्यवस्थित करनेका है और सामाजिक ग्यायका सस्था है (८१ १४८)। अतः राज्यकी आज्ञापालन करना एक नैतिक कर्तव्य हा जाता है।

टी० एच० पीन न राज्यकी आज्ञा मानना इसी प्रकार उचित ठहराया है। वह इस प्रसिद्ध विचारका विराय करते हैं कि नतिकताका आधार मनुष्यका विवेक और राजनीतिक अधीनताका आधार शक्ति है। उनकी यह धारणा बिस्तुल टीक है कि नैतिकता और राजनीतिक अधीनता दानाका एक ही सान है। यह सान है बुद्ध व्यक्तिया द्वारा सामाजिक बन्दागकी धारणाका विवेकपूर्वक विचार किया जाना।

यह बल्याण व्यक्तियोंका भी बल्याण है और व्यक्ति उसे अपना कल्याण मानन भी हैं। अतः ही उनमेंसे कुछ व्यक्ति बिना विचार परिस्थितियोंमें उस बल्याणकी ओर प्रवृत्त हों माने हैं। सामाजिक बल्याणकी यह स्वीकृति एक नियम के रूपमें भी प्रकट होती है जिनके द्वारा व्यक्तिगत प्रवृत्तियोंका नियंत्रणमें रखा जाता है। यह मानवता और राजनीतिक अधीनताका स्यात् है। इस नियंत्रणके अनुपातमें ही सामाजिक बल्याण करनेवाले कार्योंका करनेकी स्वतंत्रता मितता है (२० १२४ १२५)। नैतिकता और राजनीतिक अधीनतामें पहली धारणाएँ होती हैं (क) मुक्त करना ही होगा यद्यपि य पक्ष नही करता' (ख) मुक्त करना ही होगा क्योंकि यह सामान्य बल्याणके लिए है जिसमें मर्यादा भी बल्याण सम्प्रेषित है (० १ ४ १ ५)। चीन आज कहते हैं कि बवल मय ही राज्यकी आशापालनका धार्मिक कारण नही हो सकता। नागरिक अधीनताका आधार बवल मयका मानना नागरिक और दायित्व अन्तरका मित्र देना है। मम पर आधारित अधीनता कभी भी राजनीतिक या स्वाधीन समाजका आधार नही बन सकती।

आलोचना

(१) इतना ही निस्सन्देह कहा जायगा कि उपर्युक्त विचार बवल कल्पना ही है क्योंकि जैसा राज्यका विषय इसमें लाया गया है वसा राज्य कहा है ही नहीं। चीन की भाँति यह प्रश्न किया जा सकता है कि 'क्या आधुनिक' सामाजिक राजनीतिक अधीनताको प्रकाश इच्छा पर आधारित बनाना 'गणतन्त्र' साथ सिमकाट करना नही है? (२९ १२४ १२५)। मन्त्रिजसा कि चीन न स्वयं कहा है व्यक्ति राज्यका ब्रह्माण्ड उसा हूँ तक बन सकता है जिस हृद तक यह यह अनुभव करना है कि राज्य स सामान्य बल्याणकी सिद्धि होती है और उसका अपना बल्याण उस सामान्य बल्याण का ही एक अभिन्न अंग है। उसकी राज्य भक्ति सभी सच्चो और स्थायी हो सकती है जब उसके हृदयमें राज्यके प्रति वैसी ही भावना हो जैसी मावना उसका हृदयमें अपने पर और परिवारके लिए है। हम यह स्वीकार करते हैं कि अन्त्ये अन्त सामाजिक भी हम प्रभारकी भावना बवल आधिकारिक रूपमें ही पाया जाती है। हम हीनत्व की तरह नही कह सकते कि एक आदर्श राज्य उस समयके प्रागुदय सामाजिक तरह या अथर्व विज्ञान सामाजिकी तरह ही हो सकता है। फिर भी हम स्वीकार करते हैं कि राज्य सामाजिक बल्याणकी भावनाका मूलरूप है वह चाह जितना मनुज क्यों न हो। यह भावना ही राजनीतिक अधीनता का सच्चा स्रोत है।

(२) सामाजिक आशावादी औचित्यके विरोधी सम्भवतः यह दर्शाते हैं कि राज्य का निर्माण गतिमान होगा है और अन्ततः वह स्थायी बन जाना है अपना राजनीतिक अधीनताका आधार सामाजिक गुणवत्ता (social expediency) है। इसमें ही कोई सन्देह नही कि सामाजिक उत्पत्ति और उसके स्थायी होनेमें स्वार्थ, गति और

मय न बहुत बड़ा काम किया है। परन्तु इन सबसे सभी तक अच्छे परिणाम निकले हैं जब तक कि वे स्वायत्त रहित रहें हैं (२९-१६)। साम्य एक दबाव डालनेवाला शक्ति की उपस्थिति ने ही इस विचारधाराका मूल दिया है कि साम्य दबाव डालने वाली शक्ति (coercive power) पर आधारित है जबकि असत्यत यह है कि दबाव डालनेवाली शक्ति कबल इसलिए सर्वोपरि होती है कि उसका उपयोग साम्य द्वारा किसी लिखित या परम्परागत विधिके अनुसार किया जाता है (२९-१६)।

(२) यह भी कहा जा सकता है कि यदि हम उसके लिए मान भी लें कि साम्य ही इच्छा या सम्मति ही राज्यका आधार है तो यह आधार तो केवल सांख्यिकीय साम्य ही हो सकता है। जब तक लागू राज्यक विधि निर्माण और शासन प्रबंधन सक्रिय भाग न लें तब तक उनमें राज्य और सांख्यिकीय हितके प्रति इस प्रकारकी भावना कैसे उत्पन्न हो सकती है। इस आलाचनाम पर्याप्त बस है और हम इस साधारणतया ठीक माननेका विषय हैं। फिर भी हमारा विश्वास है कि जिस देश में सांख्यिकीय शासन न हो उसमें भी जनताकी सम्मति अप्रत्यक्ष रूपसे प्राप्त रहती है वशनें कि उस देश में शांति और व्यवस्था कायम है और पाई व्यापक जन-द्वन्द्व नही होता।

ऊपर जा कुछ कहा गया है उस ध्यानमें रहते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि साम्यकी आगे मानना अपन ही उच्चतर व्यक्तित्वकी आगे मानना है और यदि किसी विषय अवस्थामें ऐसी स्थिति न हो तो गम्भीर स्थिति पैदा करनेकी कोशिश हम बराबर करनी चाहिए।

राज्यका उद्देश्य

(The End of the State)

राज्यक उद्देश्यका विवेचन किये बिना राज्यक मोक्षलक्ष्यका विवेचन अपूर्ण ही रह जाता है। इस विषय पर विचार करते समय प्रायः तात्कालिक उद्देश्य (immediate or proximate end) और अन्तिम उद्देश्य (final or ultimate end) का बोध अन्तर किया जाता है। पहले प्रकारके उद्देश्यको समझना तो सरल है पर दूसरे प्रकारके उद्देश्यको समझनेके लिए हमें ज्ञानकी अपूर्ण निष्ठाकी अधिष्ठान आवश्यकता है।

यूनानी लोग राज्यका उद्देश्य आत्मनिर्भरता मानते थे। उनका कहना था कि साम्यका उन सभी कामका प्रबंध करना चाहिए जो नागरिकोंके सर्वोच्च विश्वास और सुखके लिए आवश्यक हैं। प्यन्थ के अनुसार राज्य एक अणु विश्व (macrocosm) है किन्तु व्यक्तिगत शक्ति स्थान मिल सकता है और व्यक्ति उन कामोंका कर सकता है जिनके लिए वह सबसे अधिक उपयुक्त है। शासकों और योद्धाओंको राज्यके अधिकतम कल्याणके लिए तत्कालिकतम प्रयत्न करना चाहिए। इस उद्देश्यमें प्यन्थ ने उनके लिए साम्यवादी दृष्टिकोणकी व्यवस्था प्रतिपादित की थी। प्यन्थ के विचारसे

राज्य एक नया संगठन है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक वर्गके लिए एक निश्चित स्थान है जिसके द्वारा पूरा करता है और ऐसा करना उसका मुख्य ध्येय है।

असम्भूत का विकास था कि राजकी उद्देश्य नागरिकोंके हितोंका विकास करना है। पर वह नाना प्रकारके नगर राजकी आत्म-निर्भरता पर विचार करता है। जिसका उद्देश्य व्यक्तिके अधिकतम अधिक सुखी बनाना था। अपना पुस्तक 'पॉलिटिक्स' (Politics) में उन्होंने एक पूरे अध्यायमें इस विषय पर विचार किया है। उन अध्याय का संक्षेप इस प्रकार है

राजकी अस्तित्व सम्पत्ति समाज तथा सुरक्षाके लिए न होकर अच्छे जीवनके लिए है। यदि कवन अस्तित्व है राजकी उद्देश्य जाना ना जान और जगत्ता जीव भी राजकी बना नत। पर वह ऐसा नहीं कर सकत क्योंकि वह सुखी तथा स्वतंत्र जीवनके लक्ष्यका प्राप्त नहीं कर सकत। यदि सचि और अज्ञानके मुरझा या विनिमय और पारस्परिक सम्बन्ध ही राजकी उद्देश्य जाने ना व्यावसायिक सचियी करनेवाले सभी साग राजकी नागरिक ना जान। उनके सामान्य स्वाभाविक नहीं जान और राजकी राजकी और अन्यायके लक्ष्यका नाइ सराबार नहीं जाना और वे नागरिकोंके लक्ष्यका रूप तक पहुँचानका प्रयत्न नहीं करते। राजकी संस्था और बुराई पर भी ध्यान देता है। वह जीवन और सम्पत्तिका रक्षाके लिए किये गए समझौते मानने अधिक है।

राजकी कवन अन्तर्विवाह पारस्परिक सम्बन्ध विनिमय और सामाजिक विकास स्थान ही निहित ना है। राजकी अर्थ इन सबके लक्ष्य अधिक है और वह अर्थ है सामाजिक कल्याणकी भावना। राजकी कवन एक ऐसा समाज ना है जिसमें सामाजिक प्रयत्न हो और जिसकी स्थापना अन्तर्घातका रक्षके और विनिमयके लिए की गयी हो। यह परिवारों और परिवार समूहोंके बीच कल्याणका सामाजिक भावना है जिसका उद्देश्य पूरा जो आत्म निर्भर जीवन है। कल्याणकी यह सामाजिक भावना उहा लक्ष्यके सम्बन्ध है जो एक ही लक्ष्यमें रहने हा और जिसमें आपसमें विवाह अदि हूँ हा। उसका उद्देश्य सुख जीवन है और उसे प्राप्त करनेके निम्नलिखित साधन हैं— पारिवारिक सम्बन्ध मर्द और महिला सम्पत्ति पूरा मनोरंजन इत्यादि। परिवार और गाँवका विकास राजकी बनाता है और उसका उद्देश्य पूरा और आत्मनिर्भर जीवन हाता है।

इस प्रकार राजकीय समाजका अस्तित्व अर्थ कार्यके लिए हाता है कवन साथ रहनेके लिए नहीं और जो सामान्य समाजके लिए सबसे अधिक सामान्य देन है वही सामन करनेके अधिकारी हैं।

सामाजिक राजकी उद्देश्य पर कवन अधिक विचार नहीं किया। उनका ध्येय अधिकतर अपने साम्राज्यके लिये ही रहा। सुख-सुविधाके लक्ष्य और पश्चिमी कल्याणका कवन देन दान—जना अधिक कि साम्राज्यके पवनके कवन भी राजकी नाम और लोचक कई सचियी कर बना रहा।

मध्य-युग भी राज्य उद्भय पर अधिक विचार नहीं किया गया। धार्मिक लेखकाने तो आमदौर पर राज्यको नास्तिकासे ईसाई धर्मको बचानेका बबल एक साधन माना। एक्वाइनस (Aquinas) का विचार था कि राज्यका अस्तित्व दान्ति व एबताकी स्थापना और अच्छे जीवनकी वृद्धिके लिए था। राज्यका महत्व इस बातमें माना जाता था कि वह धार्मिक या आध्यात्मिक दृष्टिकोणन निश्चित क्रिय गये लक्ष्याकी प्राप्तिमें सहायक हा।

राज्यके उद्देश्यके बारेमें गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाना आधुनिक युग ही आरम्भ हुआ। यह उस समय हुआ जब लोगोंने उदार विचार फैल और यह धारणा समाप्त हा गयी कि राज्य राजाकी बचीती है। अब से साग न यह अनुभव किया कि राज्य जनताकी चाती है, तभीसे राज्यक उद्भयके बारेमें अनेक सिद्धान्तोंका विकास हुआ।

हॉस के अनुसार व्यवस्था और सम्पत्तिका अधिकार कायम रखना राज्यका उद्भय था। नागरिक समाज कायम होनेके पहले जो प्राकृतिक अवस्था थी। उसने सम्बन्धमें हॉस का दृष्टिकोण इतना निराशापूर्ण था कि राज्य न होनेकी अपेक्षा किसी प्रकारका भी राज्य हाना उन्हें अच्छा जान पड़ता था। अराजकताकी अपेक्षा निरकुश अन्यायकारी शासन उनक विचाराम अच्छा था। इसी प्रकार मॉक के विचारसे राज्य का उद्देश्य एक निश्चित विधि और सामान्य यायाधीनकी सहायतासे जीवन, सम्पत्ति और स्वतन्त्रताकी रक्षा करना है। रूसो म हम फिर इस विचारका पाते हैं कि राज्यका अस्तित्व व्यक्तिज जीवनको सुन्दर बनानेके लिए है यद्यपि वह इस बात को इसी रूपमें नहीं कहते। उनका विश्वास है कि राज्य बबल उपयोगी उद्भयकी प्राप्तिको सुविधाजनक बनानेका साधन मात्र नहीं है बल्कि वह मनुष्यके सर्वोत्तम रूपकी उच्चतम अभिव्यक्ति है।

१ राज्यका उद्भय-सावजनिक सुख (The End as General Happiness) १९वीं शताब्दीके आरम्भमें जेरेमी बेन्थम (Jeremy Bentham) ने इस विचारका प्रचार किया कि राज्यका उद्भय अधिकतम अधिकतम अधिकतम अधिकतम सुखकी वृद्धि करना है। आज भी इस उपयोगितावादी विचारको बहुत माना जाता है। १९वीं शताब्दीके ईंग्लैण्डमें अनेक सामाजिक और राजनीतिक गुधारणों का ध्येय इसी विचारको है। इस सिद्धान्तकी प्रेरणा ही दरिद्रों भूमि और शलाक़के सम्बन्धित विधियाम तथा जल व्यवस्थाम और मताधिकार एवं सारजनिक निर्माण क्षेत्रम विषय तौर पर गुधार हुए। कुछ ससकाने 'अधिकतम सुख' के स्थान पर अधिकतम कल्याण' लिखा है। इस मुद्दारके बावजूद इन सिद्धान्तम बहुमतक हितम अल्पमतके हितके बलिदानकी आका और अल्पमतके लक्ष्याकी याग्यताका यहुगम्यक सागाकी अयाग्यताक अर्पण क्रिय जानेका भय है। समाजम बर्धनिक उद्भयका स्थान पर सामाजिकताको इस सिद्धान्तके विनिर्माण है। इसके अनिश्चित मानन्दके अर्थमें गुण को परिभाषा करता बड़ा बर्धन है। वही भी दो व्यक्तिज प्रदान पर एकत्र नहीं

है कि मुख्य क्या है। अर्थात् नापाके आनन्द का नाप ज्ञान करने और सावजनिक सुख का बढि करनेका काम राज्यका मोंपना एक असम्भव बात है। हर व्यक्ति यह जानता है कि उस जिस आनन्द या सुख भितना है परन्तु यह काइ नया जानता कि सावजनिक आनन्दका स्वरूप क्या होगा। अतः अतिरिक्त उपयोगितावांग मिद्वान्त का अन्वित्वांग व्यक्तिवांगी ही है और वह समाजक जविक स्वरूप (organic nature) पर विचार नहा करता। इन सब बुटिकाक वादमू इस मिद्वान्तन मुख्यका मुक्त और प्रचलित अर्थमि प्रयोग करके अनक मानवतावांग विविधाक निमांगम यांगान निदा है। जसा कि गिलक्राइस्ट न कहा है यह सिद्वान्त विधियाने उपांगी एक व्यावहारिक अभिव्यक्ति है परन्तु राज्यक उद्देश्यका पूरा अभिव्यक्तिक रूपम यह कतौगी पर सरा नह उतरगा (२८ १२७)।

२ राज्यका उद्देश्य—व्यवस्था बनाय रखना (The End as Maintenance of Order) राज्यक उद्देश्यक आरम्भ १९वा गतांगम अथ अनक मिद्वान्त प्रचलित हुए थ। इनमे से सबसे अधिक ताकतिय यह व्यक्तिवांग सिद्वान्त कहा कि राज्यका अस्तित्व बनन व्यवस्था बनाय रखनक निण है।^१ अथ सत्यकान इस सिद्वान्तका विस्तार करके व्यवस्थाक शाय शान्ति और सुरक्षाका भी जाह निदा है। यह मागकी गयी कि हर व्यक्तिका अचना कल्याण करनक निण स्वतंत्र द्वाड निदा जाय और राज्य उसम किमी प्रकारका हस्तगन न करे। यह दवात ग जाता है कि राज्यका काम ता नाप का बाहरी तथा अंतरी नक नि सुरणित रखना है जिसस माग शान्तिरूबरक रह सकें। राज्यक उद्देश्यक सम्बन्धम यह कहा सकता दृष्टिका है। जावन तथा सम्भलितरी रणा करना निस्संगे राज्यका कतव्य है परन्तु यहा राज्यका एकमात्र उद्देश्यनहा है। यह सिद्वान्त अपन व्यावहारिक रूपम जमी स्थितिका उचित विद्व करनेका प्रयत्न करता है जा इस समय मौजू है और इन तरह प्रगतिवा विचार करता है। इस बातकी बहुत बरी आशंका है कि यह सिद्वान्त मौजूग हालतका ही जाका त्या कामम रणया बाहू बहु-ज्ञानत्र कामम रखन यान्य हा या न हा।

३ राज्यका उद्देश्य—प्रगति (The End as Progress) बुद्ध सागाने प्रगतिवा राज्यका उद्देश्य उहाराया है। पर प्रगति अंगन ही ता राज्यका तन्म स्पष्ट नहीं जाता। यदि हम यह नय न मानूम हा जिस सन्धकी आर प्रगति करना है ता प्रगतिवा काइ अय नया रह जाता। प्रगति का सम्भव बनानक निण पहले सदन निश्चित करनना आवश्यक है।

४ राज्यका उद्देश्य—सामाजिक सेवा (The End as Social Service) समाजवांगी विचारपाठकान बुद्ध नापाका कहना है कि राज्यका अस्तित्व अर्थात् है कि वह न सामाजिक सेवाओंका प्रोत्साहित कर जिनका सम्बन्ध सामाजिक शिवा

^१ कायू थ विचारक राज्यका उद्देश्य बानूतका बनाय रखना और प्रत्येक सदस्य का व्यक्तिक स्वतंत्रताकी सुरक्षा है।

की प्राप्ति है न कि बाहरी आक्रमणसे व्यक्तिकी रक्षा और राज्यन नागरिकाक बीच व्ययस्था कायम रखनस (१०)। हम देखते हैं कि आधुनिक राज्यामें यह उद्देश्य दिन प्रतिदिन अधिकाधिक महत्त्व प्राप्त कर रहा है। आधुनिक राज्य सामाजिक हानाम्य आचरण और अधिक हिंसाकी वृद्धिकी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेते हैं। इनमें से अधिकांश राज्योंकी क्षतिग्रहणका विस्तार इस प्रकार करता चाहते हैं कि उत्पादन और वितरणके माध्यमकी व्यवस्था और उनका स्वामित्व भी राज्यके अधिकारमें आ जाय (उत्पादनके लिए आजकल भारतमें प्रचलित कल्याणकारी राज्य (welfare state) का आदर्श)। इस सिद्धांतकी मुख्य आलोचना यह है कि यह राज्यके कार्यों की सीमाका सिद्धान्त है राज्यके उद्देश्यका नहीं।

५ राज्यका उद्देश्य-न्याय (The End as Justice) आजकल बहुतसे लेखक 'न्याय'को ही राज्यका उद्देश्य मानते हैं। ये लेखक प्रायः आदर्शवादी हैं। परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि सभी आदर्शवादी 'न्याय'का ही राजनीतिक उद्देश्यके रूपमें स्वीकार करते हैं।

हर्जरिंग्टन एव म्यारहेड (Hetherington and Muirhead) ने अपनी पुस्तक *Social Purpose* में यह मत प्रकट किया है कि राज्यका प्रधान कर्तव्य राज्य न्यायका व्यवस्था करना ही रहा है। 'न्याय'की व्याख्या उन्होंने इस प्रकार की है— जीवनकी एक ऐसी व्यवस्था जिसमें मनुष्यके व्यक्तिगत और सामाजिकी पूरी-पूरी प्राप्ति हो सके। उन्होंने आगे फिर निगा है— राज्य अपने मौलिक रूपमें सामाजिक अर्थ जीवन सम्बन्धी विषयोंकी अभिव्यक्ति है। इस व्यापक अर्थमें हम फिर भी यह कह सकते हैं कि 'न्याय'का उद्देश्य न्यायकी व्यवस्था ही है और इसलिए राज्य मुख्यतः एक नैतिक संस्था है (२१ १४६)।

हम साधारणतया यह माननेका तैयार हैं कि 'न्याय'का उद्देश्य नैतिक है परन्तु हम यह कहते बिना नहीं रह सकते कि 'न्याय'का ही राजनीतिक उद्देश्य मानना एक अन्तर्निहित विषय है। हर्जरिंग्टन एव म्यारहेड ने 'न्याय'का प्रयोग इनके व्यापक रूपमें किया है कि सन्तुष्टि नैतिक धारणा उसके अन्तर्गत आ गया है परन्तु 'न्याय'का आमतौर पर यह अर्थ नहीं माना जाता। और फिर जसा कि मित्राक्षर ने कहा है— 'न्याय' एक ऐसी स्थिति है जो सामाजिक व्यवस्थाके उद्देश्यकी पूर्ति पर निर्भर करती है। पूरा न्यायके लिए पूरा ज्ञान जरूरी है और यह ज्ञान ईश्वर का ही प्राप्त है (२ ४७)।

राज्य साम्य है या साधन (Is the State as End or Means)? राज्य उद्देश्यके सम्बन्ध और भी अनेक सिद्धांत हैं। उन सबका विवेचन करना जरूरी नहीं है। एक प्रश्न जिस पर आधुनिक लेखकोंका बहुत ध्यान गया है यह है— 'राज्य अपने आपमें एक साम्य है या वह केवल साधन है?' पुराने लोग विचारक यूनानी, राज्यका मानव जीवनकी सर्वोच्च संपन्नता और अपने आपमें साम्य या उद्देश्य मानते थे। आधुनिक व्यक्ति और राज्यमें जो अन्तर माना जाता है वह उन्हें ज्ञान न

या क्या कि जिन परिस्थितियों में वे रहते हैं वह हमारी आज्ञाकी परिस्मृतिवैशि बिलुप्त भिन्न थी।

आधुनिक काल में हीगल ने यह सिद्धान्त पुनर्जीवित किया कि राज्य स्वयं साध्य नहीं एक उद्भव है। उद्धान् व्यक्तिही इच्छाका राज्यका इच्छाके साथ एकत्र बनाना। इस सिद्धान्तका परिणाम फासिज्म (Fascism) है। इसी के मन्द पाठर भी पानी धारा इस प्रकार है— इतालियन राष्ट्र एक संगठन है जिसने अपने उद्देश्य अपना जीवन और अपने साधन हैं जो शक्ति और स्थायित्वमें उन व्यक्तियों अपवा व्यक्ति समूहों के हैं जिनको मित्रावर राष्ट्र बनता है। राष्ट्र एक नतिक राजनीतिक और आर्थिक इकाई है जिसकी पूरा अभिव्यक्ति फासिज्म कास्था में होती है।

एक ओर राज्यकी इस तरहकी निरन्तरताका समर्थन यह विचार है जोर दूसरी ओर ठीक अपने विपरीत व्यक्तिवादियायी विचारधारा है। उन व्यक्तियोंके विचारके साथ जनताके अधिकतम ध्येयोंके सम्बन्धन एक साधन है। उन विचारके विरुद्ध सवय बड़ी आपत्ति यह है कि राज्य किसी विषय पादा का ही कल्याण करनेकी चिन्ता नहीं करता—बल्कि तो भावी पीढ़ीके कल्याणका भी ध्यान रखता है। और इस लक्ष्यकी प्राप्ति के लिए राज्य नागरिकों ऊपर एक बहुत बड़ा भार गां देता है। अब यह स्पष्ट है कि व्यक्तिवा कल्याण हा राज्यका एकमात्र उद्भव नहीं है।

राज्य और व्यक्ति साध्य और साधनका सम्बन्ध बनाना इन दोनों की प्रवृत्तिका गत समतल है। ये दोनों आपसमें इनके घटित रूपसे सम्बन्धित है कि हम यह कह सकें हैं कि अपनी निरन्तर स्थिति में राज्य और व्यक्ति दोनों का लक्ष्य अपनी स्थिति का उन्नत करना रहता है और दोनों ही एक-दूसरे का प्राप्ति करने के साधन हैं। दोनों ही एक साथ एक ही लक्ष्यकी ओर चलते हैं।

इस कारण आजकल आमतौर पर यही माना जाता है कि राज्य साध्य भी है और साधन भी। विलोबी (Willoughby) ने अपनी पुस्तक राज्यका स्वभाव (The Nature of the State) में लिखा है कि यदि हम राज्य पर व्यक्तिवादी दृष्टिकोण में ही विचार करें तो राज्य एक साधनमात्र—एक मात्र ही प्रतीत होगा जिसके माग मानवताका सर्वाधिक विकास होता है। परन्तु यदि राज्यका एक एकीकृत माना जाय जिसकी सत्ता उसमें सम्बन्धित नागरिकोंके अंग है तो राज्य स्वयं एक साध्य बन जाता है (८१ ७०)। इसकी न राज्यके दोहरे स्वरूपका बहुत सुन्दर रूपसे इस प्रकार स्पष्ट किया है 'एक विषय निर्मा विचाररत्ने जीवितोत्पन्नका साधन होता है उसके साथ ही सर्वोत्तम विचाररत्ने उत्पन्न प्रयत्नाका साध्य भी होती है। उस कारण द्वारा वह अपनी भावनाधारी मज्जीर अभिव्यक्ति करता है—जो उमम अन्त आत्म निर्माय देता है। यह तरह उमपी वह बड़ा स्वयं एक साध्य बन जाती है। और इसी प्रकार राज्य व्यक्तिवा कल्याणका साधन भी है और'

स्वयं एक माध्यम भी यथाकिं राज्यका उद्देश्य किसी एक पीढ़ीक व्यक्तिमा या समुदायका कल्याणतक बन्ना अधिक होता है।

राज्यके उद्देश्योंका विवेचन करते समय यह उचित होगा कि हम उनके माधारण या मौलिक (general or fundamental) उद्देश्यों और विभिन्न उद्देश्योंके अन्तरको एक उच्च दूरस्थ या चरम (ultimate or remote) उद्देश्यों तथा तात्कालिक या आसन्न (immediate or proximate) उद्देश्योंके अन्तरको अच्छी तरह समझ लें। होल्त्ज़ेंडॉर्फ (Holtzendorff) ने राज्यके व्यावहारिक एक आत्मा उद्देश्योंकी भूषण बनानेकी चेष्टा की है। उनका कहना है कि राज्यको मध्यम पहलु अन्य राज्या तथा अपने निवासियों और निवासियोंके समूहोंके मुकाबिले में अपनी शक्ति बढानी चाहिए। राज्य का दूसरा सर्वोच्च व्यक्तिकी स्वतंत्रताकी रक्षा करना है। इसकायकी पूर्तिके लिए राज्यका व्यक्तिकी कामधेय निश्चित कर देना चाहिए जिसमें वह अपना विकास सरकार या अन्य व्यक्तियोंके हस्तक्षेपसे स्वतंत्र होकर कर सके। राज्यका अन्तिम सर्वोच्च राज्यमें शान्ति और व्यवस्था कायम करना प्रजाका शिक्षित करना एक सर्वसाधारणका कल्याण करना है।

एलरली के अनुसार राज्यका उद्देश्य यह है राष्ट्रीय शक्तिका विकास राष्ट्रीय जीवनकी पूर्णता तथा उसकी काय रूपमें परिणति। शक्ति राजनीतिक तथा आर्थिक विकासका तरीका मानवताके कल्याणके विरुद्ध नही होना चाहिए। इस कथनमें यह स्पष्ट है कि राज्यका तात्कालिक उद्देश्य राष्ट्रीय शक्तिकी रक्षा और उसका विकास करना है एक उच्च अन्तिम उद्देश्य मानवता है। यह उल्लेखनीय है कि प्रथम और द्वितीय महायुद्धके समय राष्ट्रीय विचारधाराकी अपेक्षा मानवतावादी विचारोंमें सांसारिक अधिक प्रभावित किया। एलरली ने अपनी परिभाषाके प्रथम भाग में जिस राष्ट्रीयताका चिह्न किया है उसमें वही यथोचितता मानने आती है जो व्यक्तिकी दृष्टिकोणको अपनातेने होती है। इन दोनों ही विचारधाराओंमें समाजक हित को ध्यानपूर्वकानेका स्वार्थका विकास होता है। जैसाकि गिल्नाइस्ट ने कहा है आज कम हम राष्ट्रीय भीषाओंको पार कर एक आदर्शकी सोजम आग बढ रहे हैं। अन्तर्राष्ट्रीयतावाद प्रथम राष्ट्रीयतावादका स्थान ले रहा है (२८ ४३०)।

अमेरिकी लेखक बर्गस (Burgess) ने राज्यके प्रारम्भिक माध्यमिक और अन्तिम तीन प्रकारके उद्देश्य बताये हैं और इन सबको प्रथम एक दूरदरीकी पूर्णता मापन माना है। बर्गस के कथनानुसार राज्यका तात्कालिक उद्देश्य सामन एक स्वतंत्रता है। राज्यका प्रारम्भिक और मुख्य कार्य अपनी एक अपने सदस्योंकी रक्षा है। परन्तु जब यह उद्देश्य पूरा हो जाय और साग विधिसे अधीन रहकर जीवन बितानेके आगे हो जायें तब राज्यका वैयक्तिक स्वतंत्रताके धर्मको मुनिश्चित कर देना चाहिए और हर तरहके हस्तक्षेपोंमें उनको बचाना चाहिए एक समय-समय पर इन धर्मकी वृद्धि करने रचना चाहिए। नयी उद्देश्योंके विकसित माध्यमिक उद्देश्य राष्ट्रीयताकी पूर्णता तथा राष्ट्रीय प्रतिभाका विकास है। नये उद्देश्योंकी पूर्णता

राज्यका उद्देश्य और भौतिक

सर्वोत्तम मापन नैतिक भौतिक और ज्ञानाय आधार पर स्थापित राज्य है।
 राज्यका अन्तिम उद्देश्य मानवताकी पूणता या सुखारम सन्धताना विक्रम है।
 इस सिद्धान्तकी आभाषना करते हुए गानर लिखते हैं यहा भौ साध्य और
 मापनके भौका मूना िया गया है। उदाहरणके लिए यह समझना कठिन है कि
 सरकारके मगनका लक्ष्यकी पूनिका साधन माननके ब्रान स्वयं एक उद्देश्य क्या न
 माना जाय (२३ ७३)। गानर राज्यके निम्नलिखित तीन उद्देश्य बनाते हैं व्यक्ति
 के व्यक्तिगत कल्याण की वृद्धि करना व्यक्तिके सामूहिक कल्याण की वृद्धि करना
 तथा सुखार का अधिकाधिक सभ्य और प्रगतिशील बनाना।

SELECT READINGS

- GARNER J W — *Introduction to Political Science*—Chs IX & X
 GARNER, J W — *Political Science and Government*—pp. 69-74
 GETTELL, R.G — *Introduction to Political Science*—pp 377-379
 GILCHRIST R.N — *Principles of Political Science*—pp 424-431
 GODWIN W — *An Enquiry Concerning Political Justice*
 STEPHEN L. — *English Thought in the Eighteenth Century*—Vol II
 WILDE, N — *The Ethical Basis of the State*—Ch VII
 WILSON W — *The State*—Chs 15 & 16
 WILLOUGHBY W W — *Nature of the State*—Ch 12

राज्य का उचित कार्य-क्षेत्र

(The Proper Sphere of State Action)

राज्यके उचित कार्य-क्षेत्रका प्रश्न राजनीतिक विद्वानके प्रारम्भिक विचारों में इतना महत्वपूर्ण नहीं था जितना आजकल है। यूनानियोंके लिए अर्द्ध जीवनका अथवा 'नगर राज्य' (polis) के भीतर स्वतन्त्रता था। व्यक्तिके कल्याण तथा राज्यके कल्याणमें कोई अन्तर नहीं समझते थे। कभी-कभी व्यक्ति और राज्यके बीच मध्यस्थ उदाहरण भी मिलते थे जस सुकरात के मामलाम पर प्रचलित विश्वास यही था कि राज्यके कार्य-क्षेत्रमें वे सब बातें आ जाती थी जिनका सम्बन्ध व्यक्तिके जीवन और उसके उच्चतम विकाससे था।

राजनीतिक विचारवाने राज्यके उचित कार्य-क्षेत्रके प्रश्नको न तो रामन युगमें और न उसने बाइबिली अव्यवस्थित परिस्थितियोंमें ही अधिक महत्वका समझा। मध्य-युगमें सत्ताके लिए घममघ (church) और राज्य में कुछ मध्यस्थ छिड़ा। यह मध्यस्थ बहुत समय तक चला। धीरे-धीरे राष्ट्रीय राज्याका विजय मिली। राष्ट्रीय राज्याका उदय मध्य-युगके अन्तमें हुआ। पूरे ठाननवादी सामन्तवादी व्यवस्थाका समाप्त करने राजाओं ने जल्दी ही अपनी स्थिति मजबूत करनी और अपनी-अपनी प्रजा पर अपना निरंकुश शासन कायम किया। कुछ प्रोटेस्टेंट सुधारकाँके दबी-अधिकार सिद्धान्तकी शिवाय इस निरंकुशताका उचित ठहराया। इसी समयसे आगेके लिए सामका और सामिताका हितमें एक तीव्र मध्य आरम्भ हो गया। जनताके निरंकुशताके विरुद्ध मध्य छेड़ दिया। इन मध्यमें प्राकृतिक विधि (natural law) के सिद्धान्तने बहुत महत्वपूर्ण योग दिया।

जॉन लॉक (सत्रहवाँ शताब्दी) इस आन्दोलनके दार्शनिक थे। उनका कहना था कि राज्यके कार्य-क्षेत्रकी सीमाएँ व्यक्तिके प्राकृतिक और जन्मजात अधिकारों द्वारा निर्धारित होती हैं। अगरहवा शताब्दीमें यह सिद्धान्त सर्वमान्य रहा। उन्नीसवाँ शताब्दीके शुरुआत में करतक (laissez faire) सिद्धान्तका इन दार्शनिक आधार बनाया गया। यह सिद्धान्त आधुनिक युग तक किमी न किमी रूपमें चला आ रहा है। हॉमर ने अपने मनुष्य बनाम राज्य' (Man versus the State) पाठ्यांगमें जो भावना व्यक्त की थी वह आज समाप्त हो चुकी है और अब समाप्त होगा राज्यकी भावना उगना स्थान में नहीं है।

१ व्यक्तिवादी सिद्धान्त (The Individualistic Theory)

अगरहवा गतागत पूर्व राज्य व्यक्तिगत मामलोंमें अत्यल्प विद्या करता था। बहुधा यह अत्यल्प राज्यन रिया जाना था और आम व्यक्तिगते कार्यमें विघ्न पना हान था। इस स्थितिवा प्रतिविद्या स्वल्प ही अत्यल्प न करन (laissez faire) क निदानका अर्थ हुआ। उगात्तवे तौर पर अम समयतमी नी विधिवा धा जिनम निश्चिन कर रिया गया था कि विनाय स्थिति माा किम प्रकारवा भाजन कर्तें और मन्वेा किम प्रकारवा कपणम अनाया जाय। व्यापारकी स्वयन्त्रता पर भा अवचित बधन मग हुए थ। अगरहवा गतागत औद्योगिक क्रान्ति हान पर इन प्रकारक मना राजस्विय कार्यका विन्तून नपम अ क्रिया जाना अवाग्मनावा हा गया। जनताक आधिक जीवनम क्रान्ति करनवान नय अविचार अ। दम्भुद्राका अत्यान् वरन क पमान पर शान मग और इन दम्भुद्राका बधनक निण नयेनय वाडारा पर अधिकार रिया जान गया। एसी परिस्थितिम अदमा उगाती धौर नैरित प्रतिभावात मोा का य माग स्वानाविध थी कि जहाँ तक सम्भव अ अ स्वतन्त्र हाकर काम करनका अधिकार मिय जिनम क करता अतिपावा अयाय अतिमन अधिक साधक निण कर सकें। अगरहवा गतागत व्यक्तिवादावा नारा धा 'मयार जमा कपना है धनने अ उमके कार्यमि अत्यल्प मन कग कयाकि क अना निवधन स्वय क मता है।

अम पदमूमिहा धानम रणन अ इमन का आन्ध न जान पना कि व्यक्तिवा राजका एक बरा मानता है। पर यह बरा मन्यता स्वय-परवा और मन्धनक कारण आवदक हा गया है। इनक बत रहनका कारण मन्यता कमजारा है। व्यक्तिवा मानता है कि यदि राज्यकी निरामक शक्ति न अ ता ममाजमें शान्ति और अकम्पा मग अ सकता। अतिण राज्यका व्यक्तिका सुरणा अ पूरा ध्यान देना शान्ति। परन्तु व्यक्तिवाकत्याग राज्यक काय अयन बातर है। राज्यक मय्य काम है शिक्षा और जाल-अरबका राचना। व्यक्तिवाका निरैण सिद्धान्त है कि व्यक्तिका अधिकतम अधिक स्वतन्त्रता मिय और राज्य कमम कम अत्यल्प करे। क यत ना मानता है कि यदि राज्य स्वय अपनी रणाक निण व्यक्तिनी स्वतन्त्रताम दगुन अता है ना यत अना सीमाक अरही काम करता है परन्तु जहाँ कवन व्यक्तिक शक्ति अ प्रान हा कर्गे राज्यके अत्यल्प बलका कार्य अधिकार नगा है। २० अम० मिय (J S Mill) क अथमि व्यक्तिका अरत ऊपर अरत शरीर औ मन्धनक अर पूरा अधिकार है।

मनी व्यक्तिवाकी इस बात पर अकमत असा है कि राज्यक अचित काय अता है। अंगेर अदे उअ व्यक्तिवाका राज्यक काय-अरबका निम्नलिखित कार्यों तक ही सीमित अमने है

(क) बागी अरम न व्यक्तिनी रना करना

(ख) घरेलू गण्टुओंमें व्यक्तिकी रक्षा करना और

(ग) अधिक तौर पर की गयीं सविन्याओं (contracts) को लागू करना।

नरम विचारके व्यक्तिवादी इससे बहुत आगे जानेको तैयार हैं। उनके विचारसे राज्यका जो नाय-गन्त्र है उसे गिलक्राइस्ट ने इस प्रकार व्यक्त किया है

(१) बाहरी आक्रमणोंसे राज्य और व्यक्तिकी रक्षा करना

(२) व्यक्तिगणोंकी एक दूसरेमें रक्षा करना अर्थात् ऐसा प्रबंध करना कि कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्तिके शरीरको आघात न पहुँचा सके उसका बदनाम न कर सके और उस पर किसी प्रकारका बन्धन न लगा सक।

(३) चारों ढक्ती या अन्य प्रकारकी सन्तिमें सम्पत्तिकी रक्षा करना

(४) अन्ध सविन्याओंसे या बंध सविदाओंके भंग किये जानेसे व्यक्तिकी रक्षा

करना

(५) असमय व्यक्तिगणोंकी रक्षा करना

(६) प्यग मलेरिया जैसी निवारणीय (preventable) बीमारियोंसे व्यक्तिगणोंकी रक्षा करना (२८ ३९७-९८)।

व्यक्तिवादी अपने विचारोंका निम्नलिखित तीन दृष्टिकोणोंमें समझन करते हैं नैतिक आर्थिक और धार्मिक।

१ नैतिक तर्क (The Ethical Argument) यह माना जाता है कि चरित्रके विकासके लिए काम करनेकी स्वतंत्रता (freedom of action) अनिवार्य है। इस स्वतंत्रताके बिना मनुष्य एक स्वयं चालित यंत्र मात्र रह जाता है। जीवनको सार्थक बनानेवाली और आनन्द देनेवाली जो बात है वह यह कि हम अपने जीवनको अपने आत्मिक अनुकूल बनानेकी स्वतंत्रता हो। व्यक्तिका उच्चतम विकास सभी सम्भव है जब उसे आत्मनिर्भर बननेका अवसर मिले। जब व्यक्तिको स्वयं अपने ही पर। पर लड़ा होना होता है तब उसे अपने उत्साह अप्यवसाय और मौलिकताकी दानिय व। उपयोग करनेके लिए प्रत्यक्ष प्रेरणा मिलती है। यदि उसमें वास्तवमें कोई अतिनिहित योग्यता (intrinsic worth) है तो उस प्रकट करनेका उस अवसर मिलता है।

मरवाणका हस्तक्षेप एक हानि तर्क उचित है। पर उसमें आग बड़न पर वह व्यक्ति का दया देना है। अतिगामन (over government) व्यक्तिकी उपयोगीलताका गमाव कर देता है और व्यक्ति अपने ही ऊपर निर्भर रहनेके बजाय सरकार पर आश्रित होना पड़ता है। इसमें पाषण मनोवृत्ति (pauper mentality) बढ़ती है व्यक्तिको आत्मगी बननेका अवसर मिलता है क्योंकि जो काम उसे स्वयं करना चाहिए उसको दूसरोंके हाथ किये जानेकी वह आगा करता है। अपनी प्रतिभाका विकास करनेके लिए उस कोई प्रोत्साहन नहीं मिलता। परिणाम स्वरूप व्यक्ति और गमाव दानाकी ही जानि जाती है। अतिगामन न केवल स्वायत्तमन्त्रकी शक्तिको गन्ध कर देता है बरि व गमावका अकमर्थ बना देता है। पाग एक ही साधन हम प्राप्त है।

एक काम नग्नक हा व्यक्ति उन जानेका ही महत्ता की जान लागता है। एक ही सोचम उननेम प्रकार करना (non-conformity) बना भारी अपराध माना जाता है। समाजका विकास रुक जाता है। हर प्रकारकी नवीनताका गन्ती गन्तीकी दृष्टिने रखा जाता है। इसलिए यह दलील दी जाती है कि यदि व्यक्तिकी प्रतिभाप्रकाश अधिकन अधिक विकास करना है ता राज्यका रूप-रान बहुत ही भीषित जाना चाहिए। सरकारका अधिकारोंका लागू करने शान्ति और व्यवस्था बनाय रखन और अपराध के लिए दण्ड दनक अनावा और अधिक बुद्ध नहा करना चाहिए।

२ आर्थिक तर्क (The Economic Argument) आर्थिक दृष्टि कोणम व्यक्तिबाकी रूपमें हर मनुष्य स्वाय-चरायन है और अन हिताना वह सबम अन्तरी तरह जानता है। इसलिए यदि हर मनुष्य पूरी तरह स्वतंत्र छोड़ दिया जाय ता वह अनन सबमरोंका अच्छे से अच्छा उपयोग करेगा और प्रत्येक रूपम अपना स्वाय विद्व करके हुए परोप रूपम समाजका भी हित करेगा। इस प्रकार यदि पञ्जीपनिता स्वतंत्र छोड़ दिया जाय तो वह अपने चारों ओर रम बातकी भाज करेगा कि वह अपनी पूजी कहा पर लगाय जिससे उन ज्यादासे ज्यादा लाभ हो सक। इसी प्रकार मजदूर भी अपने चारों ओर इस बातकी खोज करेगा कि कहा पर उन मजदूरीका अधिकने अधिक मुविषाजनक गर्वें मिल सकती हैं और वह वहाँ मजदूरी करेगा। इस प्रकार स्वतंत्र प्रतिस्पर्धिता (free competition) माग और प्रतिके नियमका बराक टाक लागू जाना समाजके आर्थिक स्वार्थके लिए हितकर है। श्रमज वेतन किचमा और व्याज पर बिनी प्रकारका नियमन नहीं लगाता चाहिए। ताकि वह स्वय अपन आपका उन्नीनीन आर्थिक परिस्परिके अनुदून बना स। इसी प्रकार विदेशी व्यापारका भी मुनी छूट देनी चाहिए। जैसे आपाउ-निर्पन्न करों और सरकारी सहायता आर्थिके द्वारा छोटे छोटे प्रारम्भिक व्यवसायोंका कृत्रिम सहायता नहीं दी जानी चाहिए। बाजारको सवा और स्वतंत्र रखने तथा धाना-धरा और जानसाजी आर्थिके रोखने के अलावा आर्थिक सक्षम सरकारको बहुत कम काम करना चाहिए।

३ वैज्ञानिक-तर्क (The Scientific Argument) व्यक्तिबाणियों का भाषा है कि व्यक्तिबाण जीवविज्ञान के उम नियम के बिलून अनरूप है जिसके अनुसार अस्तित्व के लिए बराबर लय (struggle for existence) होता रहता है और इस लयम योग्यता ही बच पाता है (survival of the fittest)। हरब र्समर इस लयके प्रथम व्याख्याता हैं। उनका कहना है कि जीवन लय और योग्यता की बिजयके नियमके ही निम्न शान्तिके जीवोंका विकास हुआ है और यदि मनुष्य शान्तिके सबल समप और विनागीत बनाना है तो इसी नियमका मनुष्योंमें भी काम करने देना चाहिए। विकास और प्रगतिका स्वाभाविक माग यह है कि गरीब कामदार और असाध्य व्यक्ति बिनीत हो जायें। यद्यपि हमने कुछ व्यक्तिबाणके माग अन्त्या जाना है पर समाजका हित इसीमें है। र्समर के ही गन्धीम 'मनुष्य प्रगतिम तम एक बनार अनगामनका निर्माण पाते हैं। यद्यपि इस अनगामनम निर्णय

है फिर भी यह निष्पत्ता एक तरहकी दयाशीलता ही है। निम्न कोटिकी सृष्टिम जा मवध्यापी युद्ध घन रहा है और जिसमे अनेक व्यक्ति चकित रह जाते हैं वह वास्तव म परिस्थितियाको देखने हुए सबसे अधिक स्यापूण व्यवस्था है (७४ ३२२)। सॉसर म अनुसार इन बातोंका निष्पन्न यह है कि यदि व्यक्तियोंको स्वतंत्र छान दिया जाय ता समय और योग्य लोग बच रहेंगे और असमर्थ तथा अयोग्य समाप्त हो जायगा। इसका अर्थ यह होना है कि सरकारको नेबन बनी काम बनन चाहिए जिनका मन्ग नियन्त्रात्मक नियमन (negatively regulative) हो। राज्यका साधनिक स्वास्थ्य गिना उच्चान सावजनिक पुस्तकालय तथा गरीबोंकी सहायता डाकघानों की व्यवस्था मुग खालू करना आदि कार्योंका नहा करना चाहिए क्योंकि एसा पणना प्रकृतिकी व्यवस्था (wise provision of nature) म हस्तक्षेप करना है।

४ व्यावहारिक कारण (Practical Reasons) व्यक्तिवादके समर्थन पन सिद्धान्त के समर्थनम उपयोग सैद्धांतिक तर्कों अलावा कुछ व्यावहारिक तर्कों मा दते हैं। यह कहा जाता है कि जब सरकार बहुत-म काम करनेकी बागिना करती है तो वह उन्हें बरी तरहसे करती है जिसका नतीजा यह होना है कि कामम बहुत देरा और सपयाका बचानी लेती है। बहुत-सा जरूरी काम किया हा नहा जाता। अनुभव बनलाता है कि सरकारी हस्तक्षेपका नतीजा बहुत हो घरा होना है। अनेक मामलाम व्यक्तिगत व्यवस्था और नियमनकी अनेका सरकारी व्यवस्था और नियमनम अधिक असफलताए होती है और इसमे स्वार्थपणता तथा भ्रष्टाचार बढ़ जाता है। सरकारें बानूनाको बनाती हैं और फिर उन्हें रट कर लेती हैं। सॉसर का कहना है कि एसा यह बात सिद्ध होती है कि एनम म अनेक बानून कभी बनाये ही नहा जान चाहिए।

इसके अलावा काननके लागू किय जानेस बहुतपा जनताको बच्ट हाता है। इस बचनका कारण या ता सरकारी हस्तक्षेपक विरुद्ध मनुष्यकी स्वाभाविक अविनाती है या म कि बानून स्वयं बरा हाता है।

आलोचना

यह मनी है कि व्यक्तिवादी सिद्धान्तम एक महत्वपूर्ण राज्य दिनाङ्कमा है पर एग मलय का बहुत बडा बडा कर कहा गया है। यह सिद्धान्त मनुष्यके सामाजिक जीवनके एक पक्ष पर दतना अधिक जोर दता है कि दूसरा पहलू बिल्कुल भुना ले दिया जाता है। जरा उग मी बातम हस्तक्षेप करने वाली विधिशाही बराई करनेक जोगम यह सिद्धान्त अयधिक बच्ट जाता है। अपनी बातके समर्थन म दिय गये उतरके ता निष्पन्न रूपमे एगर्गीय और कुछ ह तक असत्य भी है।

व्यक्तिवादिका इग विचारम ता सभी सहमम हांग कि आत्मनिभरता मयम अस्मम सहायता है जा व्यक्तिका मिय मकती है और सरकारकी भीनि लगी शनी चाहिए कि हर मन्थय अपन पैरा पर मड्डा हा मच। परन्तु एगता मनपव घट भी मरी

है कि राज्य बचन सुरक्षाकी व्यवस्था करे और अपराधाका दमन करे। आधुनिक पक्षीने सम्प्रदान व्यक्तिके लिए यह असम्भव नहीं ता बहिन अन्वय बना लिया है कि यह अपनी सभा दक्षिणायाम सामजस्य-पूर्ण विकास कर सक। आजकालक जीवनम अनन्व एसी परिस्थितियाँ आती हैं जिन पर व्यक्ति अनेके बाधू नह। वा सचना जोर उस राज्यकी सहायताकी उभरत पडता है। राजकीय काय-शास्त्रका विस्तार बिना बिना अधिनाश लागूके लिए अपना पूर्ण विकास करता सम्भव नहीं है। विरुद्ध व्यक्तिवाद प्रतिभाशाली व्यक्तिवादका निमाण करनेकी अपक्षा व्यक्तिवहीन मनुष्याका निमाण करता है। सामाजिक के गडाम आलोचना रहिन व्यक्तिवाद (uncriticized individualism) के अथ समष्टिवाद (uncritical collectivism) म वन्दन जाने वा स्वतन्त्र हमशा रहता है।

व्यक्तिवादका आधार ही बचओर है। यह मनुष्यका मौलिक म्यम स्वार्थी मानता है। हमका आधार वह सुखवादी सिद्धान्त (hedonistic theory) है जिम बहुत पहले ही अस्तस्य सिद्ध किया जा चुका है। मनुष्य बचन अपना ही मला नहीं चाहता बल्कि वह दूसराही भलाई भी चाहता है। हर व्यक्तिम स्वाय और परामय की भावना विभिन्न परिमाणम पायी जाती है। अन् मानव स्वभावके केवल एक पक्षके आधार पर ही राज्यक काय-शास्त्र बारेम सम्पूर्ण सिद्धान्त बनाना उचित नह। व्यक्तिगत बन्ध्याण और पारस्परिक बन्ध्याण दरम्पर विरोधी नहीं हैं। वह एक दूसरे पर आश्रित हैं। एच जी० वेल्स (H G Wells) वा यह कहना गलत नह है कि स्वार्थ किसी भी व्यक्ति मा देगके निन्दनीय पक्षके अतिरिक्त किसी दूसरे परिणाम पर कभी नहीं ने गया है।

व्यक्तिवाद यह मान लेता है कि हर मनुष्य अपना हित नवी भांति समझता है। अनुभव हम यह बताता है कि यह बात अनेक व्यक्तिवादक कारण सही नहीं है। व्यक्ति अपने वतमान स्वार्थको भन ही ठीक प्रकार समझ ले पर इस बात का कोई मरदासा नह। निया जा सकता कि वह अपने भावी हितको भी समझता है और फिर यदि व्यक्ति अपने हितका सबने यच्छा पारसी हाता भी इसमें मनातव यह नह। है कि वह उन हितोंकी निश्चिन्ता साधनाका भी यच्छा पारसी है। मानर का कहना है कि हर देगम एगे बुद्धिहीन मनुष्य होने हैं जो अज्ञात मरुतके विरुद्ध सावधानता नहीं बरन सकते। कभी-कभी राज्य व्यक्तिकी मानविक ननिक और दारीरिक आवश्यकताआरा म्यय उम व्यक्तिकी अनेका अधिप पारसी हाता है—उत्पाहरणके लिए—सावजनिक स्वास्थ्य और सजाईके मायन। सावजनिक बन्ध्याणी एका तभी हो मानी है जब राज्य स्वास्थ्यका हानि पहुँचानेवासी परिस्थितियोंका दूर कर द गाय पक्षीका मरुतारी निरीक्षण हा और बईमान व्यापारियाँ और धालवाडाका मरुतारकी ओरने दष्ट निया जाय। समाजका यह बर्नन है कि यह व्यक्तिवादी मूर्खता और नैतिक बुद्धिमताये स्वयं यह की एका करे। व्यक्तिगत स्वतन्त्रताक प्रथम समर्थक जे० एम० मिम भी मानन है कि यदि कोई व्यक्ति एक पक्षलाफ पुत्रको पार

करना चाहता है या गुलामी स्वीकार करने जा रहा है ता समाजका हस्तक्षेप कर उसकी इच्छाके विरुद्ध उसकी रक्षा करनी चाहिए।

व्यक्तियोंमें यह दलील देते हैं कि यदि हर मनुष्यका अपना हित साधनकी छट द दी जाय तो हर कोई सुखी होगा और समाज समृद्ध हो जायगा। यह बात तब सही हो सकती है जब हर व्यक्तिका हित दूसरेके हितके समान्तर हो और व्यक्तिगत हितों परस्पर कोई विरोध न हो। पर अनुभव यह बताता है कि मनुष्योंके हित प्रायः परस्पर विरोधी होते हैं। इसलिए हिंसाके टकरावसे समाजका सुनभानके लिए और यह देखन के लिए कि किसी व्यक्तिकी व्यक्तिगत दुबसताका लाभ कोई दूसरा न उठा पाय उसकी शक्तकी आवश्यकता होती है।

व्यक्तिवादकी प्रथम मान्यता है अपनी अधिकार-परिधिमें भीतर पूर्ण व्यक्तित्व (the atomic individual with a fringe of right)। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि एसा व्यक्ति केवल कल्पनाकी ही वस्तु है। समाज एक संगठित इकाई (organism) है इसलिए व्यक्तिके हित उसके सहयोगियोंके हितोंसे एकत्र भिन्न नहीं हैं। राज्य एक बुराई नहीं है बल्कि एक निश्चित अच्छाई है। राज्य एक कृत्रिम सृष्टि नहीं है बल्कि यह स्वाभाविक विकास है। सरकारी नियमनका यह अर्थ नहीं है कि व्यक्तिगत स्वतंत्रताका अवश्यमेव अपहरण हो। जिस प्रकार परिवहन (transport) का नियंत्रण करनेवाले पुलिस-सिपाहीके नियंत्रणके पलस्वरूप परिवहन सुरक्षित और विस्तृत रहता है ठीक उसी प्रकार राज्य द्वारा व्यक्तिकी इच्छाओं और प्रेरणाओंका विवेकपूर्ण नियंत्रण समीचे अधिकारियोंके सुरक्षित और विस्तृत कर देता है। राज्य स्वतंत्रताका विरोधी नहीं है और न समी प्रकारका नियंत्रण बुराई ही है। 'राज्य प्रतिबंध समानक' साथ ही हम स्वाधीन और प्रगतिशील भी बनाता है (२२ २९१)। समाजकी सामूहिक आवश्यकताएं सामूहिक कार्योंके द्वारा ही पूरी हो सकती हैं।

व्यक्तिवादी माँग और पूर्ति तथा मुक्त प्रतिस्पर्धा (free competition) का नियमन पूरा-पूरा विश्वास रखता है। यह एक जानी-बूझी बात है कि माँग और पूर्ति का सिद्धांत उतना वैज्ञानिक नहीं है जितना कि उस बताया जाना है। प्रायः उद्योगोंमें गड़बड़ पैदा होती रहती है। जहाँ तक मुक्त प्रतिस्पर्धाकी बात है वह व्यवहारमें बहुत कम प्रिय होती है। उमका परिणाम एकाधिकार (monopoly) ट्रस्ट और व्यावसायिक एके (trade combinations) आदि होते हैं जो मुक्त प्रतिस्पर्धाका उल्टा हैं। औद्योगिक मामलोंमें हस्तभवन करनेकी नीतिकी आवश्यकता जिनकी औद्योगिक क्रान्तिके समय की आज उसकी आयो भी नहीं है। अब परिस्थितियाँ बिन्दुमें भिन्न हैं। जगह-जगह नये शहर बस गये हैं। फॅक्टोरियोंमें काम करनेके लिए श्रमिकोंमें सख्त शहरोंमें श्रमिक बस आते हैं। पुराने परेसु उद्योगोंका स्थान बड़े पैमाने पर उत्पादन (large-scale production) न ले लिया है। परिवहनके माध्यमोंकी तेजीसे विकास हुआ है। आज व्यक्ति अपने सहयोगियों पर जिनका अधिक निर्भर है उनका पहल कम नहीं था। इन बरामी हुई परिस्थितियोंमें यह दलील देना

सूचता है कि हस्तक्षेप न करनेकी नीति सबसे अच्छी 'मर्यादक सम्बन्धम एव कानून जो बीमारिया व धनी आबाधियाको दूर कर सकें' ऐसी मजदूर विधिया जो बच्चास काम मन और अत्यधिक महत्त्व देनेकी राह-याम कर सकें और फन्दारियोके धारेम ऐसी विधिया जो सरलित मशीना और अनुचित सदराना नियमन कर सकें (२८ ४०६) इन सबकी हम आवश्यकता है और ऐसी विधिया हम राज्यामि पात भी हैं।

संसार क वैज्ञानिक तर्क के विरुद्ध अनक आपत्तियां की जा सकती ह।

याम्यतम (fittest) एक आपत्तिक दण्ड है। जो आत्र योग्य या उपयुक्त है, सम्भव है वही बल उपयुक्त न रहे। जो एक स्थितिम उपयुक्त ह उसरी नहीं है कि वह दूसरी स्थितिम भी उपयुक्त हो। याम्यतमकी विजयका मतलब यह नहै कि वह उच्च ही श्रेष्ठतमकी विजय है। याम्यतम' क बच रहने (survival of the fittest) के नियमका मतलब केवल यह मतलब पढता है कि जो बच रहता है वह बच रहनेके योग्य है। स्पष्टत यह एक अघटीत तक है। क्योंकि यदि बच रहनेकी याम्यताकी एव अकेली कसौटी यही हा कि जो बच रहे वही याम्यतम है तब तो संध काटकर मीन उडादेवाना चार हमारी प्रशंसाका और भूमो मरनवाना गिल्पो हमारी निंदाका पात्र हो जाता है (२१ ३४६)। हैलावेल (Hallowell) लिखत हैं संसारम एव बहुत बडी भूम की है और बहुतस साग मही भूम अब तक करत घन आ रहे है। वह भूल यह है कि जो बातें किसी एक विधानके लिए उपयुक्त है उन्हें किसी दूसरे बिस्तृत भिन्न सहायवाक विधान पर लागू करना।

जो बान निम्न शक्तिके जीवाने लिए सब हा उसके लिए यह उच्चरी नहै कि वह सृष्टिके श्रेष्ठतम प्राणी मनुष्य पर भी लागू हा। क्योंकि जब हम विकासकी तीव्री पर चढ़ते बड़न मनुष्य तक पहुँचत हैं तब एक आन्धवजनक नवीन अवस्था पर पहुँच जात हैं। निम्न शक्तिके प्राणी हाथ पर हाथ धर अपने आपका प्रवृत्तिका अनुयायी बन जात दने हैं। इससे विपरीत मनुष्य अपनी उच्चतर बुद्धिक बनस प्रवृत्ति का ही अपनी आवश्यकतामके अनुकूल बना लेता है। इसलिए यह तकमगत जान पड़ता है कि प्रवृत्तिका मनबाहू डगसे बुद्धि बोध-म सागोको जीवित रखनका अवसर देनेके बत्राय मनुष्य अपने उच्चतर बुद्धिबानका प्रयोग करके यथामम्भव अधिकस अधिक सागोंका बचन और जीवित रहनेका मौका ले। मनुष्य मीची श्रानिके प्राणिया म बचन बुद्धिबानमें ही भिन्न नहै बल्कि वह अपने विवेक और अपना विकसित सहानुभूतियाके शत्रुम भी उनमे पुषक है। उसकी म शक्तियां उम प्ररित करती है कि वह जीवितम अननन सागके प्रति निरपेक्षाका और शारीरिक शक्तिम दुबल साग। क हृदयहीन विनाशका विनाश व उसकी निंदा कर।

व्यावहारिक बटिनाइयाके उत्तरमें यह कहा जा सकता है कि राज्यम समूह कायोंकी निंदा और विरोध केवल इसलिए उच्चरी नहै हा जाता कि सरकारें धर्मनिरा करती हैं। व्यक्तिवारी मन्वारा और सरकारों अधिकारियाती बनन भूत।

का वह संपादन करता है। वह यह भूल जात है कि व्यक्तिगत सम्प्राप (private agencies) भी भूलें किया करती हैं। पर उनकी भूलें इतनी प्रयत्न नहीं होना और जनताका भरी भाति जान भी नहीं होता। इनके विपरीत सरकारकी भूलें प्रायः हर एक का भली भाति जान हा जाती है। यदि सरकार भूलें करती है तो बहुत-से अग्र काम भी करती है जिनके लिए इसकी पर्याप्त प्रशंसा नहीं की जाती। असमियत यह है कि जनता आगा करती है कि व्यक्तियोंकी अपेक्षा सरकार बहुत अधिक कुशलता पूर्वक काम करे। अतएव सरकारका उसकी विफलताके लिए जादा दाय दिया जाता है वह अनुपातमें अधिक होता है।

साधनकी उपलब्ध कारण व्यक्तिवादकी आवश्यकता आज उतनी नहीं रह गयी जितनी कुछ समय पहले थी। जहाँ साधन है और जहाँ स्थानीय शासन सबल एवं योग्य है वहाँ समाजवाद और व्यक्तिवादके बीचका अन्तर काफी शून्य हो गया है। कठिन नियमनके विरुद्ध व्यक्तिवादियोंकी जा आपत्तियाँ हैं जो स्थानीय नियमनके सम्बन्धमें अधिक लागू नहीं होता। दूसरे शब्दोंमें राष्ट्रीयकरणके विरुद्ध जा आपत्तियाँ की जा सकती हैं वह नागरिकरणके (municipalization) के विरुद्ध नहीं की जा सकती।

कुछ व्यक्तिवादी व्यक्तिवादकी विषमता या शक्तिशाली अजीबपन समझ बैठनेकी भूल करत हैं। यह बात मिल के बारेमें विषयरूपमें सही है जो व्यक्तिवाद समाजका अभिन्न अंग न मानकर स्वयं भू (Self-centred entity) मानते हैं।

यदि रोगका इलाज करनेकी अपेक्षा उससे बचना अच्छा है तो राज्यका चाहिए कि समाजका हानि बचाय और यदि उसका प्रयत्न बाधक समाजको किसी प्रकार की हानि डालती ही पड़ता उसकी क्षतिपूर्ति भी करे। पूर्ण तटस्थ नीति सरकारके लिए असम्भव है क्योंकि उसका मतलब तो अराजकतावाद है। तीव्र कहते हैं कि ऐसी तटस्थता व्यक्तिवाद सामाजिक अधिकारोंसे वंचित कर देती है। यह सहयोग और नियंत्रित उद्योग होनेवाले समाजकी आरम्भ नहीं मूल्य सत्ता है।

सास्त्री ने व्यक्तिवाद सिद्धान्तके विरुद्ध अनेक तर्क दिए हैं। उनमें मुख्य तर्क यह है कि व्यक्तिवाद नैतिक दृष्टिमें अप्रगम है। सास्त्री कहते हैं कि व्यक्तिवादका अर्थ है शीघ्र स्वार्थ्य अधिकारोंमें मन्त्रिकतावन्तीय निवामन्त्रियान और समाजका अहित अधिकार व्यक्तिवादको शक्ति नहीं है। कमबोरीका अनधिकार साम समाजका अहित है। मजदूरकी शक्ति करनेकी शक्ति पूर्णपतिकी शक्ति बराबर न होनेके कारण मजदूर अधिक दोषम प्रायः हार जाता है। सास्त्रीका उदार-व्यक्तिवाद (सोशलिस्ट) असमानताका अन्तःकरण (apotheosis of inequality) है (४७ १९१)। मांग और पूर्ण मिननवाम प्रतिस्पर्धा शक्ति सरकार सामाजिक मूल्य जाति नहीं होता। विभाषणकी शक्ति द्वारा अन्तःकरण समाजकी शक्ति की जाती है मत-मुक्त गन्धेयराशय पन बनेरा जाता है। इसलिए बाजारका समाजकी समाजिक मूल्यकी व्यवस्था बचाय समस्त सामाजिक मूल्योंको मष्ट करनेवाली व्यवस्था है।

गिलब्राइन् ने व्यक्तिवादीके पक्ष और विपक्षके तर्कोंका निष्कर्ष इस प्रकार दिया है

(१) व्यक्तिवाद आत्मनिर्भरता पर जोर देता है।

(२) वह अनावश्यक सरकारी हस्तक्षेपका विरोध करता है।

(३) वह समाजमें व्यक्तिने महत्त्व पर जोर देता है।

(४) इमने बड़ा बड़ा-नी बातोंमें हस्तक्षेप करनेवाणी व्यर्थकी विधिपाकी रद्द करनेमें महायत्न की है।

'पर व्यक्तिवाद' राजकीय नियंत्रणकी बराहयाका बहुत बडा घडाकर कहता है। वह यह भूत जाता है कि राज्य द्वारा किये गये कार्यों का कामकी अन्धा भ्रष्टता कार्योंके उत्पादन का अधिक है। इमने व्यक्तिवादकी मन्त एक भादक धारणा प्रवर्तित की है और माय ही व्यक्तिवाद आधुनिक उचित अर्थव्यवस्था का धर्म ही अन्तर्गुण मानिये हुआ है (२८ ६००)।

सी० डी० बर्न (C. D Burns) ने पूरी समस्याका सम्पूर्ण इत 'राज्य' व्यक्त किया है व्यक्तिवाद सामाजिक उद्देश्यके लिये पय कार्योंके सामाजिक परिणामकी ओरसे आगे मू नता है एक आर्थिक रूपमें व्यक्तिवादका भविष्य बहुत उज्ज्वल है। मूलतः मूलकी गयी इस सिद्धान्तकी मूलों और इसकी प्रुटिया विन्तुल स्पष्ट हैं। पर उनके बावजू यह सिद्धान्त अभी तक प्रवर्तित है। व्यक्तिवाद के साथ पूरा-पूरा त्याग करनेके लिए हमें उसकी आत्माका उम आत्मिक स्वरूपमें पयक करना होगा जिसमें वह पक्ष पहल प्रकट हुआ या और भविष्यक स्वप्नमें हम एक सम्म राज्यकी कल्पना एमें व्यक्तिवादीके सपन रूपमें करनी होगी जो व्यक्तिरूपमें हममें स आशय सध धर्य व्यक्तिकी अन्धा इतन अधिक विकसित और उन्नत होंगे जिसका कि अपन पूर आत्मिक बर्न मनुष्याकी अन्धा हम स्वयं विकसित और ममुक्त हैं (९ २४९ २३३)।

२ समाजवादी सिद्धान्त (The Socialistic Theory)

समाजवादी राज्यका निश्चित अर्थार्थ (positive good) मानने है। इसलिये उनकी मांग है कि राज्यकी कमसे कम काम करनेके द्वारा अधिकसे अधिक काम करने चाहिए। उनका विश्वास है कि यही एक मार्ग है जिसके द्वारा अधिकतम मानव समाज के लिए सामाजिक न्याय सम्भव हो सकता है। उनका सम्य यह है कि एक ऐसा 'सामूहिक समृद्धि' (cooperative commonwealth) स्थापित किया जाय जिसका कि उत्पादन सभी साधनों पर नियंत्रण हो और जो सामूहिक वितरणका प्रयत्न करता हो। समाजवादी उन्मादक साधनों और विविध पय मार्गजनिक प्रयत्न होगा और वेचन आवश्यकताएं अनुमानित जाय। कुल समाजवादी मन्त वितरण (equal distribution) का समर्थन करने हैं और कुल न्यायपूर्ण वितरण (equitable distribution) का समर्थन करते हैं।

समाजवादकी मुख्य अन्धाइयोंका हम संक्षेपमें यों ध्वजन कर सकत है

हमारी वर्तमान सामाजिक व्यवस्थाकी सद्विदित दुराइयोका समाजवाद विराध करता है और एक मौलिक परिवर्तनकी मांग करता है। आजकल पूँजी और शक्ति कुछ थोड़े-स मोर्गोंके हाथमें केन्द्रित है। मजदूरको उसका उचित भाग नहीं मिलता। चूँकि मजदूरकी आर्थिक शक्ति मालिककी आर्थिक शक्तिके बराबर नहीं हाती इसलिए मजदूर को मजबूर होकर मालिकसे दबना पड़ता है। वर्तमान व्यवस्थासे सम्पत्ति और अवसर प्राप्ति (opportunity) में घातक असमानताएँ पैदा हाती हैं। समाजका किसी सवा या वस्तुकी एक इकाईकी आवश्यकता है तो वृथा ही अनेक इकाइयोंका निर्माण हो जाता है जिससे समाजकी पूँजी और धन नष्ट हाते हैं। ऐसे समाजमें राष्ट्रीय स्तर पर कोई व्यापक आर्थिक योजना नहीं होती। अनियंत्रित प्रतियोगिताके फलस्वरूप मजदूरों को कम वेतन मिलता है उत्पादन बरुतसे ज्यादा होता है वस्तुओंके मूल्य गिर जाते हैं और बेकारी बढ़ती है। वर्तमान व्यवस्थामें धनलोभपता अत्याय बढ़मानी और व्यक्तिगत शक्तिसे स्तरको सामान्यतया नीच गिरानेकी प्रवृत्ति है (२२ ३०२)।

समाजवादमें सावधानतासे बनायी गयी योजनाओंसे श्रमका वृथा उपयोग आवश्यकतासे अधिक उत्पादन अनावश्यक विज्ञापन और हानिकारक वस्तुओंका उत्पादन दब जायगा। परोपकार तथा समाजके लिए उपयोगी बननेसे इच्छा और नायम निस्वार्थ हित-जैसी प्रवृत्तियाँ जिन पर बल देना चाहिए समाजवादके आदर्श हैं। समाजवादीयोंके अनुसार सामूहिक स्वामित्व (collective ownership) और सामूहिक व्यवस्था (collective management) पूर्णतया लोकतंत्रीय (thoroughly democratic) व्यवस्था है। समाजवादीयोंके समर्थकोंका कहना है कि लोकतंत्र का ही अगला इदम समाजवाद है। जहाँ कहा समाजवादीयोंकी नीतियाँ और कार्यक्रम व्यावहारिक रूपमें अपनाये गये हैं वहाँ वह अधिकतर सफल हुए हैं।

इस बातसे कोई इन्कार नहीं कर सकता कि समाजवादीयोंने वर्तमान औद्योगिक व्यवस्थामें जो सराबिया बतलायी हैं उनमेंसे अधिकतर सही हैं। हम समाजवादियोंकी यह बात भी मान सकते हैं कि उन दुराइयोंका हल यही है कि वर्तमान राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्थाके स्थान पर एक नयी व्यवस्था कायम हो। पर इसका मतलब यह नहीं है कि यह नयी व्यवस्था समाजवाद ही हो। समाजवादको एक सक्रिय व्यावहारिक रूप देनेमें जो कठिनाइयाँ हैं वे इनकी अधिक हैं कि उनकी आसानीसे उपना नहीं की जा सकती।

समाजवादीयोंकी व्यवस्थामें बहुत अधिक प्रजातंत्रीय कठिनाइयाँ हानरी सम्भावना है। निरन्तर डाकू तार टर्नीक्रीन और रेलों का प्रयोग अनेक देशोंमें काफी सफलता के साथ किया गया है। पर प्रतियोगिताका अभावमें हम यह नहीं कह सकते कि उनका प्रयोग कमसे कम सर्वम ही हो रहा है। कुछ वर्ष पहले इंग्लैंडके पार्लियामेंट जनरल ने कहा था कि उस देशकी डाकू-व्यवस्थाका प्रयोग व्यक्तिगत संघातनमें और अधिक कुशलताके साथ हा सकता था। यदि हम यह मान भी लें कि आज कुछ पाइ

राष्ट्रीय उद्योग बहुत ही मिनस्फुलित और कुशलतापूर्वक संचालित हो रहे हैं तो भी इसमें यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि सभी उद्योगोंके व्यापक राष्ट्रीयकरणका परिणाम भी इतना ही सुन्दर और प्रगल्भ होगा। समाजवादीके आलोचकाका कहना है कि राज्यके कार्योंका बड़ात रहना अर्थ यह होगा कि सरकारका दायन मात्र अपने ही हाथसे बकर टूट जायगा। यह धारणा ठीक है कि समाजवादीकी सरकारी व्यवस्था पर उचितसे अधिक निष्ठा और विश्वास है।

मनुष्यके नैतिक विकासकी वर्तमान अवस्थाम समाजवादीके फलस्वरूप प्रष्टाचार, गुणवत्ता और व्यक्तिगत समतन्त्र्यक कारणों और अवसरसे अत्यधिक वृद्धि होगी।

यह कहा जाता है कि समाजवादी विकासके अनुकूल नहीं है। महत्त्व करनेके लिए प्रोत्साहनकी प्रेरणा सम्भवतः समाप्त हो जायगी। आज साधारण मनुष्य अपने तानके लिए ही अधिकतर काम करता है न कि सामाजिक उपयोगिताकी परमाय भावनासे। समाजवादी राज्यमें मनुष्यका व्यक्तिगत प्रेरणाके नष्ट हो जानका भय है। समाजमें जीवन एक रूप और अर्थव्यवस्था हो जायगी। सरकारी नियंत्रणमें नयी-नयी आविष्कारकी प्रेरणा नहीं रहे जायगी।

आज भी व्यक्तिगत उत्तम कामकाज और असहाय नहीं है जिसका वह कमी-बिभी बताया जाता है। मजदूर-मजदूर और मजदूरके अन्य साधनके द्वारा वह मनुष्य अपने लिए हितकर सोच तथा करनमें समय हो जाता है।

समाजवादीमें व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर राय लग जानकी तथा व्यक्तिगत परिवर्तनके पणित हो जानेकी आशंका है। हर्बर्ट स्पेंसर का विश्वास है कि समाजवादमें समाजका हर सम्बन्ध व्यक्तिके रूपमें पूरे समाजका दास हो जायगा। समाजवादीमें व्यक्तित्वका दमन होगा प्रतिभा कुण्ठित हो जायगी और नागरिक आलसी और अकर्मण्य हो जायगे। व्यक्तिगत अन्तर्प्रेरणा समाप्त हो जायगी। उत्तरदायित्वकी भावनाका नीकरमाही द्वारा सोप और सरकारी विभागोंका शासन सर्वोपरि हो जायगा।

उत्पादनमें सम्भवतः उन्नतता (quality) औरपरिमाण (quantity) दोनों ही दृष्टिकोणोंमें बर्ही हो जायगी।

व्यक्तिवादी और समाजवादी सिद्धांतोंका मूल्यांकन (Evaluation of The Individualistic and Socialistic Theories) व्यक्तिवादी और समाजवादी दोनों ही महत्त्वपूर्ण साधन हैं परन्तु दोनों ही उभय साधन बड़ा बड़ा बड़ा कर रहते हैं। दोनों ही वैज्ञानिक और विश्वासपूर्ण हैं। जैसे किण्व व्यक्तिवादी अस्मन्त्र है वैसे ही किण्व समाजवादी भी अस्मन्त्र है। हमें तो जरूरत है एक ऐसी व्यवस्थाकी जो व्यक्तिगत गुणोंका सुरक्षित रखनेके साथ ही समाजकी भी एक समानि हितोंके रूपमें काममें रहे। अर्थ का यह कहना किन्तुम ठीक है कि 'यदि हम किसी एक आन्तकी कल्पना कर सकें जो एक साथ ही व्यक्तिवादी और समाजवादी दोनों ही तो व्यक्तिगत विश्वासीन मनुष्य उसे प्रभावपूर्ण आत्म माने (१० २३२)। उन्हीके अर्थमें यदि एक और हमारा मुख्य भावना साथ

साधने और पुष्कल रहनेकी ओर होता है तो दूसरी ओर हम अपन व्यक्तिवको 'बहुत् समाज' (The Great Society) के जटिल प्रवाहमें छो देनेकी ओर भी प्रवृत्त होते हैं । व्यक्तिवादीका व्यक्तियोंकी विभिन्नता चाहना उचित है और समाजवादी का सार्वजनिक हितको महत्त्व देना भी ठीक है क्योंकि प्रत्येक व्यक्तिका पूर्ण विकास पूरे समाजके जीवनमें अपने कर्तव्योंका पालन करनेमें है (१० २७५)।

समाजवादीकी प्रत्यक्ष ऋटियोंके होते हुए भी समाजवादी आन्दोलनकी सिद्धिके लिए राजकीय कामवा धीरे धीरे विस्तार करनेकी विवेकशील नीति अपनायाना बुद्धिमानी होगी। जिसका सक्षय साथ ही साथ मानव-जातिवा नतिष उत्थान करना भी हा। छोटे उद्योग-धंधाम स्वतंत्र प्रतिभोगितानी अनुमति दी जा सकती है पर बहुत-स साधारणके जीवनको प्रभावित करनेवाले बड़े पमानेके उत्पादनम राजकीय स्वामित्व और नियंत्रणकी व्यवस्था आज अपनायी जा सकती है।

३ आदर्शवादी सिद्धान्त (The Idealistic Theory)

हीगन आदिके अतिवादी आदर्शके स्वरूपकी चर्चा न करके हम अपने आपको अग्रज आदर्शवादियों तक ही सीमित रखेंगे। अग्रज आदर्शवादियान राज्यके कार्यके धारेम एक ऐसे सिद्धान्तका प्रतिपादन किया है जिस पर सम्प्रीगतापूर्वक विचार करनेकी आवश्यकता है। आदर्शवादी राज्यको बहुत अधिक महत्त्व देते हैं और राज्यको प्रत्येक व्यक्तिके सर्वोत्तम सत्त्वकी मूर्ति मानते हैं। वे राज्यको एक नैतिक सत्या मानते हैं जिसकी आज्ञापालन करने हम स्वयं अपनी ही आज्ञाआका पालन करते हैं। वय कि आदर्शवादी राज्यको इतना गौरवपूर्ण स्थान देत है इसलिए यह आशा की जा सकती है कि वह राज्यके लिए एक व्यापक कार्य-यान भी निर्धारित करेंगे। पर उहाने इस कार्य-क्षेत्र का सकीण बना दिया है। इस विरोधाभासका कारण सामान्यते मालूम किया जा सकता है।

आदर्शवादी व्यक्ति और राज्य दोनोंके उद्देश्यको एक ही मानते हैं। यह उद्देश्य है आदर्श 'सुन्दरतम जीवन' या मनुष्यकी बौद्धिक आध्यात्मिक तथा नतिक उत्पत्ति (promotion of the excellence of human souls) (बाशाके)। पर यह उद्देश्य इतना अधिक व्यक्तिगत और आत्मरिष है कि इसकी सिद्धि व्यक्तिके अपने प्रयान पर ही निर्भर करती है। नैतिक सुदृगुण या सत्याण ता स्वय अजिन हाठा है। नैतिक जीवनक अर्जनक लिए व्यक्तिको अपने भरात छोड़नेका एक दूरदूर कारण यह है कि राज्यक माधन शक्ति और दबाव देने बाठरी है कि नतिक शक्ति

१ हॉब्सन का कहना है 'राज्यने डॉक्टर, नर्म हटून मास्टर ध्यापारी उत्पादक बीमा एजेंट मकान बनानेवाले मगरकी यात्रना बनानेवाले रेलके निर्यंत्रक आदि सैकड़ों अन्य नायकिक कामके उत्तरदायित्वका स्वीकार कर लिया है।

जैसी आन्तरिक श्रेष्ठताकी सिद्धि बह सफल नहीं हो सकती। क्योंकि के सम्बन्धमें 'बहु सामूहिक इच्छा (राज्यकी इच्छा) हमें एक एते सामाजिक सुसाधके रूपमें नहीं मिनती किन्तु स्वीकार करनेके लिए हम अपने आप तैयार हो जानें बल्कि एक व्यक्ति या व्यक्ति पर आधारित सत्ताके रूपमें मिनता है तो यद्यपि बहु स्वयं हमारी ही इच्छा हानका दावा कर सकती है पर उस समय उसके इस दावेकी माननेमें हम सहन नहीं हो पाते। परिणाम यह होता है कि या तो हम मनीषी तरह उसकी आज्ञा मानते हैं या फिर विद्रोह के लिए तैयार हो जाते हैं (५ २०१ २०२)।

इसलिए राज्यका कार्य-नियन्त्रण निरूपणका या नकारात्मक है। राज्यका काम व्यक्तिगत भागमें मानवता की बाधाओंको हटाना है ताकि व्यक्तिको श्रेष्ठतम जीवनके अर्थमें अधिक अवसर मिल सकें। इसका अर्थ है कि राज्यका कर्तव्य व्यक्तिके श्रेष्ठतम जीवनके मार्गमें मानवता की बाधाओंका निराकरण (hindrance of hindrances) या समस्त मुक्तिपाओंका मुक्तिपापूर्वक उपसर्ग करना (adjustment of all adjustments) है। यदि राज्य इसमें अधिक काम करता है तो बहु व्यक्तिगत नतिज उद्देश्यको अमान्य करता है। जसा कि पहलू कहा जा चुका है मानव आत्माकी महानता स्वयं अज्ञित करनेकी वस्तु है। यह महानता बाहरसे नहीं दी जा सकती। यदि बाहरसे देना सम्भव भी हो तो भी ऐसा करनेका किसीको अधिकार नहीं है। इनामके मानव या उसके समये शरित्वा दिवस एक व्यर्थका विचार है। जैसा कि वाशिंगटन ने कहा है 'सम्बन्धी वास्तवता और सामाजिक सेवाके अनुपातमें नीतिक सफलता निर्धारित करनेका प्रयत्न करना स्वच्छ एक विरुद्ध बात होगी (To attempt to assign material success in proportion to true merit and social service would be flatly contradictory) एवं और नतिजता इनके अधिक व्यक्तिके और आध्यात्मिक है कि जब राज्य उन्हें प्रत्यक्ष तौर पर सांगू करता है या उनका समर्थन करता है तब उनका महत्व ही जाता रहता है। यदि राज्य यह कार्य अमान्यता या सूक्ष्म तौर पर करे तो बात ठीक होती है। बिधिकी सीमाके भीतर मानवताके व्यवहारके मामलोंमें राज्यका कार्य-नियन्त्रण होनेके कारण बाहरी कारणों तक ही सीमित रहता है। अनिश्चय (intention) का भी विचार किया जा सकता है और प्रायः किया जा जाता है पर उसी हद तक जहाँ तक उसका प्रभाव बाहरी व्यवस्था पर पड़े। राज्य केवल उन्नता ही अनिश्चय सांगू कर सकता है किन्तु बाहरी कारण कर्ताओंके बारेमें निश्चित आवश्यकताओंको पूरा करनेके लिए आवश्यक हो। प्रत्यक्ष (motives) पर विचार करना राज्यके लक्ष्यके दाहरी बात है। उनका सम्बन्ध व्यक्तिगत आध्यात्मिक है। प्रत्यक्षके परलक्ष्यके लिए राज्यके पास कोई साधन नहीं है। नीतिक दृष्टिकोणमें अनिश्चय (intentions) और प्रत्यक्ष (motives) में कोई अन्तर नहीं है। पर बिधिक दृष्टिकोणमें अनिश्चयानी इनके अन्तर पर जोर देते हैं। उदाहरणार्थ राज्य का-कार्य अनेक व्यक्तियोंके लक्ष्य करनेके लिए मजबूर कर सकता है पर राज्य इस कार्यके लिए कोई निश्चित प्रेरण नहीं सांगू कर सकता। का-कार्य करने व्यक्तियोंके

चाहे किसी उच्च प्रेरणासे स्कूल भर्जे अथवा किसी निम्न प्रेरणासे पर जब तक स्कूल भर्जनेका ऊपरी काम पूरा होता रहता है विधि सन्तुष्ट रहगी। पर अभिप्राय महत्त्वपूर्ण होते हैं। क्योंकि अभिप्राय ही किसी कायको स्वेच्छाजय (voluntary) बनाता है। उदाहरणके लिए किसीको साधारणतया ऐसे कार्योंके लिए सजा नहीं दी जायगी जो अनजानेमें या दुघटनावश हो गया हो। यदि उसे सजा दी भी जायगी तो वह कभी न हागी। विधि अभिप्रायोंकी बाहरी नाप-जोख भी करती है और इस प्रकार विधि कार्यों और अभिप्रायों दोनों पर ऊपरी दृष्टिसे विचार करती है।

टी० एच० ग्रीन के दृष्टान्तमें केवल बाहरी कार्योंके लिए ही जिम्मेदारी ठहरायी जा सकती है। विधिका आदेश उमके द्वारा सिद्ध होनेवाले नतिक उद्देश्यसे ही निश्चित किया जाना चाहिए। विधि केवल कुछ कामोंके करने या न करनेका आदेश दे सकती है। पर प्रेरकोंके बारेमें यह कोई आदेश नहीं दे सकती। विधिको केवल ऐसे ही कार्योंके करने या न करनेका आदेश देना चाहिए जिनका किया जाना या न किया जाना—प्रत्येक चाह कुछ हो—समाजके नतिक लक्ष्यके लिए आवश्यक हो (१९ पृ० ९)।

ग्रीन ने इस सिद्धान्तके आधार पर एसी अनेक विधियाँकी आलोचना की है जिन्होंने घम आत्मसम्मान अथवा पारिवारिक भावनाओंको कमजोर किया है। इंग्लैण्ड में उन्नीसवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धकी परिस्थितियाँ पर उत्तम जीवनके मार्गमें आनेवाली बाधाओंको हटानेके सिद्धान्त' को लागू करते हुए ग्रीन ने अनिवार्य शिक्षा धाराके व्यापारका नियंत्रण और एसी सविन्यममि हस्तगत करनेका जोरदार समर्थन किया है जिनमें सविन्य करनेवाले कोना पनोंकी सौग करनेकी शक्तिमें अन्तर हो। निरपना और धाराके अनियंत्रित व्यापार उत्तम जीवनके मार्गमें बाधक है। इसलिए राज्यको अनिवार्य शिक्षा और धाराके नियंत्रणका प्रबंध करके इन बाधाओं को दूर करना चाहिए। अधिकांश माता पिता अपने बच्चोंकी शिक्षा देनेका महत्त्व समझते हैं। इसलिए अनिवार्य शिक्षाके लागू होनेसे उमकी अपनी आत्मिक प्रेरणाका मन्त नहीं होगा। उन लोगोंको छोड़कर जिनमें शिक्षाके लिए आत्मिक प्रेरणा नहीं है और किसी के लिए अनिवार्य शिक्षा अनिवार्य नहीं हागी (२९ पृ० ९)। यही दलील बहुत कुछ धाराके व्यापार पर भी लागू होती है। यदि धाराके बरोक-टोक बिना बहुसंख्यक लोगोंको उत्तम जीवनकी प्राप्तिके मार्गमें बाधा पहुँचाती है तो, राज्यका कर्तव्य है कि वह धाराके व्यापारका नियंत्रण करे। सविन्यकी स्वतंत्रतामें हस्तगत करनेके बारेमें ग्रीन का यह तर्क ठीक है कि हमें न केवल उन लोगों पर विचार करना चाहिए जिनकी स्वाधीनतामें हस्तगत किया जाता है बल्कि उन लोगों पर भी विचार करना होगा जिनकी स्वतंत्रता हस्तगतके कारण बढ़ जाती है (२९ पृ० २)। भूमिक स्वामित्वके सम्बन्धमें ग्रीन का आशय यह है कि छोटे-छोटे भू-स्वामियोंका वर्ग हो जा अपनी जमीनको धर जातता हा।

बहुतसे ऐसे लोग भी जा राजकीय कार्यभारके बारेमें आशयवाणी दृष्टिकोणका स्वीकार नहीं करते यह माननेको तैयार हैं कि घम और नैतिकता जैसे जीवनके

उच्च तत्वोंको राज्य द्वारा लागू नहीं किया जा सकता। पर वह ऐसा कोई कारण नहीं पाने जिससे राज्य सांस्कृतिक कल्याणके विकासके लिए आर्थिक और सामाजिक सम्बन्धोंका नियंत्रण न करे। यद्यत्के इसका उत्तरमें कहेंगे कि आर्थिक और सामाजिक जीवन नैतिक और धार्मिक जीवनसे एकत्र भिन्न नहीं है। व्यक्तिके आर्थिक और सामाजिक हितोंका नैतिक और आध्यात्मिक हितसे गहरा सम्बन्ध है। उपाहरणाय बहुधा अच्छे परिवारका मतलब सुन्दर व्यवहार उच्च आत्मा और उच्च क्रांतिक धार्मिक जीवन ही सकता है। इसलिए राज्यका कार्य जीवनके उच्च और निम्न दोनों प्रकारके कल्याणके लिए अप्रत्यक्ष ही हो सकता है। आध्यात्मिक कल्याणकी भाँति भौतिक कल्याण भी धाहरने मिमनेकी अपेक्षा स्वयं अतिरिक्त होन पर अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। फिर भी एसी स्थितियाँ हो सकती हैं जिनमें भौतिक परिस्थितियाँ उत्तम जीवन की प्राप्तिमें सन्निय रूपसे बाधक हों। एसी हालतमें एन बाधाभागा दूर करना राज्यका कर्तव्य है। पर इस सम्बन्धमें भी बोत्ताके का तब यह है कि हम यह मान न भूलनी चाहिए कि जिस हानि भौतिक पदार्थ हमारे उच्च क्रांतिक जीवनमें प्रवेश कर पाने हैं और 'हमारी वृद्धि और इच्छाके बाधक' बन जाते हैं एम हानि तब राज्यके अप्रत्यक्ष रूपमें ही उन्हें लागू कर सकता है। यही कारण है कि 'नारीतिक स्वाम्य आराम' हेतु मवान और पयाप्त आमन्नी आदि सरकार द्वारा नहीं दिये जा सकते। उत्तम जीवनके विकासके लिए राज्य जिन मामलोंमें प्रत्यक्ष कारवाई कर सकता है व केवल एम ही मामलों में जहाँ विकासकी साधारण रूपसे ठीक तरह मालूम है और जहाँ इस प्रकारके हस्तक्षेपसे स्वतंत्र होनेवाले धार्मिक माधन और बुद्धिमान उन अधिकारोंकी अपेक्षा नहीं अधिक है जिनको इस प्रकार छीना या भंग किया जाता है। एम समयका बल प्रयाग (compulsion) और आमप्रति विक्रम (spontaneous growth) के भेदमें समझा जा सकता है। बोत्ताके सहायता तथा आम निर्भरताके अन्तर पर डार न देकर इच्छा (will) और यात्रिकता (automatism) के अन्तर पर डार देने हैं।

राज्यका कार्यक्षेत्र बाहरी कार्यों तक ही सीमित रहता है और इस कारण राज्य के कार्यके प्रत्यक्ष रूपसे आध्यात्मिक मद्दयारी प्राप्ति नहीं हो सकती। पर इस तथ्यके मतलब यह नहीं है कि राज्य निरर्थक है (does not mean administrative nihilism) (३ पृ० ६)। इसका मतलब केवल इतना है कि उच्चतर जीवनकी प्राप्तिके लिए राज्य द्वारा कार्य किये जानेके पूर्व व्यक्तियोंमें स्वयं एक निश्चित प्रयत्न और सपर्य होना चाहिए। दूसरे शब्दोंमें राज्यके कार्य करनेके पहले ही समाजको प्रयत्न करना चाहिए। अर्थात् उदाहरणके लिए एक अच्छे परिवार मनुष्यके उच्चतर जीवनका अंग न बनकर उसके सहायका एक, ऐसा अतिक्रम हो जायगा जिसकी सति-श्रुति न हो पायगी। अतः राज्यके कार्यको हम प्रत्यक्ष कारवायकी अपेक्षा व्यक्तिगत या सामाजिक उद्योगका समर्थन कह सकते हैं। राज्यका कार्य प्रत्यक्ष रूपसे मूलर जीवनका विकास करना न होकर एम जीवनकी रक्षा करना

उस ठसाहित करना और संगठित करना है। यह भी एक कारण है कि हम बरा राज्यको दोष सब प्रकारकी समस्याओंसे जंचा स्थान देने हैं और उसे अन्य समस्याओंको उचित स्थिति पर कायम रखनेका अधिकार देते हैं। हमारे सामाजिक राजनीतिक आर्थिक और धार्मिक संगठन वे प्रयोगशालाएँ हैं जिनमें हम उत्तम जीवनकी प्राप्ति के प्रयाग करते हैं। इन प्रारम्भिक प्रयोगों और किसी बिनाप उद्योगक पथमें जन भावना जगानेमें सफल होनेके बाद ही हम इस बातकी आशा कर सकते हैं कि राज्य हमारी सहायता करे और तभी हम सुन्दर जीवनकी प्राप्ति कर सकते हैं। यदि राज्य जनतासे पहले सक्रिय हो उठता है तो उसका नतीजा यह होता है कि राज्य समाजका अभिभावक सा बन जाता है और समाज राज्यके आश्रय पर ही चलन लगता है तथा समाजकी प्रयत्नशीलताका भारी दति पड़ुपनी है।

आलोचना

राजकीय नायक सम्बन्धमें यह दुष्प्रकाण विधि और नैतिकतासे बीचने भदका बहुत बड़ा खड़ाकर यत्नाया है। यह सही है कि नैतिकताका बहुत बड़ा भाग विधिके मायरेमें बाहर ही रहता है पर नैतिक वर्तव्य क फी हूँ तक विधि द्वारा भी लागू होते हैं वे बहुत कुछ विधि द्वारा लागू किये जाते हैं। हमकी अनुमति ठीक प्रकारसे महा की गयी है। उदाहरणके लिए दण्ड विधि (criminal law) का नैतिक प्रभाव क्षत्र बहुत व्यापक है। सभी सम्बन्धोंमें राज्य जानवरोंके प्रति निरपेक्षाही निन्दा करते हैं क्योंकि जानवरोंके प्रति निर्भयता अनचित है और इसलिए राज्य उसने लिए दण्ड देता है। इस मामलमें राज्य प्रत्यक्ष रूपमें और ठीक सही ढंगमें नैतिकता लागू करनेकी कागिष करता है। राज्य ही माय विधिकी एसा सन भी है जिसका प्रभाव नैतिकता पर इनका अप्रत्यक्ष होना है कि हम उसकी उपयोग कर सकते हैं।

अच्छ जीवनकी बाधाओंका निराकरण करना (hindrance of hindrances) एक एसा कथन है जिसमें एक मीध-साथे मध्यका घुमा फिरा कर बनावनी इगम कहा गया है। उदाहरणार्थ एक साधारण व्यक्ति का यह कहना कि भोजन परिष्पिनिया में प्रारम्भिक विभाकी सब कहीं उभरता है और हमारे राज्यका उसका प्रकाय करना चाहिए। पर जब उसमें यह कहा जायगा कि निरभरता अथवा जीवनक मागमें एक बाधा है और निरभरता विभा एक दूसरी बाधा है जिसे राज्य पहली बाधाको दूर करनेके लिए काममें लाता है तो बहू इस कथनको बनावनी और पण्डिताऊ ध्याय्या समझता। आत्मावादी राज्यके मायके निरधारमक स्वकथ पर अधिक जोर देता है। हमारा बिवास है कि राज्यको निरधारमक (negative) और क्रियात्मक (positive) दोनों ही तरहसे काम करने चाहिए। पर इस बातकी सावधानता रमनी चाहिए कि उससे मायिकोंकी स्वयं कार्य करनेकी प्रकृति (spontaneity) समाप्त न हो जाय। उदाहरणार्थ निरभरता विभाकी व्यवस्था निरधारमकनी अथवा क्रियात्मक ही है।

धीन और घासाके का यह अनुमान गलत है कि सरकारें हर नियामक कामसे व्यक्तिपरिम स्वतंत्र काम करनेकी प्रवृत्ति कम हागी और वे राज्यकी मशीनके पुञ्जकी तरह काम करेगें जिसके कारण उनका व्यक्तित्व कमजोर हो जायगा। कमसे कम कुछ असा एक तो यह सब समय म्यान और परिस्थितिया पर निर्भर करेगा।

राजकीय कार्यके इस सिद्धान्तमें यह खतरा भी है कि 'उत्तम जीवनकी बाधाओंके निराकरण करने का काम राज्य बहुत देरमें उठावे। यदि राज्य एक तन्त्रस्य दण्ड मात्र बन जाय और हम साक्षात् सुन्दर जीवनकी प्राप्तिके लिए मर्यादित संपर्क करनेका श्राव दे ता बहुत सम्भव है कि वह इतना अकर्मण्य हो जायगा कि उस स्थिति में उस उबारना कठिन ही जायगा। इस आलोचनाका उत्तर सामान्य यह देते हैं कि राज्य एक उन्मत्त दण्ड नहीं है बल्कि वह उस चीजकी भांति है जो अपने छोटे-छोटे बच्चों पर अपने पंजाबा साया रखती है और पासनेकी रखा करती है (Deuteronomy Ch. 33 Verse 11) और ऐसा करनेमें उसका उद्देश्य बच्चाका आत्म निर्भरताकी गिना दना होता है न कि उनका विनाश होना। सामान्य आगे बढते हैं कि जब तक विधिम वैधानिक तरीकस परिवर्तन किय जा सकत हैं तब तक यह सोचना व्यर्थ है कि राज्य हमारी पुकाराको मुनी अनमुनी करता रहगा।

एक दूसरी आपत्ति यह उठायी जा सकती है कि 'समाजकी आध्यात्मिक नावका मनुष्यके विवेक या अन्तरात्मान प्रस्थापित करनेमें आगवाणी इतना व्यस्त हा जाता है तथा आन्तरिक मनस्य और उसकी स्वतंत्र इच्छा (free will) के स्वायत्त (autonomy) में इतना उमम जाता है कि व्यक्तिको भौतिक परिस्थितिया सुधारन की आवश्यकता उमके निमाणे आमत हा जाती है। इस आपत्तिके उत्तरमें यह कहा जा सकता है कि आग और पचाय एक आध्यात्मिक और भौतिक धन एक दूसरमें एकत्र नहा है बल्कि वह एक दूसरेसे सम्बन्धित हैं। सिद्धान्त रूपमें यह बात साहे जितना सही हा पर व्यवहारमें यह सम्बन्ध हमेशा स्पष्ट नहा। निगामी देता।

अन्तिम आपत्ति यह है कि उत्तम जीवनकी बाधाओंके निराकरण करने का विनाश करना अनिश्चित और अस्पष्ट है कि उसका प्रयोग व्यक्तिवाणी और समाजकारी मानो ही राजकीय कार्याय सम्बन्धी अपने-अपने सिद्धान्तका पुष्टि कर सकते हैं।

इन कमियांके हान हुर भी आगवाणी सिद्धान्तका यह साफ़ ही है कि राज्य शाहू या कुछ कर या न करे पर मतिर और आत्मिक कार्यके स्वतंत्र और निष्पक्ष मर्यादामें उम हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

४ गांधीवादी पंचनीति (Gandhian Economy)

गांधीवाणी पंचनीतिमें व्यक्तिवाणी समाजवाद और आगवाणीका समावेष है। यह मनुष्यके आधिष जीवनमें अहिंसाके सिद्धान्तको लागू करनेकी कोशिसा करती है।

गांधीवादकी मान्यता है कि कि बड़े पैमाने पर यांत्रिक उत्पादनका परिणाम निम्न कोटिका भौतिकवाद पिछड़े देशोंको (जहाँ कच्चा माल मिल सके और तैयार माल बचा जा सके) जीतकर अपने अधिकारम करना युद्ध, सैनिकवाद (militarism) और साम्राज्यवाद होते हैं।

पूजीवादी भौतिक-मूल्यका महत्ता देता है पर गांधीवादी मानवीय और सांस्कृतिक मूल्यों पर जोर देता है। गांधीवाद हर प्रकारके शोषणका विरोध करता है चाहे यह शोषण श्रेणिके भीतर—एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग पर—हो या बाहरसे हो। सचिम बड़े हुए यांत्रिक उत्पादन (standardized production) की अपेक्षा गांधीवाद एक ऐसी प्रणाली या पद्धति स्थापित करना चाहता है जिसम व्यक्तिकी प्ररणा और मौलिकता स्वतंत्र रूपसे कार्य कर सके।

गांधीवादी अर्थनीतिके मूल-तत्त्व आत्मनिर्भरता (self-sufficiency) विकेंद्रीकृत उत्पादन (decentralized production) और 'यामयुक्त वितरण (equitable distribution) है। इस व्यवस्थाके अन्तर्गत केवल उन वस्तुओं और सेवाओंको छोड़कर जिन्हें व्यक्तिगत उत्पादकाके हाथमें नहीं सौंपा जा सकता व्यक्ति विहीन माध्यम (impersonal agency) द्वारा बड़ी मात्राम वस्तुआका उत्पादन बन्द हो जायगा। डाक-तारकी व्यवस्था सड़के और यातायातके अथ साधन सरकार के स्वामित्व और नियंत्रणम बने रहेंगे। रेल सान जगत सिंचाई और बड़े-बड़े उद्योग व-यात्री रेल पर राज्यका एकाधिकार (monopoly) रहेगा। परन्तु प्रारम्भिक आवश्यकताकी वस्तुएँ जैसे भोजन वपहा और निवास-स्थान आदि बिके-गिरत नीतिके ही उत्पादित होंगी। वस्तुआने उत्पादनम समन्वय स्थापित करने का और उनको बाजारम बचनेका टीक-डीक इन्जाम करनेका उत्तरदायित्व सरकार पर होगा। इसमें दलालीका मनाफा तथा बड़े-बड़े उद्योगपतियों और कम्पनियोंका मुनाफा समाप्त हो जायगा। प्रारम्भिक उत्पादकोंको अपन परिधमका ऐसा 'यामयुक्त प्रतिफल मिलना जैसा कि मौजूदा हालतम सम्भव नहीं है। स्थानीय उत्पादित वस्तुओंका प्रायः उनी स्थानम उपभोग हो जायगा। कुछ परिस्थितियोंमें वैसेसे भी उ मशीनक बजाय वस्तुआ का वस्तुमामे विनिमय करनेकी प्रथा चालू हो जायगी। उगाहरणके लिए कुछ मामलामें राज्य-कर मुद्राम न केकर वस्तुओंमें दिया जाने सगगा।

केवल उन वस्तुआका छोड़कर जो आवश्यकतासे अधिक मात्राम उत्पादित होंगी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार बहुत कम पैमाने पर होगा। जनताके स्वास्थ्य और कल्याणके लिए उरुती वस्तुओं आरकसकी तरह देगके बाहर नहीं भरी जायंगी। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर लगे ऐसे ब-धनोंके सैनिकवादी और मुडकी परिस्थितियोंका अन्त हो जायगा। हर देग और हर देगके भीतरका प्राकृतिक प्रदेश अपने आप एक आत्म निर्भर इकाई बन जायगा। किसी भी देगके लिए तब यह सम्भव न होगा कि वह किसी दूसरे देगका शोषण करके स्वयं समृद्ध बन जाय।

शरीर और अमीरके बीचका अन्तर त्रि प्रति त्रि कम हुना जायगा क्योंकि तब एक व्यक्ति या वर्ग को किसी दूसरे व्यक्ति या वर्ग का धारण करने का अवसर हो न मिलेगा।

यह सही है कि सभी व्यवस्थाएँ अन्तगत राज्यका कार्य-क्षेत्र विस्तृत हा जायगा। लेकिन यह व्यवस्था समाजवादी नहीं है क्योंकि समाजवादी सम्पत्तिके नियन्त्रित वितरणम विचार करता है जबकि गांधीवादी व्यवस्था सम्पत्तिके ही सावधानताम निश्चिन्त की गयी नातिके अनुसार सम्पत्तिक स्वतः वितरणम विचार करता है। इसने अनावा जहाँ एक आर पंजीवा और समाजवादी गाना हा मौनिक मूल्या का मन्त्र दते हैं इस व्यवस्थामें मौनिक मूल्याका बहा तक मन्त्र है जहाँ तक उनका सम्बन्ध मानवीय मूल्या (human values) स हाता है।

गांधीवादी अर्थ-नीतिका जब हम आनाचनात्मक दृष्टिम दलत है तब हमका यह कहना पडता है कि इसम एसी कोई विधिपता नहीं है कि जिसम हम उन पूजीवा या साम्यवाका विकल्प (alternative) मान सकें। इसकी एक मुख्य शक्ति यह धारणा है कि मनुष्य केवल लाभके उद्देश्य काम करता है। इस धारणा को समझना उस समय और भी कठिन हा जाता है अब हम यह देखत हैं कि राजनीतिके क्षेत्रम गांधीवादी दानन अरु आम-व्यवस्था और एक नएकी आर अद्भुत निष्पत्तीका आवरणता पर ओरगिया है। समाजवादी और साम्यवादी दानाका विचार है कि मनुष्यका केवल लाभकी धारणाकी अनेका किमी ऊँच उद्देश्य काम करनेके लिए प्रेरित किया जा सकता है। अन्तरीकारिकाका उद्देश्य एम ऊँचे उद्देश्यम एक है।

यद्यपि गांधीवादी अर्थ-नीतिके विवेकीकरणकी योजना मनी सम्पत् पर एक काम है लेकिन उसम अति विच जानेकी आगवा है। ममायोजित उत्पादन (concerted production) म बहुत लाभ है। अब हम एक एसी व्यवस्थाका आवरणता है जिसम के-के-करण और विवेकीकरणका माय-माय विचार हो सक। भारतके बारेम ता हम यह कहना होगा कि विवेकीकरणकी योजनाम हमारी एका करणका अममपताका और अधिक बन मिलगा जिसम कि हम आज की अगवा और भी अधिक व्यक्तिवादी हो जायेंग।

आजकी दुनियाम हम सब एक दूसरे पर निर्भर ह। यह दुनिया त्रि प्रति त्रि एक आर्थिक इकाई बनती गियायी देती है। एसी स्थितिम विकार-करणम उत्पन्न जानवाने शरते भी स्पष्ट हैं। हमने अन्तराष्ट्रीय व्यापार और व्यवसाय और अन्तराष्ट्रीय व्यवहार दणि अगमनक नहा तो कठिन अवश्य हा जायगा। दुनियाका आज एसी विव्यवस्था योजनाकी आवरणता है राष्ट्रीय प्राणिक तथा प्रामीण योजनाके शिखरी अम हों। कुनोर "घोषों पर उन्नतसे उपाय महम्ब ननम डर यह है कि कहीं हमारी आर्थिक शक्ति सब न जाय और हम आर्थिक दुर्गके स्तर पर हा न रह जाय। हापस बनी हुई बन्पुले मनीननि बनी हुई बन्पुर्षकी अनेका उपाय ममम और शक्ति मंगी और शक्तिम बह ममात्र का मंगी मिड होंगी।

गांधीवादी अर्थनीति यह स्वीकार करती है कि हर प्रकार की व्यवस्था में कुछ न कुछ अनुशासन और दबाव जरूरी है। लेकिन उसका यह दावा स्वीकार करना मुश्किल है कि गांधीवादी व्यवस्थामें सोग स्वतः अपने मनसे अनुशासन मानेंगे जबकि दूसरी व्यवस्थाओं में अनुशासन को गा पर लाया जायगा। कौन-सा दबाव (coercion) व्यापक है और कौन-सा अनुचित है इसमें अंतर करना बड़ा कठिन है।

शोषण करना बढ़े-बढ़े पूंजीपतियों या किसी निगम (corporation) का एकाधिकार नहीं है। यह तो किसी धन आदमी द्वारा भी किया जा सकता है। आवश्यकता इस बातकी है कि (क) व्यक्तिगत शक्ति का सुधार किया जाय और (ख) शोषणके अघसर कम किये जाय।

इन सब कठिनाइयोंके होते हुए भी गांधीवादी अर्थनीति भारतकी मौजूदा हालातके लिए एक बहुमूल्य योजना है। बुद्धिमत्ता इस बातमें है कि विकेंद्रित ग्राम्य अर्थनीति (decentralised village economy) को एक मिश्रित अर्थनीति (mixed economy) का अभिन्न अंग बना लिया जाय जिसमें विभिन्न पद्धतियोंके उनका मन्त्रादेश को लेकर इन अन्वेषणों को भारतीय परम्परा और प्रतिभाके अनुसार बना लिया जाय।

५. अन्य सिद्धान्त (Other Theories)

सार्वजनिक कल्याण (General Welfare) अधिकांश वर्तमान राज्योंमें सार्वजनिक कल्याणके दृष्टिकोणसे ही वास्तविक शासन व्यवस्थाका संचालन होता है। यह एक व्यावहारिक और स्पष्ट सिद्धान्त है और इन आसानीसे बन्सती हुई परिस्थितियोंके अनुकूल बनाया जा सकता है। इस सिद्धान्तके सफल होना मुख्य कारण यह है कि आजकल सोग विपुल सैद्धान्तिक विवेचनके विरुद्ध है और सिद्धान्तों का व्यावहारिक परिणाम चाहते हैं। स्वतंत्रताको अब विधिमें मुक्त नहीं माना जाता है और न व्यक्तिगत स्वतंत्रताकी परीक्षा इस बातमें की जाती है कि राज्यका कार्य कितना सीमित है। अंगरहवा दानावनीके व्यक्तिके जन्मगत और अन्वेष अधिकारों (inherent and inalienable rights) वाला सिद्धान्त समाप्तप्राय है और अब सामाजिक कल्याण पर जोर दिया जा रहा है। राज्यके कार्योंको तय करनेमें उपयोगितावादी (utilitarian) और अघसरवादी विचारोंका स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। उपयोगितावादी दृष्टिकोणमें व्यक्ति और समाजके हितोंका ध्यान रखनेकी कोशिश की जाती है। हम देखते हैं कि उपयोगितावादीके सार्वजनिक अर्थशास्त्र (Jeremy Bentham) ने सभी समस्याओं और विधियोंके अस्तित्वका औचित्य सिद्ध करनेके पहले उनकी व्यावहारिक उपयोगिता की जांच की थी।

इस दृष्टिकोणके समर्थक यह ठीक ही कहते हैं कि राज्यके बंध और अघसर कार्योंके साथ कोई स्पष्ट अंतर नहीं दिनाया जा सकता। किसी मामलेमें राज्यको हस्तक्षेप

करना चाहिए या नहीं, इसका निर्णय तो उस मामलकी परम करके ही किया जा सकता है। फिर भी राज्य कार्यके बारेमें कुछ सामान्य सिद्धान्त स्थिर किये जा सकते हैं

(१) क्या प्रस्तावित कार्यसे सार्वजनिक हितकी सिद्धि होती है ?

(२) क्या किया जानेवाला कार्य प्रभाव-पूर्ण होगा ?

(३) क्या मलाईकी अन्गना अधिक खुरई किये बिना ही यह कार्य किया जा सकता है ?

मानव के विचार मानव सार्वजनिक कल्याणको अपना आदर्श सिद्धान्त मानते हुए राज्य-कार्यके बारेमें अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं। पुनिसका काम करना ही राज्यका कर्तव्यकी इतिश्री महा है। एक दूसरेकी हत्या या घाटे करनेसे राजनके अलावा राज्यका नागरिकके लिए कुछ अधिक करना चाहिए। उस राष्ट्रीय जीवनका पूरा बनानामें राष्ट्रका सम्पत्ति और उसके कल्याणक विकासमें तथा उसके नैतिक और बौद्धिक उत्थानमें योग देना चाहिए। व्यक्ति-मग्न मानव जीवनके लिए जो उत्तम अनिवार्य हैं और जिन्हें पानका अधिकार हर मनुष्यका है उन सभी कल्याणको हर व्यक्तिके लिए सम्भव बनाना राज्यका कर्तव्य है। राज्यको साहित्य करना और विज्ञानको प्रोत्साहित करना चाहिए। राज्यको सामाजिक और आर्थिक विकासका साधन होना चाहिए। राज्यको व्यक्तिगत एकाधिकारके विरुद्ध हस्तक्षेप करना चाहिए और उसको सुरक्षितमें समाजकी रक्षा करना चाहिए। फिर भी आम तौर पर यही कहा जाता है कि राज्यका हस्तक्षेप नही करना चाहिए। स्वतंत्रता नियम होना चाहिए, हस्तक्षेप अल्प। जो काम व्यक्ति स्वयं राज्यकी भाँति या उससे अच्छा कर सकते हैं उन कामोंको राज्यका नही करना चाहिए। जब यह बिन्दुल निश्चित हो कि राज्यके हस्तक्षेपमें सार्वजनिक हित होगा तब ही राज्यका हस्तक्षेप करना चाहिए। किसी विपय या सन्दर्भके कारणसे हस्तक्षेप नही करना चाहिए। आधुनिक युगमें हस्तक्षेप न करने (laissez faire) की नीति अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दीकी अपेक्षा अधिक असम्भव है। सभी मानव तथाका सदैव स्वतंत्रता ही नही है। यह तो एक साधन है जिसके द्वारा मानव जीवनका पूरा बनाया जा सकता है।

महाद्वार के विचार (२२ अध्याय २) महाद्वार के विचार बहुलवाचन प्रभावित हैं। उनका कहना है कि राज्यके कार्य-क्षेत्रका निर्णय इस आधार पर होना चाहिए कि राज्य समाजके एक मात्र संगठनक रूपमें नही बल्कि समाजके अनेक संगठनों में से एक संगठनक रूपमें कार्य कर सकता है। उनके सामने मुख्य प्रश्न यह नहीं है कि राज्यका क्या करना चाहिए और क्या नही करना चाहिए। प्रश्न तो यह है कि अन्य सामाजिक संगठन और स्वयं राज्यका अपना सीमित स्वल्प राज्यका क्या करनेकी अनुमति देते हैं। फिर भी इस दृष्टिकोणके व्यवहारमें कायाविविध स्थिति जानने या निश्चय निश्चयने से बचाव नही है जो साधारणतया सार्वजनिक कल्याण सिद्धान्तक होते हैं।

मकाइवर का कहना है कि राज्यके सक्रियारम्भ और निपटान्मक काम हैं— व्यवस्था कायम करना और व्यक्तिस्वका सम्मान करना। उदाहरणार्थ राज्यकी विचारका नियन्त्रण नहीं करना चाहिए चाहे विचार किसी भी प्रकारके मयो न हा (५५ १२०)। यद्यपि इस नियमके भी कुछ अपवाद हैं

(१) यदि कोई व्यक्ति राज्यकी विधिको टाडने या राज्यक अधिकारकी अवहेलना करनेको उकसाता है तो ऐसे व्यक्तिके विरुद्ध राज्यको कारवाई करना चाहिए। नागरिक उचित तरीकेसे मौजूदा विधियोंकी आलाचना कर सकते हैं। वह दूसरोंको शान्तिपूर्वक समझा-बुझा सकते हैं और अपना मनचाहा परिवर्तन लानेके लिए वह सभी वैधिक और वधानिक तरीकोंको अपना सकते हैं। पर विधिकी अवहेलना सहन नहीं की जा सकती। इसके मतनब यह नहीं है कि राज्यकी अवज्ञाका प्रचार करनेवाले हर व्यक्तिको राज्य दण्ड दे।

(२) यही विचार एमे साहित्य पर भी लागू हात है जा विधि द्वारा वज्रित अनतिक्रमोंके लिए उत्तजित करता है। पर दण्ड देनेके पूर्व इस बातका सावधानतासे देख लेना चाहिए कि उत्तजित करनेका काम प्रत्यक्ष तौर पर किया गया हा एसा न हो कि कोई बात केवल रचनात्मक मुझाव के तौर पर बही गयी हो और उसी पर दण्ड दे लिया जाय।

(३) विचार व्यक्त करनेकी स्वतन्त्रताका मतलब यह नहा है कि अपमान या निंदात्मक विचार प्रगट किय जाय या अज्ञाततये विचाराधीन मामलाकी टीका टिप्पणी की जाय।

१ विधि और नैतिकता (Law and Morality) मकाइवर आग्ना वादियोंके इस विचारसे सहमत हैं कि नैतिकताकी आन्तरिक शक्तिको राजनीतिक विधिस पृथक् करना आवश्यक है। विधिसे नैतिकता सागू नहीं की जा सकती। विधि केवल बाहरी कामका ही नियमन कर सकती है। विधिको केवल एसे ही कार्योंको निर्धारित करना चाहिए जिन्हें राज्य कल्याणकारी समझता हा—एस कार्य जा स्वतन्त्र और नैतिक व्यक्तिस्व के विकासके लिए आवश्यक तथा भौतिक और सामाजिक परिस्थितियाँका पैदा करनेमें सहायक हों। यह काम चाहे जिस उद्देश्यसे किय जाय उनकी पूर्ति ही आवश्यक होती है। सभी नैतिक उत्तरदायित्वोंको वैधित उत्तर दायित्व बना देनेसे नैतिकताका नाश हा जायगा। विधि द्वारा बटूरना से नैतिकताका सादता स्वन निन्दनीय है। व्यक्तिगत स्वन नैतिक प्रेरणाको इस प्रकार कमजोर करना स्वय एक अनैतिक काम है। नैतिकताकी अग्रीन हमारा व्यक्तिकी अपनी उचित और अनुचितकी भावनाके की जाती है अन्तिम रूपमें व्यक्ति का अपना सगू अस्तु विवेक ही उसका विधापक हाता है (५५ १५५)। नैतिकताका आधार विवेक है। विवेक एक भीनरी शक्ति है। उसमें व्यक्तिग्यकी एकाता समायी रहती है। इसलिये नैतिकताका शक्के कभी भी राजनीतिक विधिसे भेदक एकल्य नहीं हा सकता।

यद्यपि विधि नैतिकतासे भिन्न होती है पर राजनीतिक विधिक प्रति नागरिक का एक नैतिक जिम्मेवारी होती है। आमतौर पर नागरिकका उसका पालन करना हा चाहिए। महाइवर का गम्भीर 'हम विधिवा पालन इसलिए नहीं करते कि हम विधिको ठीक मानते हैं बल्कि इसलिए कि हम विधिवा पालन करना नीक समझते हैं। अपना हर अन्य-सम्बन्ध समुदाय विधिक पालन मजबूर हाकर करेगा और राज्यम इतना अधिक सघन पदा हा जायगा कि राज्यका काम बुरा तरह अभ्यवस्थित हा जायगा। विधि और सरकारकी सावजनिक सेवा और उपयुक्तिनी सभी स्वीकार करते हैं और उसी क लिए हम एसी विधियों का भी मान लेते हैं जो अपन आपन हम स्वीकार करने योग्य नहा जान पड़ता। इस सावजनिक स्वीकृति पर ही राजनीतिक चारणाधिक्य टिका हुआ है (५४ १५६)।

२ विधि और धर्म (Law and Religion) यदि विधि प्रत्यन रूपम नैतिकताको लागू नहा कर सकती ता धर्म विधिक आरा और भा लागू नहा किया जा सकता। धर्म-सभ क लिए यह उचित नहा है कि जिन सामाजिक बहु स्वयं अपना अनुयायी नहा बना सक्ता उन्हें जब-स्ता अपना अनुयायी बना देनेक लिए वह राज्यस अतीत करे। एसा करनेका मतलब यह हागा कि धर्मवा अपनी नैतिक शक्ति पर विश्वास नही है।

३ विधि और प्रथाए (Law and Customs) प्रथाए वा 'प्रचलित म्वाभाविक विवास हैं जिनम जावनकी आन्तरिक परिस्थितिया और विश्वास प्रकट हात है (५५ १६०)। कोई भी राज्य अपन नागरिकाकी पुराना प्रथाओंका विधिक द्वारा समान्य नहीं कर सकता। एकत्र राज्याकी अपना सावजनिक राज्यमि विधि और प्रथाओंके बाव मध्य होनेकी अधिक सम्भावना है। सावजनिक प्रथाओंम सवा तीव्रता और स्थायित्व कम रहता है। अतिए वह अन्यसम्बन्ध सामाजिक प्रथाका नष्ट कर देनेक लिए सैमार खूबे हैं। पर हमारा अनुभव हम यह बताता है कि अन्य सम्बन्ध समुदायकी प्रथाए विधिकी शक्ति और दबाव द्वारा आसानीस नहा सकता जा सकता जैसा कि समुक्त राज्य अमरिचाम मठ निषयके मामलेम हुआ था। विधिक द्वारा प्रथाओंमें हस्तक्षेप करने पर प्रथाए भी विधिक विरोध करता हैं। यह प्रथाक्रमन कवन दम विधि विधि सह हो सीमित नहा खूबता जा किता प्रथाका विरुधी होतो है बल्कि यह प्रथाक्रमन विधि पालन करनेकी आवश्यक विरुद्ध—सामान्य सार्वजनिक इच्छाकी एकताक विरुद्ध—हाता है (जो और भा अधिक महसूस हाता है)। एउतरलाक प्रथाओंका विधिके द्वारा समान्य करना उचित हो सकता है लेकिन सामाजिक प्रथाओंकी सामान्य करेगा विधिको सीमान बाहरका बाज है। उम न ता राज्य बना सकता है और न विधि करुता है (५५ १६१)।

४ विधि और क्रम (Law and Fashion) वे धार्मिक-सोचि प्रथाए या समय-समय पर बनती रहता हैं जिनम बहनाती है। जिन पर राज्यका नियंत्रण और भी कम हाता है (५५ १६१)। यह राज्यक अधिकाधिक सीमाओंका अभाव

उदाहरण है। लोग बड़ी उरसुकता और चाहस पेरिस, लन्दन या न्यूयार्कके किसी अशासक सभ द्वारा प्रधारित क्रान्तिकी अनुगमन करते हैं पर यदि राज्य इसी प्रकारके किसी मामूली परिवर्तनकी आज्ञा दे तो उसे भयानक अभाधार माना जायगा। सम्भव है उससे श्रान्ति भी हा जाय (५५ २६१)।

५ विधि और संस्कृति (Law and Culture) साधारणतया वह समस्त जीवन संस्कृति जो किसी जाति या युगकी भावनाकी अभिव्यक्ति है विधिकी दायता का वाहक है। राज्य उन प्रतिनिधिमन्त्रण करता है पर इससे अधिक कुछ नही कर सकता। राज्य जीवनका व्यवस्थित करता है न कि उसकी सृष्टि। समुदायकी सृष्टि संस्कृति है जो आन्तरिक शक्तिमान जीवित रहनी है। यह आन्तरिक शक्तियाँ राजनीतिक विधिकी अपना बड़ा अधिक सबल और समय हाती है (५५ १६१ ६२)। कसा साहित्य और संगीत प्रत्येक रूपसे राज्यक निदधनकी सीमा नही आते न सभी धनाम 'काई भी जाति या सम्यता अपने स्वतन्त्र भाग पर बनती है। उन प्रभावों और परिस्थितिका असर उन पर पड़ना रहता है जो अधिकतर अज्ञान ही रहती हैं और जहाँ य प्रभाव और परिस्थितिका नाश भी होती है वहाँ राज्य द्वारा न ता उनका नियंत्रण होता है और न उनकी पूर्ण-पूरी जानकारी हाती है (५५ १६२)।

६ राज्य और युद्ध (State and War) 'राज्यकी युद्ध और शान्तिका पूरा अधिकार रहता है और इसलिये उस सभी प्रकारके सर्वा और स्थितियों पर जावन और मुस्युका अधिकार रहता है। राज्य राजनीतिक विवादाका दासि द्वारा हल करनेके अधिकारका दावा करता है। इस दावका अपे मह है कि राजनीतिक हित अन्य सभी प्रकारके हितसे अधिक महत्वपूर्ण माने जाते हैं। युद्धकी पापणा करनेमें राज्य किसी राजनीतिक उद्देश्यका परिवारके सामान्य उद्देश्य या सांस्कृतिक जीवन और आर्थिक व्यवस्थास अधिक ज्ञेया और महत्वपूर्ण स्थान मता है। महाश्वर का मत है कि राज्यकी इस युद्ध सम्बन्धी अनिश्चित मताका नियंत्रण किया जाना चाहिए क्योंकि उनके कथनानुसार राज्य एक सीमित संगठन है और उन पूरे समाज या जातिके साथ एक-रूप महा माना जा सकता।

राज्यके काम-काजके बारेमें महाश्वर इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आमतौर पर मनुष्य जिन परिस्थितियों या बहसुभा शान्तिके लिए उन्मुक्त रहता है उन्हे ध्यानमें रखन हुए सामाजिक जीवनकी जो राजनीतिक बाह्य परिस्थितियाँ (universal external conditions) हैं वहाँ राज्यक कार्य-प्रणम आती हैं। तास तीर पर इसका मतलब है व्यवस्थाकी प्रतिष्ठा जिसमें सुरक्षा (protection) स्वाविव्य (conservation) और विकास हा सके (५५ १८५)। जहाँ व्यवस्थाका उद्देश्य केवल व्यवस्था हा बह अपे है। इसका अर्थ य वहाँ तक है जहाँ तक उसमें समुदायकी आवश्यकताएँ पूरी हैं। समाजके आन्त किण्ठकर ग्याय और स्वतंत्रताके आन्त ही व्यवस्थाकी सीमा निश्चित करते हैं।

आवर्हातिक तीर पर व सभी काम राज्यक काम-प्रणम आते हैं जिन्हें स्थितियों

यथवा व्यक्तिगत संगठनाकी अपथा राज्य अधिक कुशलता और वृद्धताके साथ कर सकता है। इस भाव-ग्रन्थम निम्नलिखित कार्य सम्मिलित हैं - पुर्वनीकी रक्षा करना स्वस्थ और सुन्दर जीवनके लिए आवश्यक न्यूनतम परिस्थितियाका बनाय रखना इस बड़े रचनात्मक उद्योगको कायाविल करना जिनका पक्ष नाथी पीड़ियोंको मिले जैसे नगर निर्माणकी योजनाए आदि देहातोका जंगल शीला और पहाडके सोन्ध का सरण सिचाईके सफ़्त प्रयोग करना दंगकी घरतीरा उपयोग करना जानवरों और पौधाकी नस्त बनाना और हानिकारक कीड मकाडाका नियन्त्रण करना, पारस्परिक सहयोग तारा उद्योगके स्थापित करनेम मन् करना मुग्न श्रम धानि पर नियन्त्रण रखना उद्योग व्यापार और व्यवसायको प्रोत्साहन देना मनुष्यकी सामर्थ्यका विकास और सरण करना शिक्षा और सांस्कृतिक जीवनका उन्धान करना। इन सब कामोंको करनेम राज्यको इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि कार्य करने की व्यक्तियाकी आन्तरिक प्ररणाओको दबाया न जाय।

६ राजकीय कार्योका वर्गीकरण

(Classification of Governmental Functions)

अनेक ससकाने राजकीय कार्योका वर्गीकरण उस स्थितिके आधार पर करना चाहा है जा अधिकतम आवुनित राज्याम ियायी देनी हैं। इन कार्योको इस प्रकार बाटा गया है

- (१) आवश्यक या मौलिक (Essential or fundamental) और
- (२) वकल्पित अथवा संवामूलक (Optional or ministrant)।

१ आवश्यक कार्य (Essential Functions) आवश्यक कार्योमें वह कार्य शामिल है जा राज्यके निरन्तर अस्तित्वके लिए व्यक्तिनी नागरिक और राजनीतिक स्वायोनताके लिए और दूसरे व्यक्तियोंसे उसके जीवन सम्पत्ति और स्वतन्त्रताकी रक्षाके लिए जरूरी हैं। दूसरे शब्दोंमें ये कार्य तीन प्रकारके सम्बन्धों द्वारा निश्चित होन हैं - राज्यका राज्यसे सम्बन्ध राज्यका नागरिकसे सम्बन्ध और नागरिकका नागरिकसे सम्बन्ध (२८ ३६४)। वुड्रो विल्सन (Woodrow Wilson) ने राज्यके आवश्यक कार्योका इस प्रकार वर्णन किया है

(१) व्यवस्था बनाये रखना और हिमा व थोरी इक्ती भांसे जानमासकी रक्षा करना

(२) पति और पत्नी तथा सन्तान और माता पिताके पारस्परिक बधानिक सम्बन्ध निश्चित करना

(३) जायदादके अधिकार हस्तान्तरण (transmission) और विनिमयका नियमन करना तथा कर्ज और अरराधके लिए जायदाद पर आनबात साधिकको निश्चित करना

(४) व्यक्तिगत आपसम हानिवाले संविदा सम्बन्धी अधिनियमों का निरीक्षण करना,

(५) अपराधोंकी परिभाषा करना और उनके लिए दण्ड तय करना

(६) बीवानीके मामलोंमें न्यायकी व्यवस्था

(७) नागरिकोंके राजनीतिक कर्तव्यों विशेषाधिकारों और सम्बन्धोंको निरीक्षण करना

(८) बाहरी शक्तियोंसे राज्यके सम्बन्धोंको तय करना बाहरी शक्तोंसे अथवा हस्तक्षेपोंसे राज्यकी रक्षा करना और उसके अन्तर्राष्ट्रीय हितोंकी वृद्धि करना।

ऊपरके वर्गीकरणका समर्थन करते हुए गेम्स कहते हैं कि प्रशासनकी दो शाखाएँ हैं आर्थिक और सैनिक जिन पर विशेष रूपसे ध्यान दिया जाना जरूरी है। आर्थिक कृतव्यय वह निम्नलिखित कार्योंका सामिल करते हैं कर सयाना आशत निर्यात कर (tariffs) का नियमन मद्य मुद्रा (coinage) और मुद्राचक्र (currency) का नियंत्रण करना सार्वजनिक भूमि जंगल सावजनित इमारतें युद्ध सामग्री आदि सार्वजनिक सम्पत्ति और डाक रेल सार आदि राजकीय एकाधिकारोंकी व्यवस्था करना। सार्वजनिक श्रृणकी व्यवस्था करना भी इसीसे मिला जुता कर्तव्य है।

सैनिक कर्तव्योंमें स्थल जल और वायु सेनाकी व्यवस्था सामिल है। सामारणतया स्थल सेना और नौ-सेना दोनों ही का सामिलता रणक माना गया है युद्धको प्रत्यक्ष चुनौतियाँ नहो। स्थल-सेनाएँ देशके भीतर सामिल और व्यवस्था कायम करती हैं और नौ-सेना व्यवसाय-व्यापार और उपनिवेशोंकी रक्षा करती है (२४ ४०० १)। सभी बड़े राज्योंमें कुछ राष्ट्रीय आमदनीका बहुत बड़ा भाग स्थल-सेना और नौ-सेना पर खर्च किया जाता है। अमेरिकामें भा जहाँ सन् १९३० ई० से आरम्भ होनेवाले दशकमें युद्धका खर्च अपमान्य बहूत कम था संघ सरकारने व्ययना तीन-चौपाई स्थल-सेना नौ-सेना और पेंशनो पर खर्च किया था।

२ वैकल्पिक कार्य (Optional Functions) वैकल्पिक काम यह कार्य हैं जो राज्यके अस्तित्व और स्थिति की स्वतंत्रता तथा सुरक्षाके लिए अनिवार्य नहीं होते पर वे सार्वजनिक कल्याणके लिए जरूरी होते हैं। और इसीलिए अधिकतर राज्य इन कामोंका करते हैं। अनिवार्य और वैकल्पिक कार्योंके बीच अंतर कायम करना भासान नहीं है। दोनों एक दूसरेमें मिल जाते हैं। यह वर्गीकरण देना और बालके अनुसार सम्भूतता रहता है।

वैकल्पिक कार्योंका दो भागोंमें बाटा जा सकता है समाजवादी (socialistic) और असमाजवादी (non socialistic)। समाजवादी कार्य वे हैं जिन्हें व्यक्तिगत उद्योगके लिए छाड़ा जा सकता है पर जिन्हें राज्य इसलिए करता है ताकि व्यक्तिगत नियंत्रणमें ही होनेवाली छत्रछाया न पैदा होने पावे अथवा इसलिए कि अनुभवसे कि-ही विशेष क्षेत्रोंमें सरकारी नियंत्रण अधिक सफल साबित हो चुका है। राज्य द्वारा रेलों और सार व्यवस्था पर आधिपत्य और नियंत्रण तथा बिजली और पानी

पर स्थानीय निकायोंका नियंत्रण इस प्रकार क जायों के उपाहरण है। असाधारणी काय वे हैं जिन्हें यदि सरकार न करे वा मुमकिन है कि कोई भी अपन हायम न स। इसम निम्नलिखित काय शामिल हैं गरीब और असाहाय लोगोंकी देखभाल सवजनिक उद्याना और पुस्तकालयोंकी व्यवस्था सजाई, बुद्ध विरोध प्रकारकी शिक्षा और आंकडा सम्बन्धी एव धात्र-युक्ताल सम्बन्धी काम जिसका उद्देश्य हमारे वातावरणको उन्नत बनाना है तथा एसी सूचनाएँ इकट्ठा करना जिनके आधार पर भविष्यमें और भी सुधार किये जा सके (२४ ३९६)।

बुद्धो विस्तृत वैरन्धित या सहायक कार्योंको निम्न चीजयामि विभाजित करते हैं

- (१) उद्यान और व्यापारका नियंत्रण
 - (२) धनका नियंत्रण
 - (३) वातावरणकी व्यवस्था—जिनमें देनाका सरकारी नियंत्रण तथा वे तमाम काय शामिल हैं जिन्हें हम 'आन्तरिक विकास' कहते हैं
 - (४) ठाक और तार व्यवस्थाका प्रबन्ध आ सिद्धान्त रूपमें सीमारे विभागके ही समान है
 - (५) गसना उपासन और वितरण बन-कनकी व्यवस्था आदि
 - (६) सजाई जिनमें सजाईमें सम्बन्ध रखनेवाले व्यापारोंका नियंत्रण भी शामिल है।
 - (७) शिक्षा
 - (८) गरीब और असमर्थ लोगोंकी देखभाल
 - (९) जगनाकी देखभाल तथा अन्य काम जैसे नगरियामि मद्रनिषोकी वृद्धि करने का प्रयत्न।
- (१०) व्यय निनामक विधिया (sumptuary laws) जैसे 'मद्रनिष' विधि (२८ ४३३)।

भारतमें सामाजिक विधान

(Social Legislation in India)

मह जान लेना चाहिए कि राजकीय कार्य-श्रमका सिद्धांत सामाजिक सुधार के लिए कैसे लागू किया जाय। किसी देशकी सरकारना समाज-सुधारके क्षेत्रमें कितना भाग लेना चाहिए यह एक विवादास्पद विषय है। हमारे सामाजिक और आर्थिक सिद्धान्त बुद्ध भी क्या न हों। इस बातका तो सभी मानते हैं कि हम राज्यको केवल पुलिसके रूपमें नहीं मान सकें। जिनका जनस्य बाहरी और आन्तरिक शत्रुभास रक्षा करना ही हो। यदि राज्य सामाजिक-व्यथागकारी राज्य नहीं बन जाता तो आजकी दुनियामें उसके अस्तित्वका कोई औचित्य ही नहीं रह जाता। यकिन हम बातचीत ध्यानमें रखना होगा कि राज्य के कारण व्यक्ति और समुदायकी प्रेरणा शक्ति और भाव निर्भरतामें किसी प्रकारकी बाधा न पहुंचने पाये।

जहां कहीं भी समाजको निश्चिंत रखते एक बड़ा प्रमाण पर प्रयोग हानि पहुंच रही हो सरकारको लोकमतकी उपेक्षा करने भी उसका निराकरण करना चाहिए, परन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि उस बुराईका दूर करनेके साधन बुराईसे बचकर तथा उपयुक्त न हों और उनमें सरकारकी यत्नाश्रीका भी डर न हो। यदि सरकार गती प्रथा और बाल हत्या प्रथाका हटानेके पहले कार्यक्रमतः शिक्षण हानका इन्तजार करनी तो उसे अनिश्चिंत समय तक इन्तजार करना पड़ना। यही बात बहुपत्नीत्वके सम्बन्धमें भी लागू होती है। इस प्रथाका हटानेके लिए सरकार ने हाथ ही न बहुत बड़े तथा नियामक कानून बनाये हैं। जब तक नारदकी समस्त जनता शिक्षित न हो जाय तब तक के लिए स्वास्थ्य सपाईं और पीप्लिक भावन आर्थिक सम्बन्धमें आवश्यक सामाजिक सुधारोंका गंभीर रहना मूलतः होगी।

जो सायं राज्य द्वारा आशुमूलक विधान (positive legislation) के विरुद्ध है वह इस बातका नहीं समझ पाता कि विधान स्वयं साक्रमतः एक साधन है। जिस तरहसे पुलिस न सिपाहीना शस्त्रा यन्त्र-अस्त्रका सीधा बनाय रखना है उसी तरह राज्य द्वारा बनायी गयी विधि भी हम सामाजिक जीवनमें उन उद्देश्य स्तर पर पहुंचानेमें मदद करती है जिन पर रहने की साधारणतया हम साधारण आदत नहीं होती। विधिना जहां एक आर इग बातका रखा रखना चाहिए कि वह साक्रमतः बहुत भाग न बढ़ जाय वहां यह भी देगना चाहिए कि वह साक्रमतः कुछ भाग ही रहे ताकि साक्रमतः उंचा उठानेमें वह प्रक और सहायक हो सके।

सामाजिक-क्षेत्रमें विधिना प्रभावकारी हानेके लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह अनिवार्य हो या सारे देश या जनता पर एक साथ ही लागू हो। एक बहुत-से माध्यमे है जिनमें अनुमति मूलक विधान (permissive legislation) का प्रभाव

अनिवार्य विधान (compulsory legislation) की अपेक्षा अधिन होता है। उदाहरण के रूपमें हम अंतर्जातीय विवाहको उे कहने हैं।

आयकरने हमार समाजम ऐम प्रगतिगीन मनुष्य बहुन कम हैं जो अपने जीवन सायीका चुननम जातिका बचन ताइनेको तयार हा। एम व्यक्तिवाको राज्य द्वारा अप्रत्यक्ष रूपमे बडावा मिनना चाहिए तथा उनके भागम आनेवाको बाधाओंका निराकरण हुाना चाहिए।^१ समाज-मुधारने मामनाम प्रत्यक्ष साधनाकी अपेक्षा अप्रत्यक्ष साधन अधिन प्रभावकारी हाग।

बुद्धि नून हुए क्षत्राम मद्य निषेध लागू करना जमा कि आइकन भारतम किया जा रहा है निसम्नेह एक बुद्धिमताका काम है। अब मद्य निषेधको ऐग मर म लागू करनेका विचार किया जा रहा है। सीमाव्यम इस विषयम भारतमे प्रायः सभी धार्मिक समुदाय एक मन हे। इस समय संनिको तथा विन्गियाका नस विधिन दापरे म बाहर रखा गया है जा उचित नहा जान पन्ता।

निसम्नेह मद्य-निषेधका राज्यकी आमदनीम बहुत बमी हा गयी है और बहुत-से माण बकार हा गय हैं। गणबका सरलानुनी तरीकम बनाया जाना और चारीमे बेचा जाना अब भी जारी है। कानूनका लागू करनेका न अफसराने मय जगह ईमानदारी से काम नह किया है। यह उन्नी है कि जनताका न केवल सराब पीनेकी बराइया बडावा आय बल्कि उस दानी विधियाका पालन करनेकी महत्ता भी बनसायी आय। अभी मद्य-निषेध विधिम बहुत-सी कमजोरिया है। जब भारतम पूरा तरहम मद्य निषेध लागू हा जायगा तब इन कमजोरियाका दूर करना सम्भव होगा। संनिका मा भारतम रहनका विन्गियाका किसी भी प्रकारकी छूट दनकी काई आव-पनना नहा है। औपधि-रूपम मद्य-सेवनके धनुमति पनाका दुस्तयाग रोकन तथा तत्-सम्बधी नियमोंका बडावनि पालन करनेके आव-यचना है। बुद्ध पीडोन बगमि मद्य निषेध पानूनका तोड़ना भी एक प्रगन हो गया है। यूरे ही नहा अनेक मौजवान भी इस कानूनका भंग करनेके अपराधी हैं।

यदि जनता ऐगा गणबकारीत मुक्त रचना चाहती है ता अनेक दुष्पचागाके आव-नू मद्य निषेधकी भीति राखन हो सकती है। परा खूना और धार्मिक स्थाना म मानक वस्तुआसे पबोकी गिना इनम सहायक हो सकती है। इस कानूनका कारण बजार होनवाका कामम लागनने निग मांडकनिक बापोंकी एक विनाय घोचना जरूरी है। राज्य सरकारकी आमनाम मद्य निषेधमे जा बमी हुानी उमे पूरा करनेके निग अय साधनाका अदानना होगा।

^१ १९५४ म पारित विवाह विधायक विधेयक (Special Marriage Bill) के द्वारा अब हिन्दुअधि शीघ्र रिमी की पग द्वारा अपना धम छोड बिना विवाह करना बंध पारित किया जा चला है। १९७७ ई० के कानूनके अनुसार न्हें शोपना बानी पड़नी थी कि बं रिमी भी धमम गही है।

लोगोंको भारतीय सस्कृतिके स्थायी मूल्याकी शिक्षा देना आवश्यक है जिससे उन्हें पश्चिमी सस्कृतिकी बुराइयोंके बोधे नक़लची बननेसे बचाया जा सके। मद्य निषेध जैसा कोई भी निषेधात्मक क़दम तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक उसके साथ आदेशमूलक क़दम भी न उठे। अब पहिले-पहिले कांग्रेस मन्त्रिमण्डल (१९३७-३९) ने सप्तम जिलेमें मद्य-निषेध लागू किया तो अनेक साड़ी निकालनेवाले बेकार हो गये और उनकी जीविकाका एकमात्र साधन उनसे छिन गया। फलतः तत्कालीन सरकार को मद्यदूरोके अवकाश-कालके लिए नये धंधे ढ़ूढ़ने पड़े और जो लोग बेकार हो गये थे उनकी जीविकाका प्रबंध करना पड़ा। ससन्दूद भजन मण्डलियों और धायकी दूबानों का इन्तज़ाम किया गया। साड़ी निकालनेवालोंको साड़ी ठाड़ीमें गुड़ बनाना सिखाया गया और बहूतोंको सायजनिब सड़कोंके लिए पाथर छोड़नेमें जुटाया गया। राज्यकी आमदनीमें जा कमी हुई उसे बिजली-बज़र लगा कर पूरा किया गया।

सामाजिक सुधारके प्रयोग मद्य-निषेधकी भांति न केवल सीमित क्षेत्रोंमें सफलता प्राप्त किये जा सकते हैं बल्कि जनताके कुछ विशय वर्गोंमें भी हो सकते हैं। उदाहरणके लिए बाल विवाहकी प्रथा है। यह सर्वविदित है कि १९२९ ई० के बाल विवाह निषेध विधि (जो शारणा विवाह विधिसे नामसे प्रसिद्ध है) को नग अधिक किया गया है और उसका पालन कम किया गया है। क्याकि हिन्दुओं और मुसलमानों के धार्मिक और सामाजिक रीति रिवाज इसके पक्षमें न थे। फिर भी इस विधिको देहात्म रहनवाले ईसाइयोंमें लागू किया जा सकता है जिनमें भी बाल विवाह अनहोने नहीं हैं। ईसाई लोग सभी जगह बाल विवाहको बुरा मानते हैं इसलिए यदि यह विधि शान्तिपूर्ण ईसाइयों पर अनिर्धार्य रूपसे लागू की जाय तो उसका कोई विशय विरोध नहीं होगा। जब यह प्रयोग उनके बीच सफल हो जायगा और लोग इसके सुन्दर परिणामों-सुन्दर स्वस्थ हृत्-गुष्ट और दीर्घजीवन-को देखेंगे तो उनके लिए यह बहुत शिक्षा प्रद होगा।

राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करनेके बाद भारत सरकारने अपने इस निष्पत्तिकी मांगना कर दी थी कि वह शारणा विधिको लागू करेगी। विवाहकी उम्र भी बढ़ा कर सड़कियोंके लिए १६ वर्ष और लड़कोंके लिए १८ वर्ष कर दी गयी है। पर अभी तक इस पर क़ाईसे अमल नहीं किया जाता है।

विद्युत् हूए लोगोंको सहायता देनेकी जिम्मेदारी सरकार पर बहुत अधिक है। फिर भी भारतमें इस बारेमें बहुत कम कोशिश की गयी है। यह सही है कि पागलोंकी रणवासीके लिए ऐसे अस्पताल और एसी संस्थाएँ हैं जिनका प्रबंध सरकार करती है परन्तु कामके अयोग्य कमबोर दिमागवानों के लिए और अप, बहरे गूंगे बूड़े तथा अममर्ष व्यक्तिपोंके लिए अब तक इतनी ज़रूरत नहीं किया गया है। जनताके पास इतने साधन नहीं हैं कि वह एमे लोगोंका प्रबंध स्वयं कर सके। भारतीय अपनी दानगीपत्राके लिए प्रसिद्ध है परन्तु उन्हें इस बातकी शिक्षा नहीं ले गयी है कि कब और किये दान देना चाहिए। यह समने भिगारीको दान देनेमें

दान देनेवालेकी आत्माको भन ही शान्त मिल जाय और भने ही वह यह सन्तोष करने कि वह अपने भावी जीवनके लिए पुण्य कमा रहा है परन्तु धाम उसे यह नहीं सूझता है कि बिना सोचे-समझे दान देनेसे सामाजिक समस्याएँ मुलमूलनेके बजाय और अधिक उनमती जाती हैं। नील मागना भारतम एक बड़ा सामग्र पैदा बन गया है।

इस विवेचनाके फलस्वरूप इस बातकी जाँच कर लेना भी जरूरी है कि सामाजिक मुद्दाओंके दानमे स्वेच्छासे किये गये प्रयत्नोंका क्या स्थान होना चाहिए। इंग्लैंड जैम देशमें जहाँकी जनता भारतकी अपेक्षा वहाँ अधिक एक राष्ट्रीय है जहाँ गिनावा स्तर ऊँचा है और आम निभरताके आगने जहाँके राष्ट्रीय जीवनम बहुत बड़ा काम किया है एमी अनेन समस्याएँ और फल्व है जा किसी न किसी गिनाम आवश्यक सामाजिक सुधारका काम किया करते हैं। उस देशमें जनताके एच्छिक सप सामाजिक प्रयागोकी प्रयोगगानाएँ होती हैं और उनकी भूमिका तयार कर देने तथा उसकी उपयोगिता सिद्ध कर देनेका काम जब काम उनके बूतेने बाहर हो जाता है तब सरकार आगे बढ़कर उस कामको करने लगती है। परन्तु भारतम अवस्था इससे बिल्कुल भिन्न है। जनता के नागरिक विचारोंका स्तर बहुत नीचा है और नागरिक उत्तरदायित्वकी भावनाका अभी विकास ही हो रहा है।

इस सबके बावजू यह कहना होगा और जोर देकर कहना होगा कि सामाजिक मुद्दाओंको दूर करनेके लिए सरकार पर ही आविष्ट होना मूलता है। परिवार स्कूल कॉलेज समाचार पत्र व्याख्यान-मंच सिनेमा पियट गेडिया और सन-क्लेके काम आदि सबको सामाजिक मुद्दाओंको दूर करनेम सत्रिय हो जाना चाहिए। जिन सामाजिक मुद्दाओंके लामे जनता मुँहसे सर मुकाती बली आ रही है उनकी मुद्दाओंको सनलतापूर्वक समझानेमें बड़-बड़ इतवार स्पग-बिन और नाट्य-नीताएँ तथा जनप्रिय गीत रिताना मह-बूना योग दे सकते हैं यह हम अभी समझ नहीं पाये हैं।

ऊपरकी विवेचनाका निष्पन्न हम निम्नलिखित सिद्धान्तों और कायपद्धतिपक रूपमें कर सकते हैं

(१) राज्य जो कुछ भी करे उसे इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि व्यक्तिगत भ्रंस्ता उत्तरदायित्व और आत्मसम्मानकी भावना मर न होने पाये।

(२) राज्य अथवा किसी एच्छिक-सप द्वारा किया जानेवाला सनात्र-मुपारका काम रसम-अपयगी जैसा (formal) और यांत्रिक (mechanical) नहा होना चाहिए।

(३) सामाजिक मुद्दाओं पर सीपे-सीपे को करनेके बट्टया अधिक सक्षमता नहीं मिलती। एमी हामनेमें अप्रयत्न साधन अधिक प्रभावकारी हो करने हैं।

(४) सामाजिक-विधान विचारकर एसे साक्षरसोप देशोंमें जहाँ की जनता शिक्षित हो लोरमने बहुत आग बड़ा हुआ नहीं होना चाहिए यद्यपि साक्षरता स्तर ऊँचा करनेके लिए सामाजिक विधान स्वयं भी एक मात्त्वपूर्ण साधन बन सकता है।

(५) साधारणतया स्वेच्छाप्रेरित सघोंको ही सामाजिक प्रयोगोंकी प्रारम्भिक प्रयोगघाता घनना चाहिए।

(६) प्रान्तीय अथवा केन्द्रीय सरकारोंकी अपेक्षा स्थानीय स्वशासन संस्थाएँ जैसे नगरपालिका जनताके सुख-सुधारका काम बहुत अधिक कर सकती हैं क्योंकि वे सामाजिक समस्याओंके सम्पर्कमें अधिक रहती हैं।

समाजका समाजवादी स्वरूप (The Socialistic Pattern of Society)

समाजवादी समाज और कल्याणकारी राज्य भारतका लक्ष्य थापित हो चुका है। लक्ष्य की प्राप्तिके लिए यह जरूरी है कि समाजमें पायी जानेवाली कृत्रिम सामाजिक और आर्थिक असमानताएँ मिटायी जायें और समाजका पुनर्निर्माण ध्याय और समानताके आधार पर किया जाय। इस कामको पूरा करनेके लिए हम विधियाँका सहारा लेना होगा और लक्ष्यकी प्राप्तिमें विधियाँका मांग दिन प्रतिदिन अधिकाधिक होगा। भारतीय संविधान (१९४९) छुआ-छूतको राज्यके विद्वेषण एवं अपराध घोषित करता है और उसका निषेध करता है। छुआ-छूतको मिटाने और हरिजनों विद्वेषण वर्गों और बघायली लोगोंके बच्चोंको गिनाके सभी अवसर देनेके यथासम्भव प्रयत्न किये जा रहे हैं। देग भरम मन्दिर अछूतोंके लिए खोल दिये गये हैं।

आर्थिक-क्षेत्रमें द्वितीय पंचवर्षीय योजनाका लक्ष्य ८० लाखसँ सबर एक बराबर तक नये कामकी जगहों पैदा करना है। छात्रों तथा कुटीर उद्योगोंको आर्थिक तथा अन्य प्रकारकी सहायता दी जा रही है। अधिकाधिक संख्यामें उद्योगोंका राष्ट्रीयकरण किया जा रहा है।

राजकीय उद्योगों और सिंचाई कामोंकी संख्या बढ़ती जा रही है। अमीरों और गरीबोंके बीचकी खाई पाटनेके लिए और बड़ी-बड़ी सरकारी योजनाओंके लिए आवश्यक धन जुटानेके निमित्त नये-नये कर लगाये जा रहे हैं। इन्स्टीट्यूट एक्ट (Estate Duty Act) के अनुसार मृत व्यक्तियोंकी सम्पत्तिका कुछ भाग राज्यको मिल जाता है। सम्पत्ति कर (Wealth Tax) तथा व्ययकर (Expenditure Tax) के कानून भी लागू हो गये हैं। मंहगाईके भत्ते स्थायी हो गये हैं। हो सक्ता है कि भविष्यमें राज द्वारा व्यक्तिकी अधिकतम और न्यूनतम आय निर्धारित कर दी जाय।

गिनाके क्षेत्रमें भी भारी परिवर्तन हो रहे हैं। व्यक्ति गिनाका सरकारें हरे सम्भव प्रोत्साहन दे रही हैं। प्रारम्भिक गिनाका विस्तार हो रहा है। सामाजिक गिना पर भी उचित ध्यान दिया जा रहा है। माध्यमिक आ. वि. विद्यालय गिनाका पुनर्गठन हो रहा है। सामान्य गिनाकी ओर अधिकाधिक ध्यान दिया जा रहा है। प्राविधिक (technical) और व्यावसायिक (vocational) गिना तथा स्त्री गिना

पर विचार ध्यान दिया जा रहा है। वित्तीय और व्यावसायिक विषयोंके अनुक्रम हितोंके दृष्टिकोणसे विकासके लिए भी सरकार प्रयत्नशील है।

जनताका स्वास्थ्य सुधारके लिए भी बहुत कुछ किया जा रहा है। नये-नये प्रसूति एवं गणुपावन के शौकी स्थापना की जा रही है। सन्तति निरापक सम्बन्धम जनताको शिक्षित किया जा रहा है और दूध दुग्ध सुख्याम लोग समान उठा रहे हैं। क्षय बुद्धि और रागा का समूल नष्ट करनेका प्रयत्न हो रहा है। हर साल नये-नये मेडिकल कनिष्ठ और अस्पताल खुलते जा रहे हैं। अंधा और अंध प्रचारक अपना लोभालोभा से मान पर विचार ध्यान दिया जा रहा है। देशमें दूध के उत्पादनका बढाना प्रयत्न हो रहा है। प्रथम पंचवर्षीय योजनाके आखिरी तीन चार वर्षोंमें नारंग्य अन्नका उत्पादन बढाना तात्पर्य था। फिर भी आरक्षण अप्रवृत्त बनी है। इसका कारण यह है कि आबादी बढती जा रही है और अधिकांश नए बाबरा और दूसरे मोठे अनाजके स्थान पर गहू और घाबरा स्थान पाते हैं।

सरकार भारतीय संस्कृति भारतीय नस्ल साहित्य विप्लव आदि पुनर्जीवन करनेका प्रयत्न कर रही है। सर्व-समावेश ता आनन्द ही करने है। नए नए नव-जीवनके समय दिखाई नोंद रहे हैं।

संगठनों के सामाजिक विधान एक सडालिक प्रान-मात्र नहा रहे गये हैं किम पर विचार और राजनीति ही ध्यान में है। यह व्यावहारिक गवनाति और सामाजिक जावनन हर क्षण अधिहार बना रहा है। निम्नलिखित दृष्टान्त प्रगति द्वारा रही और जनता प्रगतिशील मात्रनाशमि मन्त्रालय प्राना हासिक सचिव दिया जा निरन्तर अधिष्ठम नारंग्य स्वल्प बन्धन बन्धन जानपा।

समाजवादका मूल्यांकन (Appreciation of Socialism)

हम एक ऐसे युगमें रह रहे हैं जिसमें समाजवादकी या तो घोर निन्दाकी जाती है या फिर उसकी अत्यधिक प्रशंसा की जाती है। इस विषय का वैज्ञानिक अध्ययन करनेवाले विद्यार्थियोंके माते यह हमारा कतव्य है कि हम इसे सशानुभूतिपूर्वक परन्तु समाजवादके आत्मको उसके व्यावहारिक रूपमें अलग करें और मालूम करें कि जो कठिनाइयाँ उसमें होती हैं व समाजवाद का अभिभाग्य अंग है या केवल परिस्थितियों के कारण पैदा होती है। यदि समाजवादके समर्थनमें लिये जानेवाले सारे परम्परागत तर्क अक्षय सिद्ध हो जाते हैं तो भी उसकी मूल भावना स्वस्थ और सुन्दर है।

यह बड़े दुर्भाग्यकी बात है कि इस विषयका शास्त्रीय अध्ययन करनेवाले विद्यार्थी भी अपनी रुचि-अरुचि और पूर्व निश्चित धारणाओंके शिकार बन जाते हैं। जर्मन अर्थशास्त्री रोस्कर (Roscher) कहते हैं कि समाजवाद 'उन प्रवृत्तियोंका पोषक है जो सामाजिक हितका इतना अधिक ध्यान रखना चाहती है जिसका मतलब के स्वभावके अनुकूल नहीं है। इसमें तो सन्देह नहीं कि इस परिमाणमें मूल प्रश्नको टाल दिया गया है। इसका निपटारा करनेका कि क्या मनुष्यके स्वभावके अनुकूल है और क्या नहीं है? मानव-स्वभाव की दुहाई देकर अपनी अधर्म्यता छिपानेवाले आलसी लोग कम नहीं हैं। हर्नॉ (Hearnshaw) जैसे विद्वान् प्राज्ञेतर भी उस समय अपनी पूर्व निश्चित धारणाके शिकार बन जाते हैं जब वह यह कहना है कि सनकी और अपराधी ही ऐसे दो वर्ग हैं जो समाजवादकी आरंभक पीढ़ी होते हैं।

समाजवादकी अनेक-रूपता (The many sidedness of Socialism)
समाजवादकी कोई एक ठीक परिभाषा देने की कठिनाईका मुख्य कारण उसकी अनेक रूपता है। मानिक और मजदूरोंके बीच मुतापकी मातृदारीसे लेकर 'संरक्षक संरक्षक' (paternalism) तक—जिसमें यह आशा की जाती है कि वह व्यक्ति के लिए सब कुछ करें—तक समाजवाद के भीतर आ जाता है। एक आधुनिक बटु धामोपकरण कहना है कि समाजवाद 'अनेक छत्रोंवाला छत्र है—जब तक एक पत्त काटो तब तक उसमें स्थान पर वृक्ष पत्त निकल आता है।

बादलिनका कहना है 'जहां आवश्यक बलना नहीं होती वहां लोग लपट हो जाते हैं। समाजवादको हम आदर्श रूपना मान सकते हैं। यदि समाजवादके विरोधी उठे कारी बनना चाहते हैं। समाजवाद एक दर्शन शार एक धर्म है वह जीवनकी एक पद्धति है। इसलिए समाजवादको कोई एक सामर्थ्य परिभाषा देना अथवा एक ध्यान स्पष्टीकरण नगण्य समाजवादी वाचनम पढ़नेमें ही तैयार कर देना आमान

नहीं है। यह एक सजीव, सक्रिय आन्दोलन है जिसकी सम्भावनाओंकी कोई सीमा नहीं है। समाजवाद एक दली-बनायी योजना या निश्चित व्यवस्था नहीं है जो सदैव बसनेवाली परिस्थितियोंमें मेल न खा सके। समाजवाद समाजके कुछ लोगोंके बजाय सब लोगोंका हित चाहता है। राजनीतिक स्वतन्त्रता—लोकतन्त्रके लिए चलन जाने संघर्ष—का अगला क्रम समाजवाद है। लोकतन्त्रीय देशोंमें हम लोगोंको जो असमाजवादी स्वतन्त्रता मिली हुई है वह केवल भूया मरनेकी स्वतन्त्रता है।

समाजवादकी परिभाषा (Definition of Socialism) समाजवादकी सम्भवतः सबसे अच्छी परिभाषा सेलर्स (Sellars) ने की है। उनका कहना है कि 'समाजवाद एक ऐसा लोकतन्त्रवादी आन्दोलन है जो समाजमें एक ऐसा अधिक संगठन स्थापित करना चाहता है जिससे जनताको हर समय समाजसम्भव अधिकतम न्याय और स्वतन्त्रता प्राप्त हो सके। ह्यूगन (Hughan) ने समाजवादकी परिभाषा इस प्रकारकी है समाजवाद मजदूरोंका राजनीतिक आन्दोलन है जिसका लक्ष्य उत्पादन और वितरणके मूल साधनों पर सामूहिक प्रभुत्व और नाबतन्त्रीय व्यवस्था लागू करके घोषणाका अर्थ करना है।

समाजवादके विचारोंका विकास (Development of Socialistic Ideas) यद्यपि समाजवाद शब्दका प्रयोग विद्युत् की शक्ति के तीसरे दशकमें ही शुरू हुआ था फिर भी समाजवादी विचार उतने ही पुराने हैं जितनी पुरानी हमारी सभ्यता है। समाजवादको हम आर्यिक सभ्यता हुई औद्योगिक क्रांति (Industrial Revolution) और विचारोंके सभ्यता हुई फ्रांसीसी राज्य क्रांतिवा मनुष्य परिणाम कह सकते हैं। विद्युत् की शक्ति के समय तक समाजवाद बहुत कुछ स्वप्नवादी (utopian) रहा। इस प्रारम्भिक समाजवादके प्रमुख आस्थाता मूर (More) ओवेन (Owen) फोरियर (Fourier) और सेंट सिमॉन (Saint Simon) थे। यह सभी लोग आस्थावादी और विवेकवादी थे। उनका विश्वास था कि वह समाज बनाकर मोर स्वयं उदाहरण उपस्थित करके राष्ट्रीय स्तर पर समाजवादकी स्थापना कर देंगे। समाजवाद और साम्यवादमें स्पष्ट अन्तर करनेका कोई प्रयत्न उन्होंने नहीं किया। वह लोग जिस आशा समाजकी स्थापना करनेकी आशा करते थे वह वास्तविक साम्यवादी था।

समाजवादके इस प्रारम्भिक आशावादी और स्वप्नवादी स्वरूपको कांच मार्क्स (Karl Marx) और एंगेल्स (Engels) ने बसकर हमें एक जनतन्त्र आन्दोलन बना दिया जिसका आधार उनके कथनानुसार वैज्ञानिक था। मार्क्स स्वभावसे ही आन्दोलनकारी थे तथा समझाने-बुझाने और एकाकी प्रयोगों पर विश्वास नहीं करते थे। उन्होंने समाजवादको एक सर्वहारा आन्दोलनका रूप दिया और उसे निश्चित रूपसे राजनीतिक बना दिया। उन्होंने वर्ग-युद्धकी धारणाका प्रतिपादन किया और लोगोंको कि बर्गोदारोंकी सहायता देनेका महाजनोंको ध्याय देनेका और पूँजी

पतियोंका मुनाफा खानेका कोई हक नहा है। वह धमकी ही आर्थिक मूल्याका स्रोत मानते थे।

वर्तमान अवस्था सफ़्रमणकी है। इसम समाजवाद अपने सही स्वरूपम आ रहा है। एक ओर समाजवाद और व्यक्तिवाद और दूसरी ओर समाजवाद और साम्यवादके बीच संघर्ष हा रहा है। कुछ स्वार्थी लोगवी हा म हा मिनाकर यह कहना सगी नहीं है कि माकम आधुनिक समाजवादके पपप्रदर्शक थ और अब भी हैं।

समाजवाद तथा अन्य व्यवस्थाएँ (Socialism and Other Systems) समाजवादके विराधी उमको बन्नाम करनेकी हुमेनाम बाणित करने आये हैं। समाजवादका अराजकतावाद (anarchism) श्रमिक गणवाद (syndicalism) विस्तृत नौकराणी (extended bureaucracy) अथवा साम्यवाद (communism) के साथ एक रूप नगी मानना बाणित ब्याकि समाजवाद मूलतः विकास मूलक और मयापवाणी है। अराजकतावाद (उमके दागनिक स्वरूपको छोडकर) हिंसावाणी तथा धान्तिवाणी है। अराजकतावाद व्यक्तिवादका ही विरुध तब उच रूप है। कुछ ताग समाजवादका विस्तृत नौकराणी मानते हैं। उनके एसा माननेका कारण यह है कि वे सरकारका एव याहरी शक्ति माननेके आनी हो गये हैं। परन्तु यदि समाजवादका यह गिडाल मही है कि जनता ही स्वयं सरकार का अपने लिए बनाती है और जनता सरकारका एव अविभाज्य अंग हानी है ता सरकारके विस्तृत बाप क्षत्रना अर्थ सरकारका एव विस्तृत नौकराणी एव भी नहीं हा सक्ता। समाजवादका ठीर-ठीक समानेने लिए यह आवश्यक है कि समाजवाद साम्यवादका अन्तर अख्ठी तरह समान लिया जाय। समाजवाद उल्लानके साथना पर (और कुछ लोगने अनुसार विवरण पर भी) सामूहिक प्रभुत्वका समर्पन करता है पर तु साम्यवाद सभी बन्तुओं पर सावजनिक प्रभुत्वके साथ ही सभी वस्तुओंके सावजनिक उपयोगना पणपानी है। साम्यवादका आन है हर मनुष्यको उसकी मेहनत और उमक सामाजिक रूपमे उपयोगी धमके अनुसार पारिश्रमिक देना है। समाजवादका अर्थ और व्यक्तिगत सम्पत्तिका मानना है परन्तु साम्यवाद इनक शौचियका नहीं मानता। समाजवादका आधार विकासवाणी है पर साम्यवाद पान्ति पर आधारित है। साम्यवाद समाजवादी आना अधिक अस्पष्ट अधिक भावनात्मक और नौकराणीवादी और अधिक शका शका है। समाजवाद साम्यवादके ज़रबि साम्यवाद आना करता है कि पीरे पीरे एक समय आयगा जब राज्य समाज हो जायगा।

समाजवादका बाप धम (Programme of Socialism) समाजवादके आधारक स्वार्थीके बाप प्रमात एव आपुनिक लक्ष न संीनेमे इन प्रकार बननाया है समाजवादका उद्देश्य उपाकर मापनाका उमक अधिकाधिक सफ़ीकरण करना

है कि मायाका आनन्दता धार धार बराबर हाता चला जाय। समाजवादी धर्मशास्त्र मानव मानव कल्याण की अधिक महत्त्व देता है। समाजवादी उत्पन्नता उद्योग सामाजिक शक्ति-संघर्ष न मानकर न्युनता मानता है और इस मनका समझन करना है कि आत्म-विकासक साधन और जबरन सदका समाज रूपन मिलने चाहिए।

अधुनी विश्वकोष (Encyclopaedia Britannica—११वाँ संस्करण) में समाजवादी परिभाषा इस प्रकार की गयी है वह नीति या सिद्धान्त जिसका उद्देश्य है कन्द्रीय सामाजिक अधिकार सत्ताके माध्यमन सम्पत्तिका आधिकारिक अर्थात् अधिक न्यायपूर्ण वितरण और न्यून वितरण को पूरा करने के लिए अधिक उत्पादन। समाजवादी निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण उपायोंके सम्पत्तिक अधिक उच्च वितरण और अधिक सामाजिक निदमन करनेका प्रस्ताव करते हैं।

(१) महत्त्वपूर्ण उद्योगों और उद्योगोंका सामाजिक प्रभुत्व तथा नियन्त्रण करना।

(२) उद्योगोंका संचालन व्यक्तिगत लाभकी दृष्टि न करके सामाजिक आवश्यकताओंकी दृष्टि करना।

(३) व्यक्तिगत लाभका उद्देश्य हटाकर उच्च स्थान पर सामाजिक सेवा उद्देश्यकी स्थापना करना।

समाजवादी एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था स्थापित करना चाहता है जो युद्धके बजाय भाईचारे पर और आन्तर्विवाहक साधनोंके लिए प्रतिपाद्यताके मध्यम बजाय उत्पादन और वितरणक धर्म विवेकका पारम्परिक महयोग पर आधारित होगा। इस महयोगका उद्देश्य उन समाजशास्त्रोंके लिए होगा जो सामाजिक तथा मानसिक बान द्वारा उच्च भाग पत्र हैं। अन्तर्गत मजदूर दाने न्यून तथा एक पहुँचनेके लिए जा गुनाह रत है उनमें से कुछ यह है

(१) राज्य भरण न्यूनतम वेतन (minimum wage) का मन्त्र बनाना

(२) उद्योगोंका सामाजिक निदमन और

(३) राष्ट्रीय भयनीति (National Finance) में अन्ति माना तथा अतिरिक्त सम्पत्ति (surplus wealth) का सामाजिक हित में उपयोग करना।

समाजवादसे लाभ (Advantages of Socialism) धर्मशास्त्र का विश्वास है कि समाजवादी धर्मशास्त्र निम्नलिखित बाधनाय परिदलन किन्तु जा सकता है

(१) जहाँ सम्भव हो सामाजिक प्रभुत्व व नियन्त्रण के लिए वर्तमान धर्म-व्यवस्था की गड़बड़ों का दम करना।

(२) विज्ञानों पर धर्म का मानवनी अन्त सम्पत्तिका बकायी राक्षस और श्रमिकों (middlemen) का विज्ञान मनका सम्पत्ति पर उद्योगोंके मुख्यव्ययित करना।

(३) प्रतिपाद्यता समाज विरोधी शक्तोंको समाप्त करना।

(४) सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था किन्तु धर्म पुनराय सम्पत्ति धारक शोचनीयोंके लिए धर्मकी दृष्टिसे समाप्त करना।

(५) उपयोगी शिक्षा और मनचाहा काम धुननेके लिए अधिक अवसर देकर जनताकी प्रगुप्त शक्तियाँ और सामर्थ्यका उपयोग करना ।

(६) श्रम बचानवाले साधनोंको वास्तवमे श्रम बचानेवाले साधन बनाना ।

(७) हर व्यक्तिने लिए उचित अवकाशकी व्यवस्था करना और सामाजिक हरामखारीको समाप्त करना ।

(८) सारारिक और मानसिक दृष्टिसे स्वस्थ समाजका निर्माण करना ।

सभ्यतम समाजवाङ्क का अर्थ होगा हानिकारक प्रतियोगिताकी समाप्ति पूँजी पतियोगा मन्त और जमींदारी की समाप्ति ।

इन सब सामाकी आगा हम समाजवादकी स्थापना होने पर कर सकत हैं। परन्तु समाजवाङ्क पर सहानुभूति पूर्वक विचार किये जानेके पहल यह जरूरी है कि समाजवाद म जो व्यावहारिक कठिनाइयाँ हैं उन्हें हल कर लिया जाय ।

समाजवादकी कठिनाइयाँ (Difficulties of Socialism) आलापका का कहना है कि समाजवादका परिणाम एकसत्तावाद (authoritarianism) और बहुत बडे पैमान पर नौकरशाही का नियंत्रण होना है। व्यक्तिगत व्यापारका स्थान सरकारी कारखान और गोदाम ले सेंग। हर व्यक्ति राज्यका नौकर हा जायगा। हर वस्तु की सपत क आकडे सरकारके पास रहा करेंग और इन आकड़ो के आधार पर ही यह निश्चय किया जायगा कि कौन वस्तु कितनी बनायी जाय या पैदा की जाय। सरकारी अधिकारी सागाका उनका काम बतलायेंगे और हर एकको मिलने वाला पारिथमिक और अवकाश निश्चित करेंगे ।

यद्यपि समाजवाङ्क के विरुद्ध उक्त आपत्ति काज़ी सबल है फिर भी लोकतन्त्रीय समाजवादने साय न्याय करने लिए हमें यह कहना पड़ेगा कि जनता अपने लिए जो कुछ करती है उसे संरक्षकत्वकी व्यवस्था नहीं कहा जा सकता। इससे केवल इतना ही सिद्ध होता है कि सरकार किसी भी वग विघ्नका साधन न रह कर समस्त जनताके ह्याका साधन बन जाती है और इसका प्रयाग जनताने अपने सामके लिए करना सील लिया है। मजदूर सभों और राजनीतिक संस्थाओंमें नियंत्रणकी त्रिन पद्धतियों का विकास धीरे धीरे हा रहा है उन पद्धतियोंका प्रयाग आवश्यकतासे अधिक बढ़नवाली अधिकार-वृत्तिका रोक्नके लिए निश्चित रूपसे किया जायगा । (सेसर्च)

समाजवाङ्क के विरुद्ध यह भी आरोप लगाया जाता है कि समाजवाद वर्गयुद्धका उपदेश देता है। कहा जाता है कि वह स्वार्थमूलक भौतिकवादी और उपयोगितावादी है। समाजवाङ्क पूँजीपतिया पर सर्वहास वर्गका आक्रमण है। इस आपत्तिके उत्तरमें यह कहा जा सकता है कि वर्गयुद्ध समाजवादी सिद्धान्त न होकर मार्क्सवाणी सिद्धान्त है। यदि आज हम कुछ समाजवादियों के भाषणमें वर्गयुद्ध का समर्पन पाते हैं तो इसे भाषण-बना और बोट पानकी बाल समझना चाहिए न कि एक निश्चित सिद्धान्त। इसके अतिरिक्त आपत्तिके व्यक्तिवादी सामाजिक व्यवस्थाम एक दूगरे प्रकार का वर्गवादी युद्ध बन रहा है। कुछ बड़ा-बड़ा कर इस युद्धका समुद्रिगामी वर्गका सर्वहास वर्ग पर आक्रमण कहा जा सकता है।

समाजवादका मूल्यांकन

समाजवाद कुदृष्टांत-म व्यक्तिगत कल्याणका अन्तर्गत समाजके या मानव अधिकारका समर्पण करता है।

समाजवादी विचार एक ओर धारित यह है कि समाजवादम उत्पादनक लिए आवश्यक प्रेरणा नहीं मिलती। कहा जाता है कि व्यक्तिगत प्रेरणा उद्योग और स्वतंत्रताके अभावमें उत्पादनका हीमता कम हो जाती। इस धारितके उत्तरमें यह पूछा जा सकता है कि इस प्रकारकी चका चलका क्या यह मतलब नहीं है कि हम मानव-स्वभावका बहुत ही नीचा कागिका मानते हैं। क्या यह जरूरी है कि मनुष्य या कुछ करे वह स्वायत्त ही प्रति हाकर करे? जसे-जैसे मनुष्यम सामाजिक नावना बढ़ता जसे-जसे व्यक्तिगत सानकी अन्तर्गत व्यक्तिगत दूसरे प्रकार उद्देश्यका जागरूक करना क्या सम्भव नहीं हो सकता? और आज भी क्या हम नहीं देखते कि जसे-जैसे हम अपने सामाजिक नियमोंका अनुभव अधिकाधिक करते जाते हैं जसे-जैसे प्राणिकी हा उच्छ्रमोत्तिक नावना-मूलक पुरस्कार भी हम काम करनेक लिए प्रेरित करते हैं। बड़े-बड़े लेन का कहना है कि हमने जा मूलनावना मनुष्य रहनेक लिए बचन रूठी है वह हमारा 'रचनात्मक प्रेरणा' (creative impulse) है। प्राणिक हीमता भी सामग्य मही बात कहते हैं। उनका कहना है कि मनुष्यका जो नावना मनुष्य रहनेके लिए मनुष्य रहता है वह है 'शक्तिशीलता' (the will to power) या ध्यान अभिव्यक्ति (self expression)। क्या अन्तर्गत सामाजिक अनुसार काम करना या जन-सुखा करना स्वयंसे एक पुरस्कार नहीं है

कना-कनी यह मानना प्रेरणा का जाता है कि समाजवादम कुल मिलाकर उत्पादन कम हो जाएगा। यदि यह सच भी होता क्या यह जरूरी है कि उत्पादनक कम होनेका हम बहुत बड़ा सकट मनें? हम हमेशा उत्पादनके ही विचारत क्या परेशान रहें? क्या कना-कना मनुष्य विचार पर भी ध्यान देना आवश्यक नहीं है?

यह भी सच बिना जाता है कि बड़े-बड़े उद्योगोंकी व्यवस्था जनकी विज्ञानताक कारण राजकीय आधार पर नहीं हो जा सकती। यह कहा जाता है कि समाज सामाजिक व्यवस्थाम हम यह नावा नही कर सकते कि बिना बड़ा उद्योग होगा उतनी हा अधिक विज्ञानतस उच्चता सुधानत हागा। इस तरह उत्तरमें यह कहा जा सकता है कि कम-से-कम कुछ मात्रामे राष्ट्रीयकरणका अन्तर्गत नियंत्रण (municipalization) अधिकतर आवश्यक हा सकता है। परन्तु प्रेरणा राज्य मात्र हाक और ठारका प्रेरणा करता है उसी प्रकार जसे-जसे राज्यका प्रेरण करनेक अनुभव बढ़ता जात वत वत राज्य प्रेरणा बन सान रस जन-सुखा और जन-विद्युत् अन्तर्गत मा प्रेरण अन्त हापने से सकता है।

समाजवादके आधारकोंका कहना है कि समाजवादी नावानी जेबेन नीचे निच कर बंधक करनेवाली व्यवस्था है। उनका कहना है कि आज निच हमारे समाजम कुछ नावनी और बाकी परीर है परन्तु समाजवादी व्यवस्था मही सोय समान करत

- GETTLE R G — *Introduction to Political Science*—Chs XXIV and XXV
- GILCHRIST, R. N — *Principles of Political Science*—Chs XIX and XX
- GOLLANZ VICTOR — *Our Threatened Values*
- KOESTLER ARTHUR — *The Yogs and the Commissar*
Edited By LEWIS JOHN—Christianity and the Social Revolution
- LEACOCK S — *Elements of Political Science*—Part III
- MACIVER R M — *The Modern State*—Ch V
- SIDGWICK H — *Elements of Politics*—Chs IV IX and X.
- WILSON W — *The State*—Ch XV

अधिकार-सम्बन्धी सिद्धान्त (Theories of Rights)

अधिकार क्या है? अधिकार हम कसे प्राप्त हुए है? अधिकार और अनधिकारमें क्या अंतर है? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनमें एक साधारण नागरिक और राजनीति शास्त्रका अध्ययन करनेवाला विद्यार्थी बाने ही समान रूपसे रुचि लेते हैं।

इस विषय पर विचार करनेसे पहले हम तीन प्रारम्भिक बातोंको यत्न देना चाहते हैं। अधिकार-सम्बन्धी किसी भी विचार धारामें ये सीना मातें पायी जानी चाहिए। पहली बात तो यह है कि अधिकार और कर्तव्य आपसमें घनिष्ठ रूपसे जुड़ हुए हैं अर्थात् प्रत्येक अधिकारके साथ एक उत्तरदायित्व भी होता है। क के प्रत्येक अधिकारके साथ स वा यह कर्तव्य जुड़ा हुआ है कि वह उसके अधिकारका स्वीकार करे जैसा कि स्वर्गीय श्री बी० श्रीनिवास सास्त्री ने अपने 'कमला व्याख्यान माला' (Kamala Lectures) में कहा था कि अधिकार और कर्तव्य तो भिन्न दृष्टिकोणसे देना जानेवाला एक ही सत्त्व है। वे एक सिक्केके दो पहलू हैं। अधिकार कर्तव्यों पर आश्रित रहते हैं। अधिकारोंका महत्त्व कर्तव्योंकी ही दुनियामें होता है (८१ ११९)।

दूसरी बात यह है कि हर अधिकारका सामाजिक मापदण्डनी जरूरत होती है। इस मान्यताके बिना अधिकार घोषे दावे रह जाते हैं। अधिकारोंका अस्तित्व गून्वम नहीं होता। उनके लिए सामाजिक स्वीकृति जरूरी है। सामाजिक स्वीकृतिका अर्थ केवल वैधिका स्वीकृति नहीं है यद्यपि बहुधा वैधिका स्वीकृति उत्तम धामित रहनी है और रहनी चाहिए भी। सामाजिक स्वीकृतिके पीछे एक नैतिक आधार भी होना चाहिए। उसका आधार सामान्य हित हुना चाहिए। समस्त अधिकारोंके अन्तिम रूपमें किसी सामान्य उद्देश्य या नैतिक अष्ट्यामि सम्बन्धित होना चाहिए।

तीसरी बात यह है कि अधिकार स्वार्थपूर्ण सेवा नहीं है। यह एक निस्वार्थ अभिलाषा (disinterested desire) है। इसे स्वार्थनिराक रूपमें कार्योचित किया जा सकता है। अपने अधिकारका दुःसाधुर्वक प्रयोग करनेमें हम स्वार्थनिराक सेवा करते हैं और अब हम हमरके अधिकारोंके लिए मरने हैं या यह हो सकता है कि ऐसा

करना हम व्यक्तिगत हानि अथवा असुविधा उठानी पड़। किसी भी सन्व्यधिकार का आधार व्यक्तिगत कामना नहीं है। अधिकांश तो तथ्य और युक्तिही बात है वह कल्पना और कामनाकी बात नहीं है (The matter is one of fact and logic and not of fancies and wishes) (५ १९७)।

प्राचीन समाजों में साधारणतया व्यक्तिगत अधिकारों का अधिक मायता नहीं दी जाती थी। व्यक्ति किसी बातका अधिकारक तौर पर दावा नहीं कर सकते थे। वे उस बातके लिए केवल प्रार्थना कर सकते थे या दयाकी भाव्य माग सकते थे। इस विपरीत वर्तमान लोकतंत्रीय समाज अधिकारोंको बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान देते हैं। फ्रांसकी राज्य शान्तिने दान कहा मागा था। उसने व्यक्तिगत अधिकारोंकी मांग की थी (१० १५२)। आयरलैण्ड और भारतके भविष्यताकी भांति आधुनिक युगके कुछ संविधानाने अपने नागरिकोंको कुछ मौलिक अधिकार दे रखे हैं। अधिकारोंकी प्रवृत्ति बढ़नेकी होती है। विशेष अधिकार (privileges) भी समय बीतने पर सामान्य अधिकार बननेकी धारणा करते हैं। नये अधिकार भी बहुधा पैदा होते रहते हैं जैसे काम करनेका अधिकार हस्ताल परनेका अधिकार हस्तालक शिर्षोंमें अपनी नोकरी बनाये रखनेका अधिकार आदि।

समय-समय पर अधिकारोंके बारे में जा सिद्धान्त प्रतिपादन किये गये हैं उनमें से निम्नलिखित पाँच सिद्धान्त मुख्य हैं

(१) प्राकृतिक अधिकार-सिद्धान्त

(२) धार्मिक अधिकार सिद्धान्त

(३) अधिकारोंका इतिहासीय सिद्धान्त अथवा वह सिद्धान्त जो रीति-रिवाजोंका अधिकारोंका आधार मानता है

(४) अधिकारोंका सामाजिक-अभ्यास या सामाजिक कार्य-साधकता (social expediency) सिद्धान्त और

(५) अधिकारोंका आत्मसंवादी या व्यक्तिगत सिद्धान्त।

१. नसर्गिक-अधिकार सिद्धान्त (The Theory of Natural Rights)

अधिकारोंके सम्बन्धमें यह सबसे पुराना सिद्धान्त है। इसका आरम्भ यूनानियों के समयसे हुआ है। इस सिद्धान्तके अनुसार अधिकार मनुष्यका स्वभावसे ही मिले हैं। अधिकार मनुष्य में निहित हैं। अधिकार मनुष्यकी प्राकृतिक स्वभाव ही भंग हैं। पीछे उसने तारोकी रचनाका रस। अधिकारोंका अधिगम सिद्ध करने के लिए किसी सम्झौती की व्याख्या की आवश्यकता नहीं है। वे स्वयमिच्छा गये हैं। जरूरत इस बात की है कि मनुष्य में इन अधिकारोंका उपयोग करने की सामर्थ्य हो। अधिकार साम्य अवस्थाके पहुँचते हैं और कुछ मांगके अनुसार तो वह सामाजिक अवस्था भी पहुँचते हैं। अधिकार मनुष्यके जन्मके साथ ही उत्पन्न होते हैं। उनका प्रयोग हर जगह और किसी जगह भी किया जा सकता है। मोर का कहना है कि यह मनुष्य जन्मसे ही स्वाधीन और विचारवान् है। दूसरे लोग किसी भी व्यक्तिका यह अधिकार

नहीं किया है कि वह किसी दूसरे व्यक्ति को अपनी आत्माआवा पात्रन करनेके लिए मजबूर कर सके। इसी प्रकार जीवनका अधिकार, स्वतंत्रताका अधिकार विवेकका अधिकार और अपने विवेक पर अमल करने का अधिकार आदि सभी प्राकृतिक अधिकार हैं।

प्राकृतिक अधिकारोंके इस सिद्धान्तन मनुष्य जाति के विकासमें क्या महत्त्वपूर्ण योग दिया है। पश्चिमा जर्मनान से जॉन लॉक (John Locke) और थॉमस पैन (Thomas Paine) ने इस सिद्धान्तका बहुत उपयोग किया है। व्यावहारिक राजनीतिमें अमरिका और फ्रांसके सांख्यानिक सघर्षों पर उनका बड़ा प्रभाव पड़ा है। वर्जीनिया (संयुक्त राज्य अमरिका का एक राज्य) के सविधानमें बड़ा गया है सभी मनुष्य प्राकृतिक ही समान रूपसे स्वतंत्र और स्वाधीन हैं और सबको कुछ जन्मसिद्ध अधिकार प्राप्त हैं। समाज का निर्माण करते समय किसी भी समिति द्वारा भावी पीढ़ियोंको इन अधिकारों में बाधित नहीं किया जा सकता। ये अधिकार हैं सम्पत्ति पना करने उस पर अपना स्वामित्व कायम करना जीवन और स्वतंत्रताका उपभोग करना तथा जीवनमें गुण और सुरक्षाकी साज करना और उसे प्राप्त करना (६६ ४)। सन् १७९१ ई० और सन् १७९३ ई० की फ्रांसीसी घोषणाआम भी इसी प्रकारका धारण करी गयी है। १७ ३ ६० की घोषणामें स्वतंत्रता समानता सुरक्षा और सम्पत्तिक अधिकारता मनुष्यके महत्त्वपूर्ण प्राकृतिक अधिकारोंमें गिनाया गया है। अमेरिकी स्वाधीनताका घोषणा (१७७६ ई०) में इन सत्त्वोंको स्वतंत्र सिद्ध माना गया है कि मनुष्य जन्म ही समान है तथा विधाताने सबका कुछ अविच्छिन्न (inalienable) अधिकार हैं य हैं जिनमें जीवन स्वाधीनता और गुणकी साजके अधिकार भी हैं।

सामाजिक सविन सिद्धान्तके संस्था आमनोर पर इस सिद्धान्तका समर्थन है। उनका अनुमान है कि आरम्भमें ही मनुष्यके कुछ प्राकृतिक अधिकार हैं और सविन करत समय में अपने उन अधिकारोंमें से कुछको अपनेग एक उच्च सत्ताया इयतिग गीत केना है कि उनके पण अधिकारोंकी रणाहो सन। सोंक क विचारमें यह तथ्य सिद्धन स्पष्ट है। सामाजिक सविन सिद्धान्तका समर्थन करत हुए भी हॉमस का दृष्टिकोण विद्वान निग है। उनके अनुमान व्यक्तिके प्राकृतिक अधिकार व्यक्तिकी प्राकृतिक सत्ताग हैं। उनका कहना है कि प्राकृतिक अवस्थाम हर स्थितिरा हर वस्तु पर एक दूसरे के त्तर पर भी अधिकार है (३१ अध्याय १४)। प्राकृतिक अवस्था सिद्धन जानवरोंकी अवस्था है।

हॉमस के विचार सामाजिक सविन सिद्धान्त के निर्वातानोंके सिपके-सुतग हैं। मनुष्य जीवन और पण जीवन दोनोंके विकासका मध्यपन करने के बार यह हम नहींके पर गहोव है कि समान स्वाधीनताका अधिकार सभी मनगोंका मौलिक अधिकार है। इस स्वाधीनताके अन्तगत हर मनुष्यकी अपना मनचाहा जान करनेका अधिकार है सोंक सिद्धन कायम व दृष्टके मनगोंकी समान स्वाधीनताम कायाा का।

प्राकृतिक अधिकारोंके सिद्धांतने सभकों और अट्टारका सत्ताविषयमें बहुत महत्वपूर्ण काम किया है और आज भी वह निर्जीव नहीं है। दुनियाके बहुत-से भागोंमें भोजन वस्त्र और निवास-स्थानका अधिकार काम या जीविकाका अधिकार और वोट आदि देनेके राजनीतिक अधिकारोंकी मांग दृढ़तापूर्वक की जाती है और उनमें प्राकृतिक अधिकारोंका-सा बल रहता है।

आलोचना

(क) इस सिद्धांतकी सबसे स्पष्ट आलोचना यह है कि प्राकृतिक सत्ताकी परिभाषा करनेका असम्भव नहै तो कश्चिन् अवश्य है। श्री डी० जी० रिची (D G Ritchie) ने प्राकृतिक अधिकारों पर एक पूरी पुस्तक लिख डाली है और उन्होंने वे अनेक अर्थ गिनाये हैं जिनमें इस वाक्यका उपयोग किया जाता है। जिन अर्थोंमें उन्होंने इसका उपयोग देखा है उनमें से कुछ ये हैं

(१) प्रकृति = समस्त विश्व

(२) प्रकृति = मानवतर विश्व (The non human part of the universe)

(३) प्रकृति = आदर्श—या पूर्ण उद्देश्य (The ideal or completed purpose)

(४) प्रकृति = मौलिक अपूर्ण (The original the incomplete)

(५) प्रकृति = सामान्य या औसत (The normal or average)

इस स्थितिमें हमारा यह पूछना स्वाभाविक है कि प्राकृतिक अधिकारोंकी क्या करते समय उक्त विभिन्न अर्थोंमें से किस अर्थमें 'प्रकृति' शब्दको ग्रहण करें ?

जब हम इस प्रश्न पर और अधिक विचार करते हैं तो हमें पता चलता है कि 'प्राकृतिक' शब्दका उपयोग निम्नलिखित अर्थोंके विरोधमें होता है

(१) कृत्रिम या बनावटी (artificial) और परम्परागत (conventional) के विरोधमें (२) आध्यात्मिक या दबीके विरोधमें (opposed to spiritual or to revelation) (३) नागरिक राज्य (civil state) के विरोधमें। दूसरे अर्थको छोड़कर—क्योंकि उससे हमारा यहां सम्बन्ध नहै—हम यह आसानीसे देग सकते हैं कि इन सापेक्ष शब्दों (relative terms) को कोई निश्चित अर्थ देना कठिन है। प्रो० हॉकिंग की विरोधाभासित (paradoxical) भाषामनुष्य के लिए कृत्रिम बनना ही प्राकृतिक या स्वाभाविक है। कपड़ोंका पहनना जो पहन कभी कृत्रिम या आज स्वाभाविक है। यदि प्राकृतिक शब्दका अर्थ प्रकृति की समूची क्रिया-शक्ति है—जो उसका साधारण अर्थ है—तो हमारी सम्मति अवस्था उनकी ही प्राकृतिक है जिसे ही हमारी जगती या वर्तमान अवस्था थी। प्राकृतिक और आदिम (primitive) को समानाधिकार मान लेना कोई कारण नहीं है। डायोजेनीस (Diogenes) प्राकृतिक बने रहनेके लिए एक दावम रहता था और हम भाग्य परामें

एते हैं। यह जरूरी नज़ा है कि प्रवृत्ति में और नीचे चलन (convention) में परस्पर विरोध है। नागरिक राज्य (civil state) उनका ही प्राकृतिक है जितनी सम्बन्धनाम पूर्वकी स्थिति (pre-civil state) थी।

यूनानके स्टॉइक-दानिकों (Stoics) का अनुसरण करते हुए मिसरो ने प्राकृतिक राज्य का प्रयोग उन भावनाओंकी व्यक्त करनेके लिए किया है जो हर मनुष्यके हृदय में परमात्मा और प्रवृत्ति द्वारा प्रतिष्ठित की गयी है। इसीको साधारण भाषामें अन्तःकरणकी भाषा कहना गया है। यह करनेकी आवश्यकता नहीं है कि यह मान्यता भी ऊपर बताये गये अन्य मानकोंकी तरह आत्मिक (subjective) अर्थात् व्यक्तिगत ही रक्षित विभाग और दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। कुछ लोग पत्नीका पीटना ठीक उसी प्रकार उचित समझ सकते हैं जिस प्रकार कुछ दूसरे लोग पत्नीकी प्रतिष्ठा करना ठीक समझ सकते हैं। स्टॉइक लोग और मिसरो के अनुयायी प्रवृत्ति को समझारी (commonsense) या सर्वमान्य रायके अर्थ में लेते हैं। यह अर्थ भी बहुत सन्तोषजनक नहीं है। क्योंकि एक ही समझारी रोगाकी समस्या कम है दूसरे हर व्यक्तिकी समझारी उसे अलग अलग नियम पर पहुँचानी है (The trouble with commonsense is that it is not common and its verdict varies with individuals)।

(ग) जब हम देखते हैं कि प्रवृत्ति और प्राकृतिक दानोंका अर्थ निश्चित नहीं है और उनका प्रयोग अनेक अर्थोंमें होता है तो हम आश्चर्य नहीं हुना कि प्राकृतिक अधिकारों का समर्थन इस प्रश्न पर एकमत नहीं है कि प्राकृतिक अधिकारों में कौन कौन-से अधिकार शामिल हैं। इसीलिए प्राकृतिक अधिकारोंकी कोई एक सम्मति स्थापित नहीं की गयी है। कुछ लोग राज्य प्रयाग और अधिकार पर विचार करते हैं कि वह प्राकृतिक है। दूसरे लोग इन अप्राकृतिक और कृत्रिम मानकों इसकी निन्दा करते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि स्त्री और पुरुष प्रवृत्तिमें ही समान हैं दूसरे इन मानकोंके इनकार करते हैं। कुछ लोगोंका विश्वास है कि मनुष्य प्रवृत्तिमें ही समान होते हैं दूसरोंका विश्वास है कि मनुष्य प्रवृत्तिमें भिन्न होते हैं। कुछ लोग व्यक्तिगत सम्पत्तिको एक प्राकृतिक अधिकार मानते हैं दूसरे इसका बिल्कुल विरोध करते हैं। जब हम स्त्री-पुरुष सम्बन्धों पर विचार करते हैं तब हम विभिन्न मत निर्माता देते हैं और सभी प्रवृत्ति पर आधारित होनेका दावा करते हैं। एक-पत्नीयन बहु-पत्नीय बहुपतिव्य सम्बन्ध प्रेम और अस्थायी विवाह-सम्बन्ध (transient marriage relations) सभीका समान प्रवृत्तिके आधार पर और निम्न जीवा की उपमा देकर रखा गया है। इन सब बातोंके कारण हम रिचर्ड (Ritchie) के इस मतमें सहमत हैं कि यदि आप्रवृत्तिको अंगतमें धारित करते हैं तो मुझमें है कि आपको अन्तः सिद्ध न किया जा सके कि आप्रवृत्तिको सही भी सिद्ध नहीं करवा सकते (१६ १०४)।

(घ) जिसका हम प्राकृतिक अधिकार कहते हैं अन्तःकरण द्वारा ही निर्धारित

हैं। फ्रांसीसी राज्य ज्ञान्ति ने स्वतंत्रता समानता और बहुत्वकी घोषणा मनुष्यके पूज्य अधिकारोंके रूपमें की थी जिनको स्वतः सिद्ध सत्य (self evident truths) माना जाता है। लेकिन अब हम उनको व्यवहारमें लाते हैं तो हमको अनगिनत कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।^१ पूज्य स्वतंत्रता तथा समानताको किसी भी मुक्ति संगत और बियेकंगील व्यवस्थामें कोई स्थान नहीं मिल सकता है। अगर हम समाज को पूज्य स्वतंत्रता दे देते हैं तो फौरन ही असमानता फैल जाती है। दूसरी ओर अगर हम पूज्य समानता से शुरू करते हैं तो स्वतंत्रता समाप्त हो जाती है। प्राकृतिक अधिकार या सिद्धान्त हम कोई ऐसा विद्वत्सनीय तरीका नहीं बताता जिससे कि समानता और स्वतंत्रतामें समझौता हो सके (The theory of natural rights cannot give us a sure or self-evident way of reconciling liberty and equality)। इसलिये हमें इन समस्याके लिए दूसरी ओर देखना पड़ता है। सम्पत्तिके प्रश्नको लीजिए। यदि सम्पत्ति पर सबका अधिकार है जैसा कि प्राकृतिक अधिकार सिद्धान्तका समर्थन करनेवालोंकी धारणा है तो हम यह जानना चाहिए कि इस अधिकारसे क्या तात्पर्य है? क्या इसका तात्पर्य व्यक्तिगत सम्पत्तिसे है? यदि हाँ तो क्या व्यक्तिको अपनी इच्छानुसार अपनी सम्पत्तिको बेच देना अधिकार है? क्या अपनी सम्पत्तिको अपनी इच्छाके अनुसार उपयोग करनेका अधिकार है कि वह व्यक्ति उस सम्पत्तिको दुरुपयोग भी कर सकता है? उदाहरणके लिए क्या किसी दूधवालेका यह अधिकार है कि वह दूधकी कीमत ऊँची करनेके लिए कुछ दूधको नालियामें बहा दे? क्या किसी मिन मानिकका इस बातका अधिकार है कि वह अपने मजदूरोंको पूर्व सूचना न्ये बिना जब चाहे मिन बंद कर दे? ये कुछ ऐसे सवाल हैं जिनका उत्तर प्राकृतिक अधिकार सिद्धान्त नहीं दे सकता। प्रोफेसर हॉकिंग उचित कहते हैं कि मरे प्राकृतिक अधिकार यह नहीं बताते कि मरे अधिकारोंकी सीमाएं कहाँ तक हैं।

(घ) प्राकृतिक अधिकार सिद्धान्त का अर्थ यह है कि राज्य तथा अन्य सामाजिक संगठन कृत्रिम होते हैं और उन्होंने मनुष्योंको उन जन्मसिद्ध अधिकारों (Inherent rights) से वंचित कर लिया है जोकि उनको प्राकृतिक अवस्थामें प्राप्त थे। इस विचारके अनुसार मनुष्य ने अधिकारोंके रूपमें वे पुरानी चीजें पायी हैं जिन्हें वह लो चुना था (Rights represent according to this view the recovery of a lost inheritance)। यह एक शक्ति विचार है। राज्य एक प्राकृतिक विनाश है वह एक कृत्रिम रचना नहीं है। राज्यको अनाधिकार दखल मीराना (intruder) या बलाग्तकारी (usurper) किसी प्रकार भी नहीं टहराया जा सकता है। मर्यादा बनावनी

^१ उपासनाका अधिकार जैसा एक रूप ट अधिकार भी सब आधुनिक राज्यों द्वारा नहीं लिया जाता। अभीलिये ता मानव अधिकारोंका घोषणा पत्र (Declaration of Human Rights) सम्बन्ध राष्ट्रों के समूहों द्वारा पर्याप्त मर्यादाओं में अभी तक स्वीकार नहीं किया गया है जिससे कि वह एक परम्परा बन सके।

नग्न होना। वह हमारे नैतिक विचारोंकी मूलभूत है (यासाय)। प्राकृतिक अधिकार सिद्धान्तका एकलक्षण निम्न अतिवादी व्यक्तिवाद (extreme individualism) होता है जिसका उपयोग अराजकतावादी और रुढ़िवादी दोनों ही ने शरारतिया जा सकता है।

(६) इस सिद्धान्तकी वास्तविक क्रिया या प्रतिक्रिया यह है कि हमें मान लिया गया है कि समाजम अलग भी हम अधिकारों और कल्याणका उपभाग बन सकता है। यह एक गलत विचार है। हमारे जा भी अधिकार है व इसीलिए है कि हम समाजके सम्बन्ध हैं। समाज में बाहर हमारे पास शक्तिता हा सकती है पर अधिकार नहीं। समाजमें पहिलेकी स्थितिमें अधिकारोंकी कल्पनाका वाद अर्थ नहीं है। इसका कारण यह है कि अधिकार का कोई मतलब नग्न होना यदि हमने सम्पूर्ण कर्तव्य भी न हो। और अधिकार-कल्पना यह जो समाजमें हो सम्भव है। 'अधिकारों की उत्पत्ति मनुष्यके सामाजिक प्राणी होनेके नाते हुई है' (७८ १३६)। एक सामाजिक व्यवस्थाकी सम्पत्ति ही अधिकारोंकी आधारशिला है और इसीलिए सम्भव था सामाजिक स्थितिमें पाने अधिकारोंकी कल्पना अर्थहीन है। सामाजिक के शक्तियों में अधिकार एक ऐसा स्वभाव या दावा है जिसका समाज मानता है और साथ लागू करता है (५ १९१)।

(७) डॉ० ने प्राकृतिक अधिकारोंके सिद्धान्तको आलाचना आदिवादी प्रतिक्रिया की है उनका कहना है कि इस सिद्धान्तमें अधिकारोंके स्वरूप पर ध्यान न देकर प्राकृतिक स्वभाव पर अधिक ध्यान दिया गया है। यह एक सही आलोचना है। प्राकृतिक सिद्धान्तको माननेवाले 'प्राकृतिक' की परिभाषा करने पर बहुत ध्यान देना है लेकिन यह भूल जाते हैं कि 'अधिकार' की परिभाषा भी ता उतनी ही आवश्यक है - अगर उसमें अधिकार नही। मानव जीवन की नाटकमें सत्य अभिनय करने में ही अधिकार सार्थक होत है।

इस सिद्धान्तमें सामाजिक जनरलिटी हुई क्रियाके आवश्यक प्राकृतिक अधिकार सिद्धान्तमें बाकी सम्पूर्ण है। अगर प्राकृतिक अधिकारोंमें हमारा तापन उन अधिकारों से है जो पाने प्राकृतिक स्वभाव हमारे पास पैंतो यह एक मूलभूत विचार है। पर अगर हम प्राकृतिक अधिकारोंके अर्थ उन आत्म या नैतिक अधिकारोंके रूपमें लें जो हम मितना चाहिए और जिससे सामने रखते हुए हम मनुष्य-हानिकारी आधा बना कर सकते हैं तो यह धारणा महत्वपूर्ण हो जाती है। इस प्रकार उपाहरणों का मतलब अधिकार एक प्राकृतिक अधिकार इस अर्थमें है कि हर मनुष्यके लिए समाजमें प्रत्येक मनुष्यको अपने भावना बनना और पाननेके लिए जीविकोपार्जन पर्याप्त साधन और अवसर मिलने चाहना है। परन्तु यह इस अर्थ में नहीं है कि मनुष्यको यह अधिकार प्राकृतिक स्वभाव प्राप्त था। अर्थ हम प्राकृतिक अधिकारोंकी धारणा उन परिस्थितियोंके अर्थमें कर सकते हैं जो मनुष्यके व्यक्तिगत विकासके लिए आवश्यक है चाहे वे परिस्थितियाँ प्राकृतिक या आदिवादी रूपमें पैं या

और किसी प्रकार उत्पन्न हुईं हैं (५४ २५४)। लेकिन साधारणतया प्राकृतिक अधिकारोंके न तो यह अर्थ लिये गये हैं और न उनका इस अर्थमें प्रयोग ही होता है। प्राकृतिक अधिकारका सर्वोत्तम अर्थ है—वह अधिकार जो मनुष्यके नैतिक उत्थान या विकासके लिए अर्थात् उसे वास्तवमें मनुष्य बनानेके लिए आवश्यक हों। जैसा कि लास्की ने कहा है कि अधिकार वे ऐतिहासिक परिस्थितियाँ नहीं हैं जो मानव जाति को अपनी आदिम अवस्थामें प्राप्त था और जिन्हें वह खा चुकी है।

२. **व्यक्ति अधिकार सिद्धान्त (The Legal Theory of Rights)**
इस सिद्धान्तके अनुसार अधिकार राज्यकी सृष्टि है। हम जो विधिसे मिलता है वही हमारा अधिकार है और जो कुछ विधि हम नहीं देती वह हमारा अधिकार नहीं है। अधिकार का स्वतः कोई अस्तित्व नहीं है। मनुष्यके अपने-आप से कोई अधिकार नहीं होते। अधिकार तो देण की विधि पर आश्रित होते हैं और उसी से उत्पन्न होते हैं (Rights are not absolute They are not inherent in man at all They are relative to the law of the land)। हमारे जीवन स्वतन्त्रता और सम्पत्ति आदिक अधिकारोंका राज्य ही निश्चिन करता है। अधिकार कृत्रिम हैं।

यह सिद्धान्त प्राकृतिक अधिकारसिद्धान्तके विपरीत है। व्यक्ति अधिकारसिद्धान्त के समर्थकोंका कहना है कि तत्प्राकृतिक प्राकृतिक विधियाँ या तो देणकी विधियोंसे मेल खाती हैं या मेल नहीं खाती। अगर वे मेल खाती हैं तो वे अनावश्यक हो जाती हैं और अगर वे विरोधी होती हैं तो अकारण हो जाती हैं। अतः दोनों ही हानिताम हम उनको छोड़ सकते हैं। हममें कोई आश्चर्य नहीं कि व्यक्ति अधिकार सिद्धान्तके समर्थक वचन प्राकृतिक अधिकारोंको व्यर्थ की बखवास कर रहे हैं।

टॉमस हॉब्स (Thomas Hobbes) के विचारोंमें भी हम इस सिद्धान्तके कुछ मूल मिनत हैं। उनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के पास मौलिक अधिकार आत्म रक्षाका है। हॉब्स का विचार है कि व्यक्तिकी अपना राज्य इस अधिकारका अधिक अक्षी तरह लागू कर सकता है। इसी कारण सविदा होने पर सब व्यक्ति अपनी इच्छामें अपने सभी अधिकारोंको (आत्म रक्षाके अधिकारको छोड़कर) सम्प्रभुको सौंप देते हैं और फिर जो अधिकार सामक उहें दया है वही उनके अधिकार होते हैं। जिन प्राकृतिक अधिकारों पर विधि रोक नहीं लगायी है व्यक्तिके पास बन रहते हैं। पर दृष्टान्त यह मतलब नहीं है कि जीवन और मृत्यु पर सम्प्रभुके अधिकारोंका अन्त हो जाता है। वह जब चाह सम्प्रभु कर सकता है और प्रजाकी स्वतन्त्रता को सीमित कर सकता है। प्रजाको उहें बाधा का अधिकार होता है जिन पर विधि न रोक नहीं लगायी है।

मासौबता

(क) हम यह माननेको तैयार नहीं कि राज्यकी आज्ञा (decree) ही किसी बातका ठीक धोर उचित बना गननी है। हम यह प्रश्न कर सकते हैं कि क्या विधि

पुसछारी और भ्रष्टाचारको भी उचिन बना सकती है? अथवा क्या विधि मती प्रथा को फिरसे प्रतिष्ठित कर सकती है? यह एसे प्रश्न हैं जिनके उत्तर स्पष्ट हैं। इन कारण यह स्पष्ट है कि विधिकी भी अपनी सीमाएँ हैं। साम्बी ने ठो यहाँ तक कहा है कि अधिकारोंको राज्यकी स्वीकृतिकी आवश्यकता नहा है। वामके अधीन नहीं हैं। यह मन तो अतिवासी है। स्मॉर के विचारानुसार राज्य अधिकारोंको बनाठा नहीं है उनकी रक्षा करना है। एन० वाइल्ड (N Wilde) के अनुसार राज्य अधिकारोंको बनाठा नहीं है। वह केवल उन्हें मान्यता प्रदान करता है और उनकी रक्षा करता है। अधिकारोंका अस्तित्व स्वयं अपने आप रहता है उन्हें विधि का रूप पाह दिया जाय या नहीं। विधि द्वारा उन्हें इसलिये लागू किया जाता है कि वे अधिकार हैं वे विधि द्वारा लागू होनेकी ब्यवहम अधिकार नहा बन जाते। हमारे विचारमें हमारा कोई दावा इसलिये अधिकार नहा बन जाता कि उसे विधिके रूप द दिया गया है वरन् वह हमारा अधिकार इसलिये है कि वह नैतिक दृष्टिके उचिन व ग्याय-मुग्ध है। एक आदर्श अधिकारमें विधिकी स्वीकृति और नतिकता दोनों ही बातें होनी चाहिए।

(ग) यह कहना कि राज्य ही एकमात्र अधिकारोंकी सृष्टि करता है, राज्यका निरंकुश बना देना है। राज्यको हम ऊँचा स्थान देना ही हमारा है लेकिन उसको इतना ऊँचा स्थान नहीं दिया जा सकता। पारिभाषिक और साम्बीय रूपमें अवश्य राज्यकी सम्प्रभुता सर्वोच्च है पर फिर भी उसके ऊपर रीतिया परम्पराओं नित्यास और नतिकता पर आधारित कुछ व्यावहारिक बाधन भी हैं। साम्बी का कहना है 'अधिकारोंकी प्रतिष्ठा निमित्त विधानकी अपेक्षा अभ्यास और परम्परा पर अधिक प्राथिन रहती है। विधिके निमाण भी बहुत कुछ समाजके परम्परगत नियमों पर आधिन रहता है। एसा भी अक्षर होता है कि रीति रिवाजाका व्यवस्थित रूप ही विधि बन जाता है। न्याय बहुत-से मामलात समाजकी रीतिया और परम्परायाका अनुगमन करता है। इस कारण यह कहना कि अधिकार केवल विधिके द्वारा ही प्राप्त हाते हैं गलत है।

प्रत्येक देशकी विधियामें सहायन होते रहते हैं। एसीम यह स्पष्ट है कि विधि ही अधिकारोंको एकमात्र बनानेवासी नहीं है। विधियोंमें भी ऊँचा स्थान हमारा उचिन और अनुचितता गान है। लॉड न उचिन कहा है कि 'अधिकारोंकी पारम्परा पढ़ने किमी प्रकारकी नैतिक व्यवस्था जरूरी है। नतिक व्यवस्थाके अभावमें नतिकता प्रभाव दावे (assertions) और प्रयत्न आदि हा सकते हैं पर वे अधिकार नहा हैं (A moral order of some kind is the necessary presupposition of rights. Apart from it there may be powers influences assertions and efforts but they are not rights)। वे आज बहुत हैं 'अधिकारोंका आधार-नित्य वृत्त पर्यायता और अविद्य है जो अचर्या और अनुचितके विपरीत हाता है। प्रो० हॉब्स के शब्दोंमें विधिके किमी समय का स्थान है और जो होता है कि उन शब्दों के बीच अन्तर रहता है।

३ अधिकाराका इतिहासीय सिद्धान्त (The Historical Theory of Rights) अधिकाराका इतिहासीय सिद्धान्तका सारांश एक वाक्यम यह है कि इतिहास अधिकार की सृष्टि करता है। इस सिद्धान्तका मत है कि अधिकार रीति रियाजाका निष्कारा हुआ स्वरूप है। हम इस बातको मती मांति जानते हैं कि बहुत दिनासे चालू रीति रियाज बुद्ध समय बाद अधिकारोंका रूप ले सते हैं। यदि किसी ब्यक्तिवा अपने जन्म शिवम पर अपन किसी मित्रसे कई बर्षोंमि उपहार मिमत बन भा रह हा तो वह उसे अपना अधिकार-सा मानन लगता है। कुछ उपहार एक रियाज बन जाता है और लोग उस एक हककी तरह पाने की आशा करन लगते हैं। आम रास्ते पर चलनेवा अधिकार एक परम्परागत अधिकार है। सलाहके मामलेमें गुजारा तप करनम सम्बन्धित ब्यक्ति जिस दगकी जिम्गी बितानेका आशी है इसका ध्यान रखा जाता है न कि जीवनने सामान्य लक्ष्यका। जसा कि रिची ने कहा है हम प्रायः यह देखत है कि जिन अधिकाराके बारेम लाग यह साधने हैं कि वह उन्हें मिनने ही चाहिए व ऐसे ही अधिकार होते हैं जिनके वह अम्पलत होते है या जिनके बारेमें यह परम्परा हावी है—चाह यह यलत हो या सही—कि व उन्हें कभी प्राप्त थे। रियाज ही प्रारम्भिक विधि है (६६ ८२)। अनेक तथान्वित प्रारम्भिक अधिकाराकी जब हम छानवीन करत हैं ता देखत हैं कि व एस दाव हैं जिहें 'बहुत पुराने और अटूट रियाजाका समथन प्राप्त हाता है (६६ ८२)। दूसरी आर जिन दावाकी उत्पत्ति आधुनिक हार्ना है या जिनका ब्यापक प्रचार नहा हाता उन्हें चलन (convention) कहत हैं।

गडमण्ड बर्क ने कहा है कि फ्रांसकी राज्य शान्तिका आधार मनुष्यके कुछ भाव गुणम (abstract) अधिकार थ जकवि इंग्लैण्डकी राज्य शान्तिका आधार अग्रजके रीति रियाजा पर आधारित अधिकार थ। इस कथनम बहुत सशयता है। इतिहासीय तौर पर फ्रांसकी राज्य शान्ति उन परिस्थितियोंमि भङ्गी थी आ अङ्गारकी शताब्दी म प्रथम थी पर शान्तिके नारे थ स्वतंत्रता समानता और भ्रान्तत्व जो पूरे मानव समाज पर लागू हाने हैं। दूसरी ओर इंग्लैण्डकी राज्य शान्ति बचन उन अधिकारा की पुनर्घोषणा थी जिनका उपवाग अग्रज लाग नुस्ते ही करत आ रह हैं और जो मग्ना कार्ता (Magna Carta) और 'पेणोफ रीट्स' (Peunon of Rights) म ध्येय बिय जा चुक थ। कुछ सन्धने इंग्लैण्डके नारे सांशधानिक इतिहासको स्वतंत्रताके बजाय 'अधिकारा' के सिंग किये गय मपयका इतिहास माना है।

आलोचना

निस्सन्देह हमारे बहुत-से अधिकार रीति-रियाजा पर आधारित हैं पर सभी अधिकाराका मूल्य रीति रियाजोंमि बसमाना सपुत्र अयुक्ति है। प्राच्यर समनर का कदना है किमी भी शान्तिके रीति रियाज हिमा भी बातको उचिन बना सकने हैं।

हम इस दृष्टिकोणमें सहमन नहैं। इसकी आशाचना करते हुए हार्किंग पूछते हैं 'दास प्रथा जब जानूनसे जायज थी तब क्या वह उचित थी? क्या बाल-हत्या उचित थी? इन प्रश्नोंके उत्तर स्पष्ट रूपमें नहैं। उनका रायमें यद्यपि दास प्रथा सत्कारके अधिकार भागमें प्रचलित थी फिर भी वह कभी उचित नहै रही। पर दास प्रथाको अपमानाहत रूपसे उचित कहा भी जा सकता है। क्या उचित है और क्या अनुचित, इसका विचार भी ता समयके साथ बदलता रहता है इसलिये एक समय या जब वह उचित थी पर इस युगमें अब कि मनुष्य नतिक दृष्टिमें अधिक विकसित हो चुका है वह उचित नहै। इस दृष्टिकोणमें एक पठितार्थ यह है कि अगर अधिकार का हमेशा रिवाजके अनुसार हा रहना है तो सुधार अमम्भव है। सती प्रथा और बहुपत्नी बना बन् किया जाना गारना जानून और हरिजननाका मन्दिर प्रवेश बहुत कुछ देशके रीति-रिवाजोंके विपरीत है। फिर भी समझदार सामंजसने बिना किसी हिचकिचाहटके इन विषयकावा समर्थन किया। प्रायः हर हार्किंग ठीक ही कहते हैं कि यह कहना कि रीति रिवाज हमारा ठीक है इतना ही मूलनामूल है जितना कि यह कहना कि विधि किमी चीजका उचित बना सकती है। इसमें आग भी एक और कसौती है और वह है व्यक्तिम्बवा सिद्धान्त (the law of personality)। प्रा० हार्किंग आग चन्दरर फिर कहते हैं कि इतिहासीय सिद्धान्त या तो हम भाग प्रदान नहै करता या फिर प्रायः भाग देता है। इसलिए जब तक कि स्वतंत्र रूप में व्याख्या करके उस पर प्रकाश न डाला जाय तब तक वह एक व्यक्तिम्बवा सिद्धान्त ही है। इतिहासकी उपयोगिता की जा सकती पर अवन इतिहास पर भरोसा भी नहै किया जा सकता (३६ ७)। यह विषय ही ऐसा है कि इतिहास इसके सम्बन्धमें एक पुन मान्यता या ओचित्यको कसौती नहै बन सकता।

४ अधिकारोंका सामाजिक कल्याण या सामाजिक कल्याण साधन सिद्धान्त (The Social Welfare or the Social Expediency Theory of Rights) सामाजिक कल्याण सिद्धान्तके अनुसार अधिकार सामाजिक कल्याणकी आवश्यकताओंके रूपमें हैं। अधिकारका निर्माण समाज करता है। रोस्को पाउण्ड (Roscoe Pound) और प्रा० चैडी (Chafee) जैसे इस सिद्धान्तके समर्थकोंका कहना है कि विधि रीति-रिवाज और प्राकृतिक अधिकार आदि का सत्य समाजका हित या भलाई होना चाहिए। प्रा० चैडी का कहना है कि अधिकारोंका निश्चय हितके साधनका द्वारा है। उपाहरणके लिए भाषणका अधिकार असीमित नहै। इस अधिकारका निश्चय सामाजिक हितका पालन रख कर किया जाता है।

उपयोगितावादी आमतौर पर अधिकारोंके इस सिद्धान्तका समर्थन करते हैं। समाज और मित दोनों ही उपयोगिताके इस सिद्धान्तका स्पष्ट सम्बन्धमें समर्थन किया है। उनका यह समर्थन (१) कोर रीति रिवाज या बाहरी उपादा माननके विरोधमें और (२) मनुष्यके हृदयकी प्राकृतिक इच्छाओंकी मनमानी अभिप्रेरितके विरोधमें होना है क्योंकि इनका उपयोग सुरादास समर्थनमें भी बन ही किया जा

सकता है जब बुराईयाका विराय करनेमें (६६ ८७)। कतव्यकी कसौटी के रूपमें उहाने 'अधिकस अधिक' लोगान अधिकने अधिक कल्याण का सिद्धान्त प्रतिष्ठा किया है। उनका विश्वास है कि उपयोगिताका निश्चय विवेक या अनुभव द्वारा किया जा सकता है।

उपयोगितावादी विचारको बहुत ही सशोधित रूपमें मानते हुए लास्की ने उपयोगिताको अधिकारोंकी कसौटी कहा है। उहाने अधिकारकी उपयोगिताकी परिभाषा राज्यके सभी सम्पत्तियोंके लिए उसका महत्त्व (४७ ९२) कहकर की है। उनको अनुसार अधिकारकी कसौटी उनकी उपयोगिता है (४७ ९२)। राज्यको उही दारोंका स्वीकार करना चाहिए जो इतिहासक अनुभवने अनुसार अस्वीकृत रह जाने पर घातक सिद्ध हो सकते हैं (४७ ९३)। हमारे अधिकार समाजसे अलग और स्वतन्त्र नहीं हैं व समाजमें ही निहित हैं। यह अधिकार हम इसलिए मिले हैं कि हम अपनी और साथ ही साथ समाजकी भी रक्षा कर सकें (६६ ९४)। इस प्रकार अधिकार और कर्तव्याका आपसमें सम्बन्ध है। हम अधिकार इसलिए मिले हैं कि हम सामाजिक सम्पत्ति प्राप्त करनेमें अपना सहयोग दे सकें। हम असामाजिक कार्य करनेका अधिकार नहीं है। कीमत चुकाये बिना हम कुछ भी प्राप्त करनेका हक नहीं है। इस प्रकार कर्तव्य अधिकारमें निहित है। (Function is thus implicit in right) (४७ ९४)।

सारकी बड़ी चतुराईसे सामाजिक कल्याणक इस सिद्धान्तक साथ आदर्शवादी सिद्धान्तको जोड़ दते हैं। यह कहते हैं अधिकार सामाजिक जीवनकी वे परिस्थितियाँ हैं जिनके अभावमें आमतौर पर कोई भी व्यक्ति अपनी सर्वोत्तम स्थिति का नहीं पहुँच सकता (४७ ९१)। अथवा 'अधिकार वे परिस्थितियाँ हैं जिनके अभावमें एक नागरिक वह पूर्णता नहीं प्राप्त कर सकता जो उसने लिए सम्भव है।

धालोचना

अधिकारोंके सामाजिक कल्याण सिद्धान्तमें बहुत कुछ प्रगतिनीय है। अब तक हमने जिन धार सिद्धान्तों पर विचार किया है उन सबमें यह सिद्धान्त सबसे अच्छा है। फिर भी इसमें कुछ दृष्टियाँ हैं —

(क) निस्सन्देह साकलित अधिकारकी अच्छी कसौटी है। पर कठिनाई तो तब सामन आती है जब हम 'साकलित' या 'लोक-कल्याण' की व्याख्या करने बैठते हैं। साकलित या लोक-कल्याणका क्या अर्थ है क्या इसका अर्थ है अधिकतम अधिक लोगका अधिक स अधिक मुख्य बहुमतका स्वार्थ लोक-सम्पत्ति या वा कुछ सरकार की दृष्टिमें सार्वजनिक हित हो यह? यदि हम इनमें से किसी एकका साकलित या लोक-कल्याण मान लें तो भी अधिक धारें सिद्ध नहीं होती क्योंकि यह सब शब्द भी अस्पष्ट और अनिश्चित हैं। अधिकतम अधिक मुख्यकी कोई माप नहीं हो सकती। समूचे समाजकी कोई चेतना तो ही नहीं सकती।

(ग) इस सिद्धान्तकी दूसरी नुति यह है कि सामाजिक कल्याण हमारे व्यक्तिगत अधिकारोंमें हस्तक्षेप कर सकता है। यह सिद्धान्त हम इस स्थिति तक ले जा सकता है कि समाजके अत्यधिक कल्याणके लिए किसी व्यक्तिको माड़ी हानि पट्टुच जाना उचित है—अर्थात् उद्दय ही साधनके औचित्यका सिद्ध करता है। व्यवहार में इसका परिणाम यह हो सकता है कि सामाजिक हित के लिए किसी स्वभाव्य व्यक्तिगत अधिकारका हनन कर दिया जाय। सामाजिक कल्याणका सिद्धान्त (principle of social expediency) पर अमल करता उत्तरदायक है। सामाजिक अधिकार व्यक्तिगत अधिकार सामाजिक कल्याणके अनुष्ण ही हान है। कठिनार्थ नहीं उत्पन्न होना है जहाँ दानामें संपन्न होना है। संपन्न हान पर सामाजिक कल्याण सिद्धान्तके पोषक व्यक्तिके हितकी अपेक्षा समाजके हितका ही पक्ष करनेको बाध्य है। प्रोफ़ेसर हॉकिंग इस सम्बन्ध में एक उप-नी-सेनापति (rear admiral) की कहानी बताते हैं। नी-सेनापति से पूछा गया कि यदि उससे सेना की सामाजिक कल्याण बनाय रखनेके लिए उसके अधीनस्थ एक निरपराध व्यक्तिको बलिदान करनेको कहा जाय तो वह क्या करेगा। उसे यह उत्तर देनेमें जरा भी सकोच नही हुआ कि वह उस व्यक्तिका बलिदान कर देगा। यदि पूरे समूहकी सुरक्षा और सामाजिक अनुष्णसुखकी प्रतिष्ठाके लिए एक व्यक्तिका बलिदान ही करना पडा तो कौन-सी बड़ी बात है ?

हमारा विचार है कि यह एक उचित दृष्टिकोण है। क्या तो बड़ा सामूहिक कल्याणका हर चीजको सही नही बना सकती। संयुक्त राज्य अमेरिकाके उच्चतम न्यायालयका एक सुप्रीम प्रसला इस विषय पर बहुत प्रकाश टांका है। एक जहाज के टूटने पर उसके नाविकों न भूला मरने में बचनेके लिए अन्न एक साथीको मारकर खा लिया। न्यायालयका प्रसला था कि उस व्यक्तिको किसी हालतमें भी नही मारना चाहिए था। एन० वाइल्ड के अनुसार यदि समाज ही अधिकारका निमाता है तो व्यक्तिकी कक्षा भी रखा नहीं हो सकती और वह समाजकी विरुद्ध इच्छाके विरुद्ध मरीन भी नहीं कर सकता (८१ १२८)।

२. अधिकारोंका भावनावादी या व्यक्तिगत सिद्धांत (The Idealistic or Personality Theory of Rights) इस सिद्धान्तके अनुसार अधिकार वे बाहरी परिस्थितियाँ हैं जो मनुष्यके आन्तरिक विभागके लिए आवश्यक हैं। इसीके अनुसार ब्रॉग (Brause) ने अधिकारोंका विवेकपूर्ण जीवनके विकासके लिए आवश्यक बाहरी परिस्थितियाँ माना है (२९ ३३)। उहा की तरह हेरीवी (Henrici) कहते हैं कि मनुष्यके व्यक्तित्वकी पूर्णताके लिए या भी भौतिक परिस्थितियाँ आवश्यक हैं उनकी रक्षाके लिए या कुछ जल्दी ही बड़ी अधिकार है (२९ ३३)। एन० वाइल्ड का कहना है कि अधिकार कुछ बाहरी करनेमें सुनिश्चित और उन्हें-संगत स्वाधीनता का दावा है (८१ ११३)। इसका अर्थ यह हुआ कि अधिकारोंके बिना कोई भी मनुष्य उच्च मर्यादा पूर्णताको प्राप्त नहीं कर सकता है बिना प्राप्त करनेकी उम्में सोचता जाती है। किसी व्यक्तिको सबसे बड़ा अधिकार उसका व्यक्तिगत अधिकार है। इसके

अर्थ यह है कि प्रत्येक मनुष्यका यह कर्तव्य और अधिकार है कि वह अपनी क्षमता या शक्तिको स्वतन्त्रतापूर्वक विकसित करे। अन्य सभी अधिकार इस मौलिक अधिकारसे उत्पन्न होते हैं। यहाँ तक की जीवनका अधिकार स्वतन्त्रताका अधिकार, सम्पत्तिका अधिकार जैसे महत्त्वपूर्ण अधिकार भी परम अधिकार (absolute rights) नहीं हैं। यह व्यक्तित्वके अधिकारसे सम्बन्धित हैं। हम जीवित रहनेका अधिकार सभी तक है जब तक कि जीवित रहना हमारे सर्वाङ्ग विकासके लिए जरूरी है। हमें आराम-हत्या करनेका अधिकार नहीं है क्योंकि हम सभी भी यह दृढ़तासे नहीं कह सकते कि हमारा जिनका अधिकार अधिक विकास सम्भव या वह हो चुका है। अतः विकास की गुंजाइश न रह जाने से जीवित रहने की आवश्यकता नहीं रह जाती। जिस क्षण हम अपने अधिकारोंका दुरुपयोग करें समाजको हमसे यह अधिकार छीन लेनेका पूरा-पूरा हक है। ग्रीन के अनुसार अधिकार वह शक्ति है जो कि किसी मनुष्यके लिए नैतिक जीव के रूपमें उसके व्यवसाय और कर्तव्यको पूरा करनेके लिए आवश्यक है (२९ ४३)।

यह सिद्धान्त अधिकारोंको एक उच्च नैतिक दृष्टिकोणसे देखता है। अधिकार वह शक्ति है जिनका दावा हम समाजसे नैतिक स्तर पर कर सकते हैं। अधिकारों का मूल मनुष्यके मस्तिष्क या हृदयमें है। अधिकार वह शक्ति है जो समाज हमें इसलिए देता है कि हम दूसरोंसे मिलकर सार्वजनिक हित—हमारा अपना हित जिसका एक अभिन्न अंग है—की सिद्धि कर सकें। हम सच्चाईको हम पहले भी यह कहकर व्यक्त कर चुके हैं कि हर अधिकारके लिए समाजकी स्वीकृति आवश्यक होती है। इसको हम और अधिक स्पष्ट ढंगमें इस प्रकार कह सकते हैं कि जब सभी भी हम किसी अधिकार का दावा करते हैं तब हम निम्नलिखित दो बातोंका ध्यान रखना चाहिए। प्रथम तो यह कि हम समाजको यह मना सकें कि जो अधिकार हम चाहते हैं वे हमारे विकासके लिए अति आवश्यक है और दूसरे यह कि हम इन अधिकारोंको मांगकर किसी दूसरेके समान विकासके अधिकारोंमें हस्तगम नहीं कर रहे हैं। उदाहरणार्थ जब हम जीवनके अधिकारको मांगते हैं तो इसका अर्थ यह है कि (क) हम किसीके इस स्वत्व (दावा) को मांग करते हैं (ख) हम दूसरोंसे यही या इसी प्रकार के दावोंको माननेके लिए तयार हैं और (ग) हम समाजको यह मौन आश्वासन (tacit undertaking) देते हैं कि हम इस अधिकारका अपने सर्वोत्तम और उही हितमें उपयोग करेंगे। इसी अर्थमें हम इस कथनको भी पढ़ना चाहिए कि अधिकार और कर्तव्य आपसमें सम्बन्धित हैं। इस तरह अधिकारकारी प्राप्ति समाज की सम्स्पन्नाम ही होती है। किमीका मनमाना कार्य करनेका अधिकार नहीं है। जैसा कि उन वाक्यमें लिखे हैं अधिकार कार्य करनेकी स्वतन्त्रता है जो मनुष्यको इसलिए प्राप्त होती है कि उसका समाजमें एक निश्चित स्थान है और सामाजिक व्यवस्थामें वह कुछ कार्यका पूरा करता है (८१ १२)।

हमारे सामने तथ्यका हम इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं कि हर अधिकारका

आधार एक विवेकशील और उत्तरदायित्वपूर्ण भावना या इच्छा होती है। मनुकी या अनुमरणविवेकपूर्ण इच्छाएँ अधिकार नहीं हो सकतीं। जिस व्यक्ति या समुदायके सामने हम अपनी इच्छा उपस्थित करते हैं उसकी किसी इच्छा तथा हमारी इच्छान में होना चाहिए। प्रो० हॉकिंग के कथानुसार 'अधिकार कोई भी ऐसी इच्छाको पूरा करनेका दावा है जो सावजनिक हितर अनुकूल हो।' यदि प्रत्येक उचित अधिकारका आधार नैतिक हाथा है इसलिए हम किसी भी अधिकारकी पूर्तिकी माँग इस भावनाके साथ कर सकते हैं कि जिस व्यक्तिसे या जिस पर हम यह दावा पग कर रहे हैं उस पर हमारा पूरा जोर है। भले ही हम घायल सबसे अधिक कमजोर हों। भविष्य और मेमनेवाली कहानीमें ममनेके मास पर अवश्य ही भेदियेका 'प्रावृत्तिक' अधिकार प्राप्त या परन्तु ममने ने भेदियेके अन्तस्त्वकी सर्वोच्च भावनाय विवेक और नैतिकताकी अनील का पी। इसी तरह हम उन दावान ह्यगप नहीं करना चाहिए जो हमारे लिए बर्जित हैं। क्योंकि एसा करनेम हम अपने विवेकका उत्पन्न करते हैं तथा अपने व्यक्तित्वके सिद्धान्तको तोड़ते हैं। डा० हॉकिंग कहते हैं कि जब एक व्यक्ति किसी दूसरेके विरुद्ध अधिकारका दावा करता है तब वह उस व्यक्तिसे कहता है 'यदि तुम मेरे अधिकारोंमें टणन देने हो ता तुम अपने ही कर्ण्य स्थन पर आधार करते हो। एस प्रयामें 'गस रखनेवालाकी हानि दासोंसे अधिक होती है। दासका कष्ट काजी ह' तक धारारित होता है। परन्तु दास रखनेवालोंकी नैतिक और आत्मिक हानि होती है। अगर हम दूसरेके अधिकारोंको आरको दृष्टिसे देखते हैं तो हम अपनी शक्तिका आर करते हैं। एक निरररप व्यक्तिकी हत्या करके हम अपने ही किसी शब्दकी हत्या करते हैं।

साफकी बिहाने आगवा और सामाजिक न्यरोधिताको आन्तम मिला दिया है अधिकार सम्बन्धी अपना धारणमें बहुलवाणी तन्व सम्मिलित कर ते हैं। इस प्रकार उनके अनुसार अधिकारके तीन धनिबाय स्वरूप हाते हैं (१) व्यक्तिका हित या स्वार्थ (२) विभिन्न पूर्णों या वनोंका हित (सामाजिक भाग) और (३) समाजका (राष्ट्र का) हित (५०-१५१)।

आपौचना व मूर्च्छा

(क) सब सिद्धान्तों पर अच्छी तरह विचार करनेके लिये अधिकारोंका आर्णवाणी या व्यक्तिव सिद्धान्त ही सबसे अधिक अनुयोग्य जान पाता है। धनिर्द ग समय उत्पन्न होती है जब हम व्यक्तित्वकी धारणको व्यवहारमें माने का प्रयत्न करते हैं। यह पूछा जा सकता है कि राग्य किम मय-मम उन परिस्थि त्रियोंको निर्भर करेगा या हर मनुष्यके पूर्ण विरासने लिए जरूरी है? क्या व्यक्तिवका विचार अनिश्चित एक सामाजिक विचार नहीं है? हम दूसरोंके विचारके बारेमें क्या जानते हैं? यह निम्न-मेह भारी धारणियाँ हैं। हमारा उत्तर इन

आपत्तियाँके लिए यह है कि आदर्शवादी सिद्धान्तके अनुसार राज्य मनुष्यके जीवनको सुन्दर बनानेके लिए सब कुछ देनेका दावा नहीं करता। यह मानते हुए कि प्रत्येक मनुष्यमें विकास करनेकी जितनी सामर्थ्य है उतना विकास वह करना चाहता है। राज्य कुछ न्यूनतम अधिकार मनुष्यको देता है और मनुष्यको उन अधिकारके प्रयोग करने की पूरी स्वतंत्रता रहती है। राज्य यह मानता है कि मौलिक अधिकार हर व्यक्तिके लिए एक समान होने चाहिए। उनको प्राप्त करनेके बाद ही भद्र उत्पन्न हो सकता है।

(ख) हम यह सोच सकते हैं कि सामाजिक कल्याण सिद्धान्त और आदर्शवादी सिद्धान्त अधिकारोंके सम्बन्धमें काफी हद तक एकसे हैं क्योंकि व्यक्तिगत हित और समाजका हित आपसमें घनिष्ठ रूपसे जुड़ हैं।^१ लेकिन जब कभी भी व्यक्तिगत हित और सामाजिक हितमें विरोध होता है तब आदर्शवादी सिद्धान्त एक ओर जायगा और सामाजिक कल्याण सिद्धान्त दूसरी ओर। आदर्शवादी सिद्धान्त किसी भी व्यक्तिगत हितके प्रति किसी दूसरेके विकासके लिए किया जाना मजूर नहीं करता। यह सिद्धान्त राज्य के इस विचारसे सहमत है कि किसी मनुष्यको किसी दूसरेकी उद्देश्य पूर्तिका साधन मात्र नहीं माना जाना चाहिए। यह सिद्धान्त हर व्यक्तिसे आप्रहृ करता है कि वह अपने और दूसरोंके भीतरकी मानवताको उद्देश्य माने उस केवल साधन मात्र न समझे।

(ग) इस सिद्धान्तकी अनेक प्रमुख बिन्दुओंमें से एक बिन्दु यह है कि इसमें एक अधिकारको परम अधिकार (absolute right) माना गया है। वह अधिकार है व्यक्तिगत अधिकार और सब दूसरे अधिकारोंको उससे उत्पन्न हुआ माना गया है। प्राकृतिक अधिकारोंके सिद्धान्तमें बहुतसे परम अधिकार माने गये हैं और धर्महीन सिद्धान्तमें एक भी परम अधिकार नहीं माना गया है। चूंकि व्यक्तिगत सिद्धान्तमें एक ही परम अधिकार है। इसलिए इसमें कोई आन्तरिक विरोध नहीं है जसा कि प्राकृतिक अधिकारसिद्धान्तमें है। इसके अनिश्चित इस सिद्धान्तमें अधिकारोंकी एक सूची कसौटी भी दी गयी है जिस पर हमेशा विश्वास किया जा सकता है और इसीलिए यह अधिकार इतिहासीय और सामाजिक कल्याणके सिद्धान्तोंसे ऊँचा माना गया है। सभी मनुष्योंका एक परम अधिकार है और वह है व्यक्तिगत अधिकार। वह कभी भी बदलनवाला नहीं है। वह देश और कालके प्रभावसे भी मुक्त है। जसाकि डॉक्टर हॉकिंग करते हैं कि परमात्माके विरुद्ध भी यह अधिकार सही उत्तरता है। उन्होंने अमरत्वके सम्पर्कमें यह तर्क दिया है कि ईश्वर या सृष्टिका रूपनेवाला—तो भी हमारा इस जीवनके लिए उत्तरदायी है—स्वयं अपनी साक्षर करने के लिए हमें हर एका अवसर देनेके लिए विवश है जिससे कि अपने उत्थान या विनाश

^१ मास्वी ने ठीक ही कहा है मैं केवल राज्यके लिए ही जीवित नहीं हूँ और राज्य भी केवल मेरे हितके लिए ही नहीं है (४७ ९४)। दोनोंका अस्तित्व एक दूसरेके लिए है और दोनों ही एक दूसरेकी भलाई चाहते हैं।

मपिकार-साङ्घपी सिद्धान्त

के लिए जो समय हमने इस पृष्ठी पर आरम्भ किया है उसे हम पूरा कर सकें तथा अपने व्यक्तिवके उद्देश्यपी विधि कर सकें।

SELECT READINGS

- BOSANQUET B—*The Philosophical Theory of the State*—Ch VIII
Section 6
- BURNS C D—*Political Ideals*—Ch VII
- GILCHRIST R N—*Principles of Political Science*—Ch VI
- GREEN T H—*Lectures on the Principles of Political Obligation*—
Section A
- HOCKING W E—*Law and Rights*
- LASKI H J—*A Grammar of Politics*—Ch III
- LORD A R.—*The Principles of Politics*—Chs VIII X
- RITCHIE D G—*Natural Rights*
- WILDE, N—*The Ethical Basis of the State*—Ch VI

विशिष्ट अधिकार (Particular Rights)

(क) जीवनका अधिकार (The Right to Life)

जिन विशिष्ट अधिकारोंका हम विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे वह हैं जीवन स्वतन्त्रता सम्पत्ति तथा समानताके अधिकार, राजनीतिक अधिकार तथा राग्मने प्रतिरोध का अधिकार। इन सब अधिकारोंमें से जीवनका अधिकार सबसे अधिक मौलिक है क्योंकि इसके बिना मनुष्यके अ्य अधिकार ही ही नहीं सकते। टी० एच० वीन के अनुसार जीवनका अधिकार और स्वतन्त्रताका अधिकार दोनों मिलकर एक अधिकार बनते हैं जिसको कि हम स्वतन्त्र जीवनका अधिकार कहते हैं। स्वतन्त्रताके बिना जीवन बहार है, और दूसरी ओर जीवनका जो उपयोग हम करते हैं उसीसे हमें जीवनका अधिकार मिलता है। अतः स्वतन्त्र जीवनके अधिनारका नैतिक आधार किसी समाज का सदस्यता होनेकी मनुष्यकी योग्यता है अर्थात् व्यक्तिम वन्द्याणकी एसी धारणा हो जिसमें उसका हिन दूसरोंके हितके साथ घुला मिला हो (२० १५६)।

यह आश्चर्यकी बात है कि स्वतन्त्र जीवन जैसे मौलिक अधिनारकी भी बहुत पीरे पीरे स्वीकार किया गया है। प्रारम्भिक समाजमें जीवनका अधिकार मनुष्यको मनुष्यके रूपमें नहीं दिया गया था बरन् उसे परिवार या जातिके नाते यह अधिकार प्राप्त था। इस धारणामें जो परिवर्तन हुआ उसका ध्येय निम्नलिखित तीन कारणोंको दिया जा सकता है रोमन यूप (Roman equity), जिसने मनुष्यके अधिकारोंको किसी भी राग्मसे स्वतन्त्र और पूयक रूपमें स्वीकार किया था प्राकृतिक विधि का सिद्धांत या सब मनुष्यों पर लागू होता है और जिसका प्रचार स्तोइक लोग (Stoics) ने किया और ईसाई पयकी विश्व-व्यापककी धारणा (२१ १५६)। इसी प्रगति होनेके बाद भी आधुनिक समाजोंमें इस अधिनारको वेदम नियधारक ढंगसे ही स्वीकार किया गया है। आज हम अधिकसे अधिक इस आधुनिकी विधि बना देते हैं कि किसी मनुष्यका उपयोग किसी भी दूसरे मनुष्य द्वारा उसकी इच्छाने विरुद्ध एक साधनके रूपमें नहीं किया जायगा पर हम मनुष्यको किसी भी सामाजिक उत्स्यको पूरा करनेका अवसर नहीं देते हैं (२० १५९)।

स्वतन्त्र जीवनके अधिनारका आधार मनुष्यमें अपनी रणा करनेकी स्वाभाविक

बिगिण्ट अधिहार

प्रवृत्ति और सामान्य मनुष्यम जीव हत्या करनेकी स्वाभाविक अनिच्छावा हुना है। प्रवृत्तियों और भावनाओंके आधार पर ही अधिहारोंकी व्यवस्था करना बहुत ही फटिन है। किसी अधिहारके माने जानेसे पूव समाजको विश्वास होना चाहिए कि वह अधिहार मनुष्यके विकासके लिए बहुत ही जरूरी और समाज के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है। और फिर प्रवृत्तियों और भावनाओंको ही अधिहारका आधार माना जाय तो फिर यद्यप एक दूसरकी मारकाट करने और जानबूझ कर हत्याए करनेमे जो तत्परता दिखायी जाती है उसका विरमपण हम नैम करें। इसलिये जीवनका आधार प्रतिबन्धामे रहित नहै। उमक अस्तित्वन औचित्यका समयन उसी हूँ तक बिना जा सकता है जिस हूँ तक उमका उपपाग व्यक्तिये प्राप्त विवामन तथा समाजके हित म हो।

जीवनक अधिहार में निहित धारणाए (Implications of the Right to Life)

१ जीवन रहनेका कर्तव्य (The Duty to Live) जीवनके अधिहारम जीवित रहनेका कर्तव्य भी दिया है। मनुष्यका अपना जीवन समाप्त कर देना नता व्यक्तिगत विधारम ही उचित है और न समाजके विधारमे ही। यही कारण है कि आम्हया की कोणिक करने पर प्रत्येक टांगम सडा दा बानी है। व्यक्तिगत दष्टि कोणय यह बाई नहै बना सनता कि उसका अपनी योग्यताके अनुसार पूरा विवास हो चुका है। जब तक जीवन है तब तक आग है। इतिहासम हम एमे बहुत-मे मनुष्यके उदाहरण मिलते हैं जिनम उनका मानसिक विकास उनके शरीर सिमित हो जाने पर भी होना रहा था। एमे भी उदाहरण हैं जब कि मानसिक विकास तो हाउ रहते हैं। इसलिये अधिहार मामनामे बाई यह नहै बहु सडा कि उसका विकास सब रक गया है। आम्हया के अधिकतर मामनामे मनुष्य अपने जीवनसे हारकर अपनी कापरता दिनाता है। आपनिक विधारधारम आम्हया करना कनी भी उचित नही माना गया है। अमाध्य रोगके कारण भी जानेवानी आम्हयाप्राणी बाउ दूसरी है।

समाजकी दृष्टिये भी आम्हया करना बुरा है। जैसा कि गिस्तकार्ट ने कहा है प्रत्येक जीवन समाज-कल्याणकी दृष्टिये मूयवान है। इस कारण अपन जीवन का अन्य किसीके जीवनको समान कलेका अर्थ एमे व्यक्तिगतवको नउ करना है जिसके अधिहार भी हैं और कउय भी। मेगट टॉमस एक्वाइनस (St. Thomas Aquinas) की मानम आम्हया स्वय अपने प्रति समाजके प्रति और परमात्माके प्रति अन्तः है। हम अधिहार से अधिक्त मही कर सडते हैं कि आम्हया को समा कर दें तथा समयन किसी भागमान नहै बिना जा सकता।

२ हत्या न करने का कर्तव्य (The Duty not to Commit Murder)
 यदि एक व्यक्ति को जीवित रहने का अधिकार है तो उसका यह कर्तव्य भी है कि वह दूसरों की हत्या न करे। हत्या केवल एक नैतिक अपराध ही नहीं है बल्कि विधि की दृष्टि से भी वह एक भयानक अपराध है। क्या हत्यारे को मृत्युदण्ड देना उसके जीवित रहने के अधिकार को छीनना है? वास्तव में हत्या करने वाले मनुष्य को जीवित रहने का कोई अधिकार ही नहीं है। उसने जो असामाजिक कार्य किया है उससे उसने अपने जीवित रहने के अधिकार को खा दिया है। इस कारण वह केवल इस अधिकार का दावा कर सकता है कि वह समाज को एक सामान्य सन्स्य की भाँति पुनः वापिस कर दिया जाय ताकि वह सावजनिक हित के साधन में अपना सहयोग दे सके। इस अधिकार को परावर्तन का अधिकार (reversionary right) कहते हैं।

मृत्युदण्ड के विरोधियों का कहना है कि ऐसे मामल भी कम नहीं होते जिनमें निरपराध व्यक्ति को मृत्युदण्ड मिल जाता है और अनेक अवसरों पर हत्याएँ बहुत अधिक उत्तेजना दिलाये जाने पर उन्मत्तावस्थाम की जाती हैं। इसके अतिरिक्त उनके निम्नलिखित तर्क भी हैं (क) मृत्युदण्ड का समाज पर बहुत बरा असर पड़ता है। इससे मानव जीवन का मूल्य कम हो जाता है और लोग मानव जीवन के कष्टों के प्रति उदासीन हो जाते हैं। (ख) मृत्युदण्ड उस बर्बर युग की देन है जब मनुष्य प्रतिहिंसा की भावना से व्यवहार करता था। (ग) बहुत-से हत्यारे उत्तरदायित्व की भावना से हीन होते हैं और अपने द्वारा किये गये अपराधों की अपराधता नहीं समझ पाते और (घ) मृत्युदण्ड हत्याओं को रोकने में अधिक सफल नहीं हुआ है। इन सब तर्कों के चल पर मृत्युदण्ड के विरोधियों का कहना है कि समाज को चाहिए कि हत्यारों को मृत्युदण्ड देने से बचाय उसका सुधार करे।

इन तर्कों का मूल्यांकन करते समय यह कहना ही पड़ता है कि इन तर्कों का आधार जीवन को भौतिक अस्तित्व मात्र (mere physical existence) मानने वाली भ्रान्त धारणा है। समाज अपने एक ऐसे सन्स्य के जीवन को बनाये रखने के लिए जिम्मेदार नहीं है जो दूसरों के जीवन पर आपात पहुँचाना है। जो व्यक्ति दूसरे की सम्पत्ति के कारण उसकी हत्या करता है वह अपने जीवन रहने के अधिकार को खा देता है। वह एक सिकारी जानवर से भी गया बीता है इस कारण उसकी जीवा रणा करना उचित भावना मान है। यह पामिब तर्क बिल्कुल ही व्यर्थ है कि मनुष्य अभी भी मुँघे योग्य नहीं होता और मृत्युदण्ड व्यक्ति को पशुताप करने के अवसर दे बिजु कर देता है। वास्तव में तथ्य यह है कि एका व्यक्ति जीवन रहने के योग्य ही नहीं है।

बहुधा यह तर्क किया जाता है कि हत्या करने समय हत्यारे का मानसिक मनुष्य नहीं रह सका होगा। हम सम्भवतः यह बात बहुत ही महत्वपूर्ण और ध्यान देने योग्य है कि यदि हम हत्यारे के साथ उदारता ही बजाव करना चाहते हैं तो हमें यह सिद्ध करना होगा कि उगरी मानसिक स्थिति हत्या-नर्मते पृथक् बिगरी हुई थी।

प्रायः होता यह है कि जब अग्य सभी बहाने असम्भवा जाते हैं तब पापनपनका बहाना किया जाता है। यदि हत्याका कोई उद्देश्य नहीं है तो यह तक किया जा सकता है कि सम्बन्धित व्यक्तिने हत्या नहीं की है पर यह तर्क उसने साप उदारता करनेका कारण नहीं हो सकता। यदि हत्या बिना किसी उद्देश्यके की गयी है तब तो अपराध और भी भयंकर हो जाता है। यदि इस प्रकारके व्यक्तिप्राप्तो निरपराध मानकर छोड़ दिया जाय तो परिणाम यह होगा कि जितना अधिक अमानवीय अपराध होगा उतना ही अधिक अपराधियाको पापनपनके बहाने दण्डो छत्रवारा मिलना चह्ये। यदि हत्यारेका पापनपन अग्याया हो तब तो उसने साप कुछ उपागताका व्यवहार करनेका कारण भी है उते एक सम्भावना व्यक्ति (potential person) मानकर उसने साप वसा व्यवहार किया जा सकता है जैसा एक बच्चेका साप किया जाता है जा भविष्यमें एक सामान्य मनुष्य होनेके योग्य है। परन्तु यदि वह असाध्य पापल है तब तो वह एक भयंकर पाप है और इसमिण अज्ञा होगा कि विधि को अपना काम करने दिया जाय।

सर हबर्न स्पीचेन का विचार है कि हत्यारेको मृत्यु-दण्ड मिलनेसे हत्या क्रिय गय व्यक्तिके सम्बन्धियों और मित्राकी स्वाभाविक उतवना और उनके दुखको दूना संतोष प्राप्त होता है जितना अग्य किसी प्रकारके दण्डसे नहीं हो सकता। यह मृत्यु-दण्डको हत्याका एक प्रभावशाली निरोधक मानन है। उनका कहना है कि बन्धनी हत्याएँ याचना बनाकर और सात समझकर की जाती हैं। यदि सर स्पीचन की बात तो वह आधुनिक विधिको कुछ इस तरह संवर्धन करें कि कुछ अन्य पृष्ठिन अपराधाने तिन भी मृत्यु-दण्ड दिया जाय।

ऊपर मृत्यु-दण्ड का पाप और विषय म जा कुछ कहा गया है उनसे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कमम कम मानव विनासकी वर्तमान स्थितिम सा हत्याने अपराधम मृत्यु-दण्ड ही न्यायाचित है। फिर भी हमें इस बातके लिए विचार सावधानी बरतनी चाहिए कि मृत्यु-दण्ड जहाँ तक हो सके नियमित रहे। हत्यास छान अपराधों पर मृत्यु-दण्ड देना बिल्कुल अन्याय है। हत्या मे कम अपराधों पर मृत्यु-दण्ड न दिया जाने स अपराधियाको इस बातकी प्रेरणा मिलती है कि जहाँ तक हो सके वह हत्या न करें ताकि अपने का मृत्यु-दण्ड से बचा सकें।

जहाँ एक ओर हम कुछ सीमित अपराधोंके लिए मृत्यु-दण्ड देने पर विश्वास करते हैं वहाँ हम दूसरी ओर चाहते हैं कि अनिर्धारित दण्ड (indeterminate sentences) की प्रणालीका अधिकसे अधिक प्रयोग किया जाय। किसी मुनिदित और भावक व्यक्तिका मृत्यु-दण्डके स्थान पर मात्र मर्दानगी मर्या देनेमें कोई मुधार नहीं है क्योंकि मृत्यु-दण्ड की सीमा आक्रमण की सजा मे मा मनुष्य स्वगत सामाजिक जीवनने परे हा जाता है और इस सामाजिक जीवनने मिलनेवाने नतिष्ठ विचारके अवसरोंसे एकरम बचन हो जाता है (२९)। अत आक्रमण कारावासाका भीति-तनी है जब कुछ समय बाद अपराधीको उसके बचनेमें मुधार होने पर मुक्त किया जाय।

३ आत्म रक्षाका अधिकार (The Right to Self-defence) प्रायः माना जाता है कि जीवित रहनेके अधिकारमें जीवन रक्षाका अधिकार भी शामिल है। किसी मामलेमें जीवन रक्षाके लिए जितनी शक्ति प्रयोग की गयी वह उचित थी या नहीं इसका निर्णय न्यायालय पर छोड़ दिया गया है। प्रचलित विचारपारा यह है कि आत्म रक्षा तो उचित है पर आक्रमण नहीं। इस सम्बन्धमें कठिनाई यह है कि आत्म रक्षा और आक्रमण असे धारणों की परिभाषा करना सर्वव्यापक नहीं होता। यह सिद्ध करनेके लिए कि इन दोनोंमें से कौन उचित है हमें यह जानना चाहिए कि किसकी रक्षा की जा रही है और किस पर आक्रमण किया जा रहा है (६६ १२०)।

अब एक प्रश्न यद्दके सम्बन्धमें सामने आता है। क्या राज्यके लिए उचित है कि अपने किसी नागरिक से बहे कि वह अपने जीवनकी आहुति युद्धमें दे दे? क्या यह उसके जीवित रहनेके अधिकार' में हस्तक्षेप नहीं है? योन के अनुसार अधिकतर युद्ध राष्ट्रोंकी महत्त्वाकांक्षाओंके कारण राष्ट्रीय अभिमानके कारण एवं आर्थिक लाभ के कारणोंसे होते हैं। अब यह कहना कि राज्यके बीच सधम अनिवार्य है ग़नत है। युद्ध इसलिए जरूरी नहीं है कि राष्ट्रोंका अस्तित्व है वरन् यह इसलिए जरूरी हो जाते हैं कि सार्वजनिक अधिकारकी प्रतिष्ठा और उनमें आपसी मेल उत्पन्न करनेके कर्तव्यको राज्य पूरा नहो करत हैं (२९ १९)।

हीगल की विचारधारा विन्चुन चित्र है। उनका कहना है कि युद्ध से व्यक्तिके जीवनमें राज्यकी सर्वशक्तिमत्ता (omnipotence) साबित होती है। राष्ट्रके देवत्वमें यह विश्वास व्यक्तिकी स्वतंत्रताको नष्ट कर देता है। कबल देग और मानु भूमि का ही महत्त्व रह जाता है।

बासारे न यद्दकी नतिवस्थाका विचार राज्यके अधिकारों के रूपमें किया है। युद्धका औचित्य सिद्ध करनेमें उन्हें सैनिक भी हिचकिचाहट नहो होती। वह राज्यके ध्वजिन्ध पर और उसने नतिक उत्तरदायित्व पर विश्वास करने हैं। यह मिसालें हैं कि जब जीवन और अन्ध जीवनके दावाम सधम पैदा हो जाता है तब हर व्यक्ति और उसका प्रतिनिधि व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों रूपों में यह जानता है कि उसे क्या करना चाहिए—अर्थात् उसे युद्ध-श्रीम उठर पड़ना चाहिए। बासारे के अनुसार राज्य 'नैतिक हितोंका रक्षक है और उसे अपने कर्तव्योंको ईमानदारीमें पूरा करना चाहिए (५ २) चाहे एसा करनेमें कुछ व्यक्तिप्राका अहित ही क्या न हो।

इस सम्बन्धमें इतना कहना काफी है कि उक्त दलीलों पर विश्वास नहीं होता। आधुनिक युद्धोंमें मानव-काननमें और क्षी हुई कारवाइया होती हैं। युद्ध सामारणतया निरप्यता भोजे और दशावादीसे भरे होते हैं। इन युद्धोंसे आर्थिक व्यवस्था नष्ट होती है और जीवन तथा विचारोंका प्रसन्न उपयोग होता है। इन युद्धोंसे व्यक्तिप्रायों का व्यक्तिप्रायके समूहोंको बलप्रयोग करने अपना मतलब सिद्ध करनेकी प्रेरणा मिलती है। आधुनिक युद्ध बिनाबिकर बिनाबिके अमीमित मापदंडोंके कारण नैतिक दृष्टिसे बहुत ही निरप्य, आर्थिक विचारोंमें अय्यन हानिकर और राजनीतिक विचारोंमें आत्मघाती

होते हैं। इन सब बातोंके कारण हम बन की तरह यह बहुतम काइ हिचक नहा हातीं कि 'युद्ध और सार्वजनिक कोई मूल नहा है और इसलिए सौकरत्र को युद्धके स्थान पर किसी दूसरे साधन को साज निवातना चाहिए (१० २१५)। जब तक राष्ट्रमें यह भावना रहनी कि आपसी मतभेदों को अन्ततोगत्वा युद्ध द्वारा ही दूर किया जा सकता है, राष्ट्रीय विवाह अन्य किसी उपायसे मुक्तमाये नहीं जा सकता तब तक मही मानना चाहिए कि राष्ट्र अपने जीवन की बान्धावस्था में ही है यद्यत् उनका विकास नहीं हुआ है।

४ सन्तति उत्पारन और ब्ययनमस्य मगमदा अधिकार (The Right to Reproduce Life Coupled with the Right to be born without Heavy Handicaps) सामरणाकी भावनाके इतरबर ही महत्त्वपूर्ण एक और मूल प्रवृत्ति है। यह प्रवृत्ति है इच्छा भावनाशी। स्पष्ट है कि सन्तति-उत्पानन का अधिकार एक 'प्राकृतिक अधिकार' जैसा है। फिर भी यह कोई एसा अधिकार नहा है कि जिसका भरम अधिकारके सम माना जा सके। आयुनिष्ठ समाजमें यह मांग अनुचित नहीं है कि सामान्यतः समाजक हितके लिए और विद्यार्थक स्वयं सजानके हितकी दृष्टिसे वंशानुगत (hereditary) और असाध्य पाणना मूलों अथवा बहुरी गुणा तथा कुछ रागियों आदिको शांन करके अपनी सख्या बसानम राका जाय।

सन्तति उत्पाननके अधिकारके साथ ही हम एक ऐसे अधिकार पर भी विचार कर सकते हैं जिसकी मांग अती ता अधिक नहा की जाती पर जिन प्रगतिगत समाज में विज्ञान विधी जन्म स्थान दना ही हागा। यह अधिकार अधनगहित पना हुनका अधिकार है। अन्न मात्रा-निगारो पुननेमें बाँचोंका हाम नहा हाता और इसी कारण अधिभावना की और समाजकी यह बिम्बनारा ही जाती कि कई ना एसा बाँचा जन्म न स जिस अन्न जन्मके कारण समाजमें उचित स्थान न मिल सके। यदि विज्ञान दस की जनसंख्या बढ़ाया जाती जा रही है ता राज्य द्वारा इन पर कोई व्यावहारिक रोक लगाया जाना अनुचित न होगा। आयुनिक जापान ने ता मम गिराये तककी बध टहया है जिसका समवन नैतिक दृष्टिकोसे बिना हा नहा जा सकता। चीन का अब जापानका अनुगामी बन रहा है।

अपना जीवन सुविधापूर्वक आरम्भ करनेका अधिकार बच्चेका है। इसका अर्थ यह है कि जो लोग सुन्दर सजाति उत्पन्न कर सके हैं उन्हें अधिन बच्चे पैंग करन के लिए प्रोत्साहित किया जाय और जो निम्न शक्तिके हैं उन्हें बच्चे पैंग करने पर दण दना जाय। इसी उद्देश्यकी पूर्तिक लिए मात्राभाको पठन विषययोंका सहजता और बच्ची छत्रने सुन्दर सजान पना करनेके लिए सजा-निगारो जन्म मिना जाता है। एम बच्चोंको पिताके लिए राज्यसे सहायता मिलना उनकी अनुविधि के द्वारा निश्चित करना और बच्चे पैंग करनेके लिए स्वस्थ प्रसाधनों का आवश्यकता मही मन्दी पूर्तिक लिए है। इहा मुताभाके अनुसार प्रा० लॉरेन्स (Prof. Lorenz) का कहना है कि जो अनुप्य माने बच्चेके लिए सजान-निगारो

प्रवृत्त नहीं कर सकता उसे दानी करनेका अधिकार ठीक उसी प्रकार नहीं है जिस प्रकार ऐसे ध्यक्तिको जो बच्चे पैदा नहीं कर सकता (१६ १२८)।

महां पर व्यावहारिक महत्त्वका एक प्रश्न यह उठता है कि क्या, मूलों अपंगों और असाध्य पागलोंको स्वतंत्र जीवनका अधिकार है? जब वे अपने जीवनका ही अनुभव नहीं कर पाते सब भी क्या उनके जीवनकी रक्षाकी आज्ञा? ग्रीन का कहना है कि बूढ़ि जीवनका क्रम जारी रहता है और किसी भावी जीवनमें बिकासकी सम्भावना है इसलिए ऐसे लोगोंको जीवित रहने देना चाहिए। यह तर्क इसलिए व्यर्थ है कि हमारा सम्बन्ध अभी हम ज मन बिकाससे है न कि किसी भावी जीवनमें होनेवाले बिकास से। हम ग्रीन को इस बातको मानने को तैयार है कि बहुत-से मामलोंमें यह तय करना बहुत कठिन है कि पागलपन या मूर्खता असाध्य है या साध्य। पर हम उनकी यह दलील माननेको तैयार नहीं हैं कि ऐसे लोगोंको बेचन इसलिए, जीवित रखना चाहिए और उनकी भती प्रचार देकर रोक करनी चाहिए कि ऐसा करनेसे मानव स्वभावकी बचत वृत्तियां बिकाम होता है। यह एक गतत प्रकारका भावनावादा (sentimentalism) है। फिर भी हमारा विश्वास है कि विज्ञानके लिए की जानेवाली जीव-दृष्ट्याने प्रति हमारी पुष्पाकी ओ भावना है उसे कायम रखना चाहिए। मानवताके लिए यह जरूरी है। साथ ही-साथ भावी पीढ़ियोंके हितमें यह भी जरूरी है कि बचानुगत अन्या असाध्य रोगियों और जन्म-जात अथम बोटिके अपराधियोंको गण समाजसे अलग कर दिया जाय और जहां आवश्यक हो उन्हें ऐसा कर लिया जाय कि वे सतान पैंग न कर सकें। अहां आबादी तेजीसे बढ़ रही हो जैसे भारतमें यह उचित होगा कि राज्य ऐसे लोगोंको सजा दे जो भरण-पोषणकी विन्ता किये बिना तेजीसे बचपन करने जाते हैं।

५ काम पानेका अधिकार और आजीविकाका अधिकार (The Right to Work and the Right to Maintenance) आजकल जिस अधिकार पर नित प्रतिनि अधिक जोर दिया जा रहा है वह काम करनेका अधिकार है। यह कहा जाता है कि जीवनके अधिकारका अर्थ ही यह है कि ब्यक्तिके जीवनको कायम रखा जाय भये ही वह स्वयं अपने प्रयत्नोसे अपने जीवन को बनाये न रख पा रहा हो। यह सिद्ध करनेके लिए किसी तर्की आवश्यकता नहीं है कि समाजमें अपना कर्तव्य पूरा करनेके लिए प्रत्येक ब्यक्तिको जीविकाके कुछ आवश्यक पदार्थों की आवश्यकता होती है। उन पदार्थोंके अभावमें मनुष्य बहुत जल्दी ही खर पगुजोरी कोटिमें आ जायगा। समाजवादी और अनेक उदारगणी यह दावा करते हैं कि मजदूरको काम पानेका अधिकार है और जब वह बकार हो जाता है तब उसके भरण-पोषणकी जिम्मेदारी समाजकी होनी चाहिए। क्या यह दावा उचित है?

यह तो स्पष्ट है कि समाजको किसी भी ब्यक्तिको भूखों नहीं मरने देना चाहिए। मनुष्य ने जो वैज्ञानिक आविष्कार और मोक्ष की है और समझदार लोगोंने जिस सामाजिक बचनाका बिकास किया है उनके कारण समाजमें भुखमरीको सम्भव नष्ट

कर देना अब सम्भव होना ही चाहिए। इसका मतलब होगा कि और समाज बातोंके साथ-साथ न्यूनतम वतन विधि लागू हो सामाजिक सुरक्षा जैसे साधना द्वारा समाज के संस्थाओंमें सम्पत्तिका निरसे बंधारा हो विरासन और उत्तराधिकार पर कडा नियंत्रण हो धनी व्यक्तियोंकी शक्तिको निरुत्साहित किया जाय और तब नईक तथा सम्पत्तिका दुरुपयोग रोका जाय।

जहां गरीबी और बकारीका कारण समाजक दोष हो वहां समाजका कतब्य है कि वह अपना सगुन इस प्रकार करे कि नागरिकाका कल्याण हो सक। क्योंकि जैसा सास्की न बताया है 'या तो राज्य स्वयं औद्योगिक शक्तिका इस प्रकार नियंत्रण करे कि नागरिकोंका हित हो या फिर औद्योगिक शक्ति ही उद्योगपतियोंके हितमें राज्य का नियंत्रण करेगी (४७ १०९)। मजदूरोंके निर्वन्मपन या आलस्यस पैदा हान वाली गरीबी और बकारीका समाजक कारण उत्पन्न गरीबी और बकारीसे पूरक समझकर उस पर विचार किया जाना चाहिए।

आयिक-क्षेत्रम हस्तभय न करन (laissez faire) का सिद्धान्त तबसे समाप्त हो रहा है। सास्की के शास्त्रोंमें अद्वारका शताब्दीक पुनिस राज्यक स्थान पर बासवों शताब्दीके सामाजिक-सेवा राज्यकी स्थापना की जानी चाहिए (भागमें हम उन कल्याणकारा राज्य या मजदूरी राज्य कहेंगे)। अब राज्यका यह विम्भारी अधिकाधिक तनी हागा कि जो लाग काम करनक लाभ है और काम करना चाहत हैं पर काम नही पात उनके लिए कामका प्रबन्ध करे और जो नूद और अना काम करनेमें असमर्थ हैं उनके लिए कुछ दूसरा प्रबन्ध करे। जब राज्य पर यह विम्भारी हागी कि वह नागरिकोंके लिए कामका प्रबन्ध करे तो नागरिकाका भी इस बातके लिए तैयार रहना हागा कि राज्य जो भी काम दे उन सह करे। सास्की लिखत है 'एक प्रधान मंत्रीको पशुपुत होनेके बाद इत बातका अधिकार नही है कि वह अपने लिए प्रधान मंत्रीके स कामकी मांग करे। समाज हर व्यक्तिक मनचाह कामका प्रबन्ध नही कर सकता। अपना जीवन प्रामम करनेके लिए समाजका कुछ पण्यों और सवाओंकी आवश्यकता हाती है। काम पानके अधिकारका अर्थ इसल अधिक और कुछ नही हो सकता कि उन पण्यों और सवाओंके निर्मा अथके उत्पन्नम व्यक्ति पाग दता रहे (४७ १०९)।

जब व्यक्ति बकार कर दिया जाता है और उन कुछ समय तक काम नही मिल पाता तब राज्य उसके मरन-भोगके लिए जिम्मेदार हो जाता है। हर मुम्भवस्थित राज्यमें एक बकार सहायता काय होना चाहिए जिसका कुछ अर्थ मजदूर लाग स्वयं बना करे। सास्की को राज्य बकारीक प्रिलात बीमारी नीति राज्यकी धारणाका एक अमिय अंग है (४७ १०९)। अपनी पूराताकी प्राप्तिके लिए मनुष्यको काम करना होना और बकारीकी अवस्थामें तब तकके लिए शान्त तनेकी व्यवस्था होनी चाहिए जब तक कि उस किरसे काम न मिल जाय (४७ १०९)। पर हमारी राज्यमें ऐसी सहायता या एका सहानुता-क्षीय उचित नही जैसा किमम सहनता पानेवालाका

अपना कोई योग न हो। इससे निश्चित तौर पर भिन्नमतापन बढ़गा और मजदूर-वर्ग का नैतिक पतन होगा।

मजदूरको केवल काम पानका ही अधिकार नहीं है उसे अपनी मेहनतके लिए उचित मजदूरी पानका भी अधिकार है (४७ १०७)। अर्थात् मजदूरको इतनी मजदूरी पानेका अधिकार है जो सक्रिय नागरिकता (creative citizenship) के लिए आवश्यक हो। जीवनका आशय निम्न कोटिकी आवश्यकताओंको पूरा करना ही नहीं है बल्कि इससे बही अधिक है (४७ १०७)। सभी व्यक्तियोंको मोजन वस्त्र, भवान अवकाश और शिक्षा संस्तुत तथा अपनम जो सर्वोत्तम है उसने विकास लिए अवसरकी आवश्यकता होती है। किसी भी व्यक्तिको इस स्तरसे नीचे नहीं गिरनेना चाहिए। सास्यो का कहना है कि उचित मजदूरी या वेतनके अधिकार का यह अर्थ नहीं है कि सबकी आय बराबर हो पर इसके अर्थ यह अवश्य है कि कुछ लोगके पास आवश्यकता मे अधिक सम्पत्ति एकत्र होनेसे पहले सब लोगकी जरूरी आवश्यकताएँ पूरी हो जानी चाहिए (४७ १०९)। इसलिए सबसे पहले यह आवश्यक है कि जनता अपने इस अधिकारका अनुभव करे कि अपने परिश्रमका उचित पारिश्रमिक पाना उसका अधिकार है (२५ १३५)।

(ख) स्वतंत्रताका अधिकार' (The Right of Liberty)

१ स्वतंत्रताका अर्थ

स्वतंत्रताके आदर्शने सभी युगमें मनुष्य पर बड़ा प्रभाव डाला है। स्वतंत्रताके नाम पर बड़े-बड़े शौर्यपूर्ण कार्य किये गये हैं और अचरनीय पुणित अपराध भी। आज भी एस बहुत बम आदर्श हैं जिनका प्रभाव सोमा पर स्वतंत्रताके आदर्शत अधिन और धीध्र पडता हो। स्वतंत्रता मनुष्यके जीवनका विशिष्ट गुण है।

पहले जो कुछ भी लिखा जा चका है उससे यह ता स्पष्ट ही है कि समाजमें कही

* संयुक्त राष्ट्रने अपनी आम सभाम १० दिसम्बर सन् १९४८ ई० को मानव अधिकारोंका एव घोषणा-पत्र स्वीकार किया। इस घोषणा-पत्रम दस तरहके अधिकार शामिल हैं जीवन स्वतंत्रता और व्यक्तिगत रक्षाका अधिकार मनमान ढंगसे गिराना किसे जानस मुक्ति निष्पन्न ग्याय प्राप्त करने तथा गोपनीयताकी स्वतंत्रता आवागमन और निवास तथा सामाजिक सुरक्षाकी स्वतंत्रता काम करनेकी स्वतंत्रता शिक्षा पानेकी स्वतंत्रता राष्ट्रीयताकी स्वतंत्रता पूजाकी स्वतंत्रताका अधिकार भाषण देने तथा शान्तिपूर्वक सभा करनेकी स्वतंत्रता अपने दसरी सरकारम भाग लेना अधिकार मार्गदर्शक या राजकीय पत्र प्राप्त करनेका अधिकार राजनीतिक दलन मीगने और देनेका अधिकार तथा सम्पत्ति रखनेका अधिकार।

(देविता एन्डी मेन्स यूनाइटेड नेशंस १९५३ संस्करण पृष्ठ २२८)।

भी पूरा स्वतंत्रता या स्वाधीनता नहो हो सकती। केवल अपने व्यक्तित्वसे बचनहीन पूर्ण विवासका अधिकार ही एक ऐसा अधिकार है जो साधारण मनुष्योंको पूरारूपसे प्राप्त होना चाहिए। स्वतंत्रताका अधिकार इसी उद्देश्यकी प्राप्तिसे लिए है। किसी भी व्यक्तिको इस बातका अधिकार नहा है कि वह परिणामोंकी उपेक्षा करके जो मन में चाहे करता जाय।

नकारात्मक अर्थमें स्वतंत्रताका मतलब बचनसे अभावमें है। लेकिन इस परिभाषामें यह नही कहा गया है कि इस प्रकारकी स्वतंत्रता अच्छी है या बुरी। हम सन्धिय (positive) स्वतंत्रताकी आवश्यकता है जिसकी व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है कि वह आत्म विकास (self-development) का पूर्ण अवसर या मनुष्य के व्यक्तित्वकी निरन्तर अभिव्यक्तिका अवसर है। लास्की के अनुसार स्वतंत्रताका अर्थ विकास करनेकी शक्ति है अर्थात् वह शक्ति जिसके द्वारा हम अपनी पसन्दका ऐसा जीवन व्यतीत कर सकें जिन पर बाहरक लोग द्वारा कोई भी नियम लागू न हो (४९ ११)। स्वतंत्रता इस बातकी गारण्टी और दान दोनों है कि मनुष्यकी अपने कार्योंके सम्बन्धमें आत्म-निर्णयका पूरा अधिकार है।

स्वतंत्रताके सम्बन्धमें अ० एम० मिल के विचार

स्वतंत्रता राज्यकी अनेक परिभाषाएँ हैं और हर परिभाषामें नये-नये दृष्टिकोण मिलते हैं। जैसा कि जे० एम० मिल ने कहा है कि पुराने समयमें स्वतंत्रतासे मतलब शासकोंके अत्याचारोंसे सुरक्षा था। सारे राजनीतिक सगुणको घालू रखनेके लिए शासकोंकी चाह जितनी आवश्यकता रही हो लेकिन उनके स्वार्थोंकी जनताके हितका विरोधी ही माना जाता था। अतः जनताकी स्वतंत्रताका अर्थ शासकोंकी शक्तिको निरन्तित और सीमित रखना ही माना जाता था। शासकोंकी शक्तिका निरन्तित और सीमित करनेके लिए जनताके कुछ राजनीतिक अधिकारों या स्वतंत्रताओंको स्वीकार करवाया गया। कुछ एमो माने निर्दिष्टकी गया जो जनतान नहूँ करवायी जा सकती थीं और शासकोंकी शक्ति पर शब्दधानिक बंधन लगाय गया। कुछ समय पश्चात् यह अनुभव किया गया कि जनताके प्रतिनिधित्वका राज्यमें मजिस्ट्रेटोंके पक्ष पर नियुक्त किया जाना आवश्यक है। जब हमसे भी काम न चला तब शासक और जनताके बीच एकरूपता स्वी गयी और शासकोंकी आकांक्षाओंका जनताके हितों के दृष्टाओंके अनुरूप बनाया गया। इस प्रकार राज्यकी मता राष्ट्रकी शक्ति बन गयी और व्यावहारिक गृहतिथयके लिए उमका केन्द्रोत्तरण हुआ। संशयमें हम कह सकते हैं कि 'स्वतंत्रताका अर्थ सरकारका सीनियर बनना जाना ही हुआ गया।

परन्तु धीरे धीरे यह अनुभव किया गया कि स्वतंत्रता इतन पर भी मूल-भरोषिका ही रह गयी और शासक के अत्याचारका स्थान 'बहुमतके अत्याचार अर्थात् प्रचलित भावना या मतके अत्याचारोंसे ले लिया। यह अत्याचार व्यक्तिगत शासकोंके अत्याचार से भी अधिक व्यापक और पास्क सिद्ध हुआ। स्वतंत्रताएक बार पुनः प्रदानता प्राप्त

परन्तु प्रथम किया और इस प्रयत्नम एक नवीन प्रकारकी स्वतन्त्रताका जन्म हुआ जिसे व्यक्तिगत या व्यक्तिगत स्वतन्त्रता कहते हैं। अपने प्रसिद्ध निबन्ध 'स्वतन्त्रता पर' (On Liberty) में मिल् ने इस स्वतन्त्रता पर विचार रूपसे ध्यान दिया है। उनका ध्येय समाजके आत्ममगल व्यक्तिकी रक्षा करना—उसकी शक्ति और सन्तुष्टि भी रक्षा करना—था। व्यक्तिगत स्वतन्त्रताके इस रूपकी लास्की ने इस प्रकार परिभाषा की है 'जीवनके उन क्षणम स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करनेकी सुविधा जिनम मरे प्रयत्नाका प्रभाव मुख्यतः मृत पर ही पड़े (४७ १०६)।

२ स्वतन्त्रताके विभेद (Types of Liberty)

(क) प्राकृतिक स्वतन्त्रता (Natural Liberty) प्राकृतिक स्वतन्त्रताकी धारणा जगती जीवनकी स्वतन्त्रताका ही दूसरा नाम है। प्राकृतिक स्वतन्त्रताके समर्थनका बावजूद है कि मनुष्य प्राकृतिक ही स्वतन्त्र है और सम्यता ही बढ़ते हुए बाधनोंके लिए विभेदक है। यह हस्तों के इस कथनका समर्थन करते हैं कि मनुष्य जन्मस ता स्वतन्त्र है पर सब बड़ी बड़ बाधनाम जनका है। पर ये लोग यह मूल मानते हैं कि हस्तों ने प्राकृतिक व्यवस्था और नागरिक राज्यके पक्ष और विपक्ष सभी तर्कों पर विचार करने के पश्चात् स्वयं ही नागरिक राज्य (civil state) के पक्ष अपना निश्चय दिया है। मनुष्य प्राकृतिक-अवस्थाम अपनी धारीक प्रकृतियाका दास रहना है पर वही मनुष्य नागरिक राज्यम एक विचारवान् प्राणी बनकर न्याय और नैतिकताके नियमा का मानता है। 'सामाजिक सन्धिमे मनुष्य अपनी प्राकृतिक स्वाधीनताको और जा चाहे हथिया सेना अधिभारको छो देता है। इससे बदलम उस नागरिक स्वतन्त्रता और अपनी सम्पत्ति पर स्वाधिक मितता है (७६ पु० १ अ० ८)।' 'निरंकुश स्वतन्त्रता तो निरी अराजकताके ही समान है।

किर भी एक अर्थम प्राकृतिक स्वतन्त्रता की सार्थक व्याख्या की जा सकती है। इसका मतलब जीवनके उन क्षणम है जिनम व्यक्ति चाहता है कि उसके साथ उस समय सब हस्तानाम न किया जाय जब तक वह दूसरोंके मामलाम हस्तानाम न करे। बलन-करने और स्वानागतकी स्वतन्त्रता इसके उदाहरण हैं।

(ख) व्यक्तिगत स्वतन्त्रता (Personal Liberty) हर एक सामान्य मनुष्य

'हस्ता सामाजिक सन्धि (Social Contract) पहली पुस्तक अध्याय ८)। ए ज० कान्टिन (Political Theory पृष्ठ १८२) का कहना है कि हस्ता की पहली महत्त्वपूर्ण श्रेण 'सर्वोच्च दार्शनिक' और ईसाई धर्म-गुरुजनों हम पुरानी धारणाका समर्थन है कि अपनी प्रारम्भिक अवस्थाम लोग गुपी और भापी भापी अराजकताकी स्थितिम रहते थे। प्राकृतिक अवस्थास नागरिक-समाजकी स्थितिम आने पर कोई श्रेय प्रकट करनेके बजाय हस्ता राजनीतिक बाधन उचित मानत है क्योंकि कान्टिन के दार्शनिक 'मनुष्यको मनुष्य बनानेके लिए राज्यके संघटनम अपने संकी-साधिकाके विचार और विवेकपूर्ण नियंत्रणके अधीन ही रहना चाहिए।'

व्यक्तिगत स्वतंत्रता चाहता है। वह चाहता है कि वह अपनी इच्छा अनुसार रह सके। अपने इस अधिकारको वह बहुत अधिक महत्व देता है कि वह अपनी सक्रियता का उपयोग और अपने जीवनकी सामान्य-व्यवस्थाका निरन्तर स्वयं करे। वह चाहता है कि वह अपने मनचाहे ढंगसे अपनी जीविका कमाए और उसकी इस स्वतंत्रतामें अनावश्यक हस्तक्षेप न किया जाय। जीवनकाल अपने शासक तरीकामें अपनी सक्रियता और अपने व्यवसायमें हस्तक्षेप बहुत ही बरा मान्य होता है कि अधिकार जब उसकी सक्रियता सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक नतिकताके प्रतिबल नही हाना। अमेरिकामें मध्य निपथ विधिका ऐसे सागोत भी विराय किया जिनकी प्रवृत्ति विधि माननकी रही है क्योंकि इन व्यक्तिगत स्वतंत्रतामें अनुचित हस्तक्षेप माना गया। मारतवर्षमें भी मध्य-निपथ विधिको बहुतसे साग ताइते हैं—कि अधिकार वे साग जो समाजमें अधिकारी तौर पर अत्यन्त उच्च वर्गके हैं अथवा अत्यन्त निम्न वर्गके। कुछ साग इस ज्ञानूतका ताइतमें अपनी बर्दाई समजते हैं। इन्पेण्ड म हर मनुष्य अपने घरको अपना गढ़ मानता है जिसका अतिव्रमण कोई भी बाहरी व्यक्ति नही कर सकता। राज्यके अधिकारी भी उसके मकानमें तक ही प्रवेश कर सकते हैं जब ऐसा करने की अनुमति देण की विधि देती हो अथवा नही। कोई भी अधिकारी विधिके विपरीत उसके मकानमें जाकरदनी नही घुस सकता।

मिल व्यक्तिगत स्वतंत्रताका इतना अधिक महत्व देने है कि वह यहाँ तक कहता है कि एक व्यक्तिका अपने जीवनके साथ प्रयोग करनेकी स्वतंत्रता उस समय तक हानी चाहिए जब तक कि उसके बायोका दूसरा पर प्रत्यक्ष और निश्चित बरा प्रभाव न पड़े। मिल सा यहाँ तक तैयार है कि सागका कियूल उर्षी सम्मानि और पराबलोरीकी भी अनुमति दी जाय बाते कि वे इनके परिणाम भोगनेको तैयार रहें। पर यह व्यक्तिगत स्वतंत्रताके सिद्धान्तको परासाया पर पढ़या देना है।

मिल की ही भाँति बर्टेंड रयन भी व्यक्तिगत स्वतंत्रताको बहुत अधिक महत्व देते हैं। इसे वह सर्वोत्तम राजनीतिक सद्गुण मानते हैं। इस विचार प्रायः समझन करनेवासे विचारके व्यक्तिगत स्वतंत्रताको अन्य सभी राजनीतिक अधिकारोंकी अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं। क्योंकि उनकी रायमें एक मनुष्यके साम्यिक विकासके लिए मनाधिकार या पण प्राप्त करनेका अधिकार जितना जरूरी है उतना वहीं अधिक जरूरी विचारकी स्वतंत्रता तथा भाषण और विचार व्यक्त करने आदि की स्वतंत्रता है। दाणित अराजकताकारी विचार-प्रायः पीछे यही व्यक्तिगत स्वतंत्रताका दुष्कोण है। क्या न महत्वपूर्ण सागोंमें स्वतंत्रताका सागोंमें मनुष्यता का सागना है मनुष्यताके अधिकार और कर्तव्योंको समर्थन कर देना है। बाज दाणताकी सब कहा निगा की जाती है क्योंकि यह मनुष्य जीवनके समुच्च उद्देश्यको मल कर देनी है और मनुष्यका एक जीवन औरबार बना देनी है।

(ग) राष्ट्रीय स्वतंत्रता (National Liberty) वस ता राष्ट्रीयताकी प्रायः अपेक्षाएण बाधुनिक ही है फिर भी पुरान जमान में ही साग अपने वर्ग और

चा, यह दबाव निती अस्तित्वी आर स हो या सरकारकी आर न। व्यक्तिगत स्वतंत्रता भी इसमें शामिल है।

(घ) राजनीतिक स्वतंत्रता (Political Liberty) राजनीतिक स्वतंत्रता का तात्पर्य राज्यकी व्यवस्थामें व्यक्तिके भाग स है अथवा कमसे कम यह बात ठप करनेमें है कि राज्यकी अतिव दिस प्रकार काममें लायी जायगी। जैसा सास्की न कहा है कि राजनीतिक स्वतंत्रताका तात्पर्य राज्यक मामलाम सन्निह रहनेके अधिकार से है। विभिन्न तौरसे इसका अर्थ मताधिकार और सावजनिक पत्रके लिए सभे होनेके अधिकार आदिस है।

(ङ) आर्थिक स्वतंत्रता (Economic Liberty) ऊपर बताया गयी सभी प्रकारकी स्वतंत्रताओंके प्राप्त हो जाने पर भी जब तक जीवन पर नियंत्रण करनेवाली आर्थिक परिस्थितियां पर व्यक्तिका अधिकार नहीं है तब तक वह निराशास ही बना रहगा। पिछले बरीस अधिन जनताकी गुनामाके सम्बन्धमें बहुत कुछ निता और उगमें कहा अधिन कहा जा सता है। जब मबदूर अपना दगा पर विचार करता है तो उसके मस्तिष्कमें राजनीतिक स्वतंत्रता नागरिक स्वतंत्रता और सावधानिक स्वतंत्रतामें से किनीका अधिक महत्व नहीं मिनता। एक मबदूरके लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण आर्थिक स्वतंत्रता है। आर्थिक स्वतंत्रता मबदूर को उचित मबदूरी निताती है। यह मबदूराका पात्रक प्रतिशानता तथा अवम्बड उलोासे बघानी है। यही नही यह उत्पादन और व्यापारका उन व्यवस्थाभासा नो समाप्त कर देनी है जो मिन मानिस अपने स्वार्थ के लिए बनात है और जिनसे मबदूराका नतिक पत्रन होना है। यह एक ऐसी स्वतंत्रता है जिनसे एसी सुविधाजनक औद्योगिक पद्धतिका विकास होगा जिससे हर व्यक्ति बड़ा उत्पादन करेगा जिने उत्पादन करनेके लिए वह सबसे अधिक मान्य है और वह बड़ी पत्र करेगा जिसकी समावको ङकरत होगी। जब तक यह स्वतंत्रता नहीं मिन जाती तब तक यह नहीं कहा जा सता कि स्वतंत्रताकी समस्या पूरी तरहसे हल कर ली गयी है। टॉनी (Tawney) का कहना है कि आर्थिक स्वतंत्रताका अर्थ एसी आर्थिक विषयताके अभावसे है जिसका उपयोग आर्थिक दबावके रूपमें किया जा सके। सास्की क अनुसार इसका मतलब उद्योगमें सोहनवसे है। इसका अर्थ अनी अतिरु रोगी कमानेमें उचित महत्व प्राप्त करनेका अर्थ और उसको मुग ता न है। (४३ १८८)^१

^१ सी० ई० एम० जोड (C. E. M. Joad) न अपने सन आर्थिक युगम सारीयता (Liberty Today) में इस महत्त्वपूर्ण मुषको आर ध्यान आकृत्त किया है कि आर्थिक आरक आरम हम सारवाजनिक स्वतंत्रताकी सनि नही दे देता चाहिए जैसा कि कुछ मनाजशागी करत मान पड़त है। यह महत्त्व स्वीकार करने है कि आर्थिक सारजनिक अभाव स राजनीतिक स्वतंत्रता अस्तित्व का आता है पर साथ ही वह महत्त्व भी कहने है कि राजनीतिक स्वतंत्रता स्वयं अरन मानन महत्त्वपूर्ण है। इनका अर्थ है कि आर्थिक सारजनिक अभाव को हल करने के लिए परदूसरे अर्थ में महत्त्व निता

(३) नैतिक स्वतंत्रता (Moral Liberty) एक व्यक्तिव पास ऊपर यतापी गयी सभी प्रकारकी स्वतंत्रता होने पर भी यदि उसे नैतिक स्वतंत्रता नहीं प्राप्त है तो उसकी हालत अत्यन्त दयनीय हो जाती है। नैतिक दृष्टि से दास वह व्यक्ति है जो अपने विक्रम के विरुद्ध काम करने को विवश होता है। यदि मैं विश्व-व्यापी-अहं (universal I) को हर व्यक्तिम देखता हूँ यदि मैं स्वार्थ हीन हूँ और यदि प्रत्येक व्यक्तिके व्यक्तिवका सच्चा सम्मान मरे हुए म है तो मेरी नैतिक स्वतंत्रता अवश्य ही पूर्ण है। पर यदि इसके विपरीत मैं अपने विश्व-व्यापी अहंको अस्वाकार करने अपने व्यक्तिवका कुचलता रहता हूँ और बाण्ट के दायम अपने विवेककी स्वायत्त सक्तिका निरादर करता हूँ तो मैं अपने स्वभावके अधिकतम आकांक्षक अंग दास ही बना हुआ हूँ। नैतिक स्वतंत्रता उस पत्थरके समान है जो समुची भावको मजबूत बनाता है यद्यपि मंन्यावली जैसे विचारको ने इसकी उपयोगी है। नैतिक स्वतंत्रता के बिना सामाजिक और राजनीतिक स्वतंत्रताका कोई विचार मूल्य नहीं रह जाता। टी० एच० ग्रीन और बोसाके इस पर अधिक ध्यान देते हैं। आदर्शवाणी विचारक आमतौर पर और हीगेल विचार रूपसे मानते हैं कि इस प्रकारकी स्वतंत्रता राज्यम प्राप्त हो जाती है।

३ स्वतंत्रता और सत्ता (Liberty and Authority)

हमारी स्वाभाविक धारणा यह है कि स्वतंत्रता और सत्ता एक दूसरेसे भिन्न और पृथक् हैं। अठारवी सताब्दीके व्यक्तिवाद्मे भी यह धारणा व्यक्त होती थी जिसके अनुसार राज्यक सभी कामको व्यक्तिकी स्वतंत्रताम हस्तगत माना जाता था। पर यह दृष्टिकोण बिन्दुम गलत है। हमारा अनुभव हम यतनाता है कि स्वतंत्रताका बनाये रखनक लिए सत्ता किसी न किसी रूपम आवश्यक है। जैसा किनाया का कहना है स्वतंत्रताका अस्तित्व केवल नियंत्रणक कारण ही है। सुनिश्चित और सीमित स्वतंत्रता ही वह स्वतंत्रता है जो एक मनुष्यके लिए सम्भव है। हर व्यक्तिका यह स्वतंत्रता देना कि उसके मनम आ आये सो करे अराजकतावाद् है तथा 'प्राकृतिक' अवस्था की आर मीयता है। प्रोटेस्टेंट सुधारवाणी आन्दोलन (Protestant

इसको भूल जाय कि राजनीतिक स्वतंत्रता भी एक अच्छी चीज है और म मरी उक्ति है कि आधिक स्वतंत्रताके म प्राप्त हो गवनके कारण हम राजनीतिक स्वतंत्रताका तिरस्कार कर (पृ ३२)। सर्वाधिकारवाणी राज्या (totalitarian states) म व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर अनेक राक लगायी जाती हैं किन्तु यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि व्यक्तिके लिए राजनीतिक स्वतंत्रता कितनी मूल्यवान और प्रिय वस्तु होती है। राजनीतिक अधिकारक द्वारा ही—अपने संगठन और मजदूर-सद बनाने तथा गुप्त मननानके अधिकारके माध्यमके ही—अधिक वक्ता एकके वाद दूसरी मुक्ति मर्हनिषा प्राप्त हो सकती है।

Reformation) न पाप का सत्ताका ना समाप्त कर दिया पर उमर स्थान पर आर्चबिशप की सत्ताका कायम कर दिया। इतिहास हमें बतलाता है कि मनुष्य एक प्रकारकी सत्तासे अपनेको मक्त करने हैं परन्तु हमारे प्रकारकी सत्ताको अपने ऊपर नास्त है।

स्वतंत्रता और सत्ता एक दूसरेके विरोधी होनेके बजाय एक दूसरेके सम्पूरक और परिपूरक हैं (They supplement and complement each other)। बहुत पढ़ने ही लोगों ने कहा था 'जहाँ कोई विधि नहीं है वहाँ कोई स्वतंत्रता नहीं हो सकती। हॉग्विंग का ना यही तर्क बहुत है कि व्यक्ति जितनी ही अधिक स्वतंत्रता की इच्छा करेगा उतना ही अधिक उसे अपने आपको सत्ताके अधीन रखना होगा। यदि कोई मजानक बनना चाँहता है तो उस पक्ष से समीप सम्बन्ध जानना होगा यदि कोई अपने विचार दूसरा पर प्रकट करना चाहता है तो उसे कोई भाषा पानी होगा और भाषा के व्याकरणके नियमको जानना होगा। इतना कर लेनेके बाद ही वह स्वतंत्र होता है। सास्की का यह कथना बिल्कुल ठीक है कि स्वतंत्रता पर कुछ नियन्त्रण रहनेमें मनुष्य अधिक सुखी रहता है।

जता कि हॉग्विंग ने कहा है हममेंसे बहुतोंके लिए स्वतंत्रताका अर्थ विनायतता है और विनायतता ही सत्ता है। कारण यह है कि अधीनताके बिना स्वतंत्रता नहीं होती। एक मतिपत्रवा आनेसे अन्तर मस्तिष्ककी अधीनता मानना ही सत्ता है। अपने विषयका विनायक हमारे लिए अधिकारी व्यक्ति जाना है। हममेंसे बहुतोंके लिए स्वतंत्रताका अर्थ उन कारणोंसे अतिवृत्त होकर करनेका स्वतंत्रता है जिन कामों को हम सबने अस्वीकार कर सकते हैं। व्यक्ति अपनी स्वतंत्रताकी कीमत बचाना चाहती है और वह कीमत है उन मामलोंमें अधिकारीकी अधीनता मानना जिनमें वह स्वयं विनायक होनेका शक्य नहीं करता। इसलिए विनायतता स्वतंत्रताके समान ही माँग करती है। इस प्रकार स्वतंत्रता और सत्ता एक दूसरेके विरोधी होनेके बजाय अनिष्ट रूपमें आपस में सम्बन्धित है।

सत्ताके बारेमें साधारण तौर पर जो कुछ कहा गया है वह व्यक्ति और राज्यके पारस्परिक सम्बन्ध पर भी पूरी तरह लागू होता है। राज्य हमारे द्वारा अथवा काम करनेवाले नौकरकी भाँति है। राज्य जिन हानिकारक हमारी इच्छाका अङ्गीकारके साथ पूरा करता है उस हानिकारक हम स्वतंत्र हैं और हम राजनीतिक स्वतंत्रता मानते हैं।

स्वाधीनता और विधि (Liberty and Law) राजनीतिक क्षेत्रमें स्वतंत्रता और सत्ताको प्रतिष्ठा सम्बन्धित है उसका अर्थ इस अर्थमें सत्य है कि सत्ता स्वतंत्रताको विनाशित होनेके बजाय उसके लिए अनिवार्य है। विधि (Law) के बिना स्वतंत्रता ही नहीं हो सकती। रिचु (Riche) ने ठीक ही कहा है 'आप विनायकके लिए अत्यधिक अधिकारके रूपमें स्वतंत्रता विधिही ही देते हैं। वह ऐसा शब्द नहीं है जिसका अर्थ स्वतंत्रता के बिना स्वतंत्रता पर रहनेके (९ १३ १४०)।

शावजनिक हितमें कुछ नियंत्रण आवश्यक है पर इन नियंत्रणोंका उपयोग निष्पक्ष रूपसे होना चाहिए और समाजको उनके औचित्य पर विश्वास होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं होता तो स्वतंत्रता और सत्ता एक दूसरेके विरोधी हो जाते हैं। जब तक लोगोंमें यह भावना बनी रहती है कि विधि किसी व्यक्ति या वर्ग विधि देने लाभके लिए बाहरी दबाव डालनेका साधन है तब तक असन्तोष और दुःख बना रहगा तथा इसका परिणाम कभी-कभी विद्रोह भी हो सकता है। इसलिए यदि स्वतंत्रता और सत्तामें सामंजस्य स्थापित करना है तो यह आवश्यक है कि जिस सत्ताकी आज्ञा माननेको हमसे कहा जाय वह उचित और न्यायपूर्ण हो और उसकी आज्ञापालन लोग स्वेच्छासे करें। लोगों के सामने अपने द्वारा बनायी गयी विधि की अधीनता स्वतंत्रता ही है (६७ १९)। ग्रीन कहते हैं कि मनुष्य जब एसी विधिकी पालन करता है जिसको उसने स्वयं बनाया है और उसका पालन वह पूर्णता प्राप्त करनेके लिए करता है तब वह स्वतंत्र ही रहता है। सास्नी के इस बचनमें भी यही बात व्यक्त की गयी है कि विधि केवल आज्ञा ही नहीं है वरन् अधीनता भी है (५९ ७१)।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उसका तात्पर्य यह नहीं है कि प्रत्येक विधिको लागू करनेमें पहले उसके लिए सभी नागरिकोंकी स्वेच्छान्वय स्पष्ट स्वीकृति लेना आवश्यक है। यदि किसी व्यक्ति को किसी विधि की महत्ता और उपयोगिता पर व्यक्तिगत रूपसे विश्वास न हो तो भी उस विधिकी अवहत्या करने या उसे अधिकार नहीं है। ऐसे अधिकारको माननेका अर्थ अराजकताका बड़ावा देना होगा। हर्बर्ट स्पेंसर के राजनीतिक सिद्धान्त में यह सिद्ध कर दिया गया है कि प्रत्येक स्वीकृति (lateral consent) का सिद्धान्त अव्यावहारिक है क्योंकि सभी बातों पर राजसम्मति स्वीकृति प्राप्त नहीं की जा सकती। प्रत्येक स्वीकृति का अर्थ है बहुमत द्वारा अल्पमत पर दबाव डालना और इस प्रकार के दबावका राजनीतिके किसी भी स्वरूप सिद्धान्तमें उचित नहीं माना जा सकता है। प्रत्येक स्वीकृति को अव्यावहारिक मानकर ही कुछ लेखक व्यक्ति को राजनीतिक अधीनताका आधार मानते हैं तथा मिन की भांति कुछ अन्य लोगोंने समझतेका मार्ग ढूँढ निकाला है। जैसा कि बोसाये ने कहा है यदि हम सक्रिय स्वीकृति (active consent) की मदद न लें तो राजनीतिक अधिकार और स्वायत्त परस्पर विरोधी बने रहेंगे। सक्रिय स्वीकृति लोक-साम्मति (general will) का ही दूसरा नाम है। इस सिद्धान्त का संराजा वेदमन्त्रना है कि लोगोंमें इस भावनाका विकास हो कि राज्यका एक महान नित्य उद्देश्य है और राज्यकी इच्छा स्वयं व्यक्तिकी ही इच्छा है या स्वार्थरहित होकर गठ हो चुकी है। जब तक राज्यके कार्य शावजनिक हितमें होने हैं तब तक राज्यकी अवहत्या करनेवाले व्यक्ति को स्वतंत्र होनेके लिए बाध्य किया जा सकता है क्योंकि ऐसा करने में उस पर जो बल प्रयोग किया जाता है वह उसने स्वयं हितमें ही किया जाता है। सास्नी का यह विचार ठीक है कि नियंत्रण बुरा नहीं है हाँ स्वतंत्रता (invasion) बुरा है।

४ स्वतंत्रता और समानता (Liberty and Equality)

डू टोक्युवील (De Tocqueville) और लाड ऐक्टन (Lord Acton) जैसे स्वतंत्रतावे पुजारियाका विचार है कि स्वतंत्रता और समानता एक दूसरेके विरोधी हैं। यह दुष्प्रमाण गुलत मानुम हाना है। कासक नान्तिकारी मूल नहा थ कि उहनि स्वतंत्रता समानता और बराबरी का नारा बुलन्द किया था। यह तीनो सारद एक दूसरेके सम्बन्धित हैं। यदि स्वतंत्रताको अपना सक्षय प्राप्त करना है ता यह जरूरी है कि समानता भी किसी न किमी रूपम उसक साथ रह। एमा कहनेका अर्थ यह नहीं है कि समाज हर एक व्यक्तिके ऊपर एक निर्रोकि और यात्रिक समानता साद दे। प्रकृतिने सभी व्यक्तिपारो एक समान समय नहा बनाया है। समानताका अर्थ यह नहीं है कि सभी व्यक्तिपारु लिए एक ही म्यबहार^१ एक ही काम और एक ही पुरस्कार रह। समानताका मतलब है निष्पन्नता (impartiality) और मानपाठिबता (proportionality) अयात् बराबरवात्तोंम समानता और विषम कामिके व्यक्तिपारु म असमानता। इसका अर्थ है कि अर्थ सब बातके समान हान हर मरा हिन उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि किसी मी अर्थ व्यक्तिका हित हो सकता है (Rashdall)। इस सक्षयको प्रान्त करनेके लिए आवश्यक है कि किसी भी व्यक्ति या वग तथा समुदायके लिए किसी भी प्रकारके कोई विगण अधिचार या गुविधाए न हा। पकित के दुहूपयागके विरुद्ध विधिनी मुरगा सबके लिए समान रूपमे प्राप्त हा। इस बात का आवासन हो कि सत्ताका उपयोग व्यक्तिगत स्वापके लिए न होकर साबन्निब हिनके लिए ही होगा और सबको पमाप्त अवसर प्राप्त होगा।

अन्तिम बात सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। आजकल न जाने कितनी प्रतिभा भ्यय मण्ट हो रही है। एक आन्त समाजमें प्रतिभाको 'प्रोसाटनके अभावक कारण मण्ट नहीं हाना चाहिए (४७ १५४)। प्रत्येक व्यक्तिको इस बातका अवसर मिलना चाहिए कि वह अपने व्यक्तिपारुका पुरा-पुरा उपयोग कर सके। समाजम असमानताएँ रह सकती हैं पर सम्मताका नूननम आपार गवनेके लिए गुलतम हो जानब बा ही परिषमके अन्तम दिये जानेवान वेतन की विभिन्न दरें हो सकती हैं। फिर भी सम्पति की अत्यधिक असमानताएँ स्वातंत्रताका असम्भव बना देती हैं।

इस सक्षयका तात्पर्य यह होता है कि व्यक्तिकी स्वतंत्रता पर सोच समाजकर ही सामाजिक प्रतिबन्ध सगन जायें। राजनीतिक सम्बन्धाम बन्धम की यह उक्ति व्यापक तौर पर मानी जाती है कि प्रत्येक व्यक्तिपारु मूल्य एक इकाई है एक इकाई मे अधिक किसीका नहा। अर्थात् हर मनुष्य बराबर है। अनुभवसे यह स्पष्ट हा गया है कि वास्तविक आर्थिक समानताके बिना राजनायिक समानता अर्थ है। प्राउमर पोसर्ड

^१ लासकी क एन्ड म लिगा प्राप्त करनेके अधिकारका अर्थ यह नहीं है कि सभी नागरिकोंको एक ही सौदिक लिगा देनेका अधिकार है (४७ १५४)।

(Prof Pollard) ने हम सब्जाईको एक वाक्यम द्वा प्रसार वरुण किया है स्वतंत्रता की समस्याका केवल एक ही हल है यह हल समानताम ही निहित है। दुर्बल व्यक्ति की स्वतंत्रता बलवानके नियंत्रण पर और गरीबकी स्वतंत्रता धनवानके नियंत्रण पर निर्भर करती है प्रत्येक व्यक्तिको केवल इतनी ही स्वतंत्रता मिलनी चाहिए— और उससे अधिक कुछ नहीं—कि वह दूसरेके साथ वैसा ही व्यवहार करे जैसा व्यवहार वह चाहता है कि दूसरे साथ उसके साथ करें। इसी सामान्य आधारगिना पर स्वतंत्रता समानता और नतिकताका अस्तित्व है (७६ २४७-४८)।

सास्की जो इसी विचारके पोषक हैं लिखते हैं कि राजनीतिक समानता उस समय तक वास्तविक नहीं हो सकती जब तक उसके साथ वास्तविक आर्थिक समानता भी न हो। उहीवे अपने दारुण समानतासे तात्पर्य जीवनकी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्तिमें उस हद तक एकदमतासे है जिस हद तक उसे पर्याप्त माना जा सके (४७ १६०)। एक आर कुछ लोगोंके पास प्रचुर सम्पत्ति होना और दूसरी ओर अल्प सौभाग्य का भूतसे भरना उचित नहीं है। या तो राज्य सम्पत्ति पर अपना प्रभुत्व कायम करे या फिर सम्पत्ति ही राज्य पर अपना प्रभुत्व कायम करेगी (४७ १६२)। अधिक दक्षिणता उपयोग करनेवाली सत्ताका लोकतन्त्रीय नियंत्रणके अधीन होना चाहिए। यह अपेक्षित है कि प्रत्येक व्यक्तिके लिए एक निम्नतम मानक होना चाहिए और साथ ही एक उच्चतम मानदण्ड भी होना चाहिए जिसके ऊपर साधारणतया किसी भी व्यक्तिको उठने न दिया जाय। एक ओर किसी भी व्यक्ति का अधिक स्तर निर्धारित निम्नतम स्तरसे नीचा न हो और दूसरी ओर किसी भी व्यक्तिका स्तर निर्धारित उच्चतम स्तर से ऊँचा न हो।

एक अल्प विचारके लिए भी हम सास्की के श्रेणी हैं और वह विचार यह है कि यदि राष्ट्राव बीच सच्ची समानता सानी है तो सबसे पहले मजदूरी अर्थाधिक धोपित किया जाना चाहिए। इसके अर्थ हैं कि धार्मिक बनाये रखनेके लिए अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओंका निर्माण हो। जब एक राष्ट्र या कुछ राष्ट्रका एक मुठ संसारके कंधे माल पर एकाधिकार स्थापित कर सता है और जहाजराती धैर्य और विप्रेयी व्यापार पर अपना नियंत्रण कायम कर सता है तब अनेक राष्ट्राधी स्वतंत्रता नष्ट हो जाती है।

जहां तक भारतका सम्बन्ध है समानताके सिद्धान्तकी मांग है कि विंग जाति भाषा और प्रान्तके भेदोंका अन्तनी जाती हो सते समाप्त किया जाय। स्वतंत्रताके वां स्त्रियोंकी स्थितिमें बहुत कुछ सुधार हुआ है। व पुरुषोंके समान मजान कर सकती हैं और चुनावमें लड़ी हो सकती हैं। कुछ महिलाओंका दगाही प्रणामकीय मवात्राम भी स्थान दिया गया है। स्त्रियोंकी गिना कायम अवसर विवाह सम्पत्ति और उत्तराधिकारमें भी अधिकाधिक समान अवसर दिए जा रहे हैं। दलित वर्गके उत्थानके लिए भी बहुत कुछ किया जा रहा है। उनकी गिनाए विंग छात्र बुनियाद उधारताके साथ ही जा रही हैं और उनमें अनेक सौभाग्य गरीबी दण पर

नियन्त्रण किया जा रहा है। अद्युक्त प्रथा' अशुद्ध योगिन का जा चकी है परन्तु लोकमनक प्रबल समपनक अभावम इम विधिको कडाईमे लागू नक किया जा रहा है।

प्रान्तीय और भाग सम्बन्धी विभागको दूर करनेम भारत अधिक प्रगति नहीं कर रहा है। रायोंका पुनर्गठन बन्ग बुद्ध नायाके आधार पर हानक शरण मापाक आधार पर नये रायोंके निर्माणकी माग हान लगी है और कूटपग करनवाली बलिया का गली पग मिन गयी है। इस पर प्रबल देश भक्तिनी भावना ही विजय पा सकता है। इसका निराकरण अत्यन्त प्रतिपादिना-मूला रायकीय मेधात्राके अनिरिक्त काम के अन्य अवसरोंकी वृद्धि करके ना किया जा सकता है।

समानताके सिद्धान्त और प्राकृतिक असमानताकी साम्यविज्ञानम सामन्तस्य स्थापित करना समानताका लक्ष्य होना चाहिए।

५ स्वतन्त्रताका राजकीय नियमन (State Regulation of Liberty)

हम पटना ही कई बार कह चुके हैं प्रतिबन्ध हीन स्वतन्त्रता का बार्न भोविद्य नहा है क्योंकि कुछ भोगोका प्रतिबन्ध पटना स्वतन्त्रता मिलनका परिणाम दूसराकी स्वतन्त्रता का अपहरण होगा। इसस यह निष्कर्ष निकलना है कि स्वयं व्यक्तिगत हितम तथा समाजके हितम यह आवश्यक है कि स्वतन्त्रता पर कुछ प्रतिबन्ध लगाय जायें। अब हम एम प्रतिबन्ध पर विचार करण जा गाय द्वारा प्रयुक्त रूपम और समाज द्वारा परोक्ष रूपमे लगाय जाते हैं। इन प्रतिबन्धोंक उचित या अनुचित होना निश्चय हम इस सिद्धान्तमे कर सकत हैं कि राज्य द्वारा बल प्रयोग तथा नचित है जब बल व्यक्तिगत द्वारा नियं जानवाने और भी बुरे बल प्रयोगका संकेत है।

१. मानव रक्षाका अधिकार (The Right of Personal Security)

हर व्यक्तिका मानवताका अधिकार हाता है। उमे मार डालनेकी स्वतन्त्रता किसी भी व्यक्तिको नहा होती। अतः मानवताका अधिकार व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर सर्वम पटना प्रतिबन्ध है। जिसको यह अधिकार नहीं है कि वह मृत्यु पर हमला करे या मेरे शरीरका मतमाना उपयोग करे या मृत्यु स्वच्छापूर्वक खनन करन करे। मृत्यु अधिकार है कि मैं सशस्त्र रहूँ और अपना इच्छाने अनुसार काम करूँ बगैरे कि मेरे सामाजिक दूशरोंके द्वारा अधिकारमे हस्तक्षेप न हाता हो और सामाजिक व्यवस्थाम क्षतन न परता हो। इन सब बातोंका भाषणित राज्यम स्वाकार किया जा चुका है। दूसरों पर किये जानवाने आक्रमण पर वह बाध कितना हो मामूली कर' न हो विधि विचार करण।। यह मानवाने किया गया चरका भी हमला माना जा सकता है। हिया ब बल का एक विरुद्ध विधि हमारी रणा करती है। उदाहरणक विधि विचारों हैं मृत्यु शिखाये या मरिच्यम हमारे ऊपर बल प्रयोगकी घमेली दत्ता विधि हमरी भी मृत्युशर्त करती है। विधि मानव रक्षाका अधिकार स्वीकार करती है। जीवन मन्तरेम हाने पर विधि हम अनुमति नहीं है कि हम अपनी जीवन रक्षाके लिए

और अगल गमन हे तब तो यह और भी जरूरी है कि खुलकर विचार और विवाद हो ताकि लोग एक दूसरेसे सीप सकें। एमी हालतोमे विचार विवाद पर रोक लगाने ना अर्थ है इस बात का दावा करना कि हमस कभी कोई भूल हो ही नहीं सक्ती और अनुभव यह सिद्ध करता है कि कोई भी एसा परमसिद्ध नहीं है जिससे भूल न होती हा।

उनक तर्क देते हुए मिल का विचार है कि मनष्य जानि इतनी समझदार है कि वह सर्वेण मचाईका खुले दिलस स्वागत करेगी। व इस बात पर ध्यान नहीं देते कि साग अधिकतर अपना विषय तर्कके अनुसार न करके भावनाके वशीभूत हाकर करते हैं और मध्य समाजम भी कुछ प्रतिगत साग एसे हाते हैं जा अपनी स्वतंत्रताका उपयोग ठीक प्रकार नहीं कर सकत। अपन समय म प्रचलित हस्तगत न करनेके (laissez faire) सिद्धान्तकी भाति मिन भी यह मान लते हैं कि व्यक्तिगत हित विती न किसी प्रकार आन्वयजनक ढंगमे सामाजिक हितम बनल जाता है। वह इस साधारण अनुभवका भूल जाते हैं कि कभी-कभी सभ्यका सत्तल बनानेके लिए असहिष्णुता की अवस्था पार करनी पडती हे। एक उपयोगितावादी (utilitarian) होनेके नाते उहें पूण स्वतंत्रताकी बात करनेका कोई अधिकार नहा है उहें तो वास्तवम काम साधन (expediency) के दृष्टिकोणमे विचार करना चाहिए। इस सबमे यह स्पष्ट हो जाता है कि कोई भी समाज अमीमित विचार-स्वातंत्र्य नह दे सकता।

रेनन (Renan) विचार-स्वातंत्र्यका बहुत अधिक महत्व देते हैं। वह इसे सभी प्रकारकी धर्माग्रताका बहुत बडा हल मानते हैं। हौंजग का तर्क है कि विचार स्वातंत्र्य मनुष्यके विकासके लिए अनिवार्य है क्योंकि इमी स्वतंत्रता द्वारा मनुष्य विचार प्राप्त करके दार्शनिकी बननेका अवसर पाता है। उनका कहना है कि एक स्वस्य समाजमें सभी विचारोंका अपना महत्त्व सिद्ध करनेका अवसर दिया जाना चाहिए। प्राणियोंकी भीति विचाराम भी जीवनके लिए सपर्य और मर्वाधिक सबल व अस्तित्व का सिद्धान्त लागू होना है। विचारामे सपर्य होनेके बावु वही विचार टिकते हैं जा वास्तवम सबम अधिक सही और सबल होते हैं।

फिर भी सभी लोग मानते हैं कि स्वतंत्रतापूर्वक विचार प्रकट करनेकी भी सीमाए हैं। इन सीमाओंका निर्धारण समाज लोकमन द्वारा तथा राज्य अपमान जनक मस्य (libel) निन्दात्मक भाषण (slander) मानहानि (defamation) ईश्वर निन्दा (blasphemy) और राजद्रोह (sedition) आदिके सम्बन्धम बनी हुई विधियों द्वारा करता है। भाषण-स्वातंत्र्य पर बन्धा लगाने समय इस सामाज्य सिद्धान्तका पालन किया जाता है कि औचित्यकी सीमाके भीतर ही विचार प्रकट किए जाय और सामाजिक व्यवस्था तथा सावजनिक गणधार के विरती न हो।

अपमानजनक सत्तल और निन्दा भाषण (Libel and Slander) व्यक्ति की वैयक्तिक स्वतंत्रता पर हमला के वन शारीरिक ही नहीं होना। व्यक्तिकी मानसिक क्लेश पहुंचा कर भी उसकी स्वतंत्रता पर हमला किया जा सकता है। यह स्पष्ट है

कि इस प्रकारके अन्याय विधि हमारी रक्षा नहीं कर सकती क्योंकि इस प्रकारके बलाशक्त प्रमाण और परिमाण दाना ही इतने अनिश्चित रहते हैं कि विधि उन पर विचार नहीं कर सकती। फिर भी अपमानजनक सत्य व निम्न भाषणक विरुद्ध विधि व्यवस्था करने विधि व्यक्तिके मानकी रक्षा करती है। विधि यह स्वीकार करती है कि मान व्यक्तिकी एक पवित्र विधि है और वह अधिकतर अन्य व्यक्तियोंके मस्तिकमें रहता है। इसलिए जब एक व्यक्ति दूसरे पर झूठ ही आरोप लगाता है—चाह आरोप छोटा हो या बड़ा—या किसी अन्य प्रकारसे उसके चरित्र पर आक्षेप करता है तो उसे दण्ड दिया जाता है। कुछ देशोंमें किसी व्यक्तिको उसके पणके आयोग्य बहना या उसकी योग्यता पर सन्देह करना भी दण्डनीय है।

दण्डसे बचनेके लिए शकल इतना ही सिद्ध कर देना ही काफी नहीं है कि किसी व्यक्तिके विरुद्ध कही गयी बात सत्य है। जो आरोप लगाया जाय वह जनहितक उद्देश्यसे ही लगाया जाना चाहिए क्योंकि किसी व्यक्तिकी सत्य बात कहने पर भी उसी प्रकार दण्ड दिया जा सकता है जिस प्रकार झूठा आरोप लगाने पर।

अपमानजनक सत्य या निम्न भाषणक लिए क्षति-पूर्ति (damages) दिसात समय आराप लगानेवाले व्यक्तिक उद्देश्य और जिस व्यक्ति पर आराप लगाया गया हो उसकी प्रतिष्ठा और उसकी भावनाआका भी विचार किया जाता है। आश्चर्यजनक अंग्रेजी भाषी देशोंमें सत्य व बारम्बार विधि कुछ ऐसी है कि जब आराप सत्य भी होता है और उसका सावजनिक महत्त्व भी होता है तब भी आराप लगानेवालेका दण्ड दिया जा सकता है। सब कुछ विधिकी व्याख्या पर निर्भर करता है। पर साधारण नियम यह है कि अपमानजनक चाहे किसी एक व्यक्तिन किया हो या चाहे किसी समाचार पत्रने उसे तब तब दण्ड नहीं दिया जा सकता जब तक कि वह मौजूदा विधिके सिद्धान्तमें न आ जाय।

ईश्वर निन्दा (Blasphemy) या सामान्य सिद्धान्त अपमानजनक सत्य तथा निम्न भाषण पर लागू होने हैं वे ही धार्मिक और नैतिक प्रश्नोंके विवेचन पर भी लागू होने हैं। क्रिस्तन म ईश्वर निन्दाके मामले पर साधारण अंग्रेजीमें ही एक ग्यायाधीन और जुरी द्वारा विचार किया जाता है जिससे कि मामलकी अनतिक्रमता और धार्मिक छतरे पर देना सावजनिक जीवन और प्रचलित विचार-धाराके अनुसार विचार हो सके (२८ १५०)।

सरकारकी आलोचना करनेका अधिकार यद्यपि एक अर्थमें राज्य की स्वतंत्रता का अधिकार होता है तथा उदाहरण रक्षता है फिर भी स्वतंत्रता राजनीतिक सत्ताका सीमित ही रक्षता पाती है। सामान्य जवाब-तरफ करनेकी क्षमता रक्षता स्वतंत्रता की गारण्टी है। साक्षी के शासन जिस राज्यमें मस्तिकका अत्यधिक बलोरक्षण होता बही कभी भी स्वतंत्रता ही नहीं सकती (४९ ९५)। व्यवस्था ही सबसे बड़ी अन्धकार नहीं है और बिना हमारा अनुचित नहीं होता (४९ ७६)। मस्तिष्क कोई भी राज्य विधियोंका तोषा जाना सहन नहीं कर सकता और किसी भा व्यक्तिको इस

बातकी अनुमति नहीं दी जा सकती कि वह लोगोंको राज्यकी सत्ताकी अवज्ञा करनेको उबसाये और इस प्रकार राज्यकी सुरक्षाको घातकेमें डाले। हिंसामुक्त और अवज्ञा मूलक कार्य राजद्रोह और बिगड़ कानूनके भीतर आ जाते हैं। जब घतरा अप्रत्यक्ष और दूर हा तो राजनीतिज्ञता इस बातमें है कि सहनशीलतासे काम लिया जाय। सास्की तो यहाँ तक कहते हैं कि राजद्रोहके नाम पर विचार प्रकट करनेकी स्वतंत्रता पर लगाया जानवाला प्रत्येक प्रतिबंध समाजक हितके विपरीत है क्योंकि आज जो नास्तिकता है वही कल धार्मिक विश्वास बन जाता है अर्थात् कोई बात जो आज बुरी मानी जाती है कल अच्छी मानी जा सकती है। राजद्रोह या देगान्हाके मामलोंको कायपालिकाके ऊपर छाड़नेसे निश्चय ही अधिकारका दुस्प्रयोग हो सकता है। सास्की के प्रभावशाली दारुण कायपालिकाका काय असलियतमें न्यायका अभाव है (४९ १११)। मुझ जैसी विज्ञाप परिस्थितियोंमें स्वतंत्रता पर बिगड़ प्रतिबंध लगाया जाना उचित माना जा सकता है। पर सास्की का विश्वास है कि भाषण स्वातंत्र्यमें मुझक समय भी वही अधिकार निहित रहते हैं जो दार्शनिकतामें रहते हैं। उन्होंने दारुण यदि किसी व्यक्तिका जन्म रसल सावेत की भाँति विश्वास है कि मुझ हत्याना दूसरा नाम है तो उसना यह कतव्य है कि वह अपने इस विचारको प्रकट करे भये ही एसा करनेसे सत्ताकीन सरकारका धमुकिया पैदा हो (४९ १११)।

प्रसक्त स्वतंत्रता (Liberty of the Press) प्रसक्त सम्बन्धमें ब्रिटेन और फ्रांस तथा अधिकतर अन्य देशोंकी विधिवा दो बिल्कुल भिन्न काटिकी हैं। इन दोनोंमेंसे कौन सी—ब्रिटेनका या अन्य योरोपीय देशोंकी—पद्धति धष्ट है यह विचार प्रसक्त प्रश्न है। सॉई मेसजरीज के अनुसार ब्रिटेनमें प्रसक्त बिना पूर्व अनुमतिके छापनेकी स्वतंत्रता है बगाने कि प्रकाशक विधिके नतीज भोगनेके लिए तैयार रहे। प्रसक्त मामलों पर विचार करनेके लिए विज्ञाप अक्षतजें नहीं हैं। व्यक्तिगत नागरिकोंकी तुलनामें समाचार पत्रों पर कोई विशेष प्रतिबंध नहीं है।

फ्रांस तथा यारोपके अधिकतर देशोंमें न केवल प्रसक्त सम्बन्धित विज्ञाप विधियाँ हैं वरन् प्रसक्त अपराधों पर विचार करनेके लिए विज्ञाप अक्षतजें भी हैं। फ्रांसका शासन सिद्धान्त यह है कि सरकारको न केवल उन साधनोंका दण्ड देना चाहिए जो भाषण-स्वातंत्र्यकी सीमाका उल्लंघन करने हैं वरन् उसे लोकमतका सही दिशाओंमें संचालन भी करना चाहिए। यह इस सिद्धान्त पर आधारित है कि समाजस बचाव यथायथा धष्ट है।

ब्रिटेनमें प्रसक्त स्वतंत्रता जैसा कोई अधिकार कभी भी विधि द्वारा स्वीकार नहीं किया गया। यद्यपि प्रेस नियंत्रण (censorship) नहीं है पर राजद्रोह देगान्हा ईवरे निम्न आर्थिक कारणोंके कारण विधियाँ हैं और ये सब प्रसक्त स्वतंत्रताका सीमित करती हैं। इन परिस्थितियोंमें बहुधा यह मान लिया जाता है कि जुरी द्वारा मुझदमकी सुनवाई होनेसे वाद-विवादकी स्वतंत्रता मुर्दा तब रहती है। विद्यमान समयमें यह सोचना चाहे ब्रिटेन सही रहा हा पर वनमन मुझमें परिस्थिति यशत करने में उतन उद्ध बन नहीं

रह गया है। पहल उमानेम त्रिम बगत त्रुरा धुन जान य उम बगकी प्रवति सरकार क विरुद्ध प्रसना देनेका उक्तो या। पर वाजकन अधिकांश त्रुरी विचार और बा-विबा-की स्वतंत्रताके प्रती नहीं मान जान। इसलिए यह सम्भव है नि आज हमें उम पद्धतिको त्यागना पर जो पहल सभी व्यक्तिगत स्वतंत्रताकी रणक पी-र्षा उमम आयुम मुधार नहीं बिय जान।

व्यक्तिगत कार्य (Individual Action) पर मिन क विचार.

काय-स्वातंत्र्य (Liberty of Action) मिन न स्वतंत्रता पर लिखे गये अपने निबन्धन कवन विचार अनिच्छितकी स्वतंत्रताका ही समर्थन नह, किया है बल्कि उन्होंने काय करनेकी स्वतंत्रताका भी समर्थन किया है। मिन न मनुष्य के काय दो प्रकार क बताये हैं (१) आत्मरक (self regarding) और (२) समाजपरक (other regarding)। उनके अनुसार आत्मरक काय वे काय हैं जिनका सम्बन्ध कवन काम करनेवाले व्यक्तिम ही होता है तथा समाजपरक कार्य वे कार्य हैं जिनका असर काम करनेवाले व्यक्तिम अतावा अन्य लोगों पर भी पड़ता है। मिन का कहना है कि पहल प्रकारके कार्यमें किसी प्रकारका भी हस्तक्षेप नह होना चाहिए। यह काय किसी व्यक्तिकी निजी इच्छिम ही सम्बन्धित है। दूसरी काटि अपात् समाजपरक कार्यमें राज्य विधायक द्वारा और समाज साकमनक द्वारा हस्तक्षेप कर सकता है। यद्यपि एम भी मामल हान है जब दानमि स किसीका हस्तक्षेप करना उचित नहीं होता। दूसरे गणमि मिन एक धन म पून स्वरीनताका और दूसरे क्षत्रम सीमित सताका समर्थन करत है।

मनुष्यके कार्यके इस बिनाश्रनको बड़ी बड़ी आत्माबता की जा सकती है। कोई भी एसा मान्य नही है जिसक गण मनुष्यके कार्यका आत्मरक और समाजपरक दो भागाम बांटा जा सक। यदि समाजक जैविक सिद्धान्त (organic theory) में कोई संशय है तो यह कि व्यक्ति और समाजक हिन एक दूसरे पर आश्रित हैं। जो काय बिल्कुल निजी मान्य हान है उनका भी प्रभाव समाज पर कभी न कभी पड़ता ही है। मिन क अनुसार पञ्चनयबीं नारायणोरी जग्राधारी आनि व्यक्तिगत कार्य है बावत कि उनके फलस्वरुप कडरी अशायी नही दखती और व्यक्ति अवन कार्यमि या परिवारके प्रति अपने कर्तव्योंका पूरा करनेम लिपिन नहा पड़ना। सिद्धान्तके तीर पर आत्मरक और समाजपरक कार्यका यह अन्तर बाहू जिनका एक-सुगत धान पड़े व्यवहारन लिखन ही दखन-मे यीतों पर अभाव जान पड़गा। और यदि कुछ माननोंमें यह भद सही भी हो तो भी हम पर प्रान पुत्र सक्त है कि क्या व्यक्तिगत हिन और बिनासक लिए राज्य या समाजकी कार्य विम्बारी नहा है? क्या यह उचित है कि हम व्यक्तिगत बुरे मार्ग पर जानेके लिए कभी हूँ द' है? हम ह्य

बातम भिन्न से सहमत नही हैं कि प्रत्येक व्यक्ति स्वयं अपने हितको अच्छी तरह जानता है। हो सकता है कि व्यक्ति अपने वर्तमान सुखका पहिचान स्वयं सजस अच्छी तरह कर सके पर यह जरूरी नहीं है कि अपने भावी सुख या उस सुखको प्राप्त करने के साधनोंको परस भी वह अच्छी तरह कर सके।

इन स्पष्ट श्रुतियोंके हाते हुए भी यह मानना पड़गा कि मनुष्यके कार्योंम मित न जा मन् किया है वह ध्यावहारिक तौर पर बहुत महत्त्वपूर्ण है। यथा सम्भव समाजको ऐसे ही कार्योंका नियंत्रण करना चाहिए जिनका प्रत्यक्ष और निश्चित प्रभाव दूसरा पर पड़ता है। पर यह कोई अमिट नियम नहीं है। आजकलके असीमित कर्मकारीतन्त्र (bureaucracy) के जमानेम और ऐसे समयम जब कि लोग रायकी अप भक्ति म विश्वास करते हैं, मिस क सिद्धान्तको पुन जारदार सम्भोम दोहराया जाना चाहिए।

सामूहिक कार्य (Collective Action) सामूहिक कार्यकी स्वतन्त्रताम सावजनिक सभा करनेका अधिकार, संगठन करनेका अधिकार और बहिष्कार करने कृतताम करने और धरना देने अधिकार समिल है।

सावजनिक सभा करनेका अधिकार अल्पजयमम धरावे भीतर हानवाली सभाओंम कोई हस्तगप नही किया जाता। यह सभाएं पुलिसकी अनुमति निते बिना हो की जा सकती है पर खुली आम-मभाया पर पुलिस विधि लागू होती है। अपकी विधि एसा काई मन् नही मानती और वही एसी काई विधि नही है जिमम सावजनिक सभा करनेका अधिकार सभाके नात स्वीकार किया गया हा। सावजनिक सभा करने का अधिकार नागरिकों उष व्यक्तिगत अधिकारस प्राप्त किया गया है जिकके अनसार दशकी विधिका मानन हुए व्यक्तिका यह अधिकार प्राप्त है कि वह जहाँ चाह जाय और जा चाह कह। डाइसी (Dicey) का बहना सही है कि 'इंग्लैंडक मविधानका आधार व्यक्तिगत अधिकार है तथा इनका सबसे अच्छा उदाहरण सावजनिक सभाओं पर लागू हानवाण नियम है।

सम्भोमको व्यक्तिपाका मुश्क-मात्र माननवाल अपकी दृष्टिकापस अनेक कटिनाएवी पंदा हाता है। यह अधिक उपयुक्त हागा कि जिस प्रकार यादारीय सभों की विधि पद्धतियाँ सभाया और जूसीके सावजनिक (और प्राय राजनीतिक) मन्तरवका स्वीकार कर उनक तिए विधाय नियम बनायी है उसी प्रकार प्रिन्सकी पद्धति भी जुनुमों और सभायाक तिए विधाय नियम बनाकर इनका मन्तरव स्वीकार कर। साथ ही वर्तमान पद्धतिक पद्मम भी बहुत कुछ बहा ना सक्ता है। इणम लोग का दवी हुई भावनायाका प्रकट करनेका मौका मिलना है और मन्तरवकाकी निवायता और उनकी जाकीगाप्राया व्यक्त करनेका एक प्णटजामें मित जाता है तथा एक पणके बिच्छे दूसरे पणका समर्थन करनेक क्षमतेसे पुलिस अप जाती है। साधारणतया एक व्यक्ति को अपने विचार प्रकट करने देना कठिनायी ही है बसतों कि विचार प्रकट करन समय भाया संयमित रह। इसके अनिश्चित जैना रिक्ती ने बहा है

एक नागरिककी निष्ठाका यह उपाया अथ है कि उस एक दूसरेमें विपरीत अनेक प्रकारके विपार सुनना मित्रों वार्ते कि इन विचारका सारन-मान्य बनना परस्पर आलापना द्वारा या ताकतनिक गतिनिक गथाका द्वारा मिर पूनका मोहन न आजाय (६ - १४)।

महया मग्यनका अधिकाार (The Right of Association) व्यक्तिका ही हा तरह सम्प्राप्ति भा अधिकाार और बनन्य हात है। किती नी सस्यका राय क विरुद्ध युद्ध बनन या रायका सत्ताका क्यनका गुन प्रदान बननका अधिकाार नहा है। सम्प्राप्तिका अपन मन चात्र जितना भा स्वतन्त्रता बना न प्राप्त हा अन्तिम सत्ता हा राग्यन हायाम हा खनी है। जा मग्यन किमी एक राग्यका सामाजिका पार करन अथ रायाम भा फन जाता है और दूसर रायका नागरिका की निष्ठा जिहू प्राप्त हाती है व समय बीतन पर जायनिक सप्राय रायका अन्त करन एक अन्तरराष्ट्रीय राग्य बनानकी सप्या करत है। नकिन्म बाहू जा कुछ हा इनना सप्य है कि जायनिक रायका नाग्यो वा सपारा बनती हुइ सक्तिन विरुद्ध व्यक्तिन स्वतन्त्रताका रणा करना बाहिए और सपका आपसम समयम आनसे रायका बाहिए। जनी एक दुइ पुनियन जम सक्तिगानी सपका मस्य प है राग्यको यया-मन्त्रव मङ्गुर सपन राग्यो और पर सम्प्राप्ति बीच निापन रहना बाहिए।

आखरत कुछ भाग यह सत है कि मनुष्यका धार्मिक जीवन इनना जग्मि हा गया है कि सपके लिए उनका पय प्रग्यन करना बहित है। एनलिए ज्ञाननायिक सस्यप्राप्तिका मग्यन इन प्रकार किया जाना बाहिए कि वे इन ममस्यप्राप्तिका सुतसा सके और सजनायिक प्रतिनिधित्वका आधार तथा धार्मिक मान्यके मूय बन सके। उनका कहना है कि सप द्वारा कनी-कनी सगाय जानवान नियवकक बनाय प्रत्यन तथा हर समय सनवाना नियत्रा हाता बाहिए जा कि कवन व्यावसायिक सय ही प्रग्यन कर सकत है। साम्बा एक एनी प्रग्यनीका समयन करत है जिसमें एन सपके जग्मि स्वधिकाार (complex autonomy) को मान किया जाय और सप ही जिसम राग्य अन्त इन गवरा नी स्या द कि वहा एक अकेना अनिवाय संघ है या वही सार्वत्रिक सपका एवमात्र प्रतिनिधि है। उन्हीके सग्यमें 'राग्य मनुष्यों द्वारा बनाय जानवान अन्त सगायस एक सय है और व्यक्तिकी निष्ठा पर उसका कोइ सप्य अधिकाार नहा है। अनेस्ट बाकर का कहना है कि सक्तिन मय या समुपायक अन्तारायम बचाने लिए यह आवस्यक है कि सवनकी एक स्यात्र सामान्य स्यस्यक स्यम राग्य सपके पारस्परिक सम्बन्धा सप्य और उदरक सप्यके सम्बन्धों तथा अन्त और अन्त सम्प्राप्ति सम्बन्धि सप्य मानवस्य स्थापित करें। बयुतवा : निष्ठायक प्रति हन सप्य सक्तिन नी सप्य बना न हा जाय पर हम निदामत सत्ताक स्यम राग्य सपके अधिकाारता सुनाता नहा दे सकत।

बहिष्कार करने परना देने और हनान करनका अधिकाार अधिकाय अधिकाय राग्य बहिष्कारक सीमित प्रदायकी अनुदान देत है। बहिष्कार सामाजिक,

आर्थिक अथवा राजनीतिक कारणों से किया जाता है। यह मुख्यतः वर्तमान औद्योगिक सम्प्रदायों की देन है। जब केवल एक व्यक्ति या कुछ व्यक्ति बहिष्कार करते हैं तब कोई चिन्ताकी बात नहीं होती। पर जब कोई संघ या संस्था बड़े पैमाने पर बहिष्कार करती है तब सामाजिक नियमनकी आवश्यकता पड़ जाती है। साधारणतया राज्य बहिष्कारके मामलोंमें हस्तक्षेप नहीं करता क्योंकि औद्योगिक सम्प्रदायोंकी स्वतन्त्रता पर कड़ा प्रतिबन्ध लगानेमें (७२ ५७९) काफ़ी असुविधाएँ रहती हैं। भारतमें जब शिल्पक विरुद्ध बहिष्कारका प्रयोग एक राजनीतिक हथियारके रूपमें किया गया तब बहिष्कारके अधिकार पर बहुत अधिक प्रतिबन्ध लगा दिये गये थे।

अधिकांश राज्य सान्तिमय धरना देने पर आपत्ति नहीं करते। पर सान्तिमय धरने के असान्तिमय धरने में अन्तर्गमन जानेकी आशंका रहती है और एक मुख्यव्यक्ति राज्यका सान्तिमय और असान्तिमय धरनाओं में अन्तर्गमन करके पूर्ण सावधानतामें अन्तर करना पड़ता है। समझाना बुझाना तो उचित है पर जोर-जबर करना या कष्ट पहुँचाना उचित नहीं है। यह निर्णय करना हमारा आसान नहीं होता कि साक्षरता द्वारा निषिद्ध या अज्ञान वस्तुकी सराद रानके उद्घरणे किसी दुर्भाग्य सामने सट जाना अनुपयुक्त है या उचित है।

हड़ताल करनेका अधिकार भी हालमें ही स्वीकार किया गया है। साधारणतया यह स्वीकार किया जाता है कि जब झगड़ा तब करनेके अर्थ सब साधन विफल हो जाय तब हड़ताल ही एक प्रभावपूर्ण तरीका माना रह जाता है। किसीका सहानुभूतिमें की गयी हड़ताल और आम हड़ताल पर भिन्न भिन्न दृष्टि विचार किया जाता है। सास्त्री आम हड़तालके अधिकारका समर्थन करते हैं। उनका विश्वास है कि गम्भीर मामलोंमें आम हड़ताल द्वारा ही निष्क्रिय जनताका मजबूर बगने प्रति धरने उत्तरदायित्वकी याचिका ली जा सकती है। जो सरकार आम हड़तालकी घमरीका मुद्दा बना करती है वह इस कारण जनताके समर्थनकी हजदार नहीं हो जाती कि उसे घमरी ली गयी है (४९ १३३)।

औद्योगिक धर्म हड़ताल चाहे चिन्तनी ही उचित धरना है पर यह प्रायः सभी मानते हैं कि जन-सामर्थिकारियों (civil servants) पुत्रिण दान-कर्मचारियों रेल कर्मचारियों तथा लाइसेन्सके मामलेमें लगे अथवा साधारण हड़ताल करनेका अधिकार नहीं है।^१ इस बारेमें सास्त्री का विचार बिल्कुल भिन्न है। जन-सामर्थिकारी बवल सरकारका कर्मचारी ही नहीं है बल्कि वह एक नागरिक भी है (४९ १३८)। इस लिए सास्त्री का कहना है कि समाजका किसी भी हालतमें यह हज़र नहीं है कि वह अपनी सार्वजनिक मजबूरनी स्वतन्त्रताके अधिकार महसूस दे। हड़तालकी संस्था कम

^१ यही बात विद्यार्थी संघोंके सम्बन्धमें भी कही जा सकती है। विद्यार्थी जो भी विद्यार्थी हैं उन्हें असाधारण विद्यार्थी-संघ संस्थाओं द्वारा गुन्तनाया जाता चाहिए। अध्ययनके लक्ष्य और साक्षात्कारमें विद्यार्थियोंकी हड़ताल निरापेक्ष अनुपयुक्त है।

करनेके लिए साक्षात् वा सुझाव है कि राज्य आधारभूत धर्म और कामक धर्मोंके बाह्य एने नियम बनाव कि हर उद्योग और व्यवसायम भौतिक तथा मानसिक दृष्टि से परिस्वितियां काफी सुतोपजनक हा और हर उद्योग और व्यवसायको बाकी मात्राम स्वशासन भी प्राप्त हा।

४ धार्मिक विश्वास और व्यवहारकी स्वतंत्रता (Liberty of Religious Opinion and Practice) धार्मिक विश्वास और व्यवहारकी स्वतंत्रता एक आपुनिक अधिकार है। बीते जमानेमे राज्य और धर्म-संघ (church) म साहजितना शक्य रहा हा पर वनमान युगमे राज्य और धर्म-संघमे ही नहा एव ही राज्यके विभिन्न धर्मों और सम्प्रदायाम धर्रापूर्ण सम्यक् रहत है। हम रुसा क इस कथनमे सहमत है जो धर्म हमरे धर्मोंके प्रति सहिष्णु हा उनके साथ सहिष्णुताका व्यवहार सबसब करना चाहिए। जब तक उनके सिद्धान्त नागरिक बतव्याके विपरीत न हो जाव। (६७ पु० ४ व० ८)।

ईसाई धर्म सत्राक माय आन्धरासे भिन्न भाग अपनाता नास्तिकता है और उसके लिए धर्मसंघ ही धार्मिक तरीक का षट्ट द करता है। राज्य उस सम्यक् म कुछ नहीं करता। पर जब कना जान-बूझ कर किसी धर्म या सम्प्रदायके विरुद्ध एसा प्रचार किया जाता है जिससे सर्वजनिक व्यवस्थाका उत्पन्न हा सकता है ता राज्य हस्तक्षेप करता है और ईश्वर निन्दा सम्बन्धी विधि लागू हाती है। धर्म-संघ एक्किरु (voluntary) संगठन है इसलिये उस पर बहु अनक बंधन लागू हात है जा दूसरे एक्किरु संगठना पर लागू हात है। धर्म-संघ पुद्ध नहा धृष्ट सफा टंकस नहा सगा सक्ता तथा सोभारो यने नहा बना सक्ता। उस लाकारा बिगह या गृह पुद्धके लिए भट्टकान मा अनैतिक कार्याका प्रासाहित करनेका अधिकार नहा है। दूसरे धर्मों मे नागरिक बतव्याके विपरीत आचरण करनेका उस अधिकार नहा है।

इसके साथ ही साथ अपनी विद्यय स्थितिक कारण धर्म-संघ (church) का कुछ ऐसे विद्यय अधिकार प्राप्त है जा अन्य एक्किरु संगठनाका प्राप्त नहा हात। धर्म संघ एव बहुत बड़ा सामाजिक आकाषणताको पूर्य करता है और सामाजिक उन्नयन की नैतिकता उत्पन्न करता है। अतः सर्वोत्तम रूपमे धर्म-संघ एक ऐसे नायना और आगरी दमना उत्पन्न करता है जिसरी राज्यका आकाषणता तो रक्षती है पर जिसे राज्य स्वय उत्पन्न नहा कर पाता (ए० सा० लिग्गले)। बराकि धर्म-संघ हमने आकाषणक बाव करता है अतएव यह आकाषणक है कि राज्य उसकी रक्षा करे और उसे प्रासाहित करे। अधिकार दानमे अनेक प्रकारके उत्पन्नोके विरुद्ध धार्मिक समाजका सुरक्षा प्रदान को जाती है। राज्य धर्म-नुबभाका अपन निरीक्षणमे बिबाह संस्कार कराने देता है। कुछ देशोंमे राज्य धर्म गुरुकारो कुछ नागरिक बतव्य से बरी रक्षता है बत जूरी बनना और मुद्धम भाग सना। बहु-धर्म स्थानोंमे पूजा या उपासनाकी इमारतों पर टंकस नहा लपाया जाता। गुद्ध धर्म सत्राका प्रतिष्ठि उन धर्म मानकर राज्य द्वारा पूरी या काफी महादया दी जाती है जिसका समर्थन किसी प्रकार भी नहा किया

जा सकता। अग्रणी जमानेमें भारतमें इंग्लैण्डके चक्का इसी प्रकार की सहायता इस आधार पर दी जाती थी कि यह भारतमें रहनेवाले अथवा वर्मचारिया नागरिकों और सन्धिवाले आध्यात्मिक हितोपी रक्षा करता है।

आज दिन भारत का दावा है कि यह एक धर्म निरपेक्ष राज्य है जहाँ राज्यका अपना कोई धर्म नहीं है और जहाँ हरव्यक्तिकी स्वतन्त्रता है कि वह अपनी धर्मकी मान उसके अनूकूल आचरण करे और उसका प्रचार करे। पर व्यवहारमें कुछ विद्वयी लोग और गुट इस स्वतन्त्रताको नियमित करनेकी कोशिश करते हैं। किसी एक धर्म विनापके धार्मिक कर्तव्योंका राजनीय प्रयत्न उनकी बाधित की जा रही है। एक धर्म निरपेक्ष राज्यका सभी प्रकारके धार्मिक और जातीय राज-पाठ मुक्त होना चाहिए। यदि किसी उत्सवके अवसर पर धार्मिक क्रियाएँ या प्राधनाएँ की जाती हैं तो उसके लिए सभी सम्बन्धित धार्मिक नेताओंसे पहले स्वीकृति लनी चाहिए। विशिष्ट रूपसे पाई साम्प्रदायिक बात नहीं होनी चाहिए और न कोई ऐसे नाम होने दन चाहिए जो किसी वर्गके धार्मिक विचारों के विपरीत हों।

विवेक या अन्तरात्माका अधिकार (The Right of Conscience) सामाजिक शिष्टता और व्यवस्थाको मानते हुए किसी भी धार्मिक विचारको मानने और उस पर अमल करनेका अधिकार जगजग सब की मान लिया गया है पर विवेकके अधिकारको अभी तक ऐसी मान्यता नहीं मिली है। इस मान्यताके गगनमें अनेक कठिनाइयाँ हैं। विवेक व्यक्तिकी अन्तरात्माकी द्विती हुई आवाज है और वह उस अन्तरामाने स्वामीके अनिश्चित और निमोना नहीं मनायी दे सकती। यदि हर एकका अपने विवेकका आगमन करनेकी आजादी दे दी जाय तो सामाजिक व्यवस्था खोपट्टा हो जाय। सभीका विवेक एक ही बात नहीं कहता। इसलिए राजनीतिक मामलोंमें राज्य जमी एक सामूहिक सत्ताकी उभरत पड़ती है जो समाजकी सामान्य सम्मतिना प्रतिनिधित्व कर सके और जगजग नाम यह नियम करता है कि कौन सी बात सामान्य हितमें है और कौन-सी नहीं। व्यक्ति अपने विवेक अनुसार दृष्टना ही नियम कर सकता है कि कौन-सी बात उससे निम्न स्थिति है और कौन-सी ही हितकर नहीं है और उसका इस स्वतन्त्रतामें पृथ्वीकी कोई भी शक्ति हस्तगत नहीं कर सकती। पर यदि व्यक्तिके कार्य सामाजिकताकी सुरक्षा और बन्धनके विपरीत हों तो राज्य हस्तगत कर सकता है और उसे अवश्य हस्तगत करना चाहिए।

बहुतसे सामूहिक राज्य पड़के प्रति आत्मिक विरोध रखनेवालाको इन बातकी अनुमति दे देते हैं कि वह मुद्रम भाग न लें। इन लोगोंका मुद्रम भाग न लेनी छूट काय साधनता (expediency) के विचारसे दी जाती है न कि इन आधार पर कि हर नागरिकका अपने विवेकके अनुसार काम करनेकी स्वातन्त्रता मिलनी चाहिए—विवेक उसे चाह जहाँ से जाय।

५ राज्यका प्रतिरोध करनेका अधिकार (The 'Right' to Resist the State) राज्यका प्रतिरोध करनेका अधिकार विवेकके अधिकारना ही परिणाम

है। इस पर विचार करते समय हम टी० एच० सीन की पुस्तक 'राजनैतिक दायित्व के सिद्धांत' (Principles of Political Obligation Section H) में प्रकट किये गए उनके विचारोंकी चर्चा करेंगे। निम्नलिखित व्यक्तिको स्वयं इस बातकी परामर्श करनी चाहिए कि कोई विधि सामाजिक हितमें है या नहीं। यदि उसका निषेध यह है कि कोई विधि जनहितमें नहीं है तब भी उस पर कानूनका पालन अवश्य करना चाहिए। विनायक एक एक देशमें जहाँ सामाजिक सरकार कायम है और जहाँ बिना अधिकार कठिनाईके मनचाहा परिवर्तन करवाने के लिए अधिक या अधिकाधिक साधन उपलब्ध हों। जब तक वेरा विधियाँ हटायी या बनी न जायें तब तक व्यक्तिको उनका पालन करना चाहिए क्योंकि ऐसा करना उसका सामाजिक कर्तव्य है। पर जहाँ बुरी विधियाँ बन्द करने या न करनेका कोई अधिकाधिक साधन नहीं है या जहाँ सरकार इतनी भ्रष्ट है कि वह सामाजिक हितको अपने ही व्यक्तिगत स्वार्थकी अधिक महत्त्व देती है या जहाँ सरकार नागरिक अधिकारकी सीमाका उल्लंघन करना है वगैरे व्यक्तिको कर्तव्य है कि वह सरकारका प्रतिरोध करे। एक गम्भीर मामला में प्रतिरोध अधिकार यह है नू एन दु ग या कर्तव्य हो जाता है।

सरकारका प्रतिरोध करनेमें वह एक अल्प नागरिकका विचार ही पर यदि वह नेता है जिम्मेदारिता काता पर विचार करना चाहिए —

(क) क्या हम अधिकार परिवर्तन करनेके लिए सभी सम्भव अधिकाधिक उपायोंका अवलम्बन कर चुके ?

(ख) जिन कारणोंसे सरकारका प्रतिरोध करनेकी कृता जा रहा है क्या वे सोंग स्वयं भी यह महसूस करते हैं कि सरकारने उनके साथ अत्याचार किया है या केवल जन की भावनाओंकी उभारना जा रहा है ? या अत्याचार सरकारने किया है क्या यह इतना गम्भीर है कि उसका लिए सरकारका प्रतिरोध किया जाय ? क्या जनता उन कारणों का भली भाँति समझती है जिनके आधार पर सरकारका प्रतिरोध करना है ?

(ग) जिन लोगोंके बीच हम काम करना है उनका धर्म और उनकी मनोस्थिति कैसी है ? क्या वे नागरिक और जमीनी हो उत्तमिण हूँ मानवान साथ हैं या वे ऐसे विकर्ण और गणना हैं कि यह समझते हैं कि उन्हें क्या और क्या सब जाना चाहिए ? क्योंकि एक बार प्रतिरोध जाहिर हो जाये वह गहरा क्या जा सकता कि उसका अर्थ क्या और क्यों होगा।

(घ) क्या धर्म क्या है ? क्या यह अपने वह भावों अपने कारणों मुक्त कर दिया है। क्या वे सामाजिक हीनता मार्केटिक जिन्की प्रेरणा है काम कर रहा ?

(ङ) परिणामोंसे सम्झनामें सम्झना क्या है ? क्या धर्मकासा स्थिति क्यासा स्थिति भी बुरी होगी ? क्या विधि बन्द होनेसे अराजकता फैल जायेगी ?

हीनता अवलम्बन करने में कि विचारक समय इस प्रकारके प्रश्नों पर विचार और पर विचार न । किना जा सकता। किना किना किना काम करने किना के है,

विचार या मननके नहीं। और इसके अतिरिक्त अनेक मामलाम परिणाम ही बतलाता है कि वह ईश्याय सावजनिक हितम था या नहीं। एसा भी हा सक्ता है कि अनेक बिपल प्रयासों के बाद ही किसी अच्छे कायम सफलता मिल। अतमतवाः दलको प्रतिरोध करनेका अधिकार इसलिये नहीं मिल सकता कि वह बहुमतम है। प्रायः असहाय अल्पमतवा ही यह अधिकार होता है कि वह सरकारका प्रतिरोध करे भल ही सफलता की आशा न हो।

इन सब बातों पर विचार करनेके बाद घीन हम व्यावहारिक नतीजों पर पहुँचते हैं कि व्यक्ति चाहे जिस पक्षको माने यदि उसका चरित्र अच्छा है तो अवश्य हा उममे हानिकी कपेटा लाभ ही अधिक हुआ। साधारणतया सर्वोत्तम कोटिके चरित्रमे सर्वोत्तम कानिके परिणामोंकी भी आशा की जाती है देखनम भन् ही लक्षण इसके विपरीत हों।

६ दण्ड देनेका र ज्याधिकार (The Right of the State to Punish) प्रारम्भिक समयम अध्यायना प्रतिवार या तो स्वयं यह पुरुष करता था त्रिममे साथ अध्याय किया जाता था या उसकी जाति या कबीला। पर आजकल सभी देशोंमे यह माना जाता है कि अध्यायी या अपराधीका दण्ड देना राज्यका काय है भले ही हर एक अपराधीको दण्ड देना राज्यके लिए बुद्धिमत्ता की बात न हो। या तो ऐसा लगता है कि किसीको दण्ड देना उसकी स्वतन्त्रता पर कायन है।

यह बात कई बार कही जा चुकी है कि व्यक्तिका स्वतन्त्र जीवन बितानेका अधिकार इस बात पर निर्भर करता है कि समाजका सन्त्य हीनकी उसमें कितनी योग्यता है। एक अपराधी समाज विरोधी वृत्तियाका प्रदान करता है इसलिये यह उचित है कि समाज उममे स्वतन्त्र जीवन बितानेक अधिकारमें हस्तगत करे। समाजके कल्याणके लिए यह आवश्यक है कि उसने प्रत्येक सन्त्यरी असामाजिक वृत्तियोंका दमन किया जाय। अध्याय समाज एक बार फिर जगती जीवनकी अव्यवस्था और भरावकता की स्थितिम पहुँच जायगा।

सैदान्त्रिक स्तर पर दण्डका औचित्य अनेक दृष्टिकानोंसे सिद्ध किया गया है। दण्ड देनेके सिद्धान्तोंको इन वर्गोंमें बाँटा जा सकता है

(१) प्रतिशोधार्थक सिद्धान्त (retributive theory)

(२) निरोधार्थक सिद्धान्त (preventive or deterrent theory) और

(३) गुणार-मूलक सिद्धान्त (reformatory theory)।

इनम से पहल सिद्धान्तका नाम कुछ असंगत है। एगसे प्रतिशोध या बन्तेकी भावना व्यक्त होती है जबकि वास्तवम यह एगकी सवग अधिक प्राचीन धारणा है। प्राचीन दण्डधर्म निवारण इस सम्बन्धमें 'जैन को शीला या शूनके बन्ध मूल की नीति पर अमा करते थे। यह न्यायका आदिम मान्य था। त्रितीय सिद्धान्त नूतनान हुआ हो उमने दण्डमे उमने अधिक मानवा उमे हू न था।

इन सिद्धान्तम अथा कि बोगाके ने एगनेग किया है न बतान्या है (१) दण्डको

व्यक्तिगत प्रतिगोपका हूँ मान लेना और (२) यह दावा कि दण्ड अन्तर्गत के बराबर हो। व्यक्तिगत पारस्परिक सम्बन्ध और राष्ट्रों आपसी सम्बन्ध भी प्रतिगोपनी भावना समान आती है पर व्यक्ति और राष्ट्र सम्बन्ध यह भावना समान नही आता। चीन ने दण्ड-अन्तर्गता पर विचार करने हुए कहा है कि दण्ड और प्रतिगोपना कोई सम्बन्ध नही है। पर फ्रिच और स्टीफन (Leslie Stephen) इन सम्बन्धको मानते हैं। स्टीफन दण्डको विधि द्वारा स्थापित प्रतिगोप मानते हैं। चीन के धारणाका विरोध यह कहकर करते हैं कि दण्डका आधार ही व्यक्तिगत प्रतिगोपका समाप्त करना है। ऐस समाजमें जहां व्यक्तिगत प्रतिगोपका व्यापक विद्यमान हो ही नहीं सकते। दूसरी तरफ दण्ड इन तत्वको पकड़ करता है कि अन्तर्गत न उन अधिकार या अधिकारोंका उल्लंघन किया है जिन्हें समाज स्थापित कर चुका है। इस प्रकार समाज विरोधी कामका स्वाभाविक परिणाम है। व्यक्तिगत विरोधी प्रति अधिकारोंकी एक ठमी व्यवस्था की अवहेलना करती है जिसकी रक्षा करना राज्यने प्रतिगोपना मुख्य लक्ष्य है और जिसे समाज सम्भालना ही व्यक्तिगत लिए आवश्यक समझता है। दर्जा लिए अन्तर्गती को दण्ड देनेका अधिकार है। कोई भी व्यक्ति समाज पर अपनी उंगली रखकर यह भावना नही कर सकता कि उंगली नहीं जयेगी। इसी प्रकार यह समाजकी ऐसी व्यवस्था—जिसे व्यवस्थाका वह स्वयं एक अंग है—को भंग करके इस बातकी याचना नही कर सकता कि समाज उनके विरुद्ध कोई काम नही उठायेगा। अन्तर्गतीका निमित्त जोक करनेके लिए दण्ड एक प्रभावशाली तरीका है। पाठ्य साधक ही यह मने जीवनको अपना सकता है। इस प्रकार दण्ड व्यक्तिकी स्वच्छताकी ही पुति है। यह अन्तर्गतीकी अपनी दृष्टि ही है जो उन सामाजिक व्यवस्थाकी प्रतिगोपना निहित है जिसका वह स्वयं एक अंग है और उसकी वह रक्षा ही उसे दण्डके द्वारा वापस मिलती है। दण्ड व्यक्तिकी अन्तर्गता (recalcitrant will) का उसकी वास्तविक इच्छा (real will) द्वारा सुधार है।

दूसरी बुझाईने धारण हम यह बात समझना चाहिए कि राष्ट्रके पाम एका को प्राप्त नही है जिसमें वह दण्डकी पीछा या अन्तर्गतीकी नैतिक गुणोंको आपसमें मने। तब तब तबका निर्णय निरन्तर नही किया जा सकता उनके अनुपप दण्डकी व्यवस्था का ही जा सकता है? क्या कि प्राप्त ने कहा है कि राज्य दण्डकी पीछा और अन्तर्गतीकी नैतिक अधमताके बीच अनुगत निर्णय कर सके तो नहीका यह होगा कि दण्ड अन्तर्गतीके लिए एक निरन्तर दण्ड व्यवस्था करती होगी। इसका धर्म होगा दण्डके सभी सामान्य नियमों का समाप्ति (२० १९१)।

एक सिद्धान्तका मुख्य लक्ष्य यह है कि हमें अन्तर्गती पर ही ध्यान देनेका करना है। हमने विनिगट निराधारक सिद्धान्तमें सभी अन्तर्गतीको ध्यानमें रखकर दण्ड का आका है और एका तरफ वास्तविक तत्वोंके सभी सम्बन्धको उल्लंघन देना है। जिस सिद्धान्त पर हम विचार कर रहे हैं—हमें दण्ड समाजका स्वयं समझना

साधन है। समाज अपनी रक्षाके लिए अपराधीको दण्ड देकर अपनी शक्तिका प्रदर्शन करता है।

द्वितीय सिद्धान्तकी सबसे बड़ी त्रुटि यह है कि इसमें दामाकी मुक्तिसंगत स्थान नहीं दिया गया है। जसा कि राशदाल (Rashdall) ने कहा है कि रोष (resentment) और दामा दोनों ही सामाजिक बन्ध्याणके साधन हैं और दोनोंकी मात्रा सामाजिक हितके ही आधार पर तय की जानी है। इस सिद्धान्तमें और निरोधारमक सिद्धान्तमें एक दूसरी त्रुटि यह है कि इसमें समाज द्वारा किये जानेवाले निरोधको ही महत्त्व दिया गया है और व्यक्ति द्वारा किये जानेवाले आत्म-निरोध (self prevention) को भुला दिया गया है पर दण्ड-व्यवस्थामें दोनों ही होने चाहिए।

निरोधारमक सिद्धान्त में सिद्धान्त पर धीन और योमाके न विस्तारपूर्वक विचार किया है। इनके अनुसार किसी दण्ड व्यवस्थामें प्रतिगोप निरोध और सुधार सीनोंके साथ ता होने चाहिए लेकिन इन्होंने निरोध पर अधिक बल दिया है। इस सिद्धान्तके अनुसार दण्डका मुख्य उद्देश्य दूसरे सम्भावित अपराधियोंको अपराधसे विमुक्त करना ही है। धीन के कारणसे किसी राज्यका दण्ड देनेका उद्देश्य अपराधीको पीड़ा पहुँचानेके लिए ही पीड़ा पहुँचाना नहीं है और न व्यक्तिगत रूपमें अपने उस अपराधीको अपराध करनेसे रोकना है बल्कि उस अपराधके साथ एसी पीड़ाका सम्बन्ध जोड़ देना है कि अन्य लोग उस पीड़ाके भयसे अपराध करना साहस न करें (२० १०२)। दूसरे कारणमें समाजके सामने एक भयप्रद उन्माहरण रचना ही दण्डका उद्देश्य है। जे बेचम इमीलिए सावजनिय स्थानमें दण्ड देना समझन करते थे किम उसका प्रभाव देखनेवाला पर भी पर। काली समय तक दण्ड देनेकी इस धारणाको माना गया है। यद्यपि अब इसका प्रभाव कम होना जा रहा है। आजकल भी जब अपराधीकी किसी मामलमें एसी बड़ी सजा देना उन्नी समझने हैं किमसे कि नय साया पर अतर पड़े तय बहु निरोधारमन दण्ड दे देते हैं। निम्नोद्देश्य एसे दण्डमें अय सायाको एक बसावनी मित जाती है किमन कि वे ऐसा अपराध न करें। पर यह दण्डका मुख्य उद्देश्य नहीं बल्कि गौण लक्ष्य है।

हम धीन के इस तर्कको माननेको तयार नहीं हैं कि दण्डका मुख्य उद्देश्य जनता के मनमें किसी अपराधके विरुद्ध दण्डका आतंक पैदा करना है ताकि आगे एसे अपराधों का रोकना जा सके। यदि हम इसका मान लें तो इसके माध्यम यह हास कि किना माननी गुणा इस यालग नही नारी जायगी कि उगत समाजको क्या और रिकनी हानि पहुँची बल्कि उगतानि निन्बय इस आधार पर हागा कि उत अपराधका रोकनेके लिए जनताके मनमें उसका प्रति किना आतंक उत्पन्न करना आवश्यक है। उन्माहरणमें हमने अर्थ यह हास कि अन्त प्रोत्तारी या ह्यास अपराधको बसाव सावनि-गन्धपी अपराध अधिक हान सगे तो दीवर्तने सामान्य प्रोत्तारीके अपराधको अगेना अधिा करनेके लिए दिया जायगा ताकि एसे एक तर्कहीन व्यवस्था होगी। अपराधका समाप्तताका निरंतर उग अधिराणी मन्ताय किया

जाना है जिसका उन्मथन किया गया है। चीन यह क्या मान लन है कि समाजम
 लमे व्यक्ति है जो भविष्यमें हम प्रसारका अपराध करेगा। अनिष्ट निरोधका विचार
 मुख्य न मानकर गौण माना जाना चाहिए। निराश भावनाको गौण स्थान देनेका
 दूसरा व्यावहारिक कारण यह है कि यदि 'साधुधीनता' दण्ड हम उद्देश्यम देना होगा
 कि उद्यम एक का दण्ड देकर वह अन्य लोगों को सामन आतङ्कजनक आह्वरण रन तो
 यह स्वामात्रिक है कि वह अचल बठार लगेगा जाकि अचाप हागा और उन
 राका जाना चाहिए। अपराधीको एक साधा-मात्र न माना जाकर साध्य माना जाना
 चाहिए।

सुधार मूलक सिद्धान्त आपनित विवेचनम सुधारमूलक सिद्धान्तका बहुत
 अधिक् महत्त्व दिया गया है। हम सिद्धान्तक अनमार्ग लक्ष्य मध्य गृह्य व्यक्तिन
 भरिषम एसा सुधार करके उसे पुनः समाजम वापिस लाना है जिसम यह समाजका
 एक आत्मगम्भानपूर्व सदस्य बन मन। हम सिद्धान्तक कुछ महत्त्व अपराधीको
 एक रोगी मानत है जिसका आलाप किया जाना चाहिए न कि एक असाधारण व्यक्ति
 जिस दण्ड दिया जाय। उम्ब्रोसो (Lombroso) क अनुयायियोंका कथन है कि
 अपराध एक दयनीय व्याधि है एक प्रकारका पाण्डुरता है एक पदावता या अज्ञित
 दुग्ण है। हम विचारत अनमार्ग बलाक बजाय अलमाला पाण्डुरता और सुधार
 क शिका महत्त्व देना चाहिए। हम सिद्धान्तक कुछ अन्य महत्त्व अपराधीके लिए
 सामाजिक परिस्थितियोंका डिम्भार टहराने हैं और कहते हैं कि सामाजिक व्यवस्था
 का अधिक् 'आयुक्त' बनाकर समाजम अपराध विरुद्ध ही मित्राव जा सकते हैं।

पुराने जमानकी बठोर और जनचित प्रतिक्रमणिकी प्रतिक्रियाएँ रूपम
 सुधारमूलक सिद्धान्त एक स्वयं सिद्धान्त है। पर माप तो हमम कुछ गम्भीर भ्रुष्टिदा
 भी हैं। सभी अपराधीका व्याधि मान लना अक्षरियतम दूर माना हागा। सभी
 अपराधी पाण्डु या बलुडार सिमाके रहे हाव। पाण्डुपणने सामन का दण्ड अपराध
 के मानवाने असल एकारजनका इलाज दिया जाना है पर एक सामान्य अपराधीका
 आलाप नहीं किया जाता हा 'उसे पुनरागत स्थान उन्मथ रगा जाता है। उने दण्ड
 अनिष्ट दिया जाता है कि आन काके कि समाजम सम्मन बर डिम्भार है।

हम कोई लक्ष्य नगा कि कुछ डिम्भार आगधार कि अपराधीकी अला
 समाज अधिर् डिम्भार है। पर एक सामन आगधार डिम्भार लक्ष्य और
 आगधारके आधार पर बाकि सिद्धान्त जनता गति रगा है। अविचार अपराध
 व्यवस्था इन्धम लक्ष्य हीन है।

एक स्वस्थ सिद्धांत हाता ता एग अपराधियोंका जा असाध्य हो जाते हैं अनिश्चित समयके लिए कैद बना रखनेका कोई औचित्य नहीं रह जाता क्योंकि उनके मामलाम दण्डना ता कोई अर्थ ही नहीं है।

इस सिद्धांतकी सबसे बड़ी आलोचना यह है कि इसमें व्यक्तिके नतिक उत्थान का स्वरूप गलत ढंगसे समझाया गया है। अपराधीका नतिक उत्थान तब तक सम्भव नहीं हो सकता जब तक अपराधा स्वयं सुधारके प्रयत्नमें भाग न ले। चरित्रका सम्बन्ध सुधार तो हृदयसे होता है। ग्रीन का यह कहना बिल्कुल सही है कि दण्डना उचित होना या न होना इस बात पर निर्भर करता है कि जिस समाजमें अपराधी ने जीवन बिताया है उसने उसे अपराधी न बननेके लिए मोता दिया है या नहीं। दूसरे दार्शनिक हम यह कह सकते हैं कि दण्डना औचित्य निर्भर करता है (१) सामान्य न्याय व्यवस्थाके व्यापकता होने पर (२) अपराधी द्वारा अधिकारीको ठीक ठीक समझाने पर और (३) अपराधीके यह समझाने पर कि उसने समाजमें कुछ जाने गुप्त अधिकारका उन्मूलन किया है। जब तक यह बातें पूरी नहीं होती तब तक बाहरने चाह जितन प्रयत्न किए जायें अपराधीका नतिक उत्थान नहीं हो सकता।

हमन दण्डके बारेमें जिस दृष्टिकोणका स्वीकार किया है उस व्यक्त करनेके लिए जेम्स सेथ (James Seth) ने 'अनुशासन' शब्दका प्रयोग किया है। इस दृष्टिकोणमें प्रतिशोध (retribution) निराप (deterrence) और सुधार (reformation) तीनोंके सर्वोत्तम संवाका सामंजस्य किया गया है। दण्डका सबसे पहले अयामका निरोधक होना चाहिए। उसमें प्रतिशोध या दण्डकी भावना किंचित मात्रामें न होना चाहिए। दण्ड देनेका उद्देश्य यह होना चाहिए कि 'अपराधीके हृदयमें अपराधकी ऐसी भावना उत्पन्न हो जाय कि वह अपनी पिछली बरादरियाके लिए गहरा पश्चात्ताप करे और भविष्यके लिए एक नवीन अनुशासन का सुधार करे (७१ ३२३)।

परिवारके सम्बन्धमें राज्यके अधिकार (Right of the State in Regard to the Family) हमन स्वतंत्रता और सम्पत्ति रक्षाकी जा व्याख्या की है उसने अनुसार पारिवारिक अधिकारका विवेचन स्वतंत्रता या सम्पत्तिके अधिकारके साथ किया जाना चाहिए। इन अधिकारका धरेसु अधिकार भी कहा जाता है। इनके अन्तर्गत निम्नलिखित सम्बन्ध आते हैं (क) पति-पत्नीका सम्बन्ध (ख) माता पिताका मन्तविस सम्बन्ध और (ग) मातृक तथा नौकरका सम्बन्ध।

मनसा अधिकार हम अयम स्थितिमें है कि उनका आपार स्थितिस्वकी धारणा ही है। परन्तु परिवारके अधिकार दोहरे अयम स्थितिमें हैं। इन अधिकारोंका प्रयोग करनेवाले और जो पर इन अधिकारोंका प्रयोग किया जाता है दोनों ही स्थिति होते हैं। परिवारके अधिकार प्रवावी होता है। यदि पतिका पत्नी पर और माता पिताका मन्तविस पर अधिकार होता है तो उमके सम्बन्धमें पति का पति पर और मन्तविस माता पिता पर भी अधिकार होता है। इन अधिकारोंमें एक दूसरेके स्थिति एक प्रति व्याख्यात्मक सम्मानकी भावना निहित रहती है।

परिवार अथवा प्रेम समाजका आधार है। परिवार व्यक्तिके अल्प जीवनकाल लिए आवश्यक है। पारिवारिक जीवनका सफल प्रत्येक देगम भिन्न है पर कुछ बातें सब कहा एक-सा हैं। समाजका गठन आमजोर पर एक-पनाच पर आधारित सम्बन्ध का मतलब प्रकृत है। 'दृढ़ हा' अर्थात् सामनाम ततातकी मजूरता देनेकी प्रकृति है। मजूर-मालीबके विरुद्ध वे एक पान क तब आज मा उन ही सारगुण हैं जिनम नि धान क समयम जब न उ निया सा। मजूर-मालीबके विरुद्ध कुछ सब य हैं (क) समय कुछ समय सात करन और समय हानवाने ताभा का अभोग करनेके अधिकारम बचिन र्ण प्राप्त है। (ख) पत्नी परिवारम उचित स्थान पानने अधिकारमे बचिन र्ण जाता है। उन वर प्रविष्टा नहा मिलती जिसकी वह अधिकारिणी है। वह पतिके विनामका माधन मात्र बन जाती है। (ग) उन बच्चोंके अधिकारों का भी अलघन हाता है जिनम नतिक सन्धार और शिक्षाका वह अवसर दित जाता है या माता पिताके एक मन हाकर र्ण पर हा बचका प्राप्त हो सकता है।

कवन एद्रिय प्राण (sexual impuls) को हा पारिवारिक जीवनका आधार कहा नहीं जानना चाहिये। यदि पत्नी और मन्वानरा सामान्य सम्बन्ध ही परिवार का सच्चा आधार है। बच्चाके जिन्दगे निरु समाजके उपायके लिए और सावजनिक नैतिकताके हितम यह आवश्यक है कि समय कवन यह विवाह सम्बन्धाका स्वीकार करे जिनका आधार स्थायी एक-अतीव हो। यह सल्लोभका बात है कि उस समय भारतमें सामाजिक विधानकी प्रकृति एक-नीत्वका ओर है। सरकारी अधिकारियों को अपनी प्रथम पत्नीके जायिन रहन सरकारकी अनुमति नियो बिना दूसरी पत्नी करनेकी अनुमति नहीं है। साधारणतया समाज पति का पत्नीक करे आधरक आधार पर ही मजूर किया जाता चाहिये। एक सामनाम ततात उपासकमव मजूर और आमन होना चाहिये। पत्नी पालनन और अन्विष्ट पूरनाके मामलोंमें भी तलाक स्वीकार किया जाता चाहिये। स्वभाव और प्रकृतिके आधार पर समाजका स्वीकार किया जाना स्वष्ट रूपन समान नहा माना। अधिकारम और कर आधरक मामले में यदि मजूरता मना कर अस्वपरी मना करनेको नकार हो ता जिनको दम माननेन हस्तगत नहो करना चाहिये। यत्र ही नतिक शिक्षाके लिए यह आवश्यक है कि बहुत ही अजीब कारणोंके बिना परिवार का विघन नहो जाना चाहिये। राज्यका काना आने का कानोंके सामनाम हातात नहो करना चाहिये। विधि का अस्वच्छा घटपाननेकी विवेचनाय एक स्थिति पर छोड़ी जानी चाहिये जिनके साथ कानाय हुआ हो। कर्तव्य जिस स्थिति का दुःख समाज (duress pass on) के पत्र दण्डके पत्रों ही निर्दिष्ट बना दी पत्नी पर नहो अर्थात् निरु हा उन समाज और न विचारनी पति ।

परिवारके कानि साम जिन्दगे मजूर अदिष्ट कानय और नैतिक धन है कि वह जाने परिवारका कानो करन रण। यह का परिवारका वेगन जिन्दगे समाज को

सम्पत्तिकी विशेषताएँ (Characteristics of Property) सम्पत्ति की परिभाषा इन प्रकार की जा सकती है—भौतिक पदार्थों पर व्यक्ति का ऐसा स्वामित्व या अधिकार जिसे समाज स्वीकार करता हो। किसी चीजका अपने पास रखना ही स्वामित्व नहीं है। यह तो दूसराका दिया हुआ अधिकार है। हमारी सम्पत्ति वे वस्तुएँ हैं जिन पर हमारा स्यामा स्वामित्व है और उन वस्तुओं पर हमारे अलावा और किसीका कुछ भी स्वामित्व नहीं है। जसा कि सिडग्विक (Sidgwick) कहते हैं सम्पत्ति पर पूरा अधिकारका मतलब है कि उस सम्पत्ति का उपयोग करने का हम पूरा अधिकार हैं तथा हमारे अलावा और किसी को यह अधिकार नहीं है। इसमें वस्तुको नष्ट कर देने और अलग कर देनेका अधिकार शामिल रहते हैं पर यह जरूरी नहीं है कि बचीपन कर देनेका अधिकार भी इसमें शामिल हो (७२ ७०)। उनका यह कहना ठीक है कि सम्पत्तिक स्वामित्वम सबसे आवश्यक तब यह है कि किसी वस्तु या पदार्थका उपभोगम दूसराका कभी कुछ अधिकार न हो।

अब सभी अधिकारोंकी भाँति सम्पत्तिका अधिकार भी सभी वय होता है जब समाज उसे स्वीकार करता है। समाजकी स्वाकृतिके बिना किसी भी अधिकारका कोई मूल्य नहीं है। सम्पत्तिक बारेम यह और भी सही है क्योंकि हमारे आधुनिक समाजम सम्पत्ति सहकारी उद्योग (co-operative endeavour) का परिणाम है। अब यह तब निस्सार है कि सम्पत्ति एक प्राकृतिक या नैसर्गिक अधिकार है। समाजवासी विन्तुम दूसरे सिरेकी बात करते हैं। वह सम्पत्तिका एक समाजकी ही सृष्टि मानते हैं। हमारा सा विश्वास है कि सम्पत्तिका एक महत्वपूर्ण सामाजिक पहलू भी है। सम्पत्तिका अधिकार हमारा अपरिचित (relative) रहताहै वह कभी पूर्ण (absolute) नहीं है। सम्पत्ति एक निश्चित स्वामित्व है और इसका दावा समाजने बल्जानये विन्तु कभी नहीं किया जा सकता।

आधुनिक समाजम सम्पत्तिका अब गति हो गया है। एक अयम सम्पत्तिमे स्वतंत्रताकी पुष्टि होती है किाकि यह स्वतंत्र जीवनके अधिकारका परिणाम है। दूसरे अयम सम्पत्तिमे स्वतंत्रता पर रोक भी लगती है बिनापर महत्त करनेवाले सामाजिक स्वतंत्रता पर। सम्पत्ति अपने स्वामीका सामाजिक जीवन और भाग्य पर असीम अधिकार दे देती है। सम्पत्तिका शरूम अर्थ का प (यों) पर स्वामित्व परन्तु अब उसका अर्थ सम्पत्ति परी धारे हा गया है—प्राचीके माध्यममे व्यक्तिों पर स्वामित्व। होमहाउम करने है कि आधुनिक भाषिक परिवर्धनिका ने सम्पत्तिका जनताक बहुमंस्वत सामाजिक उपयोगक लिए न सम्पत्ति अपार सम्पत्तिका कुछ पाइने सामाजिक गतिनक लिए केन्द्र कर दिया है।

व्यक्तिगत सम्पत्तिक पत्र और विपक्ष सहोका सामाजिक (The Case for and Against Private Property Summed up)

व्यक्तिगत सम्पत्तिक रहना मनुष्यके मनम गुरुताकी भावना रहती है। आरके

भौद्योगिक समाजम सम्पत्तिहीन और नूमिहीन मनुष्यकी हानत वृद्ध मानाम एव दात से भी गयी बीती है। जिस व्यक्ति की खोज-खबर रखने वाला कोई नहूँ होता उस व्यक्ति की स्वतंत्रता का अर्थ बहुधा नया मरने की स्वतंत्रता होती है। सम्पत्ति मनुष्य को अपने भविष्यका प्रबंध करनेके योग्य बना देती है और पारिवारिक स्वतंत्रताका एक महत्त्व आधार होती है।

एक सम्पत्तिवान् व्यक्ति का आर्थिक हित एव की आर्थिक म्याथियव पर निर्भर करता है। इसलिए वह किसी भी एव नय मिश्रान्तकी दावम नहूँ बहना जा समाजम प्रान्तिकारी परिवर्तन माना चाहता हो। सम्पत्तिवान् विद्यार्थीवल और विवेकीन व्यक्ति होता है।

सम्पत्ति स्वतंत्रताकी भावनाका प्रोत्साहित करती है। जिस व्यक्तिक पास साधन होते है उसे इन बातको आवामकता नहूँ। रहनी जि वह एव काम करना स्वीकार करे जिन्हूँ वाम पशम न करना हूँ। नास्का का कहना है कि एक सम्पत्तिवान् मनुष्य अपने जीवनका बलाभूग बना सकता है। वह अपने साधनाका उपयोग बना विज्ञान और साहित्यके विकासके लिए कर सकता है। यरा पुरानी सामाजिक धाना तब उसकी पहुँच रहनी है और वह रचनात्मक जीवन म भाग लनम समय रहता है।

अरस्तू के कथनानुसार व्यक्तिगत सम्पत्ति अपने स्वामाका उधार और दानगान बननका अवसर प्रदान करती है। जसा वि आन्तकानिशाका बहना है सम्पत्तिसे चरित्रके विकास और व्यक्तित्वकी अभिव्यक्तिम सहायता मिलता है। व्यक्तिवा पि का यह दावा सत्य है कि मनुष्यका काम करनेक लिए सबसे अधिक प्रभावकारा प्रोत्साहन सम्पत्तिम ही मिलता है। भूगा मरनेका हर ही मनुष्यको बहुधा नानाउ परिषम करनेके लिए मजबूर करता है। रसे (Raleigh) कहत ह कि भूमि और पृथी की व्यवस्थामे सम्पत्ति एते अनेक काउ है जा एव सागा द्वारा निजी आधार पर सबसे अधिक सुगमतात और कुशलतातक विषय जा सवते है जा व्यक्तिगत रूपम अपने लाभके लिए सवत उपाकर काम करनेको तैयार रहत है (१४ १११)। यह आज कहते है कि यह एक जानी-बूझी बात है कि व्यक्तिगत व्यापारिकारी अन्तगा अधिकारी वगैरम क्रियाशील कम मितव्ययी और सुधारक लिए कम हस्तुक रहता है (१६)।

एक बात यह और है कि व्यक्तिगत सम्पत्तिका स्वामिक मनुष्यम सुख और समताको जिनकी गहरी भावना उपात्र करता है उनी गहरी सुख और समताको भावना अय क्रिया प्रकारका स्वामिक नहूँ द साना। व्यक्तिगत सम्पत्तिका जादू पीतनहा सोना बना सकता है। कमत कम कुत्र अगों तर व्यक्तिगत सम्पत्ति मनुष्यकी सामर्थ्य जानो जा सवती है। व्यक्तिगत सम्पत्ति उस स्वल्प आर्थिक और नैतिक मिश्रान्तका विस्तृत रूप है जितना कपन है कि ओठार उपाहा मिलना चाहिए जो उसका प्रयाग कर सके।

यहाँ व्यक्तिगत सम्पत्तिके समर्थनम दग प्रकारके अनेक तर्क दिए जा गता है बहा इनके विरोधमें और भी अधिक कहा जा सकता है। समाजका जाहा बनना है

वि व्यक्तिगत सम्पत्तिम बुद्ध एसा अनिवाय युवाइयां है कि उन्हें गिना प्रबुद्ध जनमत या सामाजिक विधानके ही द्वारा नू नया क्रिया जा मवना ।

इस सम्पत्ति इन्कार नहा किया जा मवता कि व्यक्तिगत सम्पत्ति धनवान और निधन व्यक्तित्व बीचने भ त्वा स्थायी बना ायी है । असमानतात असमानता ही उत्पन्न हानी है और भ्रमस भ ही बटना है । सास्की का यह कहना सही है कि 'एसे समाज का जो निधन और धनवानम बँटा हुआ हो और अितम निधन व्यक्ति याकी सम्पत्ति अधिक हा बानूवा नीध पर हा टिका हुआ समानता चाहिए (४७ १७६) । सम्पत्ति जहा एन आर अपने स्वामीने मनम सुरक्षाकी भावना पदा भरती है बहा दूगरी और य उस विलासप्रिय और आनमी भा बना देती है । जिन सागाको महन्त करन की आवश्यकता नहा रह जाती वह प्राय अपना समय और दानि रचनारमक बायो म नही लगात । धरित्रके पिनासक निर बुद्ध व्यक्तिगत सम्पत्ति आवश्यक हो सवती है पर अमीमित व्यक्तिगत पूँजी का और उसमे मनुष्याके जीवन और भाग्य पर मित्रनवाल अधिभारवा किमी हाततम भी समयन नहा किया जा सकता । इम यानता बाई एक-सगत कारण नहा है कि बाइ व्यक्ति उत्पादने साधना पर स्वामित्वका दावा करे । व्यक्तिगत सम्पत्तिने हर सम्भव स्वरूपना समयन करना—जसे अमीमित धन दान और विरातत आत्मिका समयन—वित्तुल स्पष्ट बेईमानी है और दगः समयन पर तिसीना विश्वास नही हा सवता ।

एक बात और है । यह आवश्यक नगे है कि निम्नी नामसे ही हम परिधम करनका प्रास्ताहन मिन । लॉड हाट्टन का कथन है कि 'रा-परी सवाम अपन आपका दूसरोसे अधिक योग्य सिद्ध करनका दुष्टा एन दिमागी काम करनवाने व्यक्तिगत त्रिप्रोत्साहनका जतना ही बड़ा कारण हा सवती है जितना बड़ा कारण सम्पत्ति इबट्टा करने की भावना हा सवती है । प्लगे न ता मूल या और न स्वल्पनी एक उसन यह पाठना की थी कि किसी मन पस कामका पूरा करना या जनताकी सेवा करना स्पव अपने आपम ही पुरस्कार है ।

प्राय यह स्वीकार क्रिया जाना है कि सम्पत्तिना स्वामित्व बहा तक उचित है जहाँ ता उसका सम्बन्ध समाजकी मवाग हा । किन्तु व्यक्तिगत सम्पत्तिने बड़स-बड़ समयवाना भी यह बात माननी हा पड़गी कि स्वामित्व और मवाम बहुत पाड़ा ही सम्बन्ध है । माँग और पूँजिना सिद्धान्त हमेंगा यज्ञानिष डंगम काम नही करना । कभी-कभी यह अस्थिर और घबत रगा है । जैसा कि सास्की न कहा है हम यह बात नहीं मान सवत कि ब्राह्मि अमीमीनियाम गुणकारी और गगार भरम अमीत साहित्यकी जागरार माँग है दगनिक अमीमीनियामा ग नाम भ्रत्रनवान और दुनियाम अमीन साहित्यका प्रचार करनेवान ध्यागरी समाजकी बर्नी मारी तथा कर रह है ।

सम्पत्तिने इतिहासकी साक्ष करन पर हम मानूम होगा है कि सम्पत्तिना बिनाप कर भू-सम्पत्तिका बाई प्रतिष्ठापूर्ण इतिहास नहा है । इम स्वामित्वकी कुछ जड़े हम इस्तेमिले मिनती हैं ।

निष्ठा-वेह आधुनिक युगम व्यक्तित्वगत सम्पत्तिने अपरिमित उत्पन्न किया है समृद्धि और सुविधाय वृद्धि की है मयारके प्राकृतिक साधनाका अधिकसे अधिक उपयोग किया है और भौतिक सम्भोगम आचरणनक उत्पत्ति की है। पर जीवनकी इस भौतिक उत्पत्तिका अर्थ यह नहै कि जीवनने नविक और आध्यात्मिक धर्मम भी उतनी हा उत्पत्ति हुई है। आवनक तत्वाका मूल्य और महत्त्व बहुत कुछ गिर गया है और चार। चार सम्पत्ति और सक्तिकी पूजा की जाती है। आधुनिक समाजका समकल ही कुछ ऐसा है कि इससे व्यक्तिगत साभकी भावनाका ही उत्तेजना मिलती है। यह व्यवस्था अनुप्यना सक्ति और सम्पत्तिन लिए अपने साधियाम प्रतियोगिता करना सिखाती है। यह व्यवस्था यह सिखाती कि अनुप्य सामाज्य उद्देश्याका प्राप्त करनेम दूसरासे सहयोग करना हुआ आग बढ़। साधारण जनताके लिए ता इस व्यवस्था ने रचनात्मक सागरिकता अत्यम्भव बना दी है। भौतिक धर्मम भी विकासने अवसर अब उत्तम अधिक नहै। यह गय है जिनन वह हालने पिछने वर्णम थ। हम भौतिक विधासकी घटनावस्था तक लगभग पहुँच चुक हैं।

सास्कीने वर्तमान व्यवस्थाक विरायम अपन तरौका निरन्तर इन प्रयावशाती सभ्यो म किया है हम चाह जिस दृष्टिकोणसे दये वर्तमान व्यवस्था अपूर्ण सिखापी देनी है। मनाईचानिक दृष्टिकोणसे यह व्यवस्था इसलिये अपूर्ण है कि अधिकांश सयोगी इससे बचन भयकी भावनाका ही उत्तेजना मिलती है और इन प्रकार उनके यह समा गुण नष्ट हा जाते हैं जा मानव जीवनक पूर्ण विकासम सहायता पहुँचाते हैं। नैतिक दृष्टिकोणसे भी यह व्यवस्था अपूर्ण है। कुछ ठा इसलिये कि इसम अधिकार जनसाधनोमिन्न है जिहान उन अधिकाराका पानक लिए कुछ भी नहै किया और कुछ इसलिये कि जहाँ मह अधिकार उन सागाका मिन है जिहान इसके लिए परिश्रम किया है वहाँ सामाजिक महत्त्वन साम उनका कोई आनुपातिक सम्बन्ध नही है। यह व्यवस्था समाजके एक पक्षके घन समुदायके धर्मका भागी बनाकर सध समुदायसे समृद्ध जीवन विज्ञानका अवसर छान मती है। यह व्यवस्था अधिका दृष्टिकोणसे भी अपूर्ण है कसकि समाजम जा सम्पत्ति उत्पन्न होती है उसका वितरण इस व्यवस्थाम एन ढणने नहै हो पाता कि जा माग उस सम्पत्तिका उत्पादन करत है उन्हें स्वल्प और मुरगित्त जीवन विज्ञानका अवसर मिन सक। इसका मतीजा यह हुआ है कि अधिकांश सागाकी निष्ठा इस व्यवस्था पर से उठ गयी है। कुछ माग इस व्यवस्थाका पुगाकी दृष्टिकोणसे अधिकांश जनता इसम कोई अन्वर्ष नही पाती। यह व्यवस्था राज्यको भी बह बान करनेका प्रवृत्ति नहीं करती जिसके द्वारा राज्य समृद्ध हा गयता है (११ २१६)।

उपयोग करकेही सक्ति अनुसार वितरण (Distribution According to the Power to use)

डा० हॉकिंग ने सम्पत्तिन प्राप्तिकी सिद्धान्तका व्यावहारिक रूप देते हुए
 १५-१०-११०

सम्पत्ति के ऐसे वितरणका समर्थन किया है जिनमें व्यक्तिगत उपयोग करनेकी शक्तिके अनुसार वस्तुएँ बाँटी जाती हैं। उनका मत है कि सम्पत्ति उनका मिल जो उसका उपयोग सबसे अधिक कर सके। इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि मूल अमीगके विलास और प्रश्रय बर्बादीने व्यक्तिगत सम्पत्ति व्यवस्थाको लोगकी दृष्टिमें जितना नीच गिराया है उतना किसी और दूसरे कारण न रही।

उपयोग करनेकी इस शक्तिकी व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है। समाजकी आर्थिक व्यवस्था में जो सबसे नीचे स्तर पर है उनमें वस्तुआका वितरण उनकी आवश्यकताके अनुसार हो। जो आयकी बीचकी सीढ़ी पर यानी मध्यम वर्ग हैं उनमें वस्तुआका वितरण उनकी अन्न करनेकी शक्तिके अनुसार हो और जो आर्थिक व्यवस्थाकी चोटी पर हैं उनमें वस्तुआका वितरण उनकी उपयोग करनेकी शक्ति के अनुसार हो।

वितरणके इस सिद्धान्तमें बहुत-सी अन्धाइयाँ हैं। यह हर व्यक्तिको इस बातकी प्रेरणा देता है कि वह स्वयंको अपने लिए तथा समाजके लिए उपयोगमूलक अधिकतम अधिक उपयोगी सिद्ध करे। यह सिद्धान्त हर व्यक्तिको इस ध्यान पर्याप्त अवसर देता है कि वह अपनी परीपकारी मूर्खता अधिकसे अधिक उपयोग पर ले। इस सिद्धान्तसे समाजके अयोग्य सभ्य बर्बाद हो जायें और उपयोगी सदस्य एक बनी सभ्यता बच जायेंगे। और अन्तमें इस सिद्धान्तसे यह सत्य भी पूरा हो जायगा कि पाप्यता अपुरस्कृत नहीं रहनी चाहिए।

उन मर्यादित अन्धाइयाँके होना ही इस सिद्धान्तका व्यावहारिक रूप देना असम्भव कठिन है। यद्यपि कई दृष्टियाँसे घरमें व्यक्तिगत दृष्टिकोणकी आभा यह सिद्धान्त काफी अच्छा है फिर भी यह पर्याप्त प्रगतिगोत्र नहीं है। इसके अनिश्चित यह भी आभा है कि इसमें परिणामस्वरूप अधिक समय और उद्योगगोत्र व्यक्तियों तथा असमय व्यक्तियोंके बीच अनिश्चित असमानता उत्पन्न हो जाय क्योंकि किसी भी व्यक्तिकी सामाजिक उपयोगिता या अनुपयोगिता आसानी आसानी नहीं है।

फिर भी उपयोगिताकी सामर्थ्य (ability to use) के आदमीकी सहायताके सहार भरमें समाजवादीकी स्थापनाकी प्रतीक्षा किए बिना ही हम वायव्य वितरण की एक ऐसी योजना तयार कर सकते हैं जिसमें तुल्य अर्थमें बिना जा सक। मूल अक्षर आदि ज्ञानीय विकासकी दृष्टिसे अवांछनीय लोगोंको समाजके निम्नतर स्तर में रखा सकते हैं। उन्हें हम क्षय समाजमें अलग कर सकते हैं उनमें मनुष्यकी बहिष्कार पर रोक लगा सकते हैं और साथ ही सभ्य जीवनका यूनानमें आवापनार्थ उनको तैयार कर सकते हैं। दूसरी श्रेणीमें हम उन लोगोंका रंग सकते हैं जो दूसरों पर आश्रित रहते हैं जैसे बूढ़ और दुबल व्यक्ति। उनके लिए भी हम सभ्य जीवनकी यूनानमें आवापनार्थ तैयार करनी होगी। अतुल्य शक्तिवाला हम कमसे कम इतना वेतन देंगे जो अच्छा जीवन बितानेके लिए आवश्यक हो और बराबर इस ध्यान में प्रयत्न भी करेंगे कि अतुल्य शक्तिवाला शक्तिवाली श्रेणियों में आ जायें। मध्यम

कगरे लिए हम माग और पूतिके सिद्धान्तको लागू रहने देंग और साथ ही इस बातका भी ध्यान रखेंग कि इस सिद्धान्तमें जो स्वामाधिकार बुनियाँ हों उन्हें राना और सुधारा जाय। उस कामके लिए समान अवसरके सिद्धान्तका प्रयाग किया जायगा। निम्नलिखित गिना प्रतिक वृद्धि वाना आयकर (progressive income tax) और क्रमग बढ़नवाना उत्तरापिचारकर (graduated inheritance tax) आदि इसके साधन होंगे। अधिक छोटी परके लोगोंमें उपयोगकी सामग्य का सिद्धान्त पूरुरूपेण लागू किया जायगा। यदि पाइ या रॉकफेनर जमा कोई व्यक्ति अपनी सम्पत्तिसे मनुष्य जातिनी सवासे लिए और भी अधिक सम्पत्ति पैसा का सवमा है तो हम उसे बैसा करने देंग। पर यदि इसके विपरीत वह अपनी सम्पत्तिका उपयोग एकत्रम अपन स्वायके लिए करता है या किसी अन्य प्रकारसे सम्पत्तिका दुसपयोग करता है ता हम विधि या जन मत या दोना ही के द्वारा उसके लिए उस सम्पत्ति पर अधिकार बनाये रलना असम्भव कर देंग।

SELECT READINGS

ARISTOTLE—*Politics*

BOSSANQUET B—*The Philosophical Theory of the State*—Chs. III VI, VII & VIII and *Introduction to Second Edition*

BURNS C D—*Political Ideals*—Ch. V

CARLYLE, A G—*Political Liberty*

CARVER, T N—*Essays in Social Justice*

DICKINSON G L—*Justice and Liberty*

GETTLE, R G—*Introduction to Political Science*—Ch. IX.

GILCHRIST R N—*Principles of Political Science*—Chs. VI & VII

GREEN T H—*Principles of Political Obligation Sects*

I I L A & O

HOCKING W L—*Law and Rights*

HEGEL, G W F—*Philosophy of Right*

HONHOUSE L T—*Elements of Social Justice*—Ch. VIII

JOAD C. E. M—*Liberty To-day*

JASKI H J—*Liberty in the Modern State*

LASKS H J—*A Grammar of Politics*—Chs. III IV & V

LEACOCK S—*The Unsolved Riddle of Social Justice*

MILL, J S—*Liberty*

MILTON J—*Ancipietica*

OPPENHEIMER—*The Rationale of Punishment*

PLATO—*Republic*—Bks I IV

Property its Duties and Rights (a symposium)

- RASHDALL, H — *The Theory of Good and Evil*—Vol I
Chs VIII & IX
- RITCHIE D G — *Natural Rights*—Chs VII XII & XIII
- ROUSSEAU J J — *Social Contract*—Book I
- RUSSELL, B — *Roads to Freedom*
- SETH, J — *Ethical Principles*
- SIDGWICK H — *Elements of Politics*
- SPENCER, H.—*Justice*
- WILLOUGHBY W W — *Social Justice*

सम्प्रभुता (Sovereignty)

१ सम्प्रभुताकी परिभाषा (Definition of Sovereignty)

सम्प्रभुता राजनीति-शास्त्रकी सबसे महत्वपूर्ण धारणाओंमें से एक है। पर यह भी सच है कि राजनीति शास्त्रने और किसी दम पर इसका अधिक विवाद और भ्रम उत्पन्न नहीं हुआ जितना इस दम पर हुआ है। सम्प्रभुता शब्दका प्रयोग कई प्रकारसे होता है और इन प्रयोगों में बीच स्पष्ट भेद भी नहीं किया जाता। 'सोवरेनी' (Sovereignty) शब्द लैटिन भाषाके 'सुपरानस' (superanus) से बना है जिसका अर्थ है ऊपर या सर्वोपरि। सम्प्रभुताका तात्पर्य प्रत्येक स्वतंत्र राज्यमें एक एही अन्तिम सत्ता से है जिसने आज फिर कोई धरोल नहीं होती। यह सत्ता देशके बाहरी और आन्तरिक सभी मामलोंमें सर्वोपरि होती है। देशके भीतर किसी भी व्यक्तिको या व्यक्तिगतके किसी समूहको सम्प्रभुताके निरन्तरके विरुद्ध काम करनेका कोई अधिक अधिकार नहीं है। बाहरी मामलोंमें भी सम्प्रभुता सर्वोपरि होता है। यह स्वयं ही अपना स्वामी है। वह अन्तर्राष्ट्रीय करारों प्रथाओं और दल्लूरोंको माननेके लिए वैधिक तौर पर बाध्य नहीं होता। सम्प्रभुताकी परिभाषाएँ बहुत-सी और अनेक प्रकारकी हैं। पश्चिमी वैश्विकता से सबसे पहले सम्प्रभुताका एक व्यवस्थित मिडलान्त स्थापित करनेवाले बोदां (Bodin) ने इसकी परिभाषा इस प्रकारकी है नागरिकता और प्रजा पर एही सर्वोच्च सत्ता जिस पर विधिका नियंत्रण न हो। पचास का परचायु घोषणाम (Grotius) ने सम्प्रभुताकी परिभाषा इन शब्दोंमें की उन किसी व्यक्तिमें निहित सर्वोच्च राजनीतिक शक्ति जिसने कार्य किसी दूसरेके अधीन न हों और जिसकी इच्छाका कोई उत्सर्पण या अतिवृत्त न कर सके। यह किसी राज्य पर लागत करनेकी अधिक शक्ति है।

आपनिच (सर्व) पान्नीगी प्रोफेसर दुग्वा (Dugwat) का कहना है कि फ्रांसमें आमदौर पर सम्प्रभुताका अर्थ लागू समझने हैं 'राज्यकी वह शक्ति जिसके अन्तर्गत राज्य अपने देश है यह राज्यके अन्तर्गत राष्ट्रकी शक्ति है यह एक अधिकार है जिसके अन्तर्गत राज्य रहनेवाले सभी व्यक्तिगतको बिना किसी शर्तके आजाद की जाती है। अमेरिकी गणराज्य (Burghes) सम्प्रभुताको व्यक्तिगतों और व्यक्तिगतोंके

सधों पर मौलिक (original) परमपूण (absolute) और असीम (unlimited) अधिकार बताते हैं। दूसरे स्थान पर वह सम्प्रभुता को लोगोवा आभेग देने और उनका पालन करनेकी स्वतन्त्र और मौलिक शक्ति कह कर पुकारते हैं। पोल्टन (Pollock) न सम्प्रभुताकी परिभाषा इस प्रकार की है सम्प्रभुता वह शक्ति है जो न तो अस्थायी है और न किसी दूसरेके द्वारा दी गयी है और न वह किन्ही ऐसे नियमोंके अधीन है जिन्हें वह बदल न सके। विलोबी (Willoughby) का कहना है सम्प्रभुता राज्यकी सर्वोच्च इच्छा है।

ब्रेनतनबर्ग (Branenburg) के अनुसार यह राज्यकी प्रवृत्ति हाती है कि वह दूसरा पर अपनी इच्छा बिना किसी शर्तके लागू करे क्योंकि शासन करनेकी यही परिभाषा है और शासन करना राज्य का मौलिक काम है (४५ १३९)।

यूरोपीय लेखक कार्डे मालबर्ग (Carrede Malberg) लिखते हैं (Theorie generale de l'etat vol I p 70) कि सम्प्रभुता कोई शक्ति नहीं है बल्कि वह एक 'गुण' है एक शक्तिकी यह सर्वोच्च विनिष्ठा है—यह सर्वोच्च इसलिए है कि यह किसी दूसरी शक्तिको न तो अपने ऊपर स्वीकार करती है और न अपने बराबर मानती है। लुफुर (Le fur) अपनी पुस्तक *L'etat federal* में लिखते हैं याहरी सम्प्रभुता उन अधिकारोंकी सम्पूर्णताका ध्यान करनेके लिए एक मरिष्ट शब्द है जिनके द्वारा आन्तरिक सम्प्रभुता विभिन्नी राज्याक सम्बन्धम अपने आपका ध्यान करती है (पृष्ठ ४६५)।

गुडरिड अमरिषी समाज-शास्त्री गिडिंग्स (Giddings) अपनी पुस्तक (*The Responsible State*) में लिखते हैं सारे शब्दकोषाम एक भी ऐसा दूसरा शब्द नहीं है जिसके साथ उससे अधिक घातक इन्तं जान रखा गया हो जितना आध्यात्मिक मायावियों (metaphysical jugglers) द्वारा सत्ता शब्दके साथ रखा गया है। विधि वेत्ताओं (jurists) और राजनीतिक सिद्धान्तिकों (theorists) ने शब्दरत्नस्योकी ओरने आस मूँद कर अपना अस्तिष्क भावमूँदम बन्पनाआम लगाया और सम्प्रभुता राजनीति-शास्त्रके लिए एक ऐसी वस्तु बन गयी जो जल या मलम नहीं भी बनी किसी समय नहीं थी।

डोनेल्ड एक० रसल (Donald F Russel) सम्प्रभुताकी परिभाषा इस प्रकार करते हैं 'राज्यके भीतर सबम बड़ी शक्ति और सर्वोच्च सत्ता जो विधि या अर्थ विगी पीढस सीमित न हो क्योंकि अथवा वह न तो सर्वाधिक शक्तिवाली हावा और न सर्वोच्च।

सोल्टाउ (Soltau) सम्प्रभुताको 'राज्यकी स्वायत्त शक्तिवाली अन्तिम अधिक शक्तिका उपपाग बताते हैं। रूसो (Rousseau) रुग्डार (Rugdar) आदि अपनी पुस्तक (*Introduction to Political Science*) में लिखते हैं 'राजनीतिक विज्ञान भी सिद्धान्तम सम्प्रभुताकी धारणा बन्पना शानी चाहिए। अथवा उदाह शब्दोंम सम्प्रभुताक सिद्धान्त सामाजिक तथा राजनीतिक मरिष्टाओं और मरिष्टानि पृष्ठांम

क प्रतिबिम्ब हैं जिन्हें उचित मिड करना और त्रिनयी व्याख्या करना उनका लक्ष्य होता है।

२. सम्प्रभुताकी विशेषताएँ (Characteristics of Sovereignty)

सम्प्रभुताके परम्परागत सिद्धान्तका विवरण करनेवाले समयमाने इसकी निम्नलिखित विशेषताएँ बतायी हैं

- (१) परमपूजता (absoluteness)
- (२) सावभौमिकता (universality)
- (३) अमरताम्यता या अविच्छेद्यता (inalienability)
- (४) स्थायित्व (permanence)
- (५) अविनाशता (indivisibility)।

१. परमपूजता (Absoluteness) सम्प्रभुताका परमपूज और अग्रगण्यता का अर्थ है। परमा पर कोई भी अधिकार नहीं है जो उसका नियंत्रण कर सके। (क) देश के अन्दर सम्प्रभुता राज्य करनेवाले सत्ता व्यक्तिगत पर और व्यक्ति समूह पर सर्वोच्च अधिकार रखता है। सम्प्रभुता पर जो कुछ भी बयान या सीमाएँ बताई गई हैं वे सभी देशों द्वारा लागू की हुई होती हैं। अर्थात् वे राज्य द्वारा अधिकार नहीं हटाये जा सकते हैं। अतः वे अचरित (unchangeable) विधि एक अविनाशता है (४-१४)। (ग) बाहरी मामलों में भी सम्प्रभुता सर्वोच्च माना जाता है। दूसरे राज्य सम्प्रभुताके राज्यके मामलों में न तो किसी प्रकारका हस्तगत कर सकते हैं और न उस पर किसी प्रकारका दबाव डाल सकते हैं (२४-१५)। अर्थात् अन्तराष्ट्रीय स्तर पर सम्प्रभुताको नष्ट नहीं करने के लिए उनके पास किसी कार्य शक्ति नहीं होता जो एक सम्प्रभुताके विरुद्ध कर सकें। वे ऐसा कर सकते मान जाते हैं कि यह सम्प्रभुताके राज्य उन्हें स्वयं मानना चाहता है। अतः यह वही माना जाता है कि अन्तराष्ट्रीय-अमानव अन्तराष्ट्रीय विधि का क्षेत्र व्याख्या कर सकती हैं उस विधि का लागू करनेकी शक्ति उनमें नहीं है।

सम्प्रभुताकी यह विशेषताएँ हम विशेषताएँ ही परिभाषित हैं।

२. सावभौमिकता या सर्व-अवधारिता (Universality or all-comprehensiveness) सम्प्रभुता राज्यके अन्दरने सभी व्यक्तियों, समूहों और वस्तुओं पर सर्वोच्च अधिकार रखता है अर्थात् अन्तराष्ट्रीय-अमानव अन्तराष्ट्रीय मामलों में सर्वोच्च शक्ति रखता है। अर्थात् कोई व्यक्ति या समूह अन्तः-राज्य अन्तः-राज्य के सम्प्रभुताके अन्तः-राज्य के विरुद्ध नहीं कर सकता है। वे अमानव (Free Masters) सभी व्यक्ति समूहों पर सर्वोच्च शक्ति रखते हैं। अतः सम्प्रभुताकी विशेषताएँ ही परिभाषित हैं।

सम्प्रभुतापी सार्वभौमिकतामें मुक्त होनेका एक ही स्पष्ट उदाहरण मिलना है। जैमावि गिलक्राइस्ट (Gilchrist) ने कहा है कुछ देशोंमें कूटनीतिज्ञ प्रतिनिधियों को यह राज्यात्तर, सम्प्रभुता (extra territorial sovereignty) प्राप्त होती है। गिलक्राइस्ट इस सभ्यको इस प्रकार व्यक्त करते हैं 'किसी भी देशमें राजद्रुतावास उस देशकी सम्पत्ति है जिस देशका प्रतिनिधित्व वह राजद्रुतावास करता है। राजद्रुतावासके सम्बन्ध अपने देशकी विधियोंके अधीन होते हैं। पर अमलियतमें यह अन्तर्राष्ट्रीय गिण्टसाफी बात है और इसे सम्प्रभुतासे वास्तविक मुक्ति नहीं कह सकते। यदि कोई राज्य चाहे तो अपनी सम्प्रभुताका प्रयोग करते हुए इस प्रकार दिये गये विनोपाधिकारों और सुविधाओंको वापस ले सकता है (२८ ११०)।

३ अक्षय्यता या अविच्छेद्यता (Inalienability) यदि सम्प्रभुता परमपूर्ण और असीमित है तो यह बात भी समझमें आती है कि वह अविच्छेद्य होगी। कोई भी सम्प्रभु राज्य अपनी मौलिक विनोपताओंमें से किसी एक विनोपताको भी अपनेको नष्ट किये बिना नहीं छोड़ सकता। एक अमेरिकी लेखक लीबर (Lieber) लिखते हैं कि जिस प्रकार एक वृक्ष अपने उगने और पनपनेके अधिकारको नहीं छोड़ सकता अथवा जिस प्रकार एक व्यक्ति अपना विनाश किये बिना अपने जीवन और व्यक्तित्वको अपनेसे असंग्रह कर सकता ठीक उसी प्रकार राज्य भी सम्प्रभुतासे अलग नहीं किया जा सकता। एक राज्य अपने मूल प्रदेशके कुछ भागको दूसरे राज्यको दे सकता है। जब एक राज्य ऐसा करता है तो वह अपने उत्तम प्रयत्न पर अपनी सम्प्रभुताको दूसरे राज्यको सौंप देता है। पर इससे उसकी सम्प्रभु-शक्ति समाप्त नहीं हो जाती। उसके बाद दा सम्प्रभु सत्ता हो जाती है जिनका दो विभिन्न प्रयोग पर अधिकार होता है। इसी प्रकार किसी सन्धि या वास्तव द्वारा गरीं छोड़ देनेका यह अर्थ नहीं जाना कि उस राज्यमें सम्प्रभुताका अन्त हो गया। जब एक नाममात्रका वास्तव अपना परत्यागता है तो केवल वास्तवमें स्वल्पमें अन्त आ जाता है (२८ १११)।

रूसी सम्प्रभुताकी अविच्छेद्यताके समर्थन में उनका कहना था कि वास्तवका हस्तान्तरण किया जा सकता है पर इच्छाका नहीं। सम्प्रभुता राज्यके व्यक्तित्वका मूलत्व है और उसको अन्त करना आत्महत्याक समान है।

४ स्थायित्व या सदाकालीनता (Permanence or perpetuity) सम्प्रभुता उतनी ही स्थायी है जितना कि स्वयं राज्य। जब तक राज्यका अस्तित्व बना रहता है तब तक सम्प्रभुता बनी रहती है। दाना एक दूसरेमें अन्तगमन हो जा सकते। किसी राजा या राष्ट्रपतिकी मृत्यु या पदच्युत होनेका अर्थ यह नहीं है कि सम्प्रभुता समाप्त हो गयी। सम्प्रभुता सुरक्षित ही उनमें वास्तविक पनायीन व्यक्तिके शपथ में आ जाती है। यह केवल वास्तवमें व्यक्तिद्वारा परिवर्तन होता है। इसमें राज्यके अन्त अस्तित्वमें कुछ भी क्षाया नहीं आती (२८ १११)।

५ अविभाज्यता (Indivisibility) सम्प्रभुताकी अविभाज्यता उतनी परमपूर्णताका सर्व-संगत निष्कर्ष है। मूल सिद्धांत है कि 'यदि सम्प्रभुता परमपूर्ण

नहीं है तो किसी राजका कार्य अस्तित्व ही नहीं है यदि सम्प्रभता विभाजित है तो एक ही व्यक्ति राजका अस्तित्व हो जाता है (२१-२)।^१

कृप वक्तावली (pluralists) इस विचारके विरोधी हैं। वे लोग सम्प्रभताको राज्य और राज्यके भीतरके उन अन्य सत्ता और व्यक्ति-समूहोंमें विभाजित करते हैं जो मनुष्यके विभिन्न हितोंको रक्षा करते हैं। यदि इस विचारका व्यवहारम साधा जाय तो उसका अन्तिम परिणाम यह होगा कि राज्य द्विध-त्रिध हो जायगा। वे लोग बहुसत्तावादी नहीं हैं वह भी कभी-कभी विभाजित सम्प्रभता (divided sovereignty) के सिद्धान्तका समर्थन करते हैं—विशेषकर मध्य राज्य में। हारबर्ड विश्वविद्यालयके मूल पूर्व अध्यक्ष ए. एल. लोवेल (A. L. Lowell) प्रभावपूर्ण शब्दोंमें कहते हैं कि एक ही नू प्रयोग हमने सम्प्रभताका अस्तित्व सम्भव है जो एक ही प्रजासत्ता का विभिन्न मामलोंमें अपने-अपने आशय देने हों (२-१३५)। इसी तरह लॉर्ड ब्राइस (Lord Bryce) का कहना है कि अधिक सम्प्रभता का सम्बन्ध सम-व्यवस्था में अर्थात् एक दूसरे से सम्बन्धित राजासत्ताकी व्यवस्था में विभाजित हो जा सकता है (२२-१३५)। एना प्रतीत होता है कि इन मसलोंके अस्तित्वमें समूहों का अस्तित्वका वह मामला है जिसमें बहोते सर्वोच्च विधानलय यह फसला दिया था कि जहाँ तक उन अधिकारों और शक्तियोंका सम्बन्ध है जो राज्याय सरकारके अधिकार धारण करने लगे हैं वहाँ तक समूहों का सम्प्रभता प्राप्त है और जो अधिकार और शक्तियाँ राज्यके लिए सुरक्षित की गयी हैं उनमें सम्बन्ध राज्याको सम्प्रभता प्राप्त है। इसमें विभिन्न विचार रखनेवाले काल्हुन (Calhoun) तथा अन्य अन्य विचारक अस्तित्ववादी के परिष्कारवादी व्याख्या में प्रकार कहते हैं कि सम्प्रभता जो कि एक अविभाज्य इकाई है अस्तित्वमें कृप मामलोंमें राष्ट्रीय सरकार के शक्त और बुद्धिपूर्वक मामलोंमें राज्य सरकारके शक्त धारणका अस्तित्व करना है। दूसरे शब्दोंमें मध्य सरकारों और राज्य सरकारोंके बीच सम्प्रभताका व्यवहार नहीं हुआ है। यदि सम्प्रभता उस पराग शक्ति में निहित है जिसमें दोनों सरकारोंकी अधिकार शक्तियों को निर्दिष्ट करनेकी शक्ति है और जो शक्त शक्तियाँ और अधिकारोंका इन सरकारोंके बीच विभक्त है इस प्रकार बाँट सकता है कि इनमें से विभाजित अधिकार उन मध्य या बड़े राज्य (२२-१३८)।

हम पूरा विश्वनाश विचार कहते हैं प्रभावपूर्ण शब्दोंमें इस प्रकार है सम्प्रभता एक समूही शक्ति है। उसका विभाजन करनेका अर्थ नष्ट करना है। विभाजित राज्य सम्प्रभता सर्वोच्च शक्ति है। आधा सम्प्रभता का शान्त बचता उनका ही अस्तित्व और शान्तता है जो आधा शान्त (half-republic) या आधा विभक्त

^१ टीनेल (Tinetel Le) अन्ता पुस्तक (Politics) vol. 1 पृष्ठ १३ में लिखा है कि एक ही राज्य अस्तित्व सम्भव है जिसमें सम्प्रभता विभाजित है। विभाजित सम्प्रभता ही एक ही शान्तता का अस्तित्व है।

(half triangle) कहना (२२ १७३)। अथवा दूसरे गण्यम यह समझनम तो कोई कठिनाई नहा है कि सम्प्रभुतास सम्बन्ध रखनेवाली शक्तियाको किस प्रकार विभाजित किया जाय किस प्रकार एक विभागवा एक्के हाथाम और दूसर विभाग का दूसरमे हाथाम सौंप दिया जाय या किस प्रकार सम्प्रभुताको एक व्यक्ति कुछ व्यक्तिता अथवा अनक व्यक्तितामे निहित किया जाय। पर यह विचार ता असम्भव सा सगता है कि किसी प्रकार सर्वोच्च सत्ता सम्प्रभुताका विभाजित किया जा सकता है (२२ १७३)।

३ सम्प्रभुताके विभिन्न अर्थ (Different Meanings of Sovereignty)

१ नाम-मात्र की सम्प्रभुता (Titular Sovereignty) सम्प्रभुता शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थोंमें होता है और इन विभिन्न अर्थोंका अन्तर न समझनम भ्रम उत्पन्न होता है। नाममात्रकी सम्प्रभुता (titular sovereignty) गण्यम प्रयाग उमा राजा या राजतगीय शासकके लिए किया जाता है जो किसी समय वास्तवम सम्प्रभु था परन्तु अब काफी समयम वास्तविक सम्प्रभ न रहार नाममात्रका सम्प्रभ हुआ गया। इंग्लैण्डका राजा सम्प्रभ (sovereign) कहनाता है शक्ति उसकी सम्प्रभुता नाममात्र की है। वास्तविक शक्ति ता बहुत समय पहन ही दूसरके हाथाम चली गया थी। अत राजाकी सम्प्रभता एक निरी कहानी है।

२ अधिक सम्प्रभुता (Legal Sovereignty) प्राय अधिक सम्प्रभुता और राजनीतिक सम्प्रभुताके बीच अन्तर किया जाता है। अधिक सम्प्रभुता राज्यम सर्वोच्च विधि बनानेवाली शक्ति है। केवल उगाके आग विधि हुने हैं। वह धार्मिक नियों नविक मिद्दाला और जनमतके आगेका उत्तमन कर सकती है। एमा सम्प्रभु इंग्लैण्डम ससम्महित सस्राट (King in Parliament) है। डायमी के अनुसार ससम्म विधिक रूपमे इतनी सर्वशक्ति-सम्पन्न है कि वह एक बचको पूरी उम्र का धारित कर सकती है मरनक बाद भी किमी व्यक्तिसे राजाहता अपराधी बना सकती है वह विषाचारक (illegitimate) बचका औरम (legitimate) धारित कर सकती है अथवा उचित समय तो वह किमी व्यक्तिका उमर ही मामलम ध्यायाधीन बना सकता है (२२ १६२)। अधिक सम्प्रभुता सम्प्रभुता-सम्बन्धी शक्ति का धारण है। यह वही निर्धारक (determinate) ध्यति है जिनकी शक्त आस्टिन ने सम्प्रभुता की अपनी व्याख्याम की है। अगाने कथन उहा विधियाका धारणो ह जा एमी सम्प्रभ सत्ताम उत्पन्न होती है।

अधिक सम्प्रभुताकी विधियाएँ ये हैं (१) यह निर्धारक (determinate) और निश्चित होती है (२) यह किमा एक व्यक्ति या व्यक्ति-समूह में निहित रह सकती है () यह निर्धारक रूपम सगति रूप और विधि द्वारा माय होती है (६) कवन यह ही अधिक गण्यम राज्यकी स्थायी धारण करती है (७) इतनी

भाषाण न मानन अथ ज्ञान है विधि का मानना और इसविषय स्पष्ट पाना (६) अधिकारवादी उत्पत्ति अभीमे जानो है और (७) यह परम्परा असीमित और सर्वोच्च होता है।

राजनीतिक साम्प्रभता (Political Sovereignty) इस शास्त्री परिभाषा करता उतना आमान नही है। एक साक्षरप्रवाण नाम जब कि विधिक साम्प्रभु सबसे बड़ा विधि बनानवाला और लागू करनेवाला होता है वही उसके पीछे जनता की छाया रहती है जो सभी प्रकारकी अधिकार सत्ताका अन्तिम और परम स्रोत है। यह वह सत्ता है जिसका प्रत्येक विरुद्ध कार्य असीम नही है। डायसी (Dicey) के धर्मोपे जिस साम्प्रभका वकील लाग मानन है उस पीछे दुगुण साम्प्रभ रहता है। इस साम्प्रभके मामल विधिक साम्प्रभ का गिर हा धराना पडा है। उसी समयके अनुसार वही जिन राजनीतिक साम्प्रभ है जिसकी छाया अन्तिम रूप साम्प्रभे नागरिक मानत है (१२ ६६)। जिनशास्त्रज्ञका परिभाषा इस प्रकार करत है 'राजकी वह समस्त प्रभावामिका जिन (influences) का विधिक पाद्य रहता है (The sum total of the influences in a state which lie behind the law)।

जब हम राजनीतिक साम्प्रभताका बार्ड मरीज परिभाषा जका प्रयत्न करते हैं तो बड़ा भय पैदा होता है। यह अस्पष्ट और अनिश्चित (indeterminate) है। यह बार्ड जमी बन्दु नही है जिन निश्चित एतन निर्धारित किया जा सक। न्यु देगम जहाँ प्रत्येक या शब्द साक्षरतम है विधि और राजनीतिक साम्प्रभता कसब-कसब एक ही हुआ करती है। जिन अधिकतर दार्शनिक जहाँ साक्षरप्रवाण है वहाँ प्रतिनिधि मूलक या अप्रत्येक साक्षरतम है। अब विधिक साम्प्रभता और राजनीतिक साम्प्रभता अलग प्रयोग है। कुछ लखक राजनीतिक साम्प्रभताका मर्यादित समावेन कुछ आम जनतामें कुछ लोक-सम्भति (public opinion) म तथा कुछ साक्षरतम और कुछ लोग जमे उन साक्षरकी आदीकिक दारितम मानत है जो जनतापुत्रक जन्म कर सकत है। इन सभी दृष्टिकोणम साक्षरता का अर्थ है और यह काना अवगम्य है कि इनम म बार्ड एक जगके महाविजय पूरा कर सका है। इस प्रसङ्ग कारण हा कुछ समय साम्प्रभताका जमेक विधिक अर्थों तक हा मर्यादित रखना पडता बनत है और राजनीतिक साम्प्रभताका धारणाकी सिद्धुत निश्चय दत है। एतन का अर्थ है कि विधिक साम्प्रभके पाद्य एक राजनीतिक साम्प्रभका साक्षरता प्रयत्न करना साम्प्रभताकी मनुकी धारणाका नाम कर सका है और यह साम्प्रभताका प्रभावकी सुधामात्र बना देता है (२४ १०)। इस प्रकार साक्षर (Lecock) विगत है 'अस हा हम धारणाकी रूप पर विधिक धारणा ही जात है वमे हा हम धारणा हा जात है (२१ ६१)। एक चीज जो सिद्धुत साक्षर है वह यह है कि यह साम्प्रभता का विधिक है जो एक बरीज और न्यायालय जका माना है। साक्षरता साक्षरताके निश्चय का इसलिये जारिगी धारणाबनाम जहाँ सभी विधिक साम्प्रभके निश्चय का अन्तर

बाधनी हैं। लेकिन वे न तो अधिक सम्प्रभुकी भांति निश्चित होती हैं और न सगठित ही। एक सुब्यवस्थित राज्यके लिए आवश्यक है कि उसमें अधिक सम्प्रभुकी सर्वोच्च सत्ता हो जिसकी आज्ञाओंका पालन अधिकांश नागरिक स्वभावतः करते हों। साथ ही साथ जनताके मनचाहे परिवर्तना को अधिक तरीकेसे लागू करनेके लिए जहाँ तक सम्भव हो अधिकसे अधिक अवसर मिलना चाहिए।

४ लोकप्रिय सम्प्रभुता (Popular sovereignty) लोकप्रिय सम्प्रभुता राजनीतिक सम्प्रभुताका स्वाभाविक विकास है। जनप्रिय सम्प्रभुताके सिद्धान्तके अनुसार अन्तिम सत्ता जनताके हाथमें रहती है। इस सिद्धान्तका प्रतिपादन मध्ययुगमें मार्सीलिया ऑफ पदुआ (Marsiglio of Padua) और विलियम ऑफ ऑकम (William of Ockam) जैसे लेखकोंने किया था। अठारवीं शताब्दीमें यह सिद्धान्त रूसो के उपदेशों का आधार बना। रूसो ने इस सिद्धान्त की घोषणा इनकी चोट पर की (२२ १६४)। उन्नीसवीं शताब्दीमें लोकतन्त्रके विनासके साथ इस सिद्धान्तको यहाँ तक धन मिला कि सभी स्वतन्त्र देशोंमें यह मान लिया गया है कि जनता ही राजनीतिक अधिकार सत्ताकी अन्तिम अधिरक्षक या मालिक है। अधिक सम्प्रभुता यदि ज्ञान-भ्रमकर सगणार जनताकी इच्छाओंका विरोध करती रह तो यह अधिक समय तक नहीं टिक सकती क्योंकि अन्तिम हालतमें जनता बल प्रयोग कर सकती है और शान्ति करके एक नवीन सरकारकी स्थापना कर सकती है। आजकल 'जनताका नियंत्रण और लोकप्रिय शासन' शब्दोंका प्रयोग लोकतन्त्र शब्दके पर्यायके रूपमें किया जाता है। इस प्रयोगसे यह साफ प्रकट हो जाता है कि अधिक सम्प्रभुता पर समूची जनताका अन्तिम नियंत्रण किस हद तक रहता है।

यद्यपि लोकप्रिय सम्प्रभुताका सिद्धान्त बहुत ही आकर्षक है और उससे ज्ञानकी अहं भावना भी सन्तुष्ट होती है पर जब हम इस धारणाका काल्पनिक करने और उसे एक निश्चित अर्थ देनेका प्रयत्न करते हैं तो कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं। जितना ही अधिक हम उस पर विचार करते हैं उतना ही अधिक कठिन उसकी परिभाषा करनेका काम होता जाता है। राजनीतिक सम्प्रभुता की सही आन्वयनाएँ इस पर भी लागू होती हैं। लोकप्रिय सम्प्रभुताकी परिभाषा करनेमें जनता शब्दके निम्नलिखित दो सम्भावित अर्थ किये जा सकते हैं (क) जगत्पति अनिर्गमित समूची जनता (the total unorganized indeterminate mass) (ख) निर्वाचक मण्डल (the electorate)। यह स्पष्ट है कि 'जनता' शब्दका जो पहला अर्थ है उसके अनुसार जनता सम्प्रभु (sovereign) नहीं है। दूसरे अर्थमें यदि जनता को किसी भी मान्य सम्प्रभु बनाया है तो वह अधिक तरीकेसे ही काम कर सकती है। गार्नर (Garner) के शब्दांश 'असंगठित लोकमत' सहित जिनका परिभाषा की नहीं हो यह उस समय तक सम्प्रभुता का धन सत्ता जब तक उगरी धारणा में लिया जाय—ठीक उगी प्रकार जगत् विधाधिकारके सम्प्रभुता काई गररमी और अधिगत प्रत्यावधिपि नहीं बन गवना (१२२ ६५)। व्यावहारिक तौर पर

जन प्रिय सम्प्रभुताका अथ गान्धिव समयम सावजन और मुद्रक समयम शान्तिकी दक्षिण अधिन नहा जान पन्ता (२४ १ ०)।

उपर्युक्त व्याख्याका ध्यानम रखत हुए साकप्रिय सम्प्रभुता और राजनातिक सम्प्रभुताम ध्यान कम अन्तर रह जाता है। गिनया जो इस अन्तर पर बहुत अधिा जार दन है कान है कि नात्र प्रिय सम्प्रभुता व्यावहारिक दष्टिस राजनातिक स्वाधानता अथवा जनता द्वारा नियत्रण क समान हा है। साक प्रिय सम्प्रभुताका अर्थ जनताकी हस गान्धिम वयम्भ मताधिजार जनताक प्रतिनिधिया द्वारा विधाधिया का नियत्रण थोर जनता द्वारा चुन गये सानका राष्ट्रकी अय-नीति पर नियत्रण आदि निहित है। इसक विपरीत गन्म की राय है जनताकी सम्प्रभुता एक धार्मिक अन्तर्विधाय है। तास्की का कहना है कि राजनीतिक सम्प्रभुता का केवल यही अर्थ मानूम होता है कि समाजक किमा मास अगकी अशना समुच जनममूहके हिताका सर्वो-व स्थानमिले। सकिन इसत ता समत्या हन नहा हाता ही बिबा-अवय छिड जाता है।

साकप्रिय सम्प्रभुताकी परिभाषा करनम हम चाह जितनी भी कटिनाई क्या न हो पर इन सिद्धान्तम निम्ननिमित्त महुरवपूर्ण बिचार छिड है

(क) सरकारका अस्तित्व स्वयं अपन कल्याणके लिए नहीं है। उसका अस्तित्व जनताक कल्याणन लिए है।

(ख) यदि जनताकी इच्छाए जान-बूगकर कुचती जाती है ता गान्धिी सम्भावना रहती है।

(ग) साकमतकी अभिव्यक्तिके लिए आमान कधिक तरीका की व्यवस्था बराबर रहनी चाहिए।

(घ) जगी-जगी चुनव स्थानीय स्वायत्त सामन साक निर्णेत (referendum) सोर आरंभ (initiative) और प्रत्यावर्तन (recall) के द्वारा सरकार का प्रत्येक रूपसे जनताके प्रति जिम्मेदार बनाना चाहिए।^१

(ङ) सरकारको अपनी अधिकार समाका प्रयोग प्रत्येक रूपम दणकेसविधानके अनुसार करना चाहिए और मनमान कणम काम नहा करना चाहिए।

^१ लोक निर्णेत (Referendum) लोक आरंभ (Initiative) प्रत्यावर्तन (Recall) ये व पद्धतियाँ हैं जो साकमतका अधिक प्रयोग बनान तथा सरकार की रीति-नानि पर जनताका अधिक नियत्रण रखने के लिए अन्नायी जाती हैं।

लोक निर्णेत (Referendum) इस पद्धति क अनुसार किसी विधेयक का सारार करने या काङ्कित करन के पत्र उम पर पूरे निरासह समुदाय की सम्मति ली जाता है। इस पद्धति क अन्तगन विधेयक विधाधिया द्वारा स्वीकार किने जाने पर भी तब तक मान्य नहा होता जब तक उमे मन्तनामाओं का एक निश्चित बहुमत स्वीकार न करे।

लोक आरंभ (Initiative) इसके अनुसार मन्तनामाओं की एक निश्चित गंस्या किमी एक बिधय पर बिधि निमान की या कइमान बिधि म परिवर्तन की माग

५ विधिसम्मत (ज्ञाननी) और वास्तविक सम्प्रभता (De jure and De facto Sovereignty) सम्प्रभुता वास्तविकताका प्रश्न है और इसलिए कभी कभी विधिसम्मत (de jure) और वास्तविक (de facto) सम्प्रभुता के बीच भेद किया जाता है। विधिसम्मत (de jure) सम्प्रभ अधिक (legal) होता है अर्थात् विधि उसे सम्प्रभु मानती है तथा वास्तविक (de facto) सम्प्रभ वह है जिसकी आजा जनता वास्तविक मानती है—उसकी चाह वाई विधि स्थिति हो या न हो। वास्तविक सम्प्रभुता गौरीरिक्त बल या धमके बल पर टिक सकती है पर विधि सम्मत सम्प्रभुता का आधार विधि होता है और विधि उम यह अधिकार देती है कि वह अपनी आज्ञाशुका पालन कराये। विधिसम्मत और वास्तविक सम्प्रभुता का अन्तर विशेषे दिन।म बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है। कुछ प्राक्तियों केवल सन्तारक सामन यत्रम या दासन करने पास ध्यक्तियों म कुछ परिवर्तन ही करती हैं पर कुछ प्राक्तियों पुराने धधिक सम्प्रभु को एकदम समाप्त करके उसका स्थान पर नय सम्प्रभुता स्थापित करती हैं। ऑस्टिन ने वास्तविक सम्प्रभुता और वैधिक सम्प्रभुताम कोई अन्तर नहीं माना था क्योंकि ऑस्टिन का कहना है कि सरकारें वास्तविक और विधि सम्मत तो हो सकती हैं लेकिन 'वैध और अवध' शब्द का प्रयोग सम्प्रभुताके लिए नहीं किया जा सकता। वास्तविक सम्प्रभुताको अवध मानना गत है। क्योंकि सम्प्रभुताका तथ ही वह दक्ति है जिसका बल पर लागूको अपना आपाकारी बनाया जा सकता है। हर दग की आन्तरिक शांति और ध्यवस्थाक हितम यह आवश्यक है कि विधिसम्मत और वास्तविक सम्प्रभ एक ही हो। और यदि कभी कनाम सधय हो जाय ता गधपं अधिक समय तक नहा रहना चाहिए। दूसरे दक्षम दक्ति और पाय जानावा मेन होना चाहिए। जैत ही एक वास्तविक सम्प्रभ (de facto sovereign) अपन आपकी स्थायी रूपम प्रतिष्ठित कर लता है उसकी धधिन स्थिति भी बनन लगती है और अन्त म वह विधिसम्मत सम्प्रभु बन जाता है।

इसका एक ही उदाहरण पयाज है। चीनम प्यांग-काई-ताक का सामन समाप्त कर देनेके बाद तुरन्त ही साम्यवाणी सरकार वास्तविक तौर पर सम्प्रभु हो गयी थी। वह आज तक गामनारुद्ध है और कान भी उसकी गलाका धुनौती देने वाला नहा है। अनक देगान त्रिनम भागन भी दामिय है उमे माग्यना प्रगन की है

पकती है। मन्गता चाने तो उम विधिधी रूपरगा और उसका विवरण गनी कुछ बनमा दें। अपवा पाहें मा प्रस्तावित विधि का सामांय उद्देश्य विधायिका का यक्तना दें और उगीता विधि का विवरण तैयार करन का काम गीत दें। दाना ही हानता में विधयक (bill) पर जनता की राय सी जाती है। वह विधयक कभी लागू होता है अर्थात् विधि (law) बनता है जब मन्गताका का बहुमन उत स्वीकार कर लेता है।

प्रयापन (Recall) इस पद्धति क अनुसार जब कोई विधायक निहायक मण्डल का आगत या सम्पूर्ण विन्दाग गाना है तब उम उमकी अवधि गमाल हाा से पूर्व फिर से चुनाव लड़ने के लिए मजबूर किया जाता है।

अन अथ चीनका साम्यवादी मन्त्रालय बान्धविक और विधिसम्मत दाना हा सम्प्रभुताका ग पूरा मानी जा सकती है।

४ सम्प्रभुताकी स्थिति (Location of Sovereignty)

राजनीतिशास्त्र विद्यार्थीके लिए सम्प्रभुताकी स्थितिका प्रश्न बहुत कठिन है। प्रसिद्ध विचारवांन इस प्रश्नपर विभिन्न मत स्थि हैं। मन्त्र का कहना है कि इन विचारकके अनुसार सम्प्रभुताकी स्थिति प्रमाण इस प्रकार है

(१) राज्यकी जनता

(२) उस मन्त्रम त्रिमे राज्यक अधिकारका बनाने या उसमें परिवर्तन करनेका अधिक अधिकार हा

(३) राज्यक शासनमें जा विधि बनानेवाली अधिक संस्था हा उनके सत्सिद्ध रूपमें (२४ १८)।

इनमें प्रथम दृष्टिकोण पर अधिक विचार करनेकी आवश्यकता नहा है। सामान्य सम्प्रभुताकी विवेचना करते समय हमने उन अनेक आलाचनाओंका उल्लेख किया है जा इस दृष्टिकोणके सम्बन्धमें दी जाती हैं पर दोष दो दृष्टिकोणोंका हम आगामीग नहा टाल सकते हैं। जहाँ तक प्रिन्सिपल सम्बन्ध है वहाँ तक सांविधिक विधि (constitutional law) और पार्लिमेन्टरी अधिकार विधि (statute law) में कोई अन्तर नहा किया जाता। अतएव वही सम्प्रभुताकी स्थितिका नियम करना कठिन नहा है। प्रिन्सिपल अधिकार मनीना है। व अमेरिकाक अधिकारकी तरह पार्लिमेन्टरी अधिकार वही है। व अधिकार मन्त्रिमन्त्र मन्त्रिमन्त्र (Parliament) त्रिमन्त्र मन्त्रिमन्त्र (King) हाउस ऑफ लॉर्डस (House of Lords) और हाउस ऑफ कॉमन्स (House of Commons) पार्लिमेन्ट हैं। सत्सिद्ध (Parliament) कोई भी विधि बना या रद्द कर सकता है। इसीलिए उस अधिक सम्प्रभुताका जाता है। राजनीतिक सम्प्रभुताकी जनता या सत्सिद्ध नियम निर्वाचक-मण्डल है।

अमेरिकाक अधिकार बहुत अधिक अनन्त (rigid) है। इसीलिए वहाँ सम्प्रभुताकी स्थितिका नियम करना आसान नहीं है। अमेरिकाक अन्तिम और परममूला अधिकार गता सत्सिद्धिकता है जोर न सत्सिद्ध अथवा मन्त्र के विधायिकाशा (legislatures) का ही प्राण है। उनका जा भी नाम अधिकारकी सीमाएं बाहर जाना है उनका विधि सत्सिद्धिकता न्यायालय उन्हीं टाल सकता है। इसीलिए उनमें सम्प्रभुताकी स्थिति न है। सम्प्रभुताकी स्थिति उन सम्बन्धमें है कि अधिकारमें सत्सिद्धिकता करनेका अधिक अधिकार प्राण है। अमेरिकाक अधिकारका अधिकार पार्लिमेन्ट ही सम्बन्धका बना इस प्रकार करती है। जब भी मन्त्रिमन्त्र (Congress) क दाना मन्त्रिमन्त्र क विधि सम्बन्ध अधिकार सत्सिद्धिकता वही (Congress) इस अधिकारमें सत्सिद्धिकता प्रस्ताव बना करेगी अथवा दान-विधि सम्बन्धिक विधान सभाधिकार प्राणिकता पर देने पर अधिकार सत्सिद्धिकता प्रस्ताव मन्त्रिमन्त्र किये एक सम्बन्धिकता आयाचन

करगी। इन दाना ही दशाभ्रामें यह सघोधन जब तीन चौथाई राज्याकी विधान सभाया द्वारा स्वीकृत हो जायग अथवा सम्मेलनन तीन चौथाई राज्यों द्वारा स्वीकृत हो जायग तब वह संविधानका एक अंग बन जायगा और सभी अर्थोंमें प्रामाणिक समझा जायगा। स्वीकृतिका दोनाम स कोई भी एक तरीका वाधस द्वारा प्रस्तावित किया जायगा।

रूचक (Roucek) तथा अन्य मागका कहता है अमरिकाय राज (checks) और सन्तुलन (balances) की जा प्रथा है वह सरकारकी किसी भी एक शाखाय सम्प्रभुताकी स्थिति नहा होने देतो। शुरूम अमरिकाय एक मिश्री जुली (mixt) या विभाजित सम्प्रभुताकी बात करत थ। वे लाग भित्त रूयामें सर्वोच्च न्यायालय, विधि बनानेवाली सस्था विधिका सागू करनवाली सस्था और विधिम सघोधन करनेवाली सस्थाआवा सम्प्रभु बताते थ। बलाग तो यह भी कहत थ कि सम्प्रभुता सय सरकार और राज्य सरकारके बीच बगी हुई है। हामिल्टन (Hamilton) और मडिसन (Madison) गहरी सम्प्रभुताकी बात करते थे। १७९२ म चिशोम (Chisholm) बनाम जॉजिया वाले मुकदममें सर्वोच्च न्यायालयने इसे मजूर कर लिया था। इस सबके धारेम कर्नार्ड यह है कि शुरूम अमेरिकाके लाग यह नहीं समझ सके कि सक्तिवा वितरण सक्तिवा विभाजन नहीं है।

गणन और कुछ अय लेखक उस दृष्टिकानके विरोधी हैं जिसम वैधिक सम्प्रभुता को संविधान बनान और उसम संग्रोधन कर सकनेवाली सस्थाय निहित समझा जाता है। उनका सबसे बग तक यह है कि संविधानका निमाग और सगायन करने वाली सस्थाआका अधिवेशन लगातार नहीं होना रहता। उनका अधिवेशन ता आवश्यकता नुसार बुनाया जाता है। इस प्रकार बहुत सों अधिविधा म ये सस्थाएं बिकुल अक्रिय रहती हैं। इसलिए राज्यकी सम्प्रभुता इन सस्थाआम हा ही नहीं सक्ती बवाकि सम्प्रभुता हमेशा सक्रिय रहती है। येतोग विधि बनानेवाली सस्थाआके सक्रिय रूपम सम्प्रभुताकी स्थिति मानत हैं। इन सस्थाआम निम्नलिखित शामिल हैं (२४ १०२)

(१) विधायिका (Legislature)—राष्ट्रीय राष्ट्र-मण्डलीय (commonwealth) और स्थानीय।

(२) न्यायालय (Court)—जहाँ तक वह विधिवारा निमाग करते हैं न कि केवल व्याख्या और उसका प्रयोग करनेकी स्थितिम।

(३) कार्यपालिकाके पदाधिकारी (Executive officials)—जहाँ तक वह अध्यादेशों (ordinances) घोषणाआ (proclamations) आदिके द्वारा विधि बनाने हैं।

(४) सम्मेलन या सभाएं (Conventions)—जब कि वह वैधिक अंगस विधि-निर्मात्री परिपक्विकी रूपमें काम करने हैं। उदाहरणक तिम विधिसूत्र बनाना गया साधनिक-सम्मेलन।

(५) निर्वाचक मण्डल (The Electorate)—जब कि वह लोक निर्णय (referendum) अथवा जनमत (plebiscite) के अधिकारों का उपयोग कर रहा हो (२४ १०)।

इन दृष्टिकोणों अनुसार सम्प्रभुताम सरकार उन अंगों का छाड़कर जो गुड प्रायोजन ही सम्बन्धित हैं तब तक ही अंगों का प्रायोजन (२४ १०३)। मन्त्रों के अनुसार इन दृष्टिकोणों की सबसे बड़ा विधि यह है कि इसमें सावधानिक विधि (constitutional law) और परिनियम विधि (statute law) के बीच और सरकार के विभिन्न अंगों के बीच कोई भेद नहीं किया गया है। इनके अलावा नागरिक सम्प्रभुता के सिद्धान्त के समान ही इसमें यह स्वीकार किया गया है कि आपुनिक नागरिक सम्प्रभुता की परिभाषा राज्य के नागरिकों के बीच हुई है और उनका द्वारा उनका उपयोग होता है। संविधान-निर्माण-सिद्धान्त (constitution making theory) की भाँति इसमें यह स्वीकार किया गया है कि सम्प्रभुता एक अधिकार प्रणाली है और उसका प्रयोग अधिकारों के द्वारा प्रणाली ही किया जा सकता है। यह दृष्टिकोणों का अस्पष्टता और विचारों की निश्चिन्ता है वह इसमें नहीं है। साथ ही साथ दूसरे दृष्टिकोणों में जो अधिकार भाव (legal abstraction) है और त्रिभुज सम्प्रभुता का बहुत ही अधिक प्रयोग कर उसमें अस्पष्टता ही प्राप्त नष्ट कर दिया है उनमें भी यह दृष्टिकोणों का एक अंग है (२४ १०६)।

मन्त्रों द्वारा बनायी गयी विधि-प्रणाली के बावजूद यह सिद्धान्त सन्तुष्ट नहीं माना जाता। इनमें मूल ही राज्य और सरकार का समानता बड़ा भारी घम किया गया है। विधि बनाने वाली विभिन्न संस्थाएँ राज्य की आध्यात्मिक एकात्मता (organic unity) की प्रतीक हैं। वे राज्य की सम्प्रभुता के विभाग नहीं हैं। विधि बनाने के अधिकार उन्हें प्राप्त हैं वह प्रत्यक्ष अधिकार (delegated powers) हैं। इसलिए सम्प्रभुता की स्थिति उसमें नहीं है। सम्प्रभुता उस संस्था है जो संविधानों को बना सकती है उसमें स्थापन कर सकती है और अंगों की स्थिति को उन विभिन्न अंगों का स्वरूप है जो उसकी इच्छाओं को प्रकट करते हैं।

डॉनाल्ड रसल (Donald E. Russell) का कहना है कि एक पूर्ण निष्कर्ष निष्कर्षों का स्वरूप है कि संयुक्त राज्य अमेरिका में तो सरकार का कोई अंग विशेष और न कोई एक व्यक्ति या गुण सम्प्रभुता के अधिकारों का पूर्णरूपेण प्रयोग करता है। वह इन अधिकारों में प्रयत्न मानता है कि संयुक्त राज्य अमेरिका सम्प्रभुता ही नहीं है। अथवा यदि है तो जब तक वह स्थायी रहती है। यह भ्रम इन कारणों से उत्पन्न हुआ है कि नागरिक और सरकार के बीच अन्तर समझने में अस्पष्टता रह गई है। सम्प्रभुता का स्वरूप ही है और वह विधि-प्रणाली की ही भाँति है। मन्त्रों के विचारों अथवा सोचना और सम्प्रभुता के बिना ही दोषों का बीज नहीं है। राज्य के भीतर सम्प्रभुता के प्रयोगों का अन्तिम स्तर तक तकनीक सम्प्रभुता ही है। मुख्य अधिकारी का राज्य है और सरकार तो राज्य का एक अंग है।

भारतम इस समय सम्प्रभुता सविधानम निहित है।

५ ऑन ऑस्टिन का सम्प्रभुता सम्बन्धी सिद्धांत (John Austin's Theory of Sovereignty)

ऑस्टिन अपनी पुस्तक *Lectures on Jurisprudence* में लिखते हैं सम्प्रभुता और स्वतंत्र राजनीतिक समाजकी धारणाओंको मक्षपम इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है 'यदि एक निश्चित उच्च कोटिका मनुष्य जो स्वयं अपने समान किसी दूसरे मनुष्यकी आज्ञापालन करनेका अभ्यासी न हो और जिसकी आज्ञापालन समाजके अधिकांश लोग स्वभावतः करते हैं तो वह मनुष्य उस समाजम सम्प्रभु है और वह समाज (उस मनुष्य सहित) राजनीतिक और स्वतंत्र समाज है। विधिको एक उच्च व्यक्ति द्वारा निम्न कोटिके लोगोंका दिया गया आदेश कहा गया है; ऑस्टिन के मतम विधि उन नियमोंका सङ्कलन रूप है जो राजनीतिक दृष्टिसे अधीन व्यक्तियों के लिए राजनीतिक दृष्टिसे उच्च स्तरका व्यक्ति या सम्प्रभु बनाता है। संपाजका बहुमत उच्च कोटिके मनुष्यके आदेशोंका पालन मुख्यतः इसलिए करता है कि उस उच्च कोटिके मनुष्यम अपने 'अधीन व्यक्ति या व्यक्तियों पर असीम दबाव डालनेकी शक्ति होती है (प्रथम सङ्क २२६ १८६९ का संस्करण)।

ऑस्टिन के सम्प्रभुता सम्बन्धी सिद्धान्तम ध्यान देने योग्य सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि उन्होंने शक्ति अथवा बलको ही निर्णायक तत्व माना है। उनके विचार म विधि अथवा अधिष्ठान या 'यापका तो प्रश्न ही नहीं है। यदि रूखा इच्छा पर जोर देते हैं तो ऑस्टिन शक्ति पर जोर देते हैं (५७ ३५०)। इस कारण घोसाक का कहना है ऑस्टिन की सम्प्रभुता सम्बन्धी धारणा शक्ति पर आधारित है हम आन्तर्वादियोंके विचारमे सम्प्रभुता समूची जनताकी इच्छा पर आधारित है (५ ५५)।

टी० एच० वीन ने ऑस्टिन और रूसो के सम्प्रभुता सम्बन्धी प्रत्यक्ष विरोधी सिद्धान्तोंमे मम पैठानेकी शक्ति की है। उनका कहना है कि रूसो के विरुद्ध ऑस्टिन का यह मत ठीक है कि सम्प्रभुता एक ऐसे निर्दिष्ट व्यक्ति या व्यक्ति समूहम निहित रहनी है जिसमे विधियाको लागू करने और जनता द्वारा उनका पालन करानेकी शक्ति होती है और जिस पर किसी प्रकारका अधिक नियंत्रण नहीं चल सकता (२९ ९७)। वीन का कहना है कि जब पश्चिमी देशमे सम्प्रभुता का यह निश्चित अर्थ माना जा चुका है तब रूसो ने सम्प्रभुताकी स्थिति एक अनिश्चित सार्वजनिक इच्छाम यथावर अपने पाठकोंको ध्रममे डाल दिया है। पर ऑस्टिन के कथन की तुलना म रूसो का यह कहना ठीक है कि सम्प्रभुकी आज्ञाओंका पालन करनेका मुख्य कारण भय नहीं है बल्कि यह विचार है कि इन आज्ञाओंका माना जाना सामाजिक कल्याणके लिए जरूरी है और व्यक्तिगत कल्याण सार्वजनिक कल्याणका अभिन्न अंग है। दूसरे शब्दोंमे एक निश्चित प्रमाण व्यक्तिकी आज्ञा इसलिए मानी जानी है कि उस सार्वजनिक इच्छाका प्रतीक समझा जाना है। सम्प्रभु दबाव डालनेकी असीमित शक्तिका प्रयोग नहीं करता। अपने सामान्य हितोंके सम्बन्धमे जनताकी निश्चित धारणाओंके साथ सार्वजनिक

हा ता आश्रितकार उसकी शक्ति का आधार है (२९ ९६)। सम्प्रभुकी अधिकार-सत्ताकी स्वातंत्र्य प्रत्यक्ष व्यक्तिगत दत्तम सम्प्रभुका भय मात्र नहा टहराया जा सकता है। वह कुछ निश्चित उद्देश्याकी सिद्धि के लिए सामान्य इच्छा है (२९ ९६)। यदि यह इच्छा सक्रिय नहीं रह जाती अथवा सम्प्रभुक आदेशों से उसका समय हो जाता है तो साग सम्प्रभुकी आशा मानना भाग्य बन कर देगा।

सम्प्रभुता-सम्बन्धी अधिकृत दृष्टिकोणकी सबसे अच्छी व्याख्या जॉन ऑस्टिन ने की है। उनकी व्याख्याम बर्णानिक स्पष्टता और पूनता है जो बहुत ही प्रभावपूर्ण है। उनकी व्याख्याका निम्नलिखित चार सीधे सादे प्रमेया (propositions) में दिया जा सकता है

- (१) प्रायःक राज्य (जिसे ऑस्टिन स्वतंत्र राजनीतिक समाज कहते हैं) में एक ऐसा निश्चित उच्चतर मनुष्य होता है जिसकी आज्ञा समाजके बहुसंख्यक नागरिक स्वभावतः मानते हैं।
- (२) यह उच्चतर मनुष्य जो कुछ भी आज्ञा देता है वही विधि हाता है और उसके आदेशोंके बिना कोई विधि नहीं बन सकती।
- (३) इस उच्चतर मनुष्यकी शक्ति, जिसे सम्प्रभुता कहते हैं अविभाज्य है।
- (४) यह सम्प्रभु-शक्ति परमरूप हाती है और उस पर प्रतिषेध नहा लगाया जा सकता।

आनाथना

(१) आनाथको जे ऑस्टिन की इन सभी बातोंके करी आनाथना की है। फिर भी ब्रैसा कि नाइ न कहा है कि इनमें से हर एकमें कुछ महत्वपूर्ण सत्य या अथसत्य हैं।

(२) ऑस्टिन ने सबसे पहले जिन 'निश्चित उच्चतर मनुष्य' की बर्णना की है उसकी आनाथना सर हेनरी मैन (Sir Henry Maine) ने अपनी पुस्तक *Early Institutions* में की है। उन्होंने लिखा है कि पूरके अनेक साम्राज्योंमें एसी कोई चीज है ही नहीं जिनमें ऑस्टिन का 'निश्चित उच्चतर मनुष्य' कहा जा सके। उदाहरण के लिए पञ्जाबके नियम राज्यमें राजकीन सिंह ने अपनी प्रथा पर निरंकुश अधिकार करने से। उनके छात्र छोटे आनाथका उन्नयन करनेका दण्ड पाँसी या अंग भंग हुआ था। पर वह भी समाजकी प्रथागत विधि (customary Law) के अधीन रह और उन्होंने कभी कोई ऐसा आदेश नहीं दिया जिसकी बर्णना ऑस्टिन ने करने सिद्धांतम की है। प्रचार के साथ ही निरंकुश मुगोंकी देन होती है और किसी निश्चित व्यक्ति या व्यक्ति-समूह को उसका भेद नहीं दिया जा सकता। इसीलिए यह स्पष्ट है कि जिन सम्प्रभुकी बर्णना ऑस्टिन ने की है वह राज्यके अधिकार के लिए अनिवार्य नहीं है क्योंकि यह कहना तो एकदम स्पष्ट है कि नहीं वही ऑस्टिन

की धारणाका सम्प्रभु नहै। यहाँ या तो अराजकता है या प्राकृतिक व्यवस्था (१४ ८८)। जॉन चिपमन ग्रे (John Chipman Gray) का कहना है कि समाजके वास्तविक शासकोंका दूरवर पता नहै। लगाया जा सकता (४७ ५६)।

(ग) ट्रिग्नम एक निष्पट उच्चतर व्यक्ति की स्थिति मानूम करना आसान है। पर जब इस सिद्धान्तको पूर्व प्राचीन निरनुस राज्या अथवा अमेरिकाने सविधान पर लागू किया जाता है तब इसमें सहायना नहै मिलती। फिर भी हम साइके इस विचारसे सहमत हैं कि यदि किसी राज्यमें सर्वोच्च शक्तिकी स्थिति निर्दिष्ट करनेमें कठिनाई होती हो तो इससे माने यह नहै कि हम इस शक्तिके अस्तित्वको ही मानने से इन्कार करें। व्यवहारमें तथा सिद्धान्तमें एक एसी परम सत्ताको स्थापना सम्भव है जिसके आगे कोई अतीत नहै। सवे (१४ ८८)। हा सत्ता है कि इस शक्तिसे उनका लाभ न हो जितना इसके लिए परिश्रम करना पड़।

(ग) यह सिद्धान्त बिल्कुल ही भावमूर्ख और अधिक् है और इसमें सम्प्रभुताके दार्शनिक पक्षका कोई विचार नहै किया गया है। सार-सम्मति (general will) का ही आजकल शासकवर्गकी राज्योंका आधार माना जाता है। जैसाकि गानरने कहा है यह उच्चतर व्यक्ति (अर्थात् ऑस्टिन का सम्प्रभु) न तो साक्षरनिष् इच्छा हो सकती है जैसाकि म्बो ने सोचा था न अन्यायका समूह ही हो सकता है न निष्ठापक मण्डल और न जनमत न नैतिक भावना न सामान्य विवेक न परमात्मा की इच्छा आदि। उस तो एक निश्चित व्यक्ति या सत्ता होना चाहिए जो स्वयं किसी अधिक् प्रतिश्रम के अधीन नहै (२२ १७९ ८०)।

(घ) और फिर यदि सम्प्रभुकी अधिकार सत्ताका आका कबल स्वभावत ही मानी जाती है तो फिर सम्प्रभु अधिकार सत्ताका असीमित मानना व्यक्तिगत नहीं जान पड़ता।

(२) ऑस्टिन की दूसरी मायता यह है कि एक निष्पट उच्चतर मतप्य के रूपमें सम्प्रभु सर्वोच्च विधि निर्माता है। वह जो भी आदेश देता है वही विधि है। प्रत्येक समाजमें आदेशमूलक विधिसे साथ ही पायी जानेवाली पुरानी प्रथाओं और परम्पराओं का धारण जिनका पालन होता है ऑस्टिन का कहना है कि सम्प्रभुका अनुमति देना भी उसका आदेश है। इसका उदाहरण ट्रिग्नम की सामान्य विधि (common law) है जिसका अस्तित्व प्रथाओं पर है और जिनको धारण जिनका सन्तोषन और गवर्नर उस समय होता है जब अज्ञानों उनका प्रयोग करना है (२८ ११५)। यह कहा जा सकता है कि ट्रिग्नमरा मन्नाड अपनी गणने साथ उस सामान्य विधिकी अनुमति देना है और जब चाह उममें मनमाना परिवर्तन कर सकता है पर यह बेवन्तिदात्मक है। वास्तविकता यह है कि सम्प्रभु अपनी गुरगाका लक्ष्येमान बिना सामान्य विधिमें अधिक् परिवर्तन नहीं कर सकता।

अब हम पहले प्राचीन साम्राज्यों पर विचार करने हैं तो हम यह मानें हैं कि उनमें भी स्वैच्छिकी शासककी शक्ति विधि बनानेकी हद तक नहीं पहुँचती थी।

न सम्राज्या का कार्य अधिकतर राजस्व इकट्ठा करना और सैनिक भर्ती करना था। सम-समय पर यदि जानबाल विपद् आये तो ग अलग बहु कोई दूसरी विधि लागू नहीं करती थी। उन्हीने जमा प्रयागन विधि का 'यापालयाके' द्वारा लागू नहीं किया (२९ ९०)। जो याने जनता का साधारण जीवन का नियमन करती था उनमें निरतुंग राज्यों ने कभी हस्तगप नहा किया। ये याने अनिच्छित होती था और किसी निश्चित व्यक्ति या व्यक्ति समूहम स्थित नहीं रहती था। और यदि इहे किसी व्यक्ति या व्यक्ति-समूहमें स्थित माना भी जाता था तो वह सम्मिलित रूपसे पुनोहित अथवा प्रयागन धर्म का व्याख्यातासाम परिवार सहित परिवारके प्रयागामे और परिवारकी सीमा का बाह्य अधिकार रखनवाली ग्राम पचायतान माना जाता था (२० ०)। मगपम अस्तित्व का सिद्धान्तम भल यह है कि सभी प्रकार की विधियाँ का बचन आत्म मान लिया गया है और केवल शक्ति पर ही प्रभुत्वमे उपाय उार किया गया है। उनका सिद्धान्तम सम्प्रभुकी प्रधानता केवल आण्णमूलक विधि का शक्तिम है और उनका सिद्धान्त केवल व्यक्ति दृष्टिमें ही लागू लिया जा सकता है नकि अथवा भौतिक शक्तिमें नहीं। आण्णमूलक विधि का निमाता रूपम हा सम्प्रभु सर्वोत्प और अनियंत्रित है।

ऊपर का कुछ बताना गया है उसमें यह स्पष्ट हा जाता है कि अस्तित्व का सम्प्रभु विधियोका एकमात्र निमाता नहा है। दुग्गी (Duguit) का यहाँ तक कहते हैं कि राज्य विधियाँ को नहा बनाता बल्कि विधियाँ ही राज्यको बनाती हैं। उनका कहना है कि विधि तो सामाजिक आवश्यकताकी अनिवार्यतामात्र हैं। शासकी की भाषाम विधिशास्त्र (juris) का लिए भी यह घोषणा कि विधि एक आण्णमात्र है परिभाषाके उग धार कर पढ़ना देना है जहाँ गिदना समाप्त हा जानेवाली हो। उन्हाकरके लिए यह कहते हैं कि मताधिकार की विधि आण्ण नहीं है।

(१) अस्तित्व की सींगरी मानना यह है कि सम्प्रभुता अविभाज्य है।

(२) जैसा कि लॉक ने कहा है एक दृष्टिकोने सम्प्रभुता को अविभाज्य मानना विवेचनाकी कमी पर गिद सही सजता। हर राजनीतिक समाजम काव्याका (पदविच्छेदना) दो-बाँटा हाता है और इन प्रकारके स्वायत्त विभाज्य भी सरकार सरकार-द्वारा नहीं चल सकती। शिवाय सविधानम विधाय (legislative) सम्प्रभु काव्या एक कार्यवाह (executive, और एक न्यायिक (judicial) सम्प्रभु भी हाता है। मसलत हाउस ऑफ लॉर्डस् (House of Lords) तथा हाउस ऑफ कॉमन्स् (House of Commons) इन माना को विचारक विधि सम्प्रभु हाता है। शासनात्मक सम्प्रभु शासक और सचिवाका विचारक बनता है। स्वायत्त सम्प्रभुता का म सर्वोत्प जरीयाने लिए सर्वोत्प 'यापालयाके' रूपम हाउस ऑफ लॉर्डस् काव्या है। यह सीना अन्तिम अधिकार-संयमने एक दूसरे सीनी स्वयत्त है कि केवल शासनात्मक सम्प्रभु ही शासनात्मक बनता सजता है जबकि विधायिका अथवा सींग पर भय हा सजती है और सर्वोत्प शासनात्मक अविभाज्य सम्प्रभु नहीं

हुआ करता (५४ ८९)। इसमें मालूम होता है कि सम्प्रभुता विभाजित की जा सकती है। इसका उत्तर ऑस्टिन ने अनुपायी यह दगे कि केवल विधायी सम्प्रभु (legislative sovereign) ही वास्तविक सम्प्रभु है क्योंकि कायपालिका और न्यायापालिका प्रायः उसके आदेशोंका पालन करती हैं। पर संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे देशोंके बारेमें क्या कहा जायगा जहाँ एक आधारभूत विधि (fundamental law) है जिसे विधान (legislation) के साधारण तरीक़ेसे नहीं बदला जा सकता। ऐसे मामलोंमें हम यह मान सकते हैं कि विधिसे सम्बन्धित विभिन्न साधारण और विशेष अर्थके पीछे एक प्रगुप्त शक्ति रहती है जो अपने अधिकार और शक्तियाँ इन को दिये रहती है और सिद्धान्त अपने इन अधिकारों और शक्तियोंको फिर वापस ले सकती है (५४ ८९)। पर एसी शक्तिको—जो जनता ही हो सकती है—कभी कोई स्वभावतः आज्ञापालन नहीं प्राप्त होता सिवाय इसके कि जनता स्वयं अपने एजेंटोंके माध्यमसे अपनी आज्ञाओंका पालन करती है (५४ ८९)। ऑस्टिन के समयमें यह कहा जा सकता है कि कर्तव्यका विभाजन हो सकता है पर इच्छावा नहीं। इच्छा तो एक इकाई है। राज्य आत्म विरोधी ढंगसे काम नहीं कर सकता। उद्देश्य एक ही होना चाहिए वह चाहे जितना मिश्रित क्यों न हो। इन दृष्टिसे ब्याख्या करने पर यह सही है कि सम्प्रभुता अविभाज्य है। इसका अर्थ केवल इतना ही है कि राज्यकी एवता अनिवाय है।

(ख) अधिक सम्प्रभुता और राजनीतिक सम्प्रभुताके बीचके अन्तरका अर्थ भी कभी-कभी यह समझा गया है कि सम्प्रभुताका विभाजन हो सकता है। ऑस्टिन इस तत्वको जानते थे कि ब्रिटेन की जनता या बहुसंख्यक सर्वसाधारण लोग जैसाकि वह उन्हें कहते हैं—सम्प्रभुताके साक्षी-गण हैं। पर क्योंकि ऑस्टिन वैधिक और राजनीतिक सम्प्रभुताके बादके अन्तरको नहीं समझ पाये इसलिए उन्होंने जनताका भी वैधिक सम्प्रभुता एक अंग मानने की भूल की है। गिस्त्राइस्ट के अनुसार ऑस्टिन विभिन्न प्रकारसे यह कहते हैं कि-

- (१) पार्लियामेण्ट या संसद सम्प्रभु है
- (२) राजाट अभिजात वर्ग (peers) तथा निर्वाचक-मण्डल सम्प्रभु है
- (३) पार्लियामेण्टके भंग हो जाने पर निर्वाचक-मण्डल सम्प्रभु है
- (४) हाउस ऑफ़ कॉमन्स (House of Commons) को शक्ति प्राप्त है जो
 - (क) 'यासमुक्त (free from trust) है
 - (ख) ग्यासपारी (trustees) है (२८ ११६)।

(४) ऑस्टिन का चौथा प्रमेय यह है कि सम्प्रभुता परमपूज्य और असीमित है। बहुसंख्यकियोंने इस बिचार की बहुत कड़ी आलोचना की है। जो बहुसंख्यकी नहीं है उन्होंने भी स्वीकार किया है कि सम्प्रभुता वैधिक दृष्टिसे असीमित हो सकती है पर राजनीतिक और इतिहासीय प्रतिबंध उसे चारों ओरसे घेरे रहते हैं। सम्प्रभुकी असीम शक्ति और अनन्त अधिकारको वे लोग विधि-शास्त्रकी भावकल्पना-मान्य मानते हैं।

(क) ब्लन्त्स्ली (Bluntschli) का कहना है 'राज्य सभ्य गतिमान नहीं है क्योंकि बाहर वह अथ राज्योके अधिकारोमे और भीतर स्वयं अपनी प्रकृति और व्यक्तिगत सम्पत्तयोके अधिकारोमे सीमित है। इसी प्रकार वायम का कहना है कि राज्यकी सम्प्रभुता अथ राज्योके साथ की गयी संधिवासे सीमित है। ब्रिटिश संसदकी सम्प्रभुताके बारेमें लेब्लेसी स्टीफन (Leslie Stephen) कहते हैं कि वह बाहर और भीतर दोनों ओर से सीमित है। 'भीतरमे सीमित होनेका कारण यह है कि विधायिका कुछ निश्चित सामाजिक परिस्थितियोंकी उपज है और समाजका निर्धारण करनेवाली शक्तियांमे वह भी निर्धारित है। बाहरसे सीमित होनेका कारण यह है कि विधि लागू करनेकी उसकी शक्ति लोगोंकी विधि माननेकी प्रेरणा पर निर्भर है और यह प्रेरणा स्वयं सीमित है। यदि विधायिका यह नियम कर दिनीनी आंगवादान सभी वक्त्रोंमे मार डालना चाहिए तो एमे वक्त्रोंको बचाये रखना सरकारानुनी हो जायगा। पर एसी विधि बनाने वाली विधायिका पागल ही नहीं जायगी और वह प्रजा जन्म और मृत्यु हागी जो एसी विधिके आग सिर मुका दे (७५ १८३)।

इस सारी आभाषना का उत्तर ऑस्टिन के अनुयायी यह कहकर देते हैं कि ऊपर बनावे गये प्रतिबंध नशिक हैं वधिय नहीं और वह स्वयं अपने ऊपर लागू किये गये हैं। अधिक दुष्टि में राज्य सभ्य गतिमान है (५१-५१)।

(ग) रीति रिवाजों द्वारा लगाये जाने वाले प्रतिबंधों की घटा पहले की जा चुकी है। संसार के कुछ भागों में रीति रिवाज वास्तविक प्रतिबंध लगा देते हैं। यह कहना कि पत्राच में राजा रणजीत सिंह ने प्रजाओं का अपनी अनुमति दी थी यह कहने के बराबर है कि पाठक गुरुवाकंपन क नियम (law of gravitation) को काम करने की अनुमति देता है। रणजीत सिंह ने रीति-रिवाजों को इसलिए स्वीकार किया क्योंकि उन्हें बलना उनके धूने की बात न थी। ऑस्टिन इस आलोचना का उत्तर यह दे सकते हैं कि सम्प्रभुता सम्बन्धी उनकी परिभाषा बसल सम्य राज्यों पर लागू होती है अथ-गम्य अथवा आत्म-गमात्रों पर नहीं। पर कहनाई यह है कि सम्य राज्यों में भी यह परिभाषा कमसे कम कुछ भाग तक लागू करना-मात्र है। सर जेम्स स्टीफन (Sir James Stephen) निगने है 'त्रिस प्रकार प्रकृति में बार्द परिपूर्ण वृत्त (perfect circle) नहीं है अथवा पुराणा बगर वस्तु (rigid body) नहीं है या कोई एसी यांत्रिक व्यवस्था नहीं है त्रिसम बार्द शक्य न हा या समाज की बार्द एसा व्यवस्था नहीं है त्रिसम गाप केवल स्वापगतिन शक्तिमे के काम करते हों उसी प्रकार प्रकृति में बार्द एसा सम्प्रभुता नहीं है जो परमत्र हो (५१ ५७)। सीमित अधिकार शक्ति नहीं है। आनागारी शक्तों में भी एमे अनेक प्रभाव होते हैं जो सम्प्रभुता पर प्रभाव डाला करते हैं। एक स्वतंत्र व्यवस्थित राजनीतिक समाज में एम प्रजाओं के निबोधने राजनीतिक सम्प्रभुता कहा है।

ऑस्टिन त्रिस बार्दों के लिए बहुत बर्चन से कह थीं (१) विधि और शक्ति

मान्यताओं के बीच भेद करना और (२) आत्ममूलक विधि (positive law) और रीति-रिवाजों के बीच भेद करना। यद्यपि सम्प्रभुता की उनकी परिभाषा सखीण और पठिताऊ हो सकती है, फिर भी सामाजिक परम्पराओं के रूप में प्रतिक्रियावाद का जो बोलबाला है उसको सुधारण में वह कल्याणकारी काम करती है। ऑस्टिन के व्यावहारिक उद्देश्य में से एक उद्देश्य यह भी था कि अधिक व्यवस्था को रीतिरिवाजों के निर्जीव बोझ से मुक्त किया जाय।

(ग) सम्प्रभुता की परमपूर्णता के सिद्धान्त पर सघवाद (federalism) की ओर से भी आपत्ति की जाती है। यह कहा जाता है कि ऑस्टिन ने जिस समय अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था उस समय आधुनिक राज्य अपने प्रारम्भिक काल में ही था। इसलिए यह सर्व न्याय जाता है कि ऑस्टिन का सिद्धान्त एकात्मक राज्य (unitary state) पर ध्यान केंद्रित लागू हो किन्तु मध्यामक राज्यों पर तो वह बहुत कम या बिल्कुल ही नहीं लागू होता। संघ राज्य में सम्प्रभुता की स्थिति निश्चित करना कठिन भले ही हो पर असम्भव नहीं है। मन्तव्य यह है कि संघ राज्य और सरकार को ही समझने में भ्रम कर बैठते हैं।

(घ) कुछ लोग यह कहते हैं कि सम्प्रभुता सम्बन्धी ऑस्टिन का सिद्धान्त वैधिक निरकुशता का उत्पन्न करेगा। ऑस्टिन ने पहले ही समझ लिया था कि इस प्रकार की आलोचना होगी। पर उनका यह कहना ठीक था कि सर्वोच्चता की एसी कोई नीचे तक ऊपर तक श्रृंखला नहीं हो सकती न सदाओं का एका बार्द समकालीन सगठन का मकत है और न सम्प्रभुता की एसी कोई श्रृंखला बन सकती है जो अनन्त (infinity) की बोटि तक चढ़नी पती जाय (२२ १८१)। यह ध्यान रखना चाहिए कि परमपूर्ण सम्प्रभुता का सिद्धान्त प्रतिपादन करने में ऑस्टिन का उद्देश्य उद्गीर्णकारी राजनीतिक विटनेक व्यवस्थापन में जानेवाले सुधार का साहाय्य देना था न कि निरकुश शासन का फिरसे जीवित करना (३०)। उस समय के सन्तों के रूढ़िवादी (conservatives) कायम की सुधार-योजनाओं के विरोधी थे और ऑस्टिन इस प्रकार के आलोचकों के बोलबाले में ही कहते हैं कि रीतिरिवाजों का नियम आदि राज्य की विधियों में न ता स्वतंत्र है न उनका ऊपर है। ये सब राज्य की विधियों के अधीन हैं। इसलिए सर्वोच्च विधायिका वैधिक दृष्टि में सर्वोपेक्ष (omnicompetent) है।

(ङ) सारणी १ अमीनिम और अनन्त सम्प्रभुता के सिद्धान्त की प्राणित्यपूर्ण आलोचना करनेवाला और अन्तर्गद्दीपनावाचक दृष्टिकोण की है। सामाजिक इतिहासीय अनुभवों आधार पर उद्देश्य में सिद्ध किया है कि कहीं भी 'रिमी भी सम्प्रभुता अमीनिम अधिकांश सखीण मनी करनी और समाज में अधिकार करने के प्रयत्न का एक मरणाङ्क की स्थापना ही हुआ है। यह ठीक ही बात है कि रिमि की मंगण (पार्लामन्ट) का व्यावहारिक तौर पर निरकुश अधिकार नहीं प्राप्त है। यद्यपि दृष्टि में मंगण तथा मन्त्रालय का मन्तव्य अन्तर्गद्दीपना कर सकते हैं, पर व्यावहारिक तौर पर वह अपने अस्तित्व का मन्तव्य ही ठानकर ही लेगा कर सकते हैं। अनन्त उनका

गमे कार्योमें उनका अस्तित्व ही समाप्त हो जायगा। (४७ १८)। आस्त्रीय दृष्टिकोणमें विचार करने हुए नाम्की इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि यद्यपि ऑस्ट्रिन के सिद्धान्तकी रूप रत्ना मुराँत है पर उगका उल्ल समाप्त हो चरा है।

लास्की एक बहूतवाणी और अन्तर्राष्ट्रीयतावाणीके रूपमें सम्प्रभुताको सादरे भीतरक दूसरे सगोंके हितमें तथा अन्तराष्ट्रीयतावादक हितमें सीमित रखना चाहत है। उनका कथन है कि कुछ अर्थोंमें दूसरे सघाकी शक्ति भी उतनी ही मौलिक और पूरा है जितनी स्वयं राज्यकी। वह लिखत है अपने-अपन क्षत्रमें यह सघ सम्प्रभु राज्य म कम नग हैं (४७ १०)। इमलिए यह धारणा कि अधिकार मत्ता न केवल सीमित है बल्कि उस मामिल होना चाहिए राजनानिक गानकी एक आधारभूत मायता है (४७ ६)।

लास्की का कहना है कि मानवता के हित म भी सम्प्रभुता का सीमित होना आवश्यक है। वह इस उल्लेखो नही भानि ममझते हैं कि सब शक्तिगामी स्वतंत्र राज्यों का आपस में प्रतिपागी होना बिना की शान्ति और एकताके लिए पातक है। गमार के राष्ट्रों का परस्पर एक दूसरे पर आधिपत्य रहना औरदार गुणाम समर्पन करने हुए यह कहते हैं निश्चिन्त सीर पर एक एस खनत्र और सबसबित्तमान राज्य की कल्पना मानवता के हितों के प्रतिबन्ध है आ अपने सगस्यों म सरकार के प्रति पूरा बजागारी का माग करता है और आ अपना शक्ति से लोगों को बजागर बनाता है। हमारे सामने समस्या यह नग है कि हम मानवता के हितों और शिष्टों के हितों को एक दूसरे के अनुबन्ध बनायें। समस्या यह है कि हम सगप्रकारस काम करें कि शिष्टों की नीति म मनष्यता हिन निहित रहे (४७ ६४)।

नाम्की की सग आलोचना पर हम अगत उग अध्याय म अलग से विचार करेंगे जिनमें बहूतवाणी विभिन्न सगों पर विचार किया गया है। सग समय इतना कहना ही पयाप्त है कि बधिक दृष्टिकान म ऑस्ट्रिन का सिद्धान्त सही है। यह सिद्धान्त सग और नकगत्त है यद्यपि इसमें अधिक गम्भार किरचन नहा निया गया है। इस सिद्धान्त की बहूतवाणी आलोचनामें गहन जागजात्रा और धारणात्रा के कारण की गयी है।

राज्यों तथा संविधानों का वर्गीकरण (Classification of States and Constitutions)

१ राज्यों का वर्गीकरण

'राज्या का वर्गीकरण' और सरकारों का वर्गीकरण—इन दो शब्दावलिओं में से किसका प्रयोग अधिक उपयुक्त है—इस विषय पर राजनीतिक विचारका म कुछ मतभेद है। गिलब्राइस्ट 'सरकारों का वर्गीकरण' शब्दावली को पसन्द करते हैं। वे लिखते हैं 'निश्चित तौर पर सभी राज्य एक ही से हैं। विद्यार्थियों को यह याद रखना चाहिए कि 'राज्य का स्वरूप' वास्तवमें 'सरकार का स्वरूप' है।' हम 'राज्या का वर्गीकरण' लिखना इसलिए पसन्द करते हैं क्योंकि 'राज्य'के बिना सरकार हा ही नहीं सकती। जैसा किमी पिछले अध्यायमें बताया जा चुका है सरकार राज्यका केवल एत्रष्ट या यंत्र है।

विलोवी के इस कथनमें राज्योंके वर्गीकरणकी बुद्धिमत्ता पर संका प्रश्न की गयी है 'तन्वत् य मत्र एक ही से हैं—उनमें हर एक और सबकी विशेषता सम्प्रभुता है।'

(क) प्लेटो और अरस्तू

राज्यों का वर्गीकरण एक आधुनिक विचार नहीं है। यह विचार राजनीतिक चिन्तन के उन दो आचार्यों—प्लेटो और अरस्तू—के युग से जन्मा आ रहा है जिन्हें जानियोंके आचार्य कहा गया है।

इस सभके अनुभा होनेके कारण प्लेटो अपने वर्गीकरणमें दूठ नहीं हैं। अपने चारों रिपब्लिक (Republic) और स्ट्याट्समन (Statesman) में उन्होंने दो भिन्न प्रकारके वर्गीकरण दिये हैं। सामान्यतः वह निम्नलिखित तीन प्रकारके राज्योंकी सर्पा करते हैं

(क) सर्वोपरि विचार अपवा तर्कका राज्य। इसको प्लेटो विचार-राज (ideocracy) कहते हैं। यह पूरा जानका राज्य है इस राज्यमें अगती सम्प्रभु

¹R. N. Gilchrist op. cit., P 225.

²W. Willoughby 'The Nature of the State' h. XIII

मान ही है। प्लेटो का विश्वास था कि एसा राज्य कभी नहीं रहा। फिर भी यह एक ऐसा आदर्श है जिसके लिए राजनीतिक प्रयत्न किये जा सकते हैं। इस आदर्शको कभी-कभी एक सर्वज्ञ दार्शनिकका राज्य अर्थात् आदर्श राजतंत्र कहा जाता है। अथ अबसुरों पर उम आदर्श बुलीन तंत्र कहा गया है।

(स) के राज्य जहाँ अपूण पान है। ऐसे राज्यामें विधिया आवश्यक होती हैं। मनुष्यकी अपूणताके कारण विधिया जरूरी हा जाती हैं। प्लेटो की पुस्तक 'लि सॉज' (The Laws) में लिखित तौरसे यही दृष्टिकोण व्यक्त किया गया है। अपनी पहले की पुस्तक 'दि रिपब्लिक' में प्लेटो ने एक आदर्श राजतंत्र (अथवा एक आदर्श कुनीनतंत्र) का पसन्द किया है जिसमें कोई विधिया नहीं होंगी बल्कि सर्वत्र दार्शनिक राजा ही समय-समय पर आदेश जारी किया करेगा। पर ऐसे राजाओको बंड पानम असमर्थ हा जान पर प्लेटो ने अपनी बादकी पुस्तक 'लि सॉज' में विधियाका समर्थन किया है।

(ग) के राज्य जिनमें पानका अभाव है। वे अज्ञानके राज्य हैं। इन राज्यामें विधियां होती हैं पर उनका पालन नहीं किया जाता है।

इस प्रकार प्लेटो ने राज्योंका जो वर्गीकरण किया है उसका आधार है एमें राज्य जहाँ विधियाका पानन किया जाता है और एमें राज्य जिनमें विधियाका पानन नहीं किया जाता।

गिन्साइस्ट ने इस विषयका निम्नलिखित धार्य इस प्रकार स्पष्ट किया है

| | राज्य जिनमें विधिया पालन होता है। | राज्य जिनमें विधिया पालन नहीं होता है। |
|-------------------------|---|--|
| एक व्यक्तिका शासन | राजतंत्र (Monarchy) | निरंकुश या आतंतापी शासन (Tyranny) |
| कुछ व्यक्तिगणोंका शासन | कुनीनतंत्र (Aristocracy) | अल्पतंत्र या स्वार्थीतंत्र (Oligarchy) |
| अनेक व्यक्तिगणोंका शासन | उदार या नरम मोरतंत्र (Moderate Democracy) | अतिवादी मोरतंत्र (Extreme Democracy) |

प्लेटो का पदानुगमन करनेवाले अरस्तू अपने गुरुकी ओरगा अधिक यथार्थवादी थे। उनके वर्गीकरणके आधारपरिमाणमूलक और गुणमूलक दाता थे। अर्थात् उनका आधार था उन लोगोकी सख्या जिनमें सम्प्रभुता निहित थी और वह लक्ष्य या उद्देश्य जिसके प्रति उस गणितका संचालन होता था। जिन राज्योंका उद्देश्य सबके जीवनका कल्याण है वे सच्चे या सामान्य राज्य हैं। इस लक्ष्यमें हट जानेवाले राज्य भ्रष्ट राज्य हैं। इस प्रकार अरस्तू ने राज्योंका जो वर्गीकरण किया है वह चार्ट द्वारा इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है

| | | |
|------------------------|---|---|
| संविधानका रूप | सामान्य राज्य या सर्वजनिक कल्याणकी चेष्टा करने हैं। | भ्रष्ट राज्य या सर्वजनिक कल्याणकी उपेक्षा करते हैं। |
| एक व्यक्तिका शासन | राजतन्त्र (Monarchy) | निन्द्य शासन (Tyranny) |
| कुछ व्यक्तिपोंका शासन | कुलीनतन्त्र (Aristocracy) | अल्पतन्त्र या स्वार्थीतन्त्र (Oligarchy) |
| अनेक व्यक्तिपोंका शासन | समाजतन्त्र (Polity) | मात्रतन्त्र (Democracy) |

उक्त वर्गीकरणकी और अधिक ध्यानपूर्वक कहना होगा कि मात्र राजतन्त्रमें एक व्यक्ति सबके हितमें शासन करता है। जब वह व्यक्ति मरता तब शासन न करके अपने ही हितमें शासन करने लगता है तब वह शासन भ्रष्ट शासन निरस्तुत शासन हो जाता है। जब कुछ लोग सामंजसिक कल्याणके लिए शासन करते हैं तब वह कुलीनतन्त्र शासन होता है पर जब वह कुछ लोग जनताकी भावार्थके लिए शासन करते हैं तब स्वार्थी तन्त्र शासन करने लगता है तब कुलीनतन्त्र भ्रष्ट हो कर भ्रष्ट शासन हो जाता है। जब सबके लिये सबके हितमें शासन करने हैं तब उक्त शासन वा समाजतन्त्र (polity) या उक्त मात्रतन्त्र (mild democracy) कहा है। तब तब वह अपने समूहके हितमें ही शासन करने लगता है तब वह शासन मात्रतन्त्र (democracy) या भीड़का शासन हो जाता है। अतः यहाँ पर यह स्पष्टता चाहिए कि मात्रतन्त्र तब शासन के लिए मात्रतन्त्र (democracy) शब्दका प्रयोग होता है उस शासनके लिए अरस्तू ने समाजतन्त्र (polity) शब्दका प्रयोग किया है। तब वह लोकतन्त्र वा समाजकी

कानून ही ही आज्ञाएँ ही ही शासक (mob rule) कानून। अस्तु व वर्गीकरण (polity) शासकीय समाजशास्त्रीय राजतन्त्र (constitutional monarchy) है जिसका परिभाषा इस प्रकार का जा सकती है—सांख्यिक कानून का विना अन्यथा शासक शासक शासक।

जिस देश में जिस गण की संरचना अथवा अस्तु द्वारा किया गया वर्गीकरण कहा अधिक पूरा और यथासंभव है। कुछ समय पूर्व तक अस्तु शासक किया गया वर्गीकरण परंपरा समझा जाता था। उस पर टीका करते हुए गिब्सन इस प्रकार लिखते हैं—आधुनिक सरकारों स्वभाव निम्न यह वर्गीकरण परंपरा नहीं है पर आज तक जितने भी वर्गीकरण किए गए हैं उन सबके लिए यह इतिहासाध्य आधार रहा है।^१

जिस और अस्तु व विचार पर मात्र तौर पर विचार कर यह कानून मंत्री हुआ कि अस्तु का व गण कानून है जहाँ जिन ने समाप्त किया था। उसका न एक आदर्श राजतन्त्र (ideal monarchy) में आदर्श किया था और उन्होंने एक मिश्रित कुलीनतन्त्र (mixed aristocracy) में अपना मूल-मन्त्रिणादी कुलीनतन्त्र द्वारा साधित साधक-कुलीनतन्त्र समाप्त किया है। अस्तु न एक ही कुलीनतन्त्रका आदर्श रूप मानकर गण किया तथा मिश्रित सविधानम समाप्त किया। यह मिश्रित सविधान एक व्यावहारिक आदर्श रूप बना कुछ कहा है जिन वह समाजतन्त्र (polity) कहते हैं। उच्च नाकतन्त्र और उच्च अल्पतन्त्र यह बहुत अधिक भेद न। करके। उनके विचारीत सविधानके विभिन्न प्रकारका कायम रहनेम वह बहुत अधिक उच्च है। इस मान में वह आदर्शशाही जिन की अर्थात् यथासंभवा सविधानी (Machiavelli) व अधिक निकट है।

(ख) अस्तु के बाद

राजशासक वर्गीकरण करनेवाले अज्ञात कानून कुछ अन्य सत्यक यह है—पानीबियस गिबस सविधानी शाही मॉन्टेस्क्यू को और अन्य।

पानीबियस (Polybius) राजतन्त्र परंपरागत वर्गीकरण—राजतन्त्र कुलीनतन्त्र और नाकतन्त्र—का मानते थे। उनका विश्वास था कि व राज्य अपने भेद को माप एक दूसरे का एक घटक को ही बना कर है। इस प्रकार उनका धर्म था राजतन्त्र निरस्तु शासक कुलीनतन्त्र अल्पतन्त्र नाकतन्त्र और भेदका शासन। पर जिनने के अल्पतन्त्र अथवा भेदका शासन आदर्शात्त हा। आता है एक एक कर गिर राजतन्त्रका उच्च हाता है और को कम गिर का करना है। इस विश्वास पाद-विशेष ने मिश्रित सविधानम शासन पर तथा रोक (checks) और गन्तुतन्त्र (balances) के अर्थ पर विशेष ध्यान है। रोमक शासन सविधानके स्थापितके कारण की मान कर शासकशासन ने मिश्रित सविधानका बहुत अधिक शासन का है।

^१ R. N. Cochrane op. cit., p. 22.

इस प्रकार राजतन्त्र सिद्धान्तका प्रतिनिधित्व एण्डनायन (consuls) बुनोनतत्रके सिद्धान्तका प्रतिनिधित्व परिषद् (senate) और लोकतन्त्रीय सिद्धान्तका प्रतिनिधित्व जनप्रिय सभाएं करती थी। य तीना सस्याएँ एक दूसरेके विरुद्ध राव और सन्तुलनका काम करती थी और उसका परिणाम स्थायित्व और मुम्कता होता था।

पोलीबियस का अनुगमन करनेवाले सिसरो (Cicero) ने भी कोई नयी बात नहीं बही। पोलीबियस की भांति उन्होंने भी मिथिल सविधान और लोक तथा सन्तुलन की व्यवस्थाकी प्रशंसा की। उन्होंने केवल एक नयी बात यह कही कि सरकारके तीनों अंग स्थायित्वके लिए आवश्यक तीन सिद्धान्तों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस प्रकार राजतन्त्र शक्ति अथवा अधिकार-सत्ताके सिद्धान्तका परिषद् सभाएं और प्रभावके सिद्धान्तका तथा जनप्रिय सभाएँ स्वतन्त्रताके सिद्धान्तका प्रतिनिधित्व करती हैं। तीना सिद्धान्तोंके उचित अनुपातमें सयुक्त क्रिय जाने पर व्यवस्था और स्थिरता आती है। पोलीबियस की भांति सिसरो का भी विश्वास था कि सरकारके तीनों रूप अपने भ्रष्ट रूपोंके साथ एक चक्रकी तरह एक दूसरेके बाद आते रहते हैं। गुड स्वरूपमें स सिसरो राजतन्त्रको सर्वोत्तम बुनोनतन्त्रको मध्यम और लोकतन्त्रको सबसे क्षराय मानते थे।^१

मारोपोप इतिहासके आधुनिक युगके आरम्भमें जीन बोडिन (Jean Bodin) का आधुनिक कालका प्रथम महत्त्वपूर्ण राजनीतिक दार्शनिक माना जा सकता है। उन्होंने राज्यकी वर्गीकरण उन सागाकी सस्याके आधार पर ही किया जिनके हाथमें राज्यकी सम्पत्ति सन्नि रहती है। जब सत्ता एक व्यक्तिके हाथमें रहती है तब शासनका रूप राजतन्त्र होता है। जब सत्ता नागरिकोंकी बहुसंख्याके हाथमें रहती है तब शासन बुनोनतन्त्र होता है और जब सत्ता नागरिकोंकी बहुसंख्याके हाथमें रहती है तब लोकतन्त्र होता है। बोडिन ने राजतन्त्रके यह तीन प्रकार बतलाये हैं (१) गुड राजतन्त्र (royal or pure) (२) शासनाधीन राजतन्त्र (despotic) और (३) आतंशायी राजतन्त्र (tyrannical)।

अपनी पुस्तक लेविथान (Leviathan पृष्ठ ९६ ९७) में हॉब्स लिखते हैं जब केवल एक व्यक्ति प्रतिनिधि हो तब राजतन्त्र है जब प्रतिनिधि एक में मिलनकी इच्छा सागाकी सभा हा तब वह लोकतन्त्र या जनप्रिय शासन है जब कबल एक ही सत्ताकी सत्ता हा तब वह बुनोनतन्त्र है। इनना ही कहना पर्याप्त है कि इन वर्गीकरणमें कोई नयी बात नहीं है। यदि सुचना ही करना है ता यह कहना होगा कि अस्तु द्वारा क्रिय गय वर्गीकरणकी आशा यह वर्गीकरण निम्नजाटिका है—अस्तु के अनुसार राज्यके संघाननका उद्देश्य वर्गीकरणका महत्त्वपूर्ण आधार है। हॉब्स अपने वर्गीकरण का आधार केवल इन बातों मानते हैं कि सम्पत्ति एक व्यक्ति बुध व्यक्तियों या अनेक व्यक्तियोंमें निहित है।

साक और हॉय्स में कोई मौलिक भेद नही है। साक राज्याका वर्गीकरण राजतंत्र ध्वस्ततंत्र और सामन्ततंत्र म करता है। वह राजतंत्र का दा प्रचारका बतनाते हैं—बगानु गन राजतंत्र और निर्वाचित राज्यतंत्र।

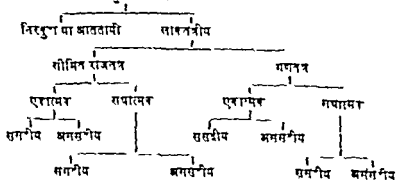
माउन्टस्यू (Montesquieu) ने राज्याका वर्गीकरण इस प्रकार किया है (१) गणतंत्र (क) साकतन्त्रीय गणतंत्र और (ख) बुलीनतन्त्रीय गणतंत्र (२) राजतंत्र और (३) निरकुलतंत्र। इन सभी सरकाराके पीछे एक प्ररक और स्थापक (sustaining) शक्ति हानी है। साकतंत्र पाछे जनसेवा की भावना रहनी है। बुलीनतंत्रका आधार सयमका सिद्धान्त है राजतंत्रका आधार सम्मान है निरकुल शासनका आधार भय हाठा है।

अरस्तू न राज्याका जो वर्गीकरण किया है उसे ब्लून्सली (Bluntschli) मौलिक वर्गीकरण मानते हैं और इस वर्गीकरणम शोध प्रचारका राज्य भी जाइ दत है जिसे वह धर्मतंत्र (theocracy) कहते हैं। धर्मतंत्रके भ्रष्ट रूपका वह उपासकतंत्र (idolocracy) कहते हैं।

आधुनिक समयक लेसका म ज० ए० आर० मरियट (J A. R. Marriott) सविधानका वर्गीकरण इस प्रकार करते हैं—(१) एकात्मक और मूलात्मक (२) दृढ़ (rigid) तथा लचीला (flexible) (३) राजतन्त्रीय और अध्यात्मक। वह साक्षात्मक उत्तरदायी समयका मरिमण्डलीय सरकार की भी वर्चा करते हैं।

लीकोक (Leacock) निरकुल तथा साकतन्त्रीयक राज्यके बीच स्पष्ट धन्तर करत है। वह साकतन्त्रीय राज्याका (क) सीमित राजतंत्र और (ख) गणतंत्रम विभाजित करते हैं। इन दानाका बहु फिर (१) एकात्मक और (२) सवाधकम विभाजित करते हैं। और इनको फिर व दा प्रचारा मतीय और असमतीय म विभाजित करते हैं। गिनकाइष्ट द्वारा बनाया गया निम्नलिखित चार्ट इन सारे विमाराका स्पष्ट कर देना है

आधुनिक राज्य



बाइल जेक्स और मॉलियट द्वारा सुभाषा गया आपुनिक राज्यों का वर्गीकरण^१

| | विभेदका आधार | क | ख |
|---|----------------------------------|---|--|
| १ | राज्यके कार्य-भोग सम्बन्धी धारणा | उत्तर | समाधिकारवादी (क) साम्यवादी (ख) फासिस्ट (fascist) |
| २ | राजनीतिक संगठन का स्वरूप | | |
| १ | राज्यका स्वरूप | एकात्मक | संघात्मक |
| २ | संविधानका स्वरूप | सर्वांगीण | द्वि |
| ३ | निर्वाचक-मण्डलका स्वरूप | (१) घटकर मताधिकार (२) एक सदस्यीय निर्वाचन दान | (१) सीमित मताधिकार (२) बहु सदस्यीय निर्वाचन दान |
| ४ | विधान मण्डलका स्वरूप | द्विसंघात्मक (क) निर्वाचित अथवा अंगन निर्वाचन द्वारा सन् (ख) अनिर्वाचित द्वितीय सन् | एक संघात्मक |
| ५ | कार्यपालिकाका स्वरूप | संसदात्मक | असंसदात्मक |
| ६ | न्यायपालिकाका स्वरूप | विधि राज्य (The Rule of Law) | प्रशासकीय विधि |

का वर्गीकरण निम्नलिखित दो विचारों पर आधारित है

- (१) राज्य का स्वरूप और
- (२) राजनीतिक संगठन का स्वरूप।

उक्त बातों की सहायता से स्ट्रॉन्ग (Strong) अथवा तथा मानीमा संविधानों का वर्गीकरण इस प्रकार करने हैं

मजबूती संविधान

प्रासंगिकी संविधान

| | |
|--------------------------------------|--------------------------|
| एक-सदस्य | द्विसदस्य |
| संघीय | एकात्मक |
| संसद | राज |
| संसद-सहायक | संसद-सहायक |
| एक-सदस्यीय संविधान-राज | एक-सदस्यीय संविधान-संसद |
| द्विसदस्यीय संविधान-राज | द्विसदस्यीय संविधान-संसद |
| संसद-सहायक संविधान और | संसद-सहायक संविधान और |
| संसद-सहायक संविधान (The rule of Law) | संसद-सहायक संविधान |

जॉर्ज श्वार्ज़ेनबर्गर (George Schwarzenberger) ने राज्यों का वर्गीकरण राष्ट्रीय राज्य (national state) और बहु-राष्ट्रीय राज्यों (multi-national states) में किया है। उनका कहना है कि बहु-राष्ट्रीय राज्यों का निम्नलिखित वर्गीकरण किया जा सकता है (१) राजसत्ताय राज्य (उदाहरणार्थ प्रथम विश्व युद्ध के पूर्व ऑस्ट्रिया-हंगरी) (२) सामंजस राज्य (उदाहरणार्थ १९१९ तक बर्मावन साम्राज्य) (३) औद्योगिक राज्य (४) राष्ट्रमन्त्रीय राज्य (५) संघीय राज्य और (६) कृत्रिम संघीय राज्य (pseudo-federal state)।

२. संविधानों के स्वरूप तथा परिभाषा

संविधान का स्वरूप

संघीय राज्य सार्वभौमिक राज्य है अतः इसका वर्गीकरण एक संविधान के रूप में किया जाता है। इसे संविधान निर्मित है अथवा अनिर्मित कुछ है अथवा नहीं। प्रायः संविधानों के सम्बन्ध में हमें यह धारणा रही जाती है कि वह

निश्चित होता है। पर संविधान अनिश्चित भा हो सकता है और अनिश्चित हात हुए भी लिखित संविधानकी भांति ही उपयोगी सिद्ध होना भी सम्भव है।^१

बूवियर (Bouvier) ने अपने विधि शब्दावली (Legal Dictionary) में संविधानकी परिभाषा इस प्रकारकी है किसी राज्य की वह मौखिक विधि जो उन सिद्धान्तोंका निष्पत्ति करती है जिन पर सरकारकी नींव टापी जाता है जो सम्पन्न नागरिकों के अधिकार और उपयोगका नियमन करती है और जो निश्चित होती है कि यथाकाम किन किन यात्रा और व्यक्तियोंको सौंपी जा सकती है और किस प्रकार उनका उपयोग किया जायगा।^२ जार्ज कॉन्वेल (George Cornwall Lewis) लिखते हैं संविधान शब्द समाजमें सम्प्रभुता की ध्येयता और निश्चित अर्थात् सरकारके स्वरूपका तात्पर्य है।^३

संविधान राज्यका सामान्य ढाँचा निश्चित करता है। संविधानको हम राज्य का ढाँचा कह सकते हैं। इस विषयके अधिपति चार्ल्स बार्गोड (Charles Borgeaud) इस प्रकार कहते हैं 'संविधान वह मौखिक विधि है जिसके अनुसार किसी राज्यकी सरकार संगठित होती है और जिसके अनुकूल ध्येयों अथवा नीतियोंके साथ समाजके सम्बन्ध निश्चित किए जाते हैं। संविधान एक लिखित सत्य (written instrument)—एक सम्पूर्ण आवल या कई अलिखित जिन किसी निश्चित समय सम्प्रभुता द्वारा स्वीकृत व लागू किया गया हो—हो सकता है अथवा वह अन्यायिक रूपमें अधिक विषयका अध्यादेशों न्यायाधीशोंके निर्णयों पूर्ण निर्णयों और मित्त सौंप तथा असमान महत्त्ववाली सीनियोरिटीका निश्चित परिमाण हो सकता है।

संविधानकी आवश्यकता

अमरीकी क्रान्तिके पहले भी लिखित संविधानकी आवश्यकता अनुभव की जाती थी और यह जरूरी समझा जाता था कि संविधान एक मान्य मूल (fundamental document) के रूप में हो। पर जन-जम १७वाँ शताब्दी की शुरुआत में यह विचार अधिकाधिक जड़ पड़ना गया कि हर राज्यका एक संविधान होना चाहिए और उस संविधानको समस्त जनताकी स्वीकृति प्राप्त होनी चाहिए। अब तो संविधानका सोच-सूचना अपार ही मात्रा जाता है। संविधान की आवश्यकता निम्नलिखित विभिन्न कारणोंसे होती है

^१ The Elements of Political Science by Alfred De Gr 112 p 299 (Alfred A. Knopf, New York 1922.)

^२ Ibid.

^३ Use and Abuse of Political Terms p 6
The Origin of Written Constitution—Political Science Quarterly v. 11 p. 612.

(१) मौलिक विधि (fundamental law) के द्वारा सरकारकी शक्ति पर अंगुण लगायेन गिए।

(२) व्यक्तिके हितमें सरकारका नियंत्रण करनेके लिए।

(३) वर्तमान और भावी पीढ़ियाको मनमानी न करने देनेके लिए। जॉन एडम्स (John Adams) जेम्स मदीसन (James Madison) तथा अमेरिकी संसदके 'यायालयके अनेक 'यायापी'गामि स एक बा' दूसरेने इस दृष्टिकोण पर खोल दिया है। दूसरी ओर जफ्फन (Jefferson) चाहत थे कि हर सविधानकी अवधि सीमित होनी चाहिए।^१

आज अधिकांश विद्वान् शुल्ड्ग् (Schulze) की इस रायसे सहमत हाय कि 'राज्य बहुसंख्यका अधिकार रखनेवाय हर समाजका सविधान अवश्य होना चाहिए अर्थात् एय सिद्धान्तकी सहिता हानी चाहिए जो सरकार और उसकी प्रजाके सम्बन्ध निर्दिष्ट करे और जिसके अनुसार राज्य अपनी शक्तिशाली प्रयोग करे। सविधानहीन राज्यकी कल्पना ही नहीं की जा सकती।'^२

३ सविधानों के मूढ

(क) लिखित सविधान

सविधानका उणे युगका आरम्भ अमेरिकी सविधानने हाता है। उमें अय दाने अमेरिकाका अनुकरण किया है। सविधानका परिवर्तनका दान-शासन बन गया है जिसे विभिन्न नैतिक और सामाजिक दृष्टिकोणसे युक्ति संगत बनाया जाय है।

लिखित सविधान बहु है जिसमें अधिकतर धाराएँ एक विधिका लिखित आचरण में अथवा कई आनेताय व्यवन रहनी हैं। 'यह एक सामान्य दृष्टि और उस प्रयत्नका परिणाम है जिसे द्वारा वे मौलिक सिद्धान्त लिखित किये जाते हैं जिनके अनुसार सरकार गठित होगी और चलायी जायगी।'^३

लिखित सविधान एक ही सलेग (document) में हा सज्जा है जिस पर एक ही तारीख पड़ी हाती है जैसे अमेरिका भारत और बमा आदि का सविधान अथवा विभिन्न तारीखोंसे तैयार किय गये कई सने'गामि भी हा सज्जा है जैसे फ्रांस और आस्ट्रियाका सविधान। लिखित सविधानका न देगोंमें प्रायः विभिन्नी दो सहिताएँ होनी हैं—एक वधानिक और संसदके तथा दूसरी व्यवस्थामुनक और अदीनस्य। पर लिखित सविधानका न देगोंमें यह विध' हृदया नहीं पाया जाय है।

^१ Cris a op. cit. p. 20

^२ Deutsches Staatsrecht Vol 1 p. 17

^३ J. Brown: The Constitutional Convention. Carver's op. cit. pp. 377-10.

(ख) अलिखित संविधान

अलिखित संविधान वह संविधान है जिसमें सब नहीं तो अधिकांश अधिनियम या सिद्धान्त कभी लिपिबद्ध नहीं किये गये और सभी किसी एक विधिबद्ध संसद अथवा संसद-सहिताम संप्रहित नहीं किये गये। अलिखित संविधान अधिकतर रीति रिवाजों, प्रायाचीनोंके निर्णयों और समय-समय पर स्वीकृत गौतिक महत्वके विधेयवासि मिलकर बनता है। अलिखित संविधानका संविधान परिषद या अन्य कोई संस्था यथायक समाप्त नहीं कर सकती। एम. संविधान सर जेम्स मैकिन्थो (Sir James MacIntosh) के इस कथनको सिद्ध करते हैं कि संविधानोंका विकास होता है वे बनाये नहीं जाते।^१ ब्रिटेनका संविधान अलिखित संविधानका सबसे अच्छा उदाहरण है।

लिखित और अलिखित संविधानोंमें संविधानके वर्गीकरणको अपर्याप्त और राजनीतिक दृष्टिये महत्वहीन कहा गया है। इन दोनोंमें जो अन्तर है वह प्रकारका अन्तर न होकर केवल मात्राका अन्तर है क्योंकि सभी लिखित संविधान समय बीतने पर अलिखित तावाम योजित हो जाते हैं। जैसा कि साइस ने कहा है लिखित संविधान व्याख्याओं द्वारा विकसित निर्णयों द्वारा परिवर्धित और रीति रिवाजों द्वारा संशोधित हो जाते हैं।^२ हमारा अनुभव हम बतलाता है कि सभी सिद्धान्तोंको किसी भी एक लिखित संसदसे लिपिबद्ध कर देना असम्भव है और एक लिखित संविधानने होते हुए भी प्रयाण पतपती ही है।

इसलिए संविधानोंका लिखित और अलिखितमें वर्गीकरण करना न केवल अशक्य है बल्कि भ्रम पैदा करनेवाला भी है। इस वर्गीकरणका परिणाम यह होता है कि कुछ अलिखित संविधानोंको लिखित संविधानोंकी श्रेणीमें और कुछ लिखित संविधानोंको अलिखितकी श्रेणीमें रखना पड़ता है। इसलिए यह सुझाव दिया गया है कि संविधानके स्थायिक आधार पर नहा बल्कि संविधान और सामान्य विधिये सम्बन्धोंके आधार पर संविधानोंका वर्गीकरण करना अधिक उपयुगी और वैज्ञानिक होगा। इस कमीतीने आधार पर संविधानोंका वर्गीकरण सचीत संविधान तथा दृढ़ संविधानमें किया जाता है।

(ग) लचीला (flexible) संविधान

वे सभी संविधान लचीले संविधान हैं जिनमें सामान्य विधियोंकी सहायता और अधिक शक्ति नहीं हानी और जिन्हें उसी प्रकार परिवर्धित या संशोधित किया जा सकता है जिस प्रकार सामान्य विधियोंको परिवर्धित या संशोधित किया जाता है।

^१ Ibid p. 208

^२ Constitutions p 7

का एक संवेगके रूपमें या बहुत-सा प्रयासोंके रूपमें। एक सविधान तिस्रों हानों पर भा लक्ष्मी हाने हैं और इन्होंने उन्हीं ही आसानीसे बन्ना या सभन हैं तिस्रों आसानीसे साधारण विधि बन्ना जाती है। तिस्रों और कुछ हूँ तक भारतके सविधान इसी धारामें आते हैं।

(घ) अनम्य या दृढ़ (rigid) सविधान

ये सविधान जिन्हें एक विशिष्ट संस्था द्वारा बनाया जाता है तिनका स्थिति साधारण विधियोंसे उल्लंघनकारी है और तिनमें खास पद्धति ही परिवर्तन किया जा सकता है अनम्य संरचनात्मक या दृढ़ सविधान कहना है। यह अमरिका आस्ट्रेलिया या स्वाइजरलैण्डके सविधानोंमें मनाया करनेका पद्धति का सावधानीसे अध्ययन करें ता यह बात स्पष्ट हो जायगी। संशोधन करनेका प्रणाली अत्यन्त कठिन हाने कारण हा सन् १७८९ में स्थावर विधेय जानके बान्धु आरु तक अमेरिकी सविधान बनने पचीस बार संशोधित हुआ है और आस्ट्रेलियाका सविधान सन् १९०१ में १९५५ तक बस तीन बार संशोधित हुआ यद्यपि उसमें संशोधन करनेके लिए मसुदा बन विधेयक पेश किया गया। सविधानमें परिवर्तनके प्रति यह दृष्टिकोण संशोधन प्रणालीमें परिलक्षित होते हैं। पहले सविधान बनानेवालोंका विश्वास था कि सविधानके साथ बन्ने जल्दी-जल्दी रचना-कारों अपना उद्यम परिवर्तन नही करना चाहिए। पर आश्चर्य प्रकृति यह है कि संशोधकोंके लिए एक सुलभ पद्धति का व्यवस्था हाना चाहिए जिससे कि भावी पद्धतियों विगत पाठिका द्वारा पहलेम ही भीनी न जा सकें।

निम्नलिखित सविधान प्रायः दृढ़ और अनिसित्त सविधान प्रायः लक्ष्मी हाने हैं। अब हम दृढ़ और अनिसित्त सविधान तथा लक्ष्मी और अनिसित्त सविधानोंके गुण दोषों पर विचार कर लना चाहिए।

निम्नलिखित सविधानके गुण यह हैं कि व—

- (१) दृढ़ और अनिसित्त होते हैं।
- (२) यही सावधानी और साध-विचारसे सभन किये जाते हैं।
- (३) साधारण भावादेशों अथवा विधाधिकारी निरंकुशतासे अनम्य मोड या बन्ना जानते बच रहते हैं।

(४) स्थायी और स्थिर हाने हैं।

और ये (२) स्थायी गुणों तथा अनम्य अविचारोंको बनाने रचनात्मक बन्ना

शेष

- (१) निम्नलिखित सविधान एक राष्ट्रके हूँ भागों और साधन-विधि सिद्धांतोंको

एक ही संसिद्धमें संघट लेनेकी कोसिदा करता है। जसा कि मानर ने कहा है कि सिद्धित संविधान तैयार करनेका यह प्रयत्न एक व्यक्तिके शरीर पर उसके भावी विकास और परिवर्तित आकारका विचार किये बिना ही एक पौगाक फिट करनेके प्रयत्नके समान है।

(२) सिद्धित संविधानमे संशोधन करना कठिन होता है। रुढ़ता और रुढ़ि वादिताके बहुत बाग बढ़ जानेसे दुर्बलता पदा होती है और राष्ट्रीय हितोंको हानि पहुँचती है। इस सबका परिणाम शान्ति भी हो सकती है।

(३) लिखित संविधानके अन्तगम 'यामपात्रिकाका मुख्य काम यह मानूम करना हाता है कि देशकी विधि संविधानकी धाराआवे अनुकूल है या नही। 'यायापी'ग प्रायः रुढ़िवादी होते हैं इसलिए यह समझकी भावनाकी उपाया करत हैं। पर हमम संयुक्त राज्य अमेरिकामें ऐसा नही हुआ है। उदाहरणाय अमेरिकाके सर्वोन्ध ग्यायासयने मन् १९५५ म निर्णय दिया था कि रम भेद करनेवाले स्तून संविधानके विपरीत हैं। पर साधारणतया हम नास्वी के इस कथनसे सहमत हो सकते हैं कि ग्यायापीशाको यह अधिकार देना कि ये विधायिकाकी इच्छाआकी अवहृन्ना कर सवें उन्हें राज्यकी निर्णायक शक्ति बना देना है।'

अलिखित संविधानके गुण निम्नलिखित हैं

(१) अलिखित संविधान आद्यानीये गतिगील समाजकी बन्नी हुई परिस्थितियोंके अनुकूल बनाये जा सकते हैं।

(२) इस नमनगीलताके कारण संविधानकी अवलना करनेका प्रसोभन दूर हो जाता है। और सार्वजनिक आकांक्षाओंका पूरा करने और प्रातिपोंका राकनेका अधिक उपाय मिल जाता है।

(३) जैसा कि ब्राइस ने कहा है कि इस प्रकारके संविधानको उनकी रूप रेखा भंग किये बिना सब-जामीन परिस्थितियाका मुकाबला करनेके लिए मोडा या बढ़ाया जा सकता है। सबदबाल समाप्त हो जाने पर वे फिर अपन पूर्व रूपको ठीक उसी पेड़की तरह प्राप्त कर लेते हैं जिसकी अतारो किसी सवारी निम्ननेक लिए एक मोर मोड दिया जाता है।'

अलिखित संविधानमें निम्नलिखित दाय हाते हैं

(१) ऐम संविधान अस्थिर और निरन्तर बलनयान होने हैं।

(२) म्यन्निदा और राजनीतिक दनारी गुण और तरणके अनुमार उन्हें संगाधित दिया जा सकता है।

(३) एते संविधान कभी-कभी 'मन्सताके हापके गिलीने' बन जाते हैं।

(४) बुद्ध सापोंका कहना है कि एमे संविधान सोकनत्रोंकी अनेगा कृमिनत्रों के लिए अधिक उपयुक्त है।

एम्मान (Esmein) और जस्टिस जमिसेन (Justice Jameson) जनोंका विचार है कि निम्नलिखित संविधान परम्पराकी दुई भावना और बाहरी स्वरूपका चयन बातें सामाजिक तथा अधिका उपयुक्त है। हमारा अनुभव हमें यह बतलाता है कि एक राष्ट्रके लिए निम्नलिखित संविधान अधिक उपयुक्त है जिसमें राजनीतिक चयन न हो और या नागरिकताय अधिकाओंकी सुरक्षाके लिए सुवर्द्ध न हो।

एक सामान्य निम्नलिखित संविधानमें निम्नलिखित बातें होना चाहिए।

(१) नागरिक तथा राजनीतिक अधिकाओंका आत्मतया नागरिकोंकी स्वतंत्रता का एक निश्चित रूप राष्ट्रका अधिकार समाका सीमित करे।

(२) सरकारके समस्त और उच्चरी स्वरूपका निश्चित करनेवाली धाराएँ या सरकारके हर अङ्क अधिकार और कृत्य उनके पारम्परिक सम्बन्ध और उनके तथा निरापेक्ष सम्बन्धि विषय सम्बन्धाका निश्चित करे।

(३) संविधानमें समापन करनेकी उचित व्यवस्था। हम बारम्बार जानते हैं यह धारणा है कि यथातथान का अधिक धारणाप्रकाश बाण बतमान पात्री पर नही जानना चाहिए। संविधानके समापनकी व्यवस्था करने जाना चाहिए तथा इस सम्बन्धमें जनताके समस्त-समस्त पर परामर्श लेते रहना चाहिए।

संविधानका कर्तव्य बितना बड़ा हा इस सम्बन्धमें को निश्चित नियम नही है। पहलेके संविधान उदाहरणाय अमेरिकाका संविधान मौलिक विधिके सामान्य सिद्धान्तोंका स्थिर करने तक हा करनेका सीमित रखते थे। जकिन बाणमें बतनजान संविधानोंने उन धाराओंको ना बनने म स्थापित कर लिया जिन्हें सामान्य विधि कहना ही उपयुक्त होगा। इस प्रकारके कारण वापनिक संविधानोंका कर्तव्य माना गया नारा-भारतम हा गया है। अनु १ ४० में बना राष्ट्रीय संविधान जिसमें ३०२ धाराएँ तथा ८ अनुसूचियाँ (schedules) हैं समारोह सबसे बड़ा संविधान है। 'द्वन्द्वि' वाप्य-गुणकीके लेखक गो-पुत्र समस्तों पर बतन अधिका विवरण देनेजान संविधानकी विधि करने हैं पर बतनके अनधिकी नोर्गोंका करना है कि संविधानम विधान ही अधिक विवरण ही उतना ही अच्छा।

४ एकात्मक तथा महात्मक राज्य

एकिकता का अर्थ है कि एक ही सरकार पर तथा कर्तव्य और स्थानीय समस्त सामाजिक सम्बन्धोंके आन्तर पर आपुनिक सम्बन्धोंका वर्गीकरण तथा एक ही सरकारके अधिकारोंके विधा करना है।

एकिकता व्यवस्था में समस्तोंकी समुची साधन-सक्ति संविधान नाम कर्तव्य सम्बन्धा द ही जाती है। स्थानीय समस्त न बतन आन सारे अधिकाओं और स्वायत्तता ही कर्तव्य सम्बन्धोंका प्राण करते हैं बन्दि उनका बन्दिना ना कर्तव्य सम्बन्ध पर हा निभर करता है। एकिकता राजकी प्रमुख विशेषता न है।

(१) एकिकता राज्य एक ही समस्त और एक ही सरकार होती है। कर्तव्य

सरकार और स्थानीय सरकारोंके बीच शक्तिका अध्यात्मिक विभाजन या विवरण नहीं होता। शक्तिका केवल एक ही स्रोत होता है तथा इच्छा भी एक ही होती है।

(२) प्रशासकीय सुविधाके लिए एकात्मक राज्य इकाइयोंमें बंट रहते हैं। इन इकाइयोंके विभाग, प्रान्त, जिला या कम्यून आदि कहते हैं। इन्हें कुछ सीमित स्वायत्त शासन प्राप्त रहता है। वे केन्द्रीय सरकार द्वारा स्वेच्छापूर्वक बनाये जा सकते हैं। उनके बनाने या मिटानेमें सविधानका हाथ नहीं रहता।

(३) इस वास्तविकताको दूसरे शब्दोंमें इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है कि इन स्थानीय सरकारोंको जो भी शक्ति और स्वशासन प्राप्त रहता है वह सीमित नहीं होता। यह शक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा दी गयी होती है और उसीकी इच्छा अनुसार घटायी या बढ़ायी जा सकती है।

(४) सभ्यतामें एकात्मक राज्यमें स्थानीय अधिकारी केन्द्रीय व्यवस्थाके प्रेरक अंग ही होते हैं। ये केन्द्रीय सरकार द्वारा इसलिये बनाये जाते हैं कि वे केन्द्रके एजेंट की तरह स्थानीय प्रशासन चलायें।

एकात्मक राज्यके गुण

(१) एकात्मक राज्य देश भरमें एक कोनेमें दूसरे कोने तक विधि नीति और प्रशासनमें एकरूपता स्थापित कर सकते हैं। इस एकरूपतासे देश भर के लिए एक सुव्यवस्थित शासन मंत्र कायम करनेमें सहायता मिलती है।

(२) देशकी सुरक्षा और अन्तर्राष्ट्रीय मामलोंमें एकात्मक राज्यकी शक्ति और दृढ़ता विशेष रूपसे दिखायी पड़ती है। इसका कारण यह है कि एकात्मक राज्यमें अधिकार-सत्ताका संपन्न नहीं होता बल्कि जानेबाले काममें उत्तरदायित्वका समझा या समझ नहीं होता अधिकार शक्तोंका अतिव्यय नहीं होता तथा एकात्मक राज्य का दोहरा गठन आदि नहीं होता जिसे सुरक्षा संभालना और ठीक न किया जा सके।

(३) एकात्मक राज्यका सगठन गणराज्य राज्यकी अनेकानेक शक्त और काम शक्तिता होता है क्योंकि उनमें दोहरे सरकारी विभाग और सेवाएँ नहीं हार्नी।

(४) एकात्मक संविधान विभिन्न तरीके द्वारा देनेके लिए, जिनके निवासी एक जानिके हों अधिक उपयुक्त है।

एकात्मक राज्यके दोष

(१) एकात्मक व्यवस्थाका एक बड़ा दोष यह है कि उसमें सुदृढ़ प्रादेशीय और क्षेत्रीय संस्थाओंका अभाव रहता है। स्थानीय नीतियोंका संयोजन और मामलाका

नियंत्रण वहाँम दूर बठ अधिकारी भरत है।

(२) प्रांतीय और स्थानीय मामलाकी जिम्मेदारीम केंद्रीय सरकार पर बाध बन जाता है। इसका परिणाम समस्याअके हून जानमें अधिक दरी और नीकरजाही प्रणामन होता है।

(३) केंद्रीय अधिकारियोंको बहुधा स्थानीय परिस्थितिया और आवश्यकताओं का आवश्यक ज्ञान नहा जाता। इसका फल यह होता है कि स्थानीय हितोंका हानि पहुँचती है।

(४) एकात्मक राजकी प्रवृत्ति स्थानीय पहचानों (intuitive) को दबा देने तथा सामाजिक समस्याअम दक्षिणाका निरस्तार्थि करनेकी जाती है। दृढ़ स्वायत्त के आग और स्थानीय स्वतंत्रताके प्रमा लाग एवा मक राजका पमन नहा करत।

संघात्मक राज्य

जमा कि गानर कहत हैं मध्यात्मक राज्यम समुचा गणतन्त्रीय एक केंद्रीय सरकार और उन राज्या अपवा क्षत्राप सरकारोंके बीच विभाजित रहती है जिनका मित्राकर मप बनता है। गक्ति विभाजनका कार्य या ता राष्ट्रीय संविधान करा किया जाता है या उसका निर्माण करनेवाले समूहके मौलिक विधि द्वारा।^१ प्रैमिस्टन के दृष्टिसे मध्यात्मक राज्य राज्यका बहु मग्यन है जो नये राज्यका निर्माण करता है। या फिर टायनी की परिभाषाके अनुसार राष्ट्रिय एका और राजाके अधिकारोंमें मन् बनानका बहु राजनीतिम लगीका है।

मध्यात्मक राज्यका निम्नलिखित हैं

(१) राज्य एक हाठा है पर उसम सरकारें अनेक होती हैं।

(२) केंद्रीय सरकार तथा राज्य या प्रांतीय सरकारोंम गणतन्त्रीय संस्था औपचारिक विभाजन तथा विनग्न होता है।

(३) एक मिश्रित संविधान होता है जो सर्वोच्च होता है।

(४) संविधानक विवरण राज्या या केंद्रका कानून विधान (legislation) या अन्य कार्य अवष होता है। प्रत्येकका तय करनेके लिए एक सर्वोच्च न्यायालय स्थापित किया जाता है। यह न्यायालय बहुधा संविधानका गणतन्त्रीय कहते हैं।

(५) मध्यात्मक राज्यका अन्तर्गत अन्तः (५४) हाता है जिनमें कि अन्तर्बाहीम कृत्रिम विधि न बन सकें।

(६) मध्यात्मक राज्यका या प्रांतारा उनक अधिकार कानून सरकारम ग मित्राकर मप संविधानके मित्र है।

संघ राज्यकी संरचना

संघ राज्यके अन्तर्गत संविधानके अन्तर्गत अन्तः (५४) हाता है जिनमें कि अन्तर्बाहीम कृत्रिम विधि न बन सकें।

^१ G. L. G. p. 313.

में मिल जानसे जाती है। ये राज्य रैनिव अथवा आर्थिक सुरक्षाके लिए एक सामान्य सरकार बनानेके उद्देश्यसे एवम मिलते हैं। स्विटजरलैण्ड समुक्त राज्य अमेरिका और आस्ट्रिलिया इसके उदाहरण हैं। वर्तमान भारतीय संघ इस नियमका अपवाद है। इसका निमाण एव एकारत्मक राज्यको कई स्वायत्त इकाइयामें बांटकर हुआ है।

गणका निर्माण चाहे उसे हुआ हो उसकी सुदृढ़ता और स्थिरताके लिए निम्न निम्नित बातें आवश्यक हैं

(१) मिलजानेकी इच्छा। संघ राज्य बननेसे पहले यह आवश्यक है कि विभिन्न राजनैतिक इकाइयामें लोगोंने अपने सामान्य हितकारी सिद्धिके लिए आपसमें मिलकर एक केन्द्रीय सरकार बनानेकी इच्छा की।

(२) लोगोंमें आपसमें मिलनेकी इच्छा का हो पर एव हो जानेकी इच्छा न हो। अनिवार्य सामान्य मतसाक्षी छोटकर अन्य मतनाम अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता कायम रखनेकी प्रयत्न इच्छा गणकी इच्छामें होनी चाहिए। पर मिलनेकी इच्छा लगी न हो कि इकाइया अपना व्यक्तिगत अस्तित्व समाप्त कर एकारत्मक राज्यकी स्थापना करनेकी तैयार हों।

(३) भौगोलिक सामीप्य—संघ बनानेकी इच्छा इकाइयोंके भौगोलिक तौर पर एक दूसरेसे मिल होनेसे गणका निमाण आसान हो जाता है। यदि इकाइयों एक दूसरेसे दूर होती हैं तो संघ निमाणकी इच्छा ठीक प्रकारसे पूरी नहीं की जा सकती।

(४) इकाइयामें असमानता न हो। कोई भी इकाई इतनी सघन और प्रभावशालिनी न हो कि वह बाकी अन्य इकाइयोंकी स्वामी बन जाए।

(५) जनता राजनीतिक शक्तिमें गिणित हानी चाहिए। जनताकी राजनीतिक शिक्षा उच्च स्तरकी होनी चाहिए। गणकी सफलताके लिए यह आवश्यक है कि जनता केन्द्रीय और स्थानीय दोनों सरकारोंके प्रति निष्ठाव महत्त्वकी समझ और न्याय दानों गिणित शक्ति प्रचारका परस्पर विरोध न होने दे। जनता दानों सरकारकी विषयोंको माननेका इच्छा हो। न्यायमयोंके अधिकारको बिना शर्त पर शरणागत माना जाय। भारतमें राष्ट्रीय पुनर्गठन मसलको लेकर जा शक्यता पैदा हुई है उतन यह गिणित होता है कि हमारे देशमें अब भी बर्तमान एव सात हैं जिनमें राष्ट्रीय विचार बर्तन हो कम और प्रा गिणित तथा स्थानीय विचार अधिक हैं।

संघमें सचिवोंका विभाजन

संघ राज्यमें गणकारी सचिवोंका विभाजन त्रिभुज सिद्धांतके आकार हुआ है यह यह है कि जो मसल राष्ट्रीय महत्त्वके होत हैं और जिनमें नियमन और नियंत्रणका एवम्पना आवश्यक होती है वे संघ मसल के त्त गणकारी द शक्ति प्राप्त हैं। जो

१ D. P. M. Introduction to the Study of the Law of the Constitution.

मसन सामान्य हितके नहीं हान है वह स्थानीय सरकारोंका मुमुं कर दिये जाते हैं। केन्द्र और राज्योंके अधिकार विभाजन निम्नलिखित तीनमें से किसी भी एक तरीके से किया जा सकता है

(१) केन्द्रीय सरकारके अधिकार संविधानमें स्पष्टतः बता दिये जाते हैं। सब अधिकार राज्योंके पास छोड़ दिये जाते हैं। अमेरिकाम ऐसा ही हुआ है।

(२) इसका उल्टा तरीका भी अपनाया जा सकता है जसा कि ब्रिटेनमें किया गया है। राज्योंके अधिकार संविधानमें लिखित कर दिये जाते हैं तथा अवशिष्ट अधिकार (residual powers) केन्द्रके पास छोड़ दिये जाते हैं।

(३) केन्द्र और राज्यों दोनोंके अधिकार लिखित कर दिये जाते हैं। इसके साथ अवशिष्ट अधिकार केन्द्रके पास रहते हैं। जागतम ऐसा ही हुआ है। भारतमें अधिकारोंकी तीन सूची है। एक सूची है केन्द्र अधिकारोंकी। दूसरी सूची है राज्योंके अधिकारोंकी। तीसरी सूची है उन अधिकारोंकी जिनका प्रयोग केन्द्र और राज्य दोनों ही कर सकते हैं। यह सूचीका समकालीन सूची (concurrent list) कहते हैं। यह तीसरी सूचीमें दिये गये अधिकारोंके सम्बन्धमें यदि केन्द्र और राज्यमें मतभेद होता है तो केन्द्रीय सरकारका प्राथमिकता मिलती है।

सब राज्यके गुण

(१) यह छोटे और बड़े और राज्योंके आपसमें मिलकर एक बड़ा राज्य बनाने का अवसर देता है। उन राज्योंका अपना स्वतन्त्र और पृथक् अस्तित्व भी कायम रह जाता है।

(२) राष्ट्रीय एकता और स्थानीय स्वतन्त्रता दोनोंकी आवश्यकताएँ एक साथ रहने के कारण मध्य उन बड़ी जनसंख्यावाले राज्योंके लिए विनाशकारी मानाएँक होते हैं जिनमें विभिन्न जाति, मनुष्य और भाषाएँको लोग रहते हैं।

(३) एक राज्यामें मधीय व्यवस्था ही मधोबनानी (centripetal) और विपटन वाल (centrifugal) शक्तिजोम सामंजस्य स्थापित कर सकता है। मधरा मध्य भारत जग देशके लिए विनाश है बहा भाषा, प्राचीनता और जातीयताकी समस्याएँ हैं।

(४) मधके कारण नीति, शिक्षा और प्रशासनमें बड़ी एकताकी आवश्यकता होती है बहा एकता और बहा शिक्षाकी आवश्यकता है बहा विभिन्नता सम्भव है।

(५) राजनीतिक सामाजिक और आर्थिक प्रयोगोंके लिए मध्य सरकार मधका अधिकारी है। भारतमें मध्य-नियम तथा कई अन्य सामाजिक और आर्थिक मधोबनानी मीमिन शासनों का मधो ही है। उनके परिणामोंका सारथानीय अध्ययन और मध्यावकन किया जा रहा है।

(६) विभिन्न द्वादश्याके निवासियोंको स्थानीय स्वतन्त्रता देकर सावजनिक कार्योंमें जनताकी भूमिका मधु बढ़ाया जाता है।

(७) अधिकाराने विभाजनके कारण मध्यम केन्द्रीय सरकार पर से प्रशासनका बाध कुछ हल्का हो जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि कामके निपटानेमें देरी लगाने या लाल फीते (red tapism) की तथा बमचारी तन्त्र (bureaucracy) की प्रवृत्ति कमजोर पड़ जाता है।

(८) साठ द्वादश के कथनानुसार मध्यम एक निरंकुश शासक द्वारा जनताके अधिकार हड़प लिये जानेका खतरा नष्ट रहना।

संघ राज्यके दोष

(१) सीबॉक की राय है कि 'राजनीतिक दृष्टिसे और विभिन्नो मामलाम सघने अपनेको गतिगामी सिद्ध किया है पर आर्थिक दृष्टिसे और आन्तरिक मामलाम सघ कमजोर साबित हो रहा है। पर अमरियाकी बढ़ती हुई शक्ति और सम्पन्नताको देखते हुए सीबॉक का यह कहना सही नहीं मानूम जाना कि मध्य आर्थिक तौर पर और धरेशू मामलोंमें कमजोर होता है।

(२) कुछ लेखकोंका कहना है कि केन्द्रीय मामलोंमें सघ कमजोर होता है। पर ह्यामका अनुभव हमें बताता है कि यह कथन सही नहीं है। यदि भी यह नहीं कह सकता कि अमरिया इस या भारतकी वैदेशिक नीति कमजोर और कमजोर है। और य मभी सघ ही है।

संघके वास्तविक दोष निम्नलिखित हैं

(१) विधायी शक्ति और प्रशासनिक विभिन्नता।

(२) केन्द्र और राज्यमें द्वाहरे सरकारी मन्त्र राजनीय सेवाएँ और विभाग और इसमें उन्नत जानेवाली पेशेगीया।

() केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारमें अधिकार क्षेत्रके बारेमें सम्भावित संघर्षका खतरा।

(८) प्रशासनका भारी व्यय।

(५) विवादका खतरा।

५. प्रसंधान (Confederations)

अब हम मध्य और प्रसंधानके अन्तरको समझना चाहिए। प्रसंधान भी राज्यका मध्य होगा है। प्रसंधान और मध्यम अन्तर यह होता है कि प्रसंधानका निर्माण कुछ विभाग और निश्चित बातोंके लिए ही किया जाता है मध्य बातके लिए नहीं। प्रसंधानका निर्माण करनेवाला राज्य सम्प्रभु बन रहे हैं जब कि मध्यके अन्तर्गत रहने वाले राज्य केन्द्रके अधीन होते हैं।

प्रसंगान्त प्रमुख लक्षण निम्नलिखित होते हैं

(१) प्रसंगान्त बनानेवाले राज्य या इकाइया अपनी सम्प्रभुता बनाय रखती हैं। साथ-से जिनके सम्बन्ध होने हैं उतने ही राज्य होते हैं।

(२) प्रसंगान्त कोई सामान्य सरकार नही हाना।

(३) विभिन्न इकाइया अपने कानून स्वयं बनाता है और उन्हें अपने अपने क्षेत्र में लागू करती हैं।

(४) प्रसंगान्त अस्थिर हाना है और किसी भी समय भंग किया जा सकता है।

(५) प्रसंगान्त करार का परिणाम है जबकि सब संविधान पर आधारित होता है।

(६) प्रसंगान्त सम्मिलित हाना बाल इकाई राज्या की अन्तरराष्ट्रीय स्थिति बनी रहती है। वे अन्य सम्प्रभु राज्याके राजनयिक (diplomatic) सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। सब राज्याके इकाई राज्याके लिए यह सम्भव नही है।

(७) प्रसंगान्त की इकाइयाय यदि मजदूरी जाता है तो वह अन्तरराष्ट्रीय मजदूरी होता है। सब राज्य की इकाइया का युद्ध मजदूरी होता है।

(८) प्रसंगान्त स्थापित सामान्य सस्था इकाई राज्या की सरकाराने सम्बन्ध रखती है। जनताय उमका कोई सम्बन्ध नही रहता। पर सब राज्याके केन्द्रीय सरकार का सम्बन्ध सीधा जनताय रहता है।

SELECT READINGS

DICEY A. V. — *The Law of the Constitution*

FINER H. — *Theory and Practice of Modern Government* — Vol. 2

GARNER J. W. — *Political Science and Government*

सरकार का संगठन (Organization of Government)

सरकारके अंग का परम्परागत पुनर्गठन विधायिका (Legislature) कार्यपालिका (Executive) और न्यायपालिका (Judiciary) इन तीन विभागों में हुआ है। विधायिका राज्य की इच्छा को प्रकट करती है कार्यपालिका इस इच्छा को कार्यान्वित करती है और न्यायपालिका राज्यके अनुचित हस्तक्षेपों को रद्द करती है। संविधान की व्याख्या करती है और ऐसी विधियाँ को अर्थ में घोषित करती है जो संविधानके अंग नहीं होती।

हम इस अध्यायमें सरकारके इन अंगों पर विचार करेंगे।

विधायिका (The Legislature)

सरकारके विभिन्न अंगों में (विधानसभा एवं सांसदोंकी संघ) विधायिकाको सबसे अधिक महत्त्व और गौरव का स्थान प्राप्त किया जाता है। पर हमेशा ही ऐसा नहीं रहा है। जैसा कि प्रकट करने हैं पुराने अमान्य कानून बनाये गये बल्कि शोके जाये थे। वे लोक विधि (folk law) थी जो समाजमें प्रचलित प्रथाओं पर आधारित होती थी। इन विधियों को राजा निर्यातना सरकारी तथा घोषित समाजका था। ऐसे ऐसे समय बीतता गया जैसे-जैसे राज विधायिका महत्त्व कम होना गया और विधियों को घोषित करनेके लिए कार्यपालिका द्वारा नियम अध्यादेशों और आदेश का रूप ग्रहण करती चली गया। पर वे इनके स्थायी नहीं थे किन्तु किन्तु विधियों और उनका धार भी उनका आधार नहीं था। कुछ समय और बीतनेके बाद विधियों को प्रकटित करके द्वारा बनायी जाने लगी। ये जारी रहे किन्तु कुछ प्रतिनिधि समाजोंके समान थे। अन्तर्गतका समाज और समाजिक सम्प्रभुताका उदय हुआ।

वृद्धे-वृद्ध संस्था आधारित विधि बनानेमें समाजका मनब विधि गद्द बल्कि समाज की नीतियोंको लागू करनेके लिए किन्तु पन की आवश्यकता होती थी उसकी मजूरी पानके लिए हुआ था। उस समय समाजकी सम्प्रभुता कोई गौरव और प्रभाव की बात नहीं थी किन्तु सोच सामग्य करने, बल्कि वह एक सामान्य विधायिका

समझी जाती था जिनमें साग बचना था। पर गांधी ही मसौदा मन्त्रालय नया अनुभव किया कि घनही स्वातंत्र्य देना पाने व अन्तर्गत दूर करने पर जाद मसन है। विशेषे यद्वा और आन्तरिक शक्तिमानमें फले हुए मन्त्रालयों गिरावला को दूर करने का प्रयत्न करने व नया मन्त्रालय होना पना। यही विधायिका द्वारा कानून बनानेका सम्बन्ध इतिहास आरम्भ गना है। यह ध्यान देनेकी बात है कि इतिहासमें मात्र ही विधायिका 'परम मन्त्रालय' (His Majesty) गरा 'मन्त्रालय उपाययुक्त आध्यात्मिक और गतिक अधिकाधिक (Lords Spiritual and Temporal) की मन्त्रालय जीर मन्त्रालय बनाया जाता है। सम्पत्तियां (supplies) कायस मन्त्रालय (House of commons) गरा 'स्वतन्त्र' 'परम मन्त्रालय व लिए स्वीकार की जाता है। यह-यह विधायिका लिए सन्त्रालय म प्रायका की जाती की पर काय व विधायिका के रूप प्रस्तुत हान ग।

सरकार के प्रशासकीय विभाग द्वारा बनाये गये विधियां

आजकल सामान्य बेचन विधायिका ही कानून नहा बनानी। उदाहरणके लिए अमेरिकाकी कानूनविधाना प्रधान अथवा अमेरिका का राष्ट्रपति ही बना करता है परन्तु वे कमा मन्त्रालय है जब मीने (विधायिका का उच्च मन्त्र) का विधान मन्त्रों में उहे स्वीकार करने। इतिहास (Parliament) के पास न तो इतना समय रहता है और न उन इतना जान ही हाता है कि वह विधायिका पूरा-पूरा विवरण तय करे। इसलिए वह बना विधायिका ऊपर मन्त्रालय हो मन्त्रालय करती है और उसकी आधी-धियों को पूरा करनेका काम कानूनविधाना विभिन्न विभाग पर छोड़ दिया जाता है। इस कामको यह विभाग अपने आधिकार्य आधी विधायिका और विधान गरा करते हैं। उनमेंसे कुछ का मन्त्रालय हाता है और उनके लिए सन्त्रालय मन्त्रालय हाती है और कुछ के लिए मन्त्रालय विधानकी भी मन्त्रालय नहा होती। मन्त्रालयका प्रभु (delegated) अथवा उपाययुक्त विधान (subordinate legislation) इतना बन गया है कि मुख्य विधानका हक न उत मन्त्रालय निरनुगता की विधि की है।

जनता द्वारा विधि निर्माण

विधानमन्त्रालय विधानकी (devises) का पर है। वही पर मन्त्रालय (reference) सब मन्त्रालय (initiative) गरा मन्त्रालय विधि-विधानका प्रभु विधान है। अन्तर्गत मन्त्रालय कुछ मन्त्रालय और कुछ मन्त्रालय विधानकी उपाय अनुभव किया है। मन्त्रालयका मन्त्रालय करन हाता है कि मन्त्रालय कानून विधानका द्वारा स्वीकार विधि जाने पर भी उत उत मन्त्रालय नहा मन्त्रालय सब उत मन्त्रालय का एक विधान मन्त्रालय न करने। कुछ मन्त्रालय

म लागू निर्देश बकल्पित होता है। इन मामलों में लागू निर्देश तभी लिया जाता है जब मतदाताओं अथवा सभ्यों द्वारा दिये जाने वाले एक निर्दिष्ट सत्यांश-निर्देश नियमों के माँग करनी है। पर दूसरे मामलों में विधायक सावधानिक सजोषनाके मामलों में लागू अनिवार्य होता है। ऐसा ही आस्ट्रेलिया में भी है।

लोक निर्देशका स्वरूप निषेधात्मक (negative) है। क्योंकि यह विधायकों को स्वीकार अथवा अस्वीकार भर करता है। इसके विपरीत प्रारम्भिक (initiative) का स्वरूप सकारात्मक (positive) है। क्योंकि उसमें मतदाता स्वयं विधि बनाने का आदेश देकर विधि निर्माण में अग्रणी होते हैं। इस पद्धति में अनुसार मतदाताओं की एक निर्दिष्ट सत्यांश-निर्देश समस्या पर विधि निर्माण को माँग करनी होती है। मतदाता चाह तो उस विधानकी स्वीकार और उसका विवरण सभी कुछ स्वयं ही तैयार कर लें अथवा चाहें तो प्रस्तावित विधानका सामान्य उद्देश्य विधायकों को बता दें और उसीको विधानका विवरण तैयार करने का काम सौंप दें। दाना ही हानतम विधि निकल जाने पर उस पर जनताकी राय ली जाती है। उस विधि तभी माना जाता है जब मतदाताओं का बहुमत उस स्वीकार कर ले। अमेरिका में राज्य में लागू निर्देशकी अपेक्षा लोकनिर्देशका अधिक चलन है।

जब किसी भू-प्रदेशका एक राज्य में दूसरे राज्यका हस्तान्तरण करना होता है या जब उस भू-प्रदेश से नये राज्यका निर्माण करना होता है तब उस प्रदेशकी जनताकी राय जानने के लिए जनमत-संग्रह (plebiscite) की व्यवस्था की जाती है। योरोप में यह व्यवस्था अठारहवीं शताब्दीके अन्त से काममें लयी जा रही है। सन् १९२२ में जनमतसंग्रह का पद्धतिस्वरूप ही जर्मनीका सार प्रदेश वापस लिया गया था। धरने ता यह व्यवस्था सातत्यवादी मालूम होती है पर वर्तमान युग में जनमत-संग्रह नाम पर बहुत अधिक धमकी और भयका उपयोग किया गया है। उदाहरण स्वरूप आस्ट्रेलिया और जेआस्तावाकिया में। भारत में कश्मीर में जनमत-संग्रह कराने का यथेष्ट किया था पर कुछ अमान्य कठिनाइयों के कारण रोक दिया है। सन् १९५६ में संसद परिषद ने इस बात पर चर्चा किया था कि संभव राष्ट्र सभ्य संवैधानिक जनमत-संग्रह का काम तीव्रता से हाना चाहिए।

प्रत्येक विधि-निर्माणका मूल्यांकन करते हुए यह कहा जा सकता है कि स्वतंत्र लोकतंत्रवादी संघटनोंके आगे छाट-छाट प्रदेशों में यह पद्धति सामर्थ्य प्राप्त कर सकती है जैसे स्विट्जरलैंड में जिन और प्रान्तों (cantons) में। पर बहु-सङ्घ देशों में जिनमें लोकतंत्र और स्थानीय स्वशासनकी परम्पराएँ स्विट्जरलैंड के समान नहीं हैं इस पद्धति में सामर्थ्य अयोग्य हानि ही हानि अधिक आसना है। श्रीनिवास भावगुड की राय है कि प्रत्येक विधान विधायकों का गौरव धर्म के द्वारा सभ्य के समक्ष विधान सभ्य सङ्घटन उपयोगी सिद्ध होता है। इससे सभ्यकी भावना बढ़ने में पानी राष्ट्रीय जीवन-सामर्थ्यका बल मिलता है और राजनीतिकी ध्याकर्तिकी गिनती में यह महत्व असाध्य साधन है।

विधायिका का संगठन (The Organisation of Legislature)

राजनीतिके सिद्धान्त और व्यवहार जनों ही में विधायिकाके संगठनकी समस्या पर बहुत अधिक विचार हुआ है। सब देशोंमें विधायिकामें दो सदन होते हैं विधायक सभ्य। प्रान्तों और मण्डलों द्वारा। मन्त्रालयी विधायिका सब जगह नहा पाया जाती। भारत के अनेक राज्योंमें सब विधानके अन्तर्गत द्विसदनात्मक विधायिका है। अन्तर्गत द्विसदनात्मक विधायिका का कारण अतिहासीय परिस्थितियाँ हैं न कि कोई पूर्व निश्चित योजना। अन्तर्गत दो सदन की संस्थात्मक वास्तव प्रणालीको अपनाया है उन्होंने उसकी द्विसदनात्मक व्यवस्थाका भी मान लिया है।

अन्तर्गत दो सदन हैं वही यह युक्तिगत मालूम होता है कि इन दोनोंकी रचना अधिकतर और कतस्य भिन्न है। जिससे दोनों में परस्पर ईर्ष्या और संघर्ष न पैदा हो सके। निचला सदन (इसे भारतमें लोकसभा कहते हैं) स्वयं जनता द्वारा ही निर्वाचित होता है। इसके सभ्य जनसंख्या और स्थानिक मताधिकारके आधार पर चुने जाते हैं। ऊपरी या दूसरा सदन (इसे भारतमें राज्यसभा कहते हैं) बहुधा समाजके वर्गों या स्वार्थों अथवा मधुमे राज्योंका प्रतिनिधित्व करता है और उसका चुनाव प्रायः प्रत्येक रीतिमें नया होता है।

अन्तर्गत दो सदन (House of Lords) अपेक्षित वंशानुगत (hereditary) है। उसका सभ्यों की संख्या कमिन्स सभा (House of Commons) के सभ्यों की संख्या से अधिक है। मनुक्त राज्य अमेरिका के ऊपरी सदन सीनेट में १६ सभ्य होते हैं। अमेरिका के ४८ राज्योंमें हर राज्य में दो प्रतिनिधि चुने जाते हैं। १९१३ के बाद में ये लोग प्रायः एक ही सदनके सभ्य निर्वाचित होते हैं। यह एक स्थाई सभा है। इसका प्रारंभ सभ्य ६ वर्षों के लिए निर्वाचित होता है। सभ्योंकी कुल संख्याका एक तिहाई भाग प्रति दूसरे वर्ष अवकाश ग्रहण कर लेता है। अमेरिका की सीनेट में समाज भरके समस्त ऊपरी वर्गोंमें सबसे अधिक प्रतिनिधित्व नहीं है ना सर्वसे अधिक प्रतिनिधित्व सदनमें से एक अवकाश है। स्विट्जरलैंड और ऑस्ट्रियामें दूसरे सदनका संगठन उन्हीं सिद्धान्तों पर हुआ है जिन पर अमेरिकी सीनेटका। स्विट्जरलैंडका हर सदन में प्रतिनिधि और ऑस्ट्रियाके ६ राज्योंमें से हर राज्य ६ प्रतिनिधि देनेके दूसरे सदन में भेजा है। अमेरिकी सीनेटकी भाँति ब्रिटेनकी सीनेटमें भी १६ सभ्य होते हैं। पर वे अमेरिकी सदन पर सर्वत्र प्रत्येकके द्वारा बनाये गये विधायक प्रतिनिधित्व प्रणालीके आधार पर न हावर मान और पर जनसंख्याके आधार पर हुआ है। बोमर संविधानके अन्तर्गत जर्मनीकी संसदके ऊपरी सदन (Reichstag) में जनताके द्वारा राज्योंका प्रतिनिधित्व होता है। पर राज्योंका समस्त प्रतिनिधित्व नहीं

म साव निर्देश वकल्पित होता है। इन मामला म लोक निर्देश सभी लिया जाता है जब मतदाता अथवा सधकी इकाइयाकी एक निश्चित सस्या लोक निर्देश लिख जानेकी मांग करती है। पर दूसरे मामलाम विगपकर सावधानिक सधोपनाके मामलोंम लोक निर्देश अनिवार्य होता है। एसा ही ऑस्ट्रलियाम भा है।

साव निर्देशका स्वरूप निपयात्मक (negative) है। क्यानि वह विधयकाको स्वीकार अथवा अस्वीकार भर करता है। इसके विपरीत लोराग (initiative) का स्वरूप सक्रियात्मक (positive) है। क्यानि उद्यम मतदाता स्वय विधि बनानका आदेश देकर विधि निर्माण म अगुआ बनत है। इस पद्धतिके अनुसार मतदाताओकी एक निश्चित सस्याको विभी एक निश्चित समस्या पर विधि निर्माण की मांग करनी होनी है। मतदाता चाहे तो उस विधानकी स्परसा और उसका विवरण सभी कुछ स्वय ही तयार कर लें अथवा चाहें तो प्रस्तावित विधानका सामान्य उद्देश्य विभायिकाको बता दें और उसीको विधानका विवरण तयार करनका नाम सौंप दें। वाना ही हालतम विधि लिख जाने पर उस पर जनताकी राय ली जाती है। उसे विधि सभी माना जाता है जब मतदाताओका बहुमत उसे स्वीकार कर ले। अमेरिकाक राज्यम लोक निर्देशकी अपेसा लोभादेशका अधिक चलन है।

जब किसी भू प्रदेशको एक रायसे दूसरे राज्यका हस्तान्तरित करना होता है या जब उस भू प्रदेश से नये राज्यका निर्माण करना होता है तब उस प्रदेशकी जनताकी राय जाननके लिए जनमत-सग्रह (plebiscite) की व्यवस्था की जाती है। योराप मे यह व्यवस्था अठारहवीं शताब्दीके अन्त से कामम लायी जा रही है। सन् १९३५ म जनमतसग्रह क फलस्वरूप ही जर्मनीको सार प्रदेश वापस दिया गया था। वसे तो यह व्यवस्था लोकतन्त्रवाणी मालूम होनी है पर वर्तमान युगमे जनमत-सग्रहके नाम पर बहुत अधिक घमकी और भयका उपयोग किया गया है उदाहरण स्वरूप आस्ट्रिया और चेकोस्लोवाकियाम। भारत ने कश्मीरम जनमत-सग्रह करानका वचन दिया था, पर कुछ असाध्य कठिनाइयान इस राव दिया है। सन् १९५६ म सीटो परिपद ने इस बात पर आर दिया था कि सयुक्त राष्ट्र सधके तत्वावधानम जनमत-सग्रहका काम धीप्रवासे हाना चाहिए।

प्रत्यक्ष विधि निर्माणका मूल्यांकन करते हुए यह कहा जा सकता है कि स्वतन्त्र लोकतन्त्रवादी सगठनोके आदी छोट-छोटे प्रदेशम यह पद्धति सफलता प्राप्त कर सकती है जैसे स्विटजरलैण्डके जिलो और प्रान्तों (cantons) मे। पर बड़े-बड़े देशम जिनमे लोकतन्त्र और स्थानीय स्वशासनकी परम्पराएँ स्विटजरलैण्ड के समान नहीं हैं इस पद्धतिसे लाभकी अपेसा हाति ही होनेकी अधिक आगा है। श्री श्रीनिवास आयगर की राय है कि प्रत्यक्ष विधान विधायिका का गौरव घटाने क बजाय सक्ट के समयम विशय रूपस बहुत उपयोगी सिद्ध होता है। इससे दलवदीकी भावना बढ़ने नहीं पाती राष्ट्रीय नील-साम्यको बल मिलता है और राजनीतिकी व्यावहारिक शिक्षाका यह सबसे अच्छा साधन है।

विधायिका का संगठन (The Organisation of Legislature)

राजनीतिके सिद्धान्त और व्यवहार दोनों ही में विधायिकायें संगठनकी समस्या पर बहुत अधिक विचार हुआ है। सब देशोंमें विधायिकायें दो सदन होते हैं विधायिकायें द्विसद्री। प्रान्तों और संघोंमें दो सदनवाली विधायिका सब जगह नहीं पायी जाती। भारत में अनेक राज्योंमें नये संविधानके अन्तर्गत द्विसदनात्मक विधायिका है। ब्रिटेन में द्विसदनात्मक विधायिका का कारण इतिहासीय परिस्थितियाँ हैं न कि कोई पूर निश्चित योजना। ब्रिटेन में द्विसदनकी संसदात्मक शासन प्रणालीको अपनाया है उन्होंने उसकी द्विसदनात्मक व्यवस्थाको भी मान लिया है।

ब्रिटेन में दो सदन हैं वहाँ यह युक्तिगणन मालूम होता है कि इन दोनोंकी रचना अधिकार और बलमें भिन्न हो जिससे दोनों में परस्पर ईर्ष्या और संघर्ष न पदा हो सके। निचला सदन (इसे भारतमें साक्षमता कहते हैं) स्वयं जनता द्वारा ही निर्वाचित होता है। इसके सभ्य जनसंख्या और व्यापक मताधिकारके आधार पर चुने जाते हैं। ऊपरी या दूसरा सदन (इसे भारतमें राज्य-सभा कहते हैं) बहुधा समाजके वर्गों या स्वार्थों अथवा अपने राज्योंका प्रतिनिधित्व करता है और उसका चुनाव प्रायः प्रायः सीमित नहीं होता।

ब्रिटेनकी साठ सभा (House of Lords) अधिकतर वंशानुगत (hereditary) है। उसमें सभ्योंकी संख्या चौदह सभा (House of Commons) के सभ्योंकी संख्या से अधिक है। संयुक्त राज्य अमेरिका के ऊपरी सदन सीनेट में १६ सभ्य होते हैं। अमेरिका के ४८ राज्यों में हर राज्य में दो प्रतिनिधि चुने जाते हैं। १९१३ के बाद से ये लोग प्रायः सभी इग सदनके सभ्य निर्वाचित होते हैं। यह एक स्पष्टीकरण है। दूसरा प्रयोग सभ्य ६ वर्षके लिए निर्वाचित होता है। सभ्योंकी कुल संख्याका एक तिहाई भाग प्रति दूसरे वर्ष अथवा एक बार होता है। अमेरिका की सीनेट यदि समस्त अथवा समस्त ऊपरी सदनमें सब अधिकार संचालित नहीं हैं तो सबसे अधिक संचालित सदनमें से एक अथवा दो हैं। स्विट्जरलैंड और ऑस्ट्रिया में दूसरे सदनका संगठन उदात्त सिद्धान्त पर हुआ है ब्रिटेन पर अमेरिकी सीनेटका। स्विट्जरलैंड में हर राज्य दो प्रतिनिधि और ऑस्ट्रियाके ९ राज्यों में हर राज्य ६ प्रतिनिधि देनेके द्वारा सदन में भेजा है। अमेरिकी सीनेटकी भी संख्या १६ सभ्य होते हैं। पर वे प्रतिनिधित्वका आधार पर सदनके द्वारा मनानीय चिन्तित जाते हैं। प्रतिनिधित्वका प्रान्तोंके आधार पर न हानरदार और जनसंख्याके आधार पर होता है। सामान्य संविधानके अन्तर्गत संसदीय सदनके ऊपरी सदन (Richtleg) में जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधित्व होता है। पर राज्योंका मान प्रतिनिधित्व का

दिया गया है। फ्रांसका धात्रकलका ऊपरी सदन कॉन्सिल आफ रिपब्लिक ' तीसरे गणतंत्र (Third Republic) की सीनेटकी निर्वाचन छाया सी है। इस परिष्कृत ३२० सदस्य हात है जिनका चुनाव साम्प्रदायिक और विभागीय सत्कार्यों द्वारा बयस्क मताधिकारके आधार पर किया जाता है। फ्रांसका निचला सदन नेशनल असेम्बली (National Assembly) आनुपातिक प्रतिनिधित्वके आधार पर ऊपरी सदनके लिए स्वयं सदस्य चुन सकता है। पर इस प्रकार चुने जानेवाले सत्कार्योंकी संख्या कॉन्सिल आफ रिपब्लिकके सदस्योंकी समूची संख्याक $\frac{1}{2}$ से अधिक नहीं होगी। दक्षिणी अफ्रीकाकी यूनियनम ऊपरी सदनम नामजदगो और निचाघनके सिद्धान्तोंका मिश्रण किया गया है। आस्ट्रेलियाके कुछ प्रान्तोंमें ऊपरी सदनक सदस्य जीवन भरके लिए गवर्नर द्वारा नामजद किय जाते हैं। कुछ प्रान्तोंम व एक विभाग और सकुचित आधार पर निर्वाचित होने हैं। तुर्कीमें एक-सदनात्मक प्रणाली है।

नार्वे का नित्ताय सदन अनुपम है। नार्वे की नोब-सभा स्ट्रूदिग (Strothing) हर तीसरे साल चुनी जाती है। निर्वाचित होते ही यह सदन अपने सदस्योंम से एक चौथाई सदस्योंका ऊपरी सदन लेगथिंग (Lagthing) के लिए बनता है। बाय सदस्यों को मिलाकर निचला सदन ओडदिग (Odesthing) बनता है। ऊपरी सदन लेदिग को अपनी ओर स विधि बनानेका अधिकार नहीं है। पर ओडदिग द्वारा भ्रम गमे विधेयको म बहु सशोधन प्रस्तावित कर सकता है। यदि वे सशोधन स्वीकार नहीं किये जाते और ऊपरी सदन (लेगथिंग) भी अपने सशोधन पर अड़ा रहता है तो दोनों सदनका सम्मिलित अधिवेशन होता है जिसम निर्णय दो तिहाई बहुमत द्वारा किया जाता है।

भारत के केन्द्रम और कुछ राज्याम दो सदन हैं। केन्द्रमे अर्थात् भारतीय संसदके दो सदनका लोक सभा और राज्य सभा कहते हैं। राज्य-सभाके सदस्योंकी अधिकतम संख्या २५० है। इनम से १२ सदस्योंका बला साहित्य समाज-सेवा आदि क्षेत्रोंमें जनकी असाधारण सेवाओंक उपलक्षम राष्ट्रपति नियुक्त करता है। बाय सत्कार्योंका चुनाव राज्याकी विधान सभाया द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्वक आधार पर किया जाता है। राज्याम सीटोंका वितरण संविधानके चौथे परिशिष्ट (Schedule) के अनुसार किया जाता है। राज्य-सभा मरदा कायम रहती है। इसके सत्कार्योंका चुनाव ६ वर्षके लिए होता है। एक तिहाई सदस्य प्रति दूसरे वर्ष अवकाश ग्रहण करते हैं। इस समय १२ मनोनीत सदस्योंको मिलाकर कुल २१६ सदस्य हैं।

यदि दूसरे सदनकी कोई आवश्यकता है तो उन्हें पहल सदनस भिन्न होना चाहिए। उन्हें स्वतंत्रतापूर्वक और जिम्मेदारीसे काम करना चाहिए। निचले सदनके कार्योका सफल सशोधन करनेके लिए जनम आवश्यक क्षमि योग्यता और पणपादहीनता होनी चाहिए।

क्या दूसरे सदन आवश्यक है ?

दूसरे सदनका सब देगोंमें पाया जाना इन बातका प्रमाण नहीं है कि व अनिवार्य है। दूसरे सदनके पथम प्रायः निम्नलिखित तर्क दिये जाते हैं।

(१) निम्न सदन द्वारा कही गई नीति मान-विषयके बिना अन्तर्जातीय कर्तव्यी विधियों पर इन सदन द्वारा राय मंगली है और ऐसा होना बहुत उचित है।

(२) मध्याह्न सविधानोंमें दूसरे सदन मयकी इकायके हितोंका रक्षा करते हैं। इन सदन का तर्कों पर सम्भीर गवाहों की गयी है और इस सम्बन्धमें अन्तिम रूपमें अभी तक कोई नियम नहीं हो सका है।

निम्नोक्त गवाहों के उत्तराध में ज० एम० मिनट यह आगवा प्रकट की थी कि केवल एक सदनक हाथोंमें यह निरहुता या अन्तर्जातीयता ही सक्ता है और अविभाजित गतिमें पतनायुक्त प्रभाव का राकनके लिए दूसरे सदनका होना आवश्यक है। सर इन्दरी मन का कहना था यही तर्क था कि दूसरा सदन चाह वह ब्रिज प्रवार का क्या न हो न हानम अन्त्या है। उनका कहना था कि एक मुनगटिन दूसरा सदन प्रतिस्पर्धी मन्पा न होकर एक अतिरिक्त सुरक्षा की व्यवस्था है। लॉर्ड एक्टन (Lord Acton) दूसरे सदनका स्वाधीनता के लिए एक आवश्यक सुरक्षा मानते हैं। अन्य विधि निमागम आवश्यक गति-अनुत्पन्न होता है अन्तर्जातीय सुरक्षा प्राप्त होती है और बह एक अन्त्य प्रदानाबल सदन (revising chamber) का काम करता है।

द्वितीय सदनका अन्तिम मन्पा (ion parliament) न अपना अन्तिम बैठका में दूसरे सदनका समान कर देना चाहा था। मन् यह भी प्रयास किया था कि वह सदन आरक्षी निशानक-अ-इनम स्वयं तया स्थाई रूपमें प्रतिष्ठित करे। पर परिणाम इतना बुरा हुआ कि अन्तर्वेन में उसे 'मघारकी सदन अधिक भवानक निरहुता का था। कन्वेंशन-मन्पा (Convention Parliament) ने अपना यह मन् प्रकट किया था कि 'गामन मघार लॉर्ड-मन्पा और कामन्स-मन्पा द्वारा ही होना चाहिए।

संयुक्त भा एक मन्गीय अन्तर्जातीय प्रयास किया था पर उसे एक निम्न प्रकट पत्र पर छोड़ दिया। हमारे मन्म में ही युनाय न कही प्रयास किया। पर का अन्त्य फल नहीं निकला। मन्पा का कहना है कि इस सदन का सन्पा है कि

* बरत कावीन संघर (Long Parliament) यह दूसरा सदनके उस अधिसूचना नाम है जो ३ नवम्बर १६४० में आरम्भ होकर मार्च १६५३ तक होना था था। न-कावीन सदनके सनमान कावीन कारण द्वारा कन्वेंशन उस समय काय की विनियमक था।

* कन्वेंशन संघर (Convention Parliament) इंग्लैंड की १६६० और १६८० की मन्म का कन्वेंशन मन्पा करते हैं बिनक अधिसूचना द्वारा गरी सन्पा और पर न कन्वेंशन अन्ते पर हुआ था।

द्विसदनात्मक प्रणालीके पक्षमें एक अद्भुत एवता दिखायी देती है। पर दूसरी ओर श्री एस० एस० आयरंगर का कहना है कि लोकतन्त्रम द्विसदनवाद (bicameralism) एक जीण-शीण सिद्धांत है। उनका कहना है कि द्विसदनात्मक प्रणालीका कारण लोकतन्त्रमें विश्वासकी कमी थीर अल्पसंख्यकाका सुगम रखनेकी इच्छा है। और इस बातका कोई कारण नहीं दिखायी देता कि लोक-सम्मतिका अपनी अभिव्यक्तिके लिए दो साधन खोजने पड़ और साक्षरको दो प्रकारके स्वरा में बोलना पड़े। उनका कहना है कि दूसरे सदनोंको इसलिए बना रखा गया है कि 'राजनीतिक दलोंके उन ध्यवितयाकी महत्वाकाक्षाएँ पूरी होनेका अवसर मिले जिन्हें पहलू सदनमें स्थान नहीं मिल पाता दलोंके भीतर नेतागिरीकी हाहृ कुछ कम हो और साधारण रूपसे पार्टीके प्रभावका दायरा बढ़े। ऐसा प्रतीत होता है कि भारतके प्रान्तोंमें द्विसदनात्मक प्रथा निहित स्वाधीकी जड़ जमाने और निष्पक्ष सदनकी सम्माध्य नान्ति-मूलक प्रवृत्तियाँ पर रोक लगानेके लिए प्रचलित की गयी थी। निचले सदनकी भू-सम्पत्ति सम्बन्धी प्रवृत्तियोंको रोकनेके लिए खाम तौर पर ऐसा किया गया था।

द्विसदनवादके विरुद्ध अबसियस (Abbe Sieyes) का शास्त्रीय तर्क इस प्रकार है यदि दूसरा सदन पहलू सदनसे असहमत होता है तो वह शरारती और हानि पहुँचानेवाला है और यदि सहमत होता है तो उसकी कोई जरूरत नहीं रह जाती। दूसरे सदन को निरर्थक बताने वाले तक का उत्तर फाइजर ने इस प्रकार दिया है यदि दोनों सदन सहमत होते हैं तो विधिनी न्यायपूर्णता और विवेकशीलता पर हमारा विश्वास और भी पक्का हो जाता है। यदि वे असहमत होते हैं तो लोगोंको अपने दृष्टिकोण पर फिरसे विचार करने का अवसर मिलता है।

निस्सन्देह सँझाई तक तौर पर समुचित ढंगसे संगठित दूसरे सदनके पक्षमें बहुत कुछ कहा जा सकता है। एक प्रत्यालोचक संस्थाके रूपमें दूसरा सदन विधि निर्माण में बहुत महत्वपूर्ण योग दे सकता है। अपने संगठनकी विगणताओं—सदस्योंकी लम्बी अवधि अधिक अनुभव और निचले सदनकी उत्तजनाओं तथा ईर्ष्या-द्वेषों आदिसे उनकी अनेकावृत्त मुक्ति—के कारण यह सदन विधेयकों पर सभी दृष्टिकोणोंसे बहुत कुछ तटस्थ रूपमें विचार कर सकता है। पर व्यवहारमें तो दूसरा सदन रुढ़ियावित्ता और कभी-कभी प्रतिक्रियावात् का गढ़ होता है। ब्रिटेनमें अनेक बार लॉर्ड-सभाको तर्क-संगत दृष्टिकोण अपना देनेके लिए धेतावनी दी गई या और १९११ तथा १९४९ के पार्लियामेण्ट एक्ट ने तो उसे शक्तिहीन-सा बना दिया है। लॉर्ड-सभा अर्थ विधेयकों में हस्तक्षेप नहीं कर सकती और सामान्य विधियोंके मामलामें भी उसके अधिकार कॉमन्स सभा के बराबर नहीं हैं। अब लॉर्ड-सभा अधिपक्षे अधिन इतना ही कर सकती है कि वह विधि निर्माणको एक चप तक या पार्लियामेण्टके लगातार दो अधिपक्षों तक रोके रहे।

यह तर्क हम निस्सार मान्य होता है कि जल्दबाजी में तथा ठीक प्रकार सोचे विचार बिना बनायी गयी विधियों पर रोक लगानेके लिए दूसरा सदन आवश्यक है।

एक विधयकने अनेक वाचन हात हैं। उन पर विधय समितियाँ विचार करती हैं। विधयक पर गमाचार-पत्र और सावजनिक समा मचों द्वारा जनता अपना मत प्रकट करती है। य सब बातें जल्दबाड़ीस काम क्रिये जानके विरुद्ध पर्यन्त सरदाग मालूम होते हैं। इसक अनिश्चित अवधिक आवश्यक गुधारोंके बारेम ऊपरी सभन को विसम्ब करनेका अधिकार इनका अप सम्भवत अन्तिम रूपम प्राप्त होगा और जन शान्तिका रास्ता साफ करेगा।

न्तीय सभने पगमें एक और एक यह निया जाता है कि दूसरा सभन सय सिद्धान्त का मौलिक अंग है। पर इस तक पर भी सबा की जा सक्ता है। राष्ट्रोंकी समस्याआ का राष्ट्रोंके विधान-मण्डल मुताबते हैं और राष्ट्रहितके मताबितेम राष्ट्रोंके हितों की रक्षाके लिए दूसरे सभनकी जाई आवश्यकता नहीं है। मयुक्त राष्ट्र अमरिकाका उदाहरण मत हुए हम देखते हैं कि प्रतिनिधि सभा (पहला सभन) के मुहाबिसम गीनेट (दूसरा सभन) कम राष्ट्रीय या प्रगतिशील नहीं रही है। यह धारणा बना लेना यसन है कि एक सभन केवल प्रांत या राज्यास हितोंका शोषण और दूसरा सभन राष्ट्रीय हितोंकी विन्ता करेगा। सम्भावना ता यह है कि दोना ही सभनमे प्रान्तीय और राष्ट्रीय दृष्टिकोणवाले लोग ह ग। इसलिए हम मरियट के इस विचारको अप्यगिन मानत हैं कि सभोय सविधानसंरचनाक लिए दूसरा सभन एक मौलिक और प्रभावशाली साधन है।

सारांसय यह है कि दूसरा सभन आवश्यक है या नहीं इस प्रश्नका को समा उत्तर नहीं निया जा सकना जो सभी अवस्थाओं पर लागू हा। बस कुछ ता घटनाओं पर निर्भर करना है। संयुक्त-राज्य अमरिका और पगमें न्तीय सभनोंकी समाधि से निरमलेह इन दोनोंको कुछ हानि ही हागी। दोना ही सभनोंके परिपक्व बुद्धि और अनुभवके व्यक्तिओंको आवगिन किया है और उन्होंने विधि निर्माण तथा नीति-निर्धारणम बहुत महत्वशाली भाग लिया है। साइ-सभाके मित्र देने से बिना भी सम्भार हा जायगा क्योंकि यह सभन मत्रियोंका और ज्ञान तथा प्रगागरीय अनुभवका आगार रहा है। कुछ तत्कालीन महत्वशाली प्रश्नोंका सम्भीर और निष्पन्न विवेचन पग सभनके कारण सम्भव हो सता है। दूसरी ओर यदि बनाइस की गीनेटका समापन कर निया जाय तो उन देशोंकी कुछ अधिक हानि न होगा। भविष्यम सविधान बनात समय दूसरे सभनका सामान्य नियम न मान कर असाधारण मानना चाहिए अपा दूसरे सभनका व्यवस्था बहो करनी चाहिए जहाँ इसकी साम्यम में अकल हो। समय और घनरी बढागीका राजनेके लिए यह व्यवस्था का जा सकना है कि शिवांगसद विधयकोरा निचले सभनके दा बार पारित कराना जाय और अकल पदन पर वि विरुद्धोंके गा विने जानेके पहुँचे आम पनाव करा निया जाय।

विधायिका के अधिकार और कतव्य

(Powers and functions of the Legislature)

विधायिका का काम केवल विधि बनाना ही नहीं है। वे अकल पर विचार करती हैं

सम्भूतियों (supplies) की स्वीकृति देती हैं और पासनका सामान्य निरोधन करती हैं। विधि निर्माणम सामान्यतः निचले सदनको अधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त रहता है। वित्त विधयक (finance bills) केवल निचले सदनम ही पंग किये जा सकते हैं। भारतम भी एसा ही है। वित्त विधयक अतिरिक्त अन्य विधयक अनेक देगोंमे किसी भी सदनम पेश किये जा सकते हैं। दोनो सदनम परस्पर विरोध होने पर ऊपरी सदनको ही हकना पड़ता है। अनेक देगोंके सविधानोम दोना सदनोके या दोनों सदनोकी सभितियाके सम्मिलित अधिवेशनकी व्यवस्था है। इन अधिवेशनोमे नियय एक निश्चित प्रतिगत मगा द्वारा ही किय जाते हैं। परन्तुकि प्रायः सभी क्हो निचले सदनके सदस्योंकी सख्या अधिक होती है इसलिये पासा उहाक पक्षमें पड़ता है।

ब्रिटिश पार्लियामेंट ससाराकी सबसे अधिक शक्तिमान ससणाम से एक है। उसके अधिकार वहाँ तक हैं जहाँ तक जनमत और निर्वाचक-मण्डल उसे सहन करे। उसने काम सार्वधानिक (constituent) और विधायी (legislative) दोना ही हैं। सयुक्त राज्य अमेरिका और स्विटजरलैण्ड म सविधानको बदलनेके लिए एक व्यापक व्यवस्थाकी जाती है। आस्ट्रियामे भी सविधानमे परिवर्तन करनेके लिए एक विशेष प्रक्रियाकी आवश्यकता होती है। फ्रांसम सणाधनकी प्रणाली अमेरिकाकी अपेक्षा अधिक आसान है यद्यपि उसकी प्रक्रिया बहुत कठिन प्रतीत हानी है।

जिन देसाम ससदीय शासन व्यवस्था है वहा ससद प्रान्तोतरो द्वारा पासन पर नियंत्रण रखती है। यद्यपि इस सम्बन्धम ब्रिटनम अविश्वासका प्रस्ताव उपस्थित नहीं किया जा सकता पर फ्रांसमे ऐसा हो सकता है और वहा बहुधा मन्त्रिमण्डलोके उलटने में इस तरीकेका उपयोग किया जाता है। लोक प्रशासनके सखक विधायिकाकी तुलना एक व्यावसायिक सस्थाके सचालक मण्डलस करते हैं। दोनोका ही काम निश्चान, निरीक्षण और नियंत्रण करना है कार्यान्वय करना नहीं। सरकारके प्रशासकीय विभागका संगठन किस प्रकार किया जाय विभिन्न विभागोंके बीच कर्तव्याका विभाजन कैसे हा और वे किस प्रकार काम करें—इन सब प्रश्नोंका निर्णय करनेका अन्तिम अधिकार सयुक्त राज्य अमेरिकाम सरकारकी विधायी (legislative) पासा को है।

विधायिकाको विशयकर उसके ऊपरी सदनका कुछ 'याय-सम्बन्धी' काम भी करने होते हैं। आज भी साँड-सभाका सभापति साँड चान्सलर ब्रिटेन की सर्वोच्च 'यायाधिकरण-सत्ता' है। वह 'याय सम्बन्धी' ६ अर्थ लॉजोंके साथ राज्यके सर्वोच्च 'यायालयके रूपम काम करता है। वसे तो प्रिन्सी काउंसिलकी 'याय-समिति' (Judicial Committee) म इन साँड लॉजोंके अतिरिक्त अर्थ व्यक्ति भी बैठते हैं पर समितिका नाम बास्त्रवम यह साँड लॉज भी करते हैं। सयुक्त राज्य अमेरिकाम प्रतिनिधि-सभा द्वारा राज्य अधिकारीके विरुद्ध लगाये गये अभियोग (impeachments) की सुनवाई सीनेटम होती है। फ्रांसमे भी मानेट ही उच्च 'यायालय' थी।

कुछ देगोंमे ऊपरी सदनको नायपालिका म सम्बन्धित कुछ काम भी करने होते

है। संपूर्ण राज्य अमेरिकाम मंत्रिणा सर्वोच्च न्यायालयके 'यायाधीनों' राजदूतों वाणिज्य दूता आदि अधिकारियोंकी राष्ट्रपति द्वारा की गयी नियुक्तियोंके लिए सीनेटकी स्वीकृति आवश्यक होगी है। फलतः सीनेटके गणतन्त्रके अन्तर्गत राष्ट्रपति सीनेटकी स्वीकृति प्रतिनिधि-सभाको भंग कर सकता था। पर प्रधाने एसा नहीं होने दिया और प्रतिनिधि-सभा अपनी पूरी शक्ति भर काम करती रही है। अमेरिका में ऊपरी सदन बहुत अधिक शक्तिशाली है। इसके अधिकार करीब-करीब निचले सदनके समान ही हैं। अमेरिकाम माने वित्त विधयवाका प्रस्तावित नहा कर सकता पर उनमें मंगलान कर सकता है। पर वैयक्तिक मामलाम प्रतिनिधि सभाकी अपेक्षा सीनेट अधिक प्रभावशाली है। अपने अनुभव परिपक्वता सम्बन्धी अधिक अमग स्वरूप सीमित आकार राजनीतिक मस्याओंसे अपना सम्बन्ध और विधि द्वारा मिली हुई अपनी अधिकार-सत्ता कारण दोनों सीनेटकी अधिक प्रतिष्ठा है। फलतः दोनों सदनोंका मिलानेवाली सुझाव दल-अध्यक्ष्यान अभावसे और प्रतिनिधि-सभाके बड़े आचरणसे सीनेटकी शक्तिशाली बनाया है। फलतः सीनेटका इनका अधिक प्रभाव है कि इसकी शक्ति उनमें करनेका साहस किसी भी मन्त्रिमन्त्रिम नहीं है। सबका और हर मन्त्रिमन्त्रिम साधारण तौर पर सीनेटके तीन या चार मन्त्रियों को सामिल किया जाता है। सीनेटका अधिकार है कि वह प्रतिनिधि-सभा द्वारा स्वीकृत कृतियोंको स्वीकार करे या अस्वीकार करे पत्रों या मन्त्रियों।

विधायिका की कार्य प्रणाली (Legislative Procedure)

भारतमें विधि निर्माण आसान नहीं है। इसके लिए कुछ न मानेयक (draftsmen) को विधयका सामान्य सिद्धान्तोंसे सावधानीसे विवेचना करनेकी भी साध है। साध प्रत्येक पारा पर विचारपूर्वक विचार करनेकी आवश्यकता होगी है। प्रथम हर विधयको प्रथम वाचन प्रथम वाचन समिति अवस्था (committee stage) सूचनावस्था (report stage) और तृतीय वाचनकी स्थिति का पार करना होता है। विरोधी दलकी अङ्ग सभातवाची शक्ति का राजन और मन्त्रका समन बनानेके लिए विधान-सभा (guillotine)¹ आदि विधानका अन्त करने वाले मन्त्रियोंको अपनाया जाता है।

विधिनिरमाकी कार्यवाही पर राजनीतिक दलों तथा 'प्रभाव दाननका' लडा का बड़ा असर पड़ता है। राजनीतिक दल शक्तिशाली होने उम्मेदवार पवित्र करने के लिए उम्मीदवारोंमें इस आकाश का लडा करने है कि वह अपनी शक्ति और शक्तिशाली

¹ विधान सभा (guillotine) विधान-सभा द्वारा किसी विधय पर विधायिका में फल का अन्त करनेके लिए आगरी लाराय या अन्य विधि का प्रयोग किया जाता है। समय पूरा होने ही कार्यवाही समाप्त मान लिया जाता है।

समर्पण करेंगे। जब उम्मीदवार व्यक्ति यह वचन दे देते हैं तभी उन्हें दलका उम्मीदवार बनाया जाता है। कभी-कभी किसी विधि योजनामें रुचि रखनेवाले मतदाताओंके दल उम्मीदवारोंका समर्पण करनेसे पहले उनसे यह लिखावा लेते हैं कि वे उन योजनाओंका समर्पण करेंगे। कुछ सविधानोंमें उपाकरणके लिए समुन्न राय अमेरिकाके राज्य सविधानोंमें इस बातकी व्यवस्था है कि जब विधायिकाका कोई सदस्य निर्वाचक मण्डलका आशिक या सम्पूर्ण विश्वास खो देता है तब उसे फिरसे चुनाव लड़नेके लिए मजबूर किया जाता है। यह नाम विधायिकाकी अवधि-समाप्त होनेके पूर्व प्रत्यावर्तन (recall) द्वारा किया जाता है।

आजकल दला दबाव ढालनेवाला गटा और सावजनिक सभाओंकी शक्ति बहुत अधिक है। अतएव अब इस पुराने प्रश्नका महत्व समाप्त हो गया है कि प्रतिनिधि केवल प्रतिनिधि मात्र है या वह अपने विवेकका भी उपयोग कर सकता है। बुद्ध विचारका की राय है कि प्रतिनिधि एक जीता-जागता टेलीफोन मात्र है जिसे सघाई और ईमानदारीके साथ नहीं कठना चाहिए जो कुछ निर्वाचक मण्डल उससे कहलाना चाहता है। यह सिद्धान्त व्यावहारिक नहीं है। एक तो यह व्यक्तिके आत्म-सम्मानको गिरानेवाली बात है और दूसरे कोई पहले यह कैसे मालूम कर सकता है कि चुनाव समाप्त हो जाने के बाद कौन-सी और कौसी परिस्थितियाँ पैदा हो जायेंगी। इसके अतिरिक्त एक प्रतिनिधिका अपने निर्वाचन-क्षेत्रके प्रति जितना कर्तव्य होता है उतना ही कर्तव्य सम्पूर्ण राष्ट्रके प्रति भी होता है। इसलिए उसे दूसरे प्रतिनिधियों और दलों द्वारा उपस्थित किये गये सभी दृष्टिकोणों पर विचार करनेके लिए तैयार रहना चाहिए।

यद्यपि इस सम्बन्धमें कोई सामान्य नियम नहीं है कि किन परिस्थितियोंमें किसी प्रतिनिधिका कर्तव्य होता है कि वह त्याग-पत्र दे वे फिर भी साधारणतया यह स्वीकार किया जाता है कि जब कभी वह एक दलको छाड़कर दूसरे दलमें जाय या अपने निर्वाचन क्षेत्रकी स्पष्ट इच्छाके विरुद्ध नीति अपनाये या कार्य करे अथवा चुनाव के समय दिये गये अपने तात्त्विक वचनोंको भंग करे तब उसे त्याग पत्र दे देना चाहिए और फिरसे चुनाव लड़ना चाहिए।

संसदीय पद्धति में सत्तारूढ़ सरकारके बारेमें भी यही बातें लागू होती हैं। फाइनेर के अनुसार ब्रिटेनमें निम्नलिखित तीन परिस्थितियोंमें सरकारका भंग किया जाना उचित माना जाता है

(१) जब मौलिक महत्वकी नयी नीति लागू करनेकी बात सोची जाती है जसा कि बाल्डविन (Baldwin) ने १९२३ में किया था। बोनर ला (Bonar Law)—जिनके बाद बाल्डविन प्रधान मंत्री बने थे—चुनावमें घोषणा कर चुके थे कि वह चुगी की दरों (tariffs) में कोई बढ़ि नहीं करेंगे। बाल्डविन यकारोको दूर करनेके लिए सरक्षण (protection) लागू करना चाहते थे। अर्थात् चुगीकी दरामें वृद्धि करना चाहते थे। अतएव चुनावके समय किये गये वादेके विपरीत मौलिक और महत्वपूर्ण नयी नीति अपना देनेके पूर्व बाल्डविन ने नये चुनाव करा लेना उचित समझा।

(२) जब सरकारको इस बातका स्पष्ट प्रमाण मिल जाय कि अब उस पर देश का विश्वास नहीं रहा।

(३) जब दसोंकी स्थिति ऐसी हो जाती है कि गतिगप पैदा हो जाता है आवश्यक विधानोंके पारित होनेमें बाधा पड़ती है और जब तीस आसोबनाओंके कारण सरकारके लिए प्रतिष्ठापूर्वक सत्तारूढ़ बना रहना असम्भव हो जाता है।

समिति प्रणाली (Committee System)

आधुनिक विधायिका अपना अधिकांश काम समितियोंके द्वारा करती है। वायधानिका और विधायिकाके अलग अलग होनेसे अमेरिकामें पायस (अमेरिकी संसद) का सारा काम समितियों द्वारा होता है। समितियाँ गुप्त रूप से अपना काम करती हैं। यद्यपि इन समितियोंमें दोना दमाके प्रतिनिधि रहते हैं पर बहुमत इनमें सत्स्य अधिक होते हैं और उसी दलका सत्स्य समितियोंका समारथि होता है। दलके सत्स्य एक साथ मिलकर काम करते हैं। मंत्रिमण्डलके सत्स्योंका कमाना-कनी इन समितियोंमें उपस्थित होनेका कहा जाता है पर यह जरूरी नहीं है कि उनकी सलाह मान ली जाय। कुछ महत्त्वपूर्ण समितियोंके समारथि वस्तुतः मंत्रियोंका भी स्थिति रहते हैं जैसे मापनोपाय-समितियों (committee on ways and means) और सवित्तियोग समितियाँ (committee on appropriations) के समारथि। सामुं भी ऐसी ही व्यवस्था है वहाँ पर एक कमानका अभ्युक्त (rapporteur) विधीय मामलोंमें भी मंत्रीका प्रतिनिधि बन सकता है। इस पद्धतिमें प्रतिनिधि सभा प्रशासन और विधि निर्माण दोनोंका ही नियंत्रण करती है। ब्रिटेनकी बॉमन्स सभामें समितियोंके सभा पतियोंको उतना महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं है जितना अमेरिकी संसदमें। बॉमन्स सभामें मंत्रिमण्डल उन पर ध्यान रहते हैं।

संसद की अवधि (Duration of Parliament)

संसदका वायधान क्षेत्रना होना चाहिए इस अर्थका बोर्द नियम उतर नहीं है। साधारणतया यह कहा जा सकता है कि संसदका वायधान इतना होना चाहिए कि प्रतिनिधिमण्डल और जनतामें निश्चयका सम्पर्क बना रह सके इतना समझा भी होना चाहिए कि संसद सत्स्य अनुभव प्राप्त कर सके और जनताको अपनी रानी बनाकरे उद्देश्य न पड़ना पड़े। निश्चय सगनेही विधान अमेरिकी जनताके अर्थ नियम सत्स्य वायधान बहुत ही ध्यान रखा है। प्रतिनिधि सभाकी अर्थ नियम कमजारीके कारणोंसे दो एक कारण यह है कि सत्स्य सत्स्योंका अभाव कबन दा कर

के लिए होता है। ब्रिटेन फ्रांस और जर्मनीम निघने सन्तके कायकालकी अवधि कानन द्वारा तय कर दी गयी है। पर इस बातकी व्यवस्था भी है कि कुछ विशेष परिस्थितियाम निघल सन्तको कायकाल समाप्त हुनके पहल भी भग किया जा सवता है। ब्रिटेन की कॉमन्स सभाकी पाँच बपकी अवधि वास्तवम बहुत लम्बी अवधि है। क्याकि इस अवधिके कारण इस बातकी आसका है कि सदनके सदस्य मतदाताओं की इच्छाओ और आवश्यकताआसे अपना सम्बन्ध न बनाय रख सकें। दूसरी ओर तीन बपकी अवधि जसा कि १९१९ के सुधारम भारतकी प्रान्तीय काउंसिलोके लिए रखी गयी थी बहुत कम है। ससतीय सरकाराके लिए चार बपकी अवधि सर्वोत्तम है नशतें कि इस अवधिके पहले भी मसदका भग किये जानकी व्यवस्था हो। ब्रिटेन का सम्राट पानियामेण्टको भग करता है पर भग करनका अधिकार वस्तुन मन्त्रिमण्डल के हाथम रहता है।

जहा तक दूसरे सन्तके कायकालका प्रश्न है यशानुगत सदनको छोडकर पाप सदनका कायकाल—चाह वह प्रत्यक्ष रूपसे चुने जाते हा मा अप्रत्यक्ष रूपसे अथवा उनके कुछ सन्स्य निर्वाचित और कुछ मनोनीत होने हा जसा कि भारत की प्रान्तीय विधान परिषदोम होगा था—पाँच बपसे अधिक नहीं होना चाहिए। एसे दूसरे सदन जो स्पाई सस्थाके रूपम काम करते हैं ६ बप तक चल सवते हैं। उनके एक तिहाई सदस्य हर दूसरे बप अवकाश ग्रहण करते रहते हैं जैसा कि सयकन राज्य अमेरिका और भारतकी राज्य सभाम होता है। श्री एस एस० आयगर जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है कहते हैं कि किमी भी व्यक्तिको किमी भी विधायिकाम दो बारसे अधिक जनताका प्रतिनिधि नहां बनन देना चाहिए। दो बारसे अधिक मौका देन से राजनीतिम ध्यावसायिकता फँसती है और नाइका टटट बननेको पूरा प्रोत्साहन मिलता है। श्री आयगर का विश्वास है कि एसे प्रतिवचसि आज हम राजनीतिम जो बासीपन ओर उत्तरदायित्वकी कुण्ठित भावना तथा जान बचाने ओर आत्मसन्तोषकी प्रवृत्ति दिखाई देता है उस पर रोक लग जायगी। इस दुल्लिकेणके उत्तरम अनुभव और अविरतता (continuity) के पक्षम भी कुछ कहा जा सकता है। इसके अलावा एक व्यक्तिको केवन दो ही बार जनताका प्रतिनिधि बननकी अनुमति देनसे उन लोगके लिए द्वार बन्द हो जायगा जिन्हें अवकाश नहीं मिलता और जो राजनीतिम प्रतिष्ठित जीवनकी आगा रखते हैं। आजकी मुख्य समस्या प्रभावशून्य स्वार्थी और दबू सरस्योंका छोटकर बाहर कर देने की है।

विधायकों का वेतन (Salary of Legislators)

अधिकतर आधुनिक सरकारें अपन विधायिकाका वेतन देती हैं। अमेरिकाम प्रतिनिधि सभा तथा सीनेट दोनाके ही सन्स्यको १५० डालर प्रतिवर्ष दिया जाता है। फ्रांसम भी दोनों सन्स्यके सन्स्योंको वेतन मिलता है। ब्रिटेनम भी मजदूर सन्स्यके

आगमन (१९१०) के बादत कॉमन्स सभाके सदस्योंको वेतन मिलता है। भारतमें केन्द्रीय विधायिकाके सदस्योंका ४०० रु० मासिक वेतन मसन रत याना और अधिवक्ताके त्तिम २२ ६० रु० रत भत्ता त्तिा जाता है। श्री एम गस० आम्बरका कहना है कि वेतन देनेकी यह प्रथा हानिकारक है क्योंकि इसमें बरतन विधायक अपने दलके गलाम बन जात हैं। सदस्योंका ध्यान सेवके बजाय वतन पर त्तिा रहता है। वे सोच स्वायत्त लिए अपने विचारोंको छाड़नेके लिए त्तयार रहते हैं। दूसरी आर यह भी कहता ज्तिरु है कि यदि हम चाहते हैं कि सभी धर्मीने नागरिक सामन कायम उचित भाग से तो यह उचित ही है कि उनके द्वारा की गई संवाञ्चक लिए उन्हें उचित पारिश्रमिक मिले। पर साथ ही वेतन इतना अधिक भी नहूा हाना चाहिए जिसमें निस्स्वार्थ गवारा उद्दय असम्भव हो जाय। सरकारका सभा विभागाम काम करनेका पुरस्कार साक-नेवाम मिलनेवाला सन्ताप और तात्का व्यक्तिताके भाव्य निर्माणका विधायाधिकार ही है।

विधायकों के विधायाधिकार (Privileges of Legislators)

सभी देशाम विधायकोंके कुछ विशेषाधिकार होते हैं। ब्रिटिश पार्लियामेंट और साम्राज्यके साथ हुए संघका पत्रस्वरूप इन अधिकारोंका प्रादुर्भाव हुआ। इन विधायाधिकारोंमें भागणकी स्वाधीनता और दीवानी मामलाम गिरफ्तारीमें मुक्ति महत्वपूर्ण हैं। किसी भी सभ्यको किसी भी एमी बानने लिए सजा नहूा दी जा सकती जा उमन सभाम कहीं हो। इसका अर्थ यह नहूा है कि साग असततीय भाषाका प्रयोग करें। सभके अरर भाषाका निरचन सभके अध्यक्ष द्वारा हाना है। इसका अर्थ यह भा नहूा है कि साग एक सभे भागण से त्रिनका अन्त ही न हूा। इनका नियचन समापन (closure)^१ और विचार-अप (guillotine) द्वारा हाना है। साधारण ठौर पर विधायाधिकारके अधिकारनम ४० दिन रहत और ४० दिन बात्तर दीवानी मुक्त्याके गिनतिसेम सभ्याको गिरफ्तारीमें मुक्ति मिलत रहती है। अमेरिकाम यह सभ्यके सभाम उपस्थिति रहने और सभमें आने और जानेको अवधिक् त्तिा रहती है। सम किसी भी दीवानीक मामलेके सम्मन त्तिे जानरी त्तिा त्तिा नहूा है।

^१ समापन (Closure) कभी-कभी विधायाधिकारों किसी विषय पर बात्तर विचार होउगमय इन अधिकारके अन्तर्गत प्रचल करतने लिए इच्छा हाने है कि यदि किसीक बाननेका अवसर त्तिा जाय तो अ उचित समय सभ और सभके अरर कायोंको समपय पूरा करनेमें बाधा नहूा। इस हतनाम मम सत्ताअके बात्तर पूरेके पूर्व ही सभ एक प्रस्ताव द्वारा उग विषय पर बात्तर विचार समापन कर देता है और विषय पर और विचारम करनेका मम म त्तिा जाता है। इस समापन काने है।

विधायिका और कायपालिका के पारस्परिक सम्बन्ध (Relation between the Legislature and Executive)

विधायिका और कायपालिकाके आपसी सम्बन्धके निम्नलिखित चार विभिन्न स्वरूप होते हैं

(१) अंग्रेजी आदर्शके अनुसार मन्त्रिमण्डल संसदकी कार्यसंचालन समिति (Steering Committee) होता है। मन्त्रिमण्डल ही संसदके समय, नीति, पद्धति और वित्तीय उत्तरदायित्वका नियमन करता है।

(२) फ्रांसीसी आदर्शके अनुसार मन्त्रिमण्डल अपने अस्तित्वके लिए विधायिका पर आश्रित है। फ्रांसीसी आदर्श भी संसदात्मक है। मन्त्रिमण्डलका भाग्य हमेशा विधायिकाकी सनक पर निर्भर रहता है। कोई ऐसे निश्चित सिद्धान्त नहीं होते जिनके अनुसार विधायिका मन्त्रिमण्डलके साथ सहयोग या असहयोग करे।

(३) स्विटजरलैण्डके आदर्शके अनुसार कार्यपालिका दलबन्दीसे मुक्त होती है। उसका कार्यकाल निश्चित होता है। यदि उसने कानून अथवा नीतियांको विधायिका अस्वीकार कर लेती है तो कायपालिका इस्तीफा नहीं देती। वह अपनी रीति नीतिमें विधायिकाकी इच्छानुसार आवश्यक सुधार कर लेती है।

(४) अमेरिकी आदर्शमें राष्ट्रपति और प्रतिनिधि सभामें कोई अधिक सम्बन्ध नहीं है। विधायिका और कायपालिकाके बीच कोई सहयोगमूलक सम्बन्ध नहीं है बल्कि ऐसी अनेक बातें हैं (विनोदकर सीनेटके बारेमें) जिनकी लेकर उनमें संघर्ष हो सकता है।

निर्वाचक-मण्डल (The Electorate)

किसी देशके उस जनसमूहको निर्वाचक-मण्डल कहते हैं जिसे मतदानका अधिकार प्राप्त होता है। निर्वाचक-मण्डल अपने इस अधिकार द्वारा ही सरकार बनाते या बिगाड़ते हैं। ऐसा बहुत ही कम होता है कि पूरा देश एक ही निर्वाचन-क्षेत्र (constituency) रहे जैसा कि फासिस्ट इटलीमें होता था। सामान्य प्रथा यह है कि देशका ऐसे निर्वाचन-क्षेत्रोंमें बाँट दिया जाता है जिनकी व्यवस्था आसानीसे हो सके और जिनकी जनसंख्या लगभग बराबर हो। जिस निर्वाचन-क्षेत्रको केवल एक प्रतिनिधि भजनेका अधिकार हाता है उसे एक प्रतिनिधि निर्वाचन-क्षेत्र (single member constituency) कहते हैं। जिस निर्वाचन-क्षेत्रसे एक-से अधिक प्रतिनिधि चुने जाते हैं उसे बहु प्रतिनिधि-निर्वाचन-क्षेत्र (multi member constituency) कहते हैं। ब्रिटन और भारतमें अधिकतर एक प्रतिनिधि-निर्वाचन-क्षेत्र ही है। ब्रिटनके हाउस ऑफ़ कॉमन्सकी ६१५ सीटोंमें से ५७६ सीटें एक प्रतिनिधि निर्वाचन क्षेत्रोंसे ही भरी जाती हैं।

भारतमें स्वतंत्रताके पहले धन्य-मत्स्यकों और विगिण्ड हितों जसे व्यवसाय भू-स्वामियों आदिके लिए पुष्कल निशाचन भेद था। विधविद्यालयोंके निशाचन-दात्र भी अलग था। ये सब बातें लोकतन्त्रके प्रतिकूल थीं और एक गड्ड राष्ट्रीय तथा लोकतन्त्रवाणी राज्यके विकासमें आचने डालनी थी। साम्प्रदायिकता उपायनी जीवनका धानक है तथा विगिण्ड हित सामान्यवाणके बच-भ्रम आता है।

जागीरोंका प्रतिनिधित्व योरापके अनेक देगामें कुछ समय पहले तक प्रचलित था। ब्रिगनके राजनीतिक गुधारकाने बहुत समय तक 'एक सम्म्य एक वोट' के सिद्धान्तका आगन्तन किया। गुधारकोंमें सबधच्छ जरेमी बन्धम के गान्धिमि प्रत्यक की गणना एक हानी चाहिए, किसीको भी एक-ज अधिक नहीं गिना जाना चाहिए। एक दो अगणतियाके होते हण भी यह गुधार सभी लोकतन्त्रवाणी देगामें स्वीकृत ही चुका है। ब्रिगनमें १९५० तक बहुजन मतगणन (plural voting) की प्रथा थी। इस प्रथाके अनुसार एक म्यनित एक स अधिक निशाचन दात्रमें वाट दे सकता था। बहु उस निशाचन दात्रमें वाट देता था जिसमें बहु म्यवसाय करता था याने कि उसकी दूबान या काराबारके स्थानका विद्यया कमसे कम १० पौंड बाधिक हा। विधविद्यालयके स्थानक भी सामान्य निशाचन दात्रके अतिरिक्त अपना दूसरा वोट विधविद्यालय निशाचन-दात्रके प्रतिनिधि बननेके लिए दे सकते थे। वर्तमान विधि है—एक सम्म्य एक वोट।

अभी कुछ समय पहले तक स्त्रियाको मताधिकार प्राप्त नहीं था विशेषकर राष्ट्रीय निशाचनमें। उनके निरन्तर संघर्षमें आगन्तन और मट्टापडव समय प्रांसतीय सवाओंके कारण ब्रिगनमें १९१८ में ३० वयमे अधि अधुवासी स्त्रियोंको मताधिकार मिला। १९२८ में दीर्घ अवस्थावासी वर्ग हण ही मरी और स्त्री तथा पुरुष एक ही वोटमें आ गय। मयुवा राज्य अमेरिकामें १९१९ में मविधानके १९वें सगापन द्वारा स्त्रियाको मताधिकार दिया गया। जमनीमें 'बीमर मविधान' में स्त्रियों को मताधिकार दिया गया। फाममें १९४५ तक तथा इन्मीमें १९८८ तक स्त्रियाका मताधिकार नहा दिया गया था। इसका कारण यह आणका थी कि स्त्रियाको मताधिकार देनेसे राजनीतिमें धाधिक पुगाहियोंका अनर्षित प्रभाव बढ़ जाणगा। एक दूसरे ईषोनिक देग स्तेनमें स्त्रिया परमे यह प्रविबाध कुछ समय पहले हट गया था। मोबिनन रूपमे मताधिकारके मामलेमें स्त्री और पुरुष एक समान माने जाते हैं। बिन्नी निवागी भी वोट दे सकते हैं। भारतमें मनी प्रवारके निशाचनमें स्त्रियोंका पुरुषके समान ही मताधिकार प्राप्त है।

स्त्रियाका मताधिकार देने जानेका स्वागत बननेसे लोगोंके मट्ट बट्ट हण है कि हममे राजनीतिमें मूडना सामाजिकन्याय और मानव-दात्रा (humanitarianism) का युग आरम्भ होगा। पर मविधानके प्राय अनेक मताधिकारका उन्नेय पुगाहोई अन्ना कुछ अधि बिदेसपूर्ण ईषणे मती बिग है। मताधिकारके विर

सर्प कर देने या ब्रूट अनव महिलाओं ने अपने इस अधिकारका उपयोग नही किया। फिर भी स्त्री प्रतिनिधियोंकी उपस्थितिके फलस्वरूप और महिलाओं तथा उनका सहा द्वारा देशके सामाजिक जीवनमें अधिक रुचि लेनेके कारण सामाजिक समस्याओंकी ओर अधिक ध्यान दिया जाता है। भारत जैसे देशमें स्त्रियोंकी अधिक और सामाजिक असमयताओं (disabilities) को हटाने और बच्चोंकी आवश्यकताओंकी पूर्तिकी ओर अधिक ध्यान दिया गया है।

किसी व्यक्ति द्वारा मताधिकार प्राप्त करनेकी अवस्था भिन्न भिन्न देशोंमें भिन्न भिन्न है। अधिकतर देशोंमें यह अवस्था २१ वर्ष है। भारत और ब्रिटनमें यही अवस्था है। तुर्की और सोवियत रूसमें १८ वर्षकी अवस्थासे ही मताधिकार प्राप्त हो जाता है जबकि बहुतसे मतदाता अपरिपक्व ही रहते हैं। १९१९ में जर्मनीके संविधानमें २ वर्षसे अधिकके स्त्री-पुरुषोंको मताधिकार दिया था। कुछ देशोंमें तो २५ वर्षसे कमके लोगोंको मताधिकार नही दिया जाता है। कुछ लोगोंका कहना है कि युवकोंका मताधिकार नही दिया जाना चाहिए। क्योंकि वे अनुत्तरदायी और अपने विचारोंमें उग्र होते हैं। पर प्रायः यह माना जाता है कि २१ वर्षकी अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते युवकोंका अपने चारा ओरके सत्कारका इतना ज्ञान हो जाता है कि वे समझदारोंके साथ अपने मताधिकारका प्रयोग कर सकें। अधिकारियोंमें आमतौरसे अत्यधिक रुचिवांता हासी है। इस रुचिवांताको देखते हुए नवयुवकोंकी तथाकथित उग्र सुधारवादी भावनाओंको दूर नही समझना चाहिए। फिर अनुभवसे ही युवक सीधे में।

राष्ट्रीय विधायिकाके लिए चुनाव लड़नेकी अवस्था मताधिकारकी अवस्थासे प्रायः ऊँची रहती है। अमेरिका जर्मनी और फ्रांसमें उम्मीदवारका कम-से-कम २५ वर्षका और जापानमें कम-से-कम ३ वर्षका होना चाहिए। ब्रिटन और रूसमें मताधिकार और उम्मीदवारोंकी अवस्था एक ही रखी गयी है। भारतमें वर्तमान विधिके अनुसार राज्य विधान सभाया तथा लोकसभाकी संस्यताके लिए आवश्यक आयु २५ वर्ष और राज्य विधान-परिषद और राज्य सभाके लिए ३ वर्ष है। संस्यताके लिए अधिकतम उम्रका निश्चय शायद कही नहीं हुआ। ब्रिटनमें उम्मीदवारके लिए यह आवश्यक नही है कि वह जिस निर्वाचन क्षेत्र में लड़ना चाहता हो वहाँका निवासी भी हो पर समुक्त राज्य अमेरिकामें यह आवश्यक है।

आधुनिक सिद्धान्त और व्यवहार दोनों ही सावधानी समान और धैर्य मताधिकारके पक्षमें हैं। पर कुछ देशोंमें कुछ प्रकारके लोग मताधिकारसे वंचित रखे गये हैं। ऐसे लोग हैं पागल जिनका दिमाग बिगड़ गया हो कुछ खास प्रकारके अपराधी भिखमग (paupers) और दिवालिया। रूसको छोड़कर अन्य सभी देशोंमें विदेशियोंका मताधिकारसे वंचित रखा गया है। विदेशियोंको नागरिकता देनेके लिए अधिकांश देशोंमें कुछ नियम बने हुए हैं। प्रायः इसके लिए दसमें कुछ वर्षों तक निवास आवश्यक माना गया है। समुक्त राज्य अमेरिकाके प्रत्येक राज्यमें निर्वाचन सम्बन्धी योग्यताओंके अपने-अपने नियम हैं। कुछ देशोंमें निवासके साथ नागरिकता और अग्रणी भाषा

माननी परागाभाव"यह है। मन्विधानक १७ वें मन्विधानम यह कहा गया है कि किसी भी व्यक्तिका शक्ति या शक्ति आधार पर मन्विधानरस वचित नहऱ। बिदा जा सकता। पर दत्तिका राज्योंम रत्न"का भावना वन्त अधिक है। वही नीचा सागा का मन्विधानरस अलग रत्नक लिए अलग उपाय कामम साथ गय है। दक्षिण अफ्रीका संघ (Union of South Africa) म कान नाओं का मन्विधान प्राप्त नहीं है यद्यपि वे कुल जनमन्विकाके हैं हैं। अध-नाम मन्विधानको भी भावजनिक मन् दाताओंका सूचीम १९५६ म हटा दिया गया है। हिटलर क ममदम जर्मनीने यहूतिया का कान भी राजनीतिक अधिकार दना म्वाकार नहीं किया था। मारा"के अन्त दगामे राष्ट्रीय अन्त मन्विकाका मन्विधानरस वचित रसा दया है। कुछ म्गामे कुछ श्रेणीक सरकारी नोकरीका भी मन्विधानरस वचित रसा जाता है। इनम कनाव अधिकारी सुनिक आन है।

प्राय मन्वित्त और गिणाकी वादताका मन्विधानरके लिए आव"वक माना गया है पर मावतक प्रा"नावम मन्वित्त और गिणाकी मावताका म्दामम्बव कदम कम रसा गया है। इनके पहन यह निदान था कि नवन उगा मोगाओ वोट दनका अधिकार है जिनका दगम कुछ निर् चन म्वाया स्वाय हा—जम मन्वित्तगानी वग। पर इसका पन यह हुआ कि अन्त निहित स्वाय वन्त हा म्द और म्वाय स्पासी हा कना। इन्म १८ ० और १८६७ क मुपार विपदने अन्वित्त मन्वित्तकी वावताक आधार पर संगाय गय प्रतिबंधाके विरुद्ध कन्म उगाया। १९१ तक प्रगा (Prussia) में प्रदग राज्म अन्त आधार पर मन्विधानके तीन वग हाव थ। इस म्बवम्बाने अनुमार प्रथमवगक मन्विधानका दूसरा वगके मन्विधानका अगेना संभग पार मुनी और ठामर वगके मन्विधान मुकावत १६ मुनी अधिक राजनातिक गति प्राप्त थी।

गिणा सम्बन्धा वावताक वारम धवाय भाषाका मापारण पान काता माना जाता है। भाषाका ज्ञान निम्नन्तु एक बहुत बडा मुविधा है फिर भी निगरानाकी ही एक वन्त बडी अवाम्बता नहऱ। मानना चाहिन। जैसा कि भारतीय म्दित्तक मन्वित्त मन्वित्त मन्विधि (Lothian Committee) ने गिना है निगरानाका यह अर्थ कानिना है कि अन्त अन्त ज्ञान का अनुभवकी परिधिम ज्ञानका मावता पर ममागारीक माय वोट अन्त अन्तर्व है। थी गग थीनिवम आरग्वर वन्त है अगवागमें बिवा"का पडने और प्रविवाग नीति" और वावताकाके मन्वित्त कम्पा और मन्वीका बि"वन्त करनवाग मनाकार-मन् और वावता पडनेकी वावता म्बव मावतववागी अन्वित्तक नि" अन्वित्त है। निरावक-मन्वित्तक गित्त करनम राजनातिक दग बहुत बडा वाग दे मन्त है।

हम इस पुराने निदानम बि"वन्त नहऱ करत कि मन्विधानरक माय पर कन्व भी जडा हुआ है कि आव"वका पडने पर अन्ते वावता म्दमर्पन गरीरिक्त वन द्वारा किया जाव। आव"व भी यह शक नहऱ करत कि यहूतिका पुन्ने म्दान

पुद्ग-शत्रुता भार बहन न करनेके कारण मताधिकारसे वंचित रखा जाय। इसलिए मताधिकारके लिए सैनिक योग्यता आजकल असंगत है। हर व्यक्तिको सुन्दर जीवन धितानेका अधिकार है और इसलिए हर सामान्य व्यक्तिको जो राग्यका धनु नहा है, मताधिकार प्राप्त होना चाहिए।

अनेक विचारवादीका कहना है कि मताधिकार कोई ऐसा अधिकार नहा है जो प्रत्येक नागरिकका अपने आप प्राप्त हो। उनका कहना है कि यह एक विश्वाधिकार है जो केवल उही लोगको दिया जा सकता है जो इसका प्रयोग सोव हितके लिए कर सकते हैं। इसी आधार पर कुछ लोगोका तर्क है कि वोट देना केवल एक नैतिक कर्तव्य ही नहीं है वरन् एक अधिक उत्तरदायित्व भी है। इसी कारण स्विटजरलण्ड आस्ट्रिया बल्जियम और अर्जेन्टाइना गणतन्त्रने कुछ प्रदेशोंमें वोट देना अनिवार्य बना दिया गया है। मक्सिमोम यदि कोई व्यक्ति एक बार अपना वोट नहीं देता तो पर्याप्त कारणोंके अभावमें उसे आगामी चुनावमें मत देनेके अधिकारसे वंचित कर दिया जाता है। इस सम्बन्ध में दबाव उतना ही अनुचित है जितना अज अनेक मामलोंमें। इससे दबाव डालनेका उद्देश्य विफल हो जाता है। वोट न देनेका उचित प्रतिकार दबाव नहीं है बल्कि मतदानमें रुचि उत्पन्न करना और धार धार होनेवाले चुनावको कम करना है। अल्दी जल्दी चुनाव होनेसे मतदाता ऊब जाते हैं और उनमें वाट देनेकी अनिच्छा पैदा हो जाती है।

प्रतिनिधित्वका पुराना सिद्धान्त सामुदायिक प्रतिनिधित्वका था। वहाँ तथा जागीराने आधार पर जनताके समुदाय बना दिये जाते थे और प्रत्येक वय वयस्क रूप से वोट देता था। आधुनिक समयमें प्रादेशिक प्रतिनिधित्व (territorial representation) की प्रथा प्रचलित रही है। परन्तु हाल ही में इस प्रथाकी बहुत आलोचना भी हुई है। धेणो-समाजवादिया (Guild-Socialists) और धमिक सयवादिया (syndicalists) आदिका कहना है कि एक ही प्रदेशमें रहनेका अर्थ यह नहीं है कि उसमें रहनेवाले सभी लोगके स्वार्थ एक हैं या एक हो सकते हैं। उदाहरण के लिए कोयलेने खानमें काम करनेवाले एक मजदूरका हित निश्चित रूपमें एक व्यावसायिक यात्री या स्कूल मास्टरके हितकी अपेक्षा कायलेकी खानमें काम करने वाले किसी दूसरे मजदूरके हितसे भेद्य सायेगा भले ही वह व्यावसायिक यात्री या स्कूल मास्टर उसका पड़ोसी ही और दूसरा मजदूर उससे पचास मील दूर रहता हो। इस तर्कके आधार पर यह दावा किया जाता है कि व्यावसायिक प्रतिनिधित्व (vocational representation) प्रतिनिधित्वकी अधिक सच्ची प्रणाली है। मुसासिनी के अधीन इटलीमें इस प्रणालीका आजमाया गया था। निश्चित तौर पर यह नहीं कहा जा सकता कि यह पद्धति प्रादेशिक प्रतिनिधित्वकी अपेक्षा अधिक अच्छी सिद्ध होगी। व्यावसायिक प्रतिनिधित्वके विरुद्ध एक मुख्य तर्क यह दिया जाता है कि यह नियम करना सन्ध आसान नहीं है कि कौन-कौनसे व्यवसाय या पेशे प्रतिनिधित्वक अधिकारी माने जाने चाहिए और उनमें से हरेक को कितना

प्रतिनिधित्व किया जाना चाहिए। इस पद्धतिमें प्रतिस्पर्धी हितों और वर्गोंमें वृद्धि होना और राष्ट्रीय नागरिकताकी उत्पत्ति और उसकी स्थितिमें बाधा पड़ने की भी सम्भावना है। मानव जीवनमें 'पडाम' उतना ही महत्वपूर्ण है जितना 'ध्वस्तताप'। विधायकका प्रधान कर्तव्य प्रतिस्पर्धी आर्थिक वर्गोंके स्वार्थोंकी रक्षा करना नहीं है, उसका कर्तव्य है सम्पूर्ण जाति या राष्ट्रके हितोंकी रक्षा तथा उत्पत्ति करना।

मताधिकार के सिद्धान्त

प्रोफ़ेसर शेपर्ड^१ (Professor Shepard) के अनुसार मताधिकारके निम्नलिखित तीन सिद्धान्त समय-समय पर प्रचलित रहते हैं

(१) प्रारम्भिक क्रायनता सिद्धान्त। यह सिद्धान्त यूनानके नगर-राज्योंमें प्रचलित था। इसका अनुसार मताधिकार राज्यकी सम्पत्तिका एक आनुपातिक अंग था।

(२) सामन्तशाही सिद्धान्त। इसके अनुसार भूमि-स्वामित्वका ही मताधिकार प्राप्त था।

(३) नविक सिद्धान्त। यह सिद्धान्त मताधिकारको व्यक्तिगत व्यक्तिगत विकास का आवश्यक और अनिवार्य साधन मानता है। यह अन्तिम सिद्धान्त ही आजकल माना जाता है। इस सिद्धान्तके अनुसार बाट देना हर नागरिकका स्वाभाविक और जन्मजात अधिकार है। जो व्यक्ति राज्यका सम्पन्न है उसे सम्पन्नताक नाते ही मताधिकार प्राप्त है। यह विचार तब प्रतिष्ठित अधिकारिक बत पकड़ा जाता है कि मताधिकार सामूहिक कर्तव्य है जिसके बिना कोई भी व्यक्ति अपनी नागरिकता का ठीक-से प्रयोग नहीं कर सकता है।

बाट देनेका सार्वजनिक बाट माननेका परिणाम स्वल्प इन सिद्धान्तोंका जन्म हुआ है कि बाट देना एक ऐसा सार्वजनिक कर्तव्य है जिसे पूरा करनेके लिए हर नागरिक को मजबूर किया जा सकता है। फलतः कुछ देशोंमें बाट देना अनिवार्य कर दिया गया है जैसे ब्रिटेनमें (१८९३) रूमानिया में (१९१२) नीदरलैंड्समें (१९१३) पोलोन्डामें (१९२०) और स्विट्जरलैंडमें कुछ क्षेत्रोंमें। मताधिकारका प्रयोग न करने पर बहुत हानियाँ दण्डित किया जाता है।

मताधिकारके अनिवार्य प्रयोगका विरोध इन दो आधारों पर किया गया है (१) यदि मताधिकार अल्पके लिए बाट देना एक अनिवार्य कर्तव्य माना जाता है तो मताधिकार अनिवार्य बनाना ही ठीक है। इसका फल यह होगा कि मताधिकारका महत्व ही कम हो जाएगा। (२) अनिवार्य बाट देनाको सामूहिक कर्तव्य माना जा सकता है। इन मताधिकारके बाट देना अनिवार्य मताधिकारके सम्बन्धमें बहुत सारा फायदा मिलेगा है।

^१ American Political Science Association Supplement to American Political Science Review, Vol. VII.

वयस्क मताधिकार (Adult Suffrage) वयस्क मताधिकारले घोर-धीरे ही सावजनिक विधिका रूप धारण किया है। पहले यह मताधिकार क्रम-केवल पुरुषाधी ही लिया गया और वह भी अनिच्छापूर्वक। कई साल तब आन्दोलन के बाद ही महिलाओंको मताधिकार मिला। ब्रिटेन जहाँ प्रगतिशासक देशों में भी १९१८ के पूर्व महिलाओंको मताधिकार प्राप्त नहीं था। और उस वर्ष भी तीस वर्षोंसे अधिक आयुकी महिलाओंको ही मताधिकार दिया गया। पुरुषों और महिलाओं में मताधिकार की आयु की असमानता १९२८ में २१ वर्षकी महिलाओंको वाट देनेका अधिकार देकर दूर की गयी। सभी वयस्क पुरुषों और महिलाओंको मताधिकार मिलना जनता की विजय थी। पर इसका विरोध करनेवालों का भी अभाव नहीं रहा है। जिन लोगों ने जिस जिस तर्क पर समय-समय पर वयस्क मताधिकार का विरोध किया है उनमें से निम्नलिखित महत्वपूर्ण हैं

(१) लॉर्ड मैकले का कहना था कि वयस्क मताधिकारका परिणाम व्यापक लूट होगा। वोइसे अध-नग्न मछलें बड़े बड़े योरोपीय नगरोंके खण्डहरोंको उल्लुओं और सामझियकी साथ धोत लेंगे।^१

(२) लेकी (Lecky) का कहना था कि अधिक जनता का मताधिकार देनेमें इस बात का भय है कि अज्ञानी और अनियंत्रित जनता की सरकार स्थापित हो जायगी। यह चाहते थे कि शिक्षा और सम्पत्ति के आधार पर सीमित मताधिकार दिया जाय। यह पूछते हैं कि 'संसार पर अज्ञानियाका शासन होना चाहिए या बुद्धिमानोंका'।^२ उनका विश्वास था कि जनता स्वार्थी व्यवहारों और सगठनोंके बहुकावे में आकर धोत धरी।

(३) सर जेम्स स्टीफन का विचार था कि वयस्क मताधिकार बुद्धिमानों और मूर्खताके सही और स्वाभाविक सम्बन्धको उलट देता है।

(४) सर ह्यूरी मेन का कहना है कि जनता आधुनिक प्रगति पसन्द नहीं करती। अतः वयस्क मताधिकारके कारण बहुत-सी प्रगतिशील बातों पर राक लग जायगी।^३

(५) वल्लियम के एमिल लुवाले (Emile Levalet) का विचार था कि सस्रीय डगरी सरकारका परिणाम स्वतंत्रता व्यवस्था और सम्पत्तिका अन्त होगा। उनका कहना था 'अज्ञानियाका मताधिकार देनेका नतीजा यह होगा कि पहले अराजकता फैलगी और फिर निरकुश शासन स्थापित होगा।

(६) स्पेंसली की राय है कि शासकों को चुनेका अधिकार अल्प और अयोग्य लोगोंको देनेका अर्थ होगा राज्यकी आरम-हत्या।

वयस्क मताधिकारकी माँगके साथ-साथ महिलाओंको भी मताधिकार देनेकी

^१ Fisher Th Republican Tradition in Europe p. 325.

^२ Democracy and Liberty Vol. I p. 13

^३ Popular Government, p. 36

Le Gouvernement dans la démocratie Vol. II pp 51-52

मौगनी मयी थी। महिलाओंको मताधिकार न्दिय जानके विरोधम अनेक तव दिये गये हैं।

(१) यन् महिलाएँ राजनीतिम सत्रिय भाग मँगी सो उनमें स्त्री-जातिके गुण समाप्त हो जायँग।

(२) राजनीति का अन्तःशा महिलाओं का उपयुक्त स्थान नहऱ है। उनका उपयुक्त स्थान तो उनका घर ही है। महिला मताधिकार गुन्स्य जीवनके आधार पर ही आधार करता है।

(३) महिला मताधिकारम परिवारम पूर प नेगी।

(४) कौचितिक देगामें महिला मताधिकारम राजनीति पर कौचितिक प्रभाव पडने लगगा।

(५) महिलाएँ नागरिकोंके सब प्रमस काम ठीक प्रकारम नहीं कर सकतीं। उन्हाहरणार्थ सैनिक सेवा।

उक्त सभी तर्कोंका मंह-सोड जवाब सिडविक (Sidgwick) जॉन स्टुअर्ट मिल ऐस्मीन (Esmeim) आन् मे लिया है। इन लोगोंने महिला मताधिकारका समयम निम्नलिखित आधार पर किया है

(१) मताधिकारका आधार नैतिक और बौद्धिक है धारीरिक या मौतिक नहीं।

(२) महिलाएँ धारीरसे कमबोर होती हैं अत उन्हेँ विधि और समाज पर अधिक आधित रहना पडना है। इसलिये महिलाओंको पुर्णोंकी अनेगा मताधिकार की आवश्यकता अधिक है।

(३) पुर्णानी अन्यायकार-और अन्यायपूण विधियोंके अन्ती रणा करनेके लिये महिलाओंको मताधिकारकी आवश्यकता है।

(४) महिलाओंकी नागरिक मुक्तिके बाह उन्हेँ मताधिकार देना तर्कपूण है।

(५) राजनीतिक जीवनम महिलाओंके प्रवेश करने स हमारी राजनीति गुड गुन्वर और उन्तर हो जायगी।

बयस्क मताधिकारका पट्टे जो विरोध किया जाता था वह अब एकदम समाप्त हो गया है। अब तो बयस्क मताधिकारको राजनीतिक बयस्कताका प्रतीक माना जाता है। मँकति मन सकी आन्की बेठावनी सही नहीं निरानी हैं। फिर भी यन् सोचनरको धर न होने दना है तो इस बावका निरिषय प्रबाध किया जाना चाहिल कि इन लोगोंकी आर्गंजाएँ कभी सरी न हा मरें।

बयस्क मताधिकारकी कुछ बुराइयाँ दूर करने के लिये एकके अधिक बाट देने (weightage system) तथा बहून मताधिकार (plural voting) के तरीकोंका प्रयोग किया जाता है।

एकसे अधिक वोट देनेकी प्रणाली (Weightage System)

ब्रिजियममें १८९१ में बाट देनेके गिगिनेमें एक बिनेय प्रणाली लागू की गनी थी त्रिमके अनुसार प्रत्येक पुरन नागरिक जो

(१) २५ वर्षकी आयुका हो

(२) और कमसे कम एक साल कम्यून (commune) म रह सका हो, एक वोट दे सकता था।

एक अतिरिक्त वोट वह नागरिक दे सकता था जो

(१) ३५ वर्षकी आयु प्राप्त कर चुका हो

(२) एक वैध-संज्ञानवाला हो

(३) राज्यको पाषण्ड कर देता हो।

एक अतिरिक्त वोट देनेका अधिकार २५ वर्षवाले ऐसे भू स्वामीका भी प्राप्त था जिसकी भूमिका मुख्य दो हजार फुज (बलिशयमका सिकवा) हो।

दो अतिरिक्त वोट उन लोगोको प्राप्त थे जो

(१) माध्यमिक शिक्षा या अथ उच्चतर शिक्षा प्राप्त हो तथा २५ वर्षकी आयु प्राप्त कर चुके हो।

(२) वह नागरिक जो किसी ऐसे सावजनिक पद पर रह है या जो ऐसा व्यवसाय कर चुके हैं जिसके लिए माध्यमिक शिक्षा आवश्यक हो।

किसी नागरिकका तीनसे अधिक वोट देनेका अधिकार नहीं था।

एकसे अधिक वोट देनेकी प्रणाली (weightage system) में के इस सिद्धांत का व्यावहारिक रूप है कि मतोंको गिना न जाय बल्कि सीसा जाय। उनका कहना था कि समाजमें कुछ ऐसे लोग होते हैं जिनकी रायको सावजनिक अधिकारियोंके चनावमें अधिक महत्त्व दिया जाना चाहिए। जॉन स्टुअर्ट मिल ने एकसे अधिक वोट देने की पद्धतिका समर्थन इस आधार पर किया था कि कम शिक्षा प्राप्त लोगोकी संख्या अधिक हानिकारक परिणाममें आ बुराईयाँ हो सकती हैं उनका निराकरण इस पद्धतिसे हो जाना है।

एकसे अधिक वोट देनेकी प्रणालीके विरुद्ध आपत्तियाँ

एकसे अधिक वोट देनेकी पद्धतिके विरुद्ध निम्नलिखित आपत्तियाँ की जाती हैं

(१) मत गिननेका कोई भी मानदण्ड निरवुद्य (arbitrary) ही होता है।

(२) बहुधा लोगोका दैव योगस सम्पत्ति मिल जाती है। अतः सम्पत्तिको राजनीतिक अधिकारका आधार धनाना अनिचित है।

(३) इस पद्धतिसे एक वर्गीय सरकारकी स्थापना होती है।

(४) एस्मिन के अनुसार इस प्रणालीके सिद्धान्तमें विराधाभास है। वह पूछते हैं कि यदि हम प्रणालीका सद्य वयस्क मताधिकारकी बुराईयोको दूर करना है तो फिर क्या यह युक्तिसंगत न होगा कि सब प्रकारकी जनताको मताधिकार दिया ही न जाय।

बहुल मतपिछार (Plural Voting)

बहुल मतपिछार प्रणालीके अन्तगत एक व्यक्ति कभी-कभी दो वोट देता है। उदाहरणार्थ बिम्बविद्यालयका एक स्नातक उस निर्वाचन क्षेत्रमें जिसमें वह रहता है वोट देनेके साथ ही बिम्बविद्यालय-क्षेत्र भी वोट दे सकता है। एक व्यक्ति जिसका निवास-स्थान एक निर्वाचन-क्षेत्रमें है और १० फीट् वायिक किरायेकी उसकी दूकान दूसरे निर्वाचन-क्षेत्रमें है तो वह दाना निर्वाचन-क्षेत्र वोट दे सकता है। बहुल मतपिछार किसी समय ब्रिटेन भारत और जपानीय प्रबन्धन या पर अब इसकी प्रथा लगभग समाप्त हो गयी है।

अल्पसंख्यक प्रतिनिधित्व (Minority Representation)

अल्पसंख्यकोंके प्रतिनिधित्व देनेके लिए कुछ तरीके अपनाये जाते हैं जिनमें से एक बहुमत या सन्वयमान प्रणाली (Cumulative Vote System) है। इस प्रणालीमें—

- (१) निर्वाचन-क्षेत्र अल्पसंख्यक ही बहु-संख्यक होगा।
- (२) मतदाताको अपने वोट देनेका अधिकार होगा है जिसने प्रतिनिधि चुने जाने होने हैं।

यदि पांच प्रतिनिधि चुने जानेको है तो एक मतदाताका पांच मत देनेका अधिकार होगा है। यदि मतदाता बाह्य या पांचा वोट एक ही प्रतिनिधिका या विभिन्न प्रतिनिधिकाको दे सकता है। इस प्रणाली द्वारा सुसंगठित अल्पसंख्यक समुदाय अपने सभी वोट अपने उम्मीदवारका देकर कमसे कम अपना एक प्रतिनिधि अवश्य चुन सकता है।

सीमित वोट (Limited Vote) प्रणालीके अन्तर्गत

- (१) निर्वाचन क्षेत्रका बहु-संख्यक होना आवश्यक है।
- (२) जिसने प्रतिनिधि चुने जानेको हान है उगमे एक या दो कम वोट देनेका अधिकार हर मतदाताको होता है।

(३) मतदाताका विभिन्न उम्मीदवारके वोटमें वोट देना होता है।

इस प्रणालीके अन्तगत बहुमत दल या समुदाय सभी सीमा पर अपना एक मात्र अधिकार नष्ट कर सकता है। अल्पसंख्यक दल या समुदाय अपने या एक प्रतिनिधि अवश्य चुन सकता है।

अनुपातिक प्रतिनिधित्व (Proportional Representation) एक समान-निर्वाचन-क्षेत्र में अब कभी एक ही वोट देना ही एक अधिक उचित उपाय होता है। यह प्रायः वर्तमान परिणाम है। वोट इस प्रकार देना जान है कि कल्पना कीजने वाला उम्मीदवार निर्वाचन क्षेत्रके बहुमतकी योग्यता अल्पसंख्यक प्रतिनिधित्व बनाए

है। नवम्बर १९३५ में ब्रिटेन के आम चुनावों में बॉम्बेविन का समयन करनेवाले दलने कॉमन्स सभाकी ४३० सीटें प्राप्त कीं यद्यपि देग भरम उन्हें कुल १,१७ ६४ ६६० वोट मिले थे। दूसरी ओर बाल्बेविन के विरोधी दलोंने १००,७१,९९३ मत पानेके बाद भी केवल १८५ सीटों पर अधिकार कर पाया। इस असंगत अवस्थाको दूर करनेके लिए अनेक युक्तियां निकाली गयी हैं। ये युक्तियां हैं द्वितीय मतपत्र (second ballot) बकल्पिक मत (alternative vote) सीमित मत (limited vote) और एकल संक्रमणीय मत (single transferable vote) द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व।

इनमें से अन्तिम प्रणाली अर्थात् एकल संक्रमणीय मत प्रणाली अधिकतम पाय संगत निर्वाचन फल देनेके लिए सबसे अधिक उपयुक्त जान पड़ती है। इसे ह्यर योजना (Hare plan) भी कहते हैं। पर अभी तक इस प्रणालीके लिए बहुत अधिक उत्साह नहीं है। यद्यपि भारत ब्रिटिश उपनिवेशों और ब्रिटेन के कुछ निर्वाचन क्षेत्रों जैसे विश्वविद्यालय निर्वाचन-क्षेत्रमें इसका प्रयोग किया जाता है।

इस योजनाके अनुसार किसी भी उम्मीदवारके निर्वाचनके लिए आवश्यक कोटा या निर्धारित भाग पहले से ही तय कर लिया जाता है। अर्थात् यह पहले से ही तय कर लिया जाता है कि कम से कम कितने वोट पाने पर उम्मीदवार निर्वाचित समझा जायगा। इसका निश्चय इस सूत्रके अनुसार किया जाता है

$$\text{कोटा} = \frac{\text{व्यक्त मत}}{\text{उम्मीदवारों की संख्या} + १} + १$$

मतदाना मतपत्रमें अपनी पसन्दकी उम्मीदवारोंके नामोंके आग १ २, ३ ४ ५ आदि अंक लिखकर प्रकट करता है। मतदान समाप्त हो जानेके बाद यह जोड़ा जाता है कि किस उम्मीदवारको १ नम्बरकी पसन्द कितनी मिली है। जिन उम्मीदवारोंको निश्चित कोटसे अधिक मत मिलते हैं वे निर्वाचित घोषित कर दिये जाते हैं। किसी भी वोटको बर्बाद न होने देनेके लिए कोटसे अधिक बचे हुए प्रथम वोटोंको पसन्दके क्रमसे मतपत्रकी सूचीमें दूसरे उम्मीदवारोंको दे दिया जाता है। मतपत्रमें प्रकट की गयी पसन्दके क्रमसे न केवल उन्हीं उम्मीदवारोंके बच हुए वोट क्रमिक ढंगसे दूसरे उम्मीदवारोंको दिये जाते हैं जिन्हें आवश्यकतासे अधिक वोट मिलते हैं बल्कि जिनके चुने जानेकी कोई आशा नहीं होती अर्थात् जिन्हें बहुत कम वोट मिलते हैं उन उम्मीदवारोंको भी प्रथम बरीयता (first preference) या पहली पसन्दके जितने मत मिलते हैं वे तमिक ढंगसे दूसरोंको दिये जाते हैं। उनके मतपत्रकी छान चीन उन्हें प्राप्त दूसरी तीसरी चौथी आदि बरीयताओंकी गणनाके लिए की जाती है और उसीके अनुसार वोट दूसरोंको दिये जाते हैं। मताका यह दोहरा हस्तान्तरण (two-fold transference) निर्वाचन प्रतियोगितासे बाहर न हो जानेवाले उम्मीदवारोंके बीच तब तक चलता रहता है जब तक आवश्यक कोटा पानेवाले उम्मीदवारों की संख्या उठनी नहीं हा जाती जितने प्रतिनिधि उस निर्वाचन-क्षेत्रसे चुने जानेकी

हैं। लम्बी स्थिति आ जान पर लोगोंका हस्तान्तरण रुक जाता है और परिणाम पाण्डित कर दिया जाने हैं। जिस उम्मीदवालोंको लोगोंने अधिक मत मितने हैं उनके मतोंका हस्तान्तरण पत्तन किया जाता है और जिन लोगोंको बहुत कम मत मितने हैं उनके मतोंका हस्तान्तरण इसके बाधमें ही किया जाता है क्योंकि ऐसा करनेका अर्थ एम उम्मीदवालों का प्रतिनिधित्व बाहर हो जाना जाता है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि अथ किसी प्रणालीकी अनेका आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली द्वारा दावे राजनीतिक दलोंकी सापेक्षिक सक्रियता प्रतिनिधित्व अधिक सफाई के साथ हा सकेगा। पर इसमें कुछ चुनियां भी हैं। इस प्रणालीके पत्रम्बरूप देगमें राजनीतिक दलोंकी संख्या बढ़ती है। यद्यपि देगका हित इसीमें है कि देगमें अधिक दल न होकर दो या तीन ही मुख्य दल हों। यह प्रणाली वलमात दलोंका सङ्घिवादी भी बनाती है। एम से छोटा गुण अपना अलग अस्तित्व बनाय रखनेको प्रोत्साहित होता है। एम परम्पर सदृशगण आषार ओकर एक दूसरेमें विनीन हानकी प्ररणा नहीं पत। इन प्रणालीके दलगत व्यवस्थाकी महत्ता बानेकी सम्भावना रहती है। मयन उम्मीदवार करने निरासन एनके बन्धनमें पहल बैंगी, नित्री रधि नहीं रखत। इसकारण यह है कि एमका निरासन निरासकोंको सम्मतापूर्वक अपनी जोर बर्धित करने और महानुभूतिपूर्ण बना सनेकी समकी समता पर आपारित न होकर एमिठक एक मून पर निरर करता है। मसम् प्रतिनिधियोंका बदन समूह जाता है और इस कारण मुसम्बर एमका तीव्र मतिरिपेका बनना अस्मभव-सा हो जाता है। इसक अि रिया समय-समय पर डा निरासन न हो सकें जिनसे यह मोटा सकेत मित सके कि एमका नीन सरकारका निरासक-मन्त्रका बिजना बिबाध प्राप्त है। एक साधारण मतानाके मित यह प्रणाली बहुत जम्बि भी है।

इन सभी सकेका समुचित उत्तर आनुपातिक प्रतिनिधित्वके समसकों ने दिया है। बानका और मजुस राज्य मेरिक्की मपर पातिकारों बैंगी छोटी-छोटी सरपामों में यह पद्धति बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुई है। इममें यद्यपि उदार दल (Liberal Party) आनुपातिक प्रतिनिधित्वका प्रबल समर्थक पा पर अय दलों प्रगत दलों ने इस पद्धतिको टेर मटा समता।

भारतीय मरिधानकी धारा ८० (४) म राज्य ममाके चुनवमें (क) और (ग) राज्यक प्रतिनिधियोंके निरासनके लिए आनुपातिक प्रतिनिधित्वकी व्यवस्था की गयी है। पर धारा ९५ प्रकार है 'राज्य-ममाके लिए (क) और (ग) धलीके प्रायक राज्यके प्रतिनिधि उम राज्यकी निरासन-ममाके निर-बिड सम्मों पात आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धतिके अनुसार लवन मयमनेय मउ पात निर्वाचित होंद। भारतके राज्यिका निरासन भी आनुपातिक प्रतिनिधित्वकी पद्धतिके होता है। इस सम्बन्धमें धारा ३३ (३) ९५ प्रकार है 'राज्यिका निरासन आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति अनुसार एवन मयमनेय मय पात होता मया एके निरासनमें मयमन मय मयमन (Unreserved list) पात होता।

इस धाराकी टीका करते हुए डा० एम० पी० धर्मा^१ कहते हैं कि राष्ट्रपतिके निवाचनकी व्यवस्थाका असली रूप बरीयतानुसार (by preference) मतदान है न कि सर्व्वे आनुपातिक प्रतिनिधित्व द्वारा।

डा० आइवर जेनिंग्स (Dr Ivor Jennings) का मत है कि भारतीय संविधान की धारा ५५ (३) की अभिव्यक्ति अच्छी नहीं है। उनका कहना है कि धाराम आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली^२ के स्थान पर एकल सक्रमणीय मतकी व्यवस्था का प्रयोग होना चाहिए क्योंकि यह आनुपातिक प्रतिनिधित्वकी व्यवस्था नहीं है।

मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि कुछ कारणों से भारत जैसे देशके लिए आनुपातिक प्रतिनिधित्वकी व्यवस्था बहुत अधिक उपयोगी नहीं है। ये कारण हैं भावना और जनसंख्याकी विचालता जनताकी अक्षय और निरक्षरता स्वस्थ राजनीतिक गण्यण और अनुभव का अभाव तथा सुसंगठित राजनीतिक दलोंकी कमी।

कुछ और भी प्रणालियाँ हैं जिनके द्वारा अल्प-संख्यकोंके यदि उनकी संख्याके अनुपात से नहीं तो कुछ न कुछ प्रतिनिधित्व मिल ही जाता है। ऐसी प्रणालियाँ संचित मतदान प्रणाली (cumulative vote system) तथा सीमित मतदान प्रणाली (limited vote system) हैं।

राजनीतिक दल (Political Parties)

डब्ल्यू० बी० मनरो (W B Munro) ठीक ही लिखते हैं स्वतंत्र राजनीतिक दलों का शासन लोकतन्त्रीय शासनका दूसरा नाम है। वही भी राजनीतिक दलोंके बिना स्वतंत्र शासन नहीं हो सका है। राजनीतिक दल प्राचीन गणतन्त्रा और मध्य-कालीन नगरोंमें भी थे यद्यपि उन्हें इस नाम से नहीं पुकारा जाता था। अमेरिकी क्रान्तिके बहुत पहले ब्रिटनमें लंकास्ट्रियन (Lancastrians) और यॉर्किस्ट (Yorkists) तथा कैवेलियर्स (Cavaliers) और राउण्डहेड्स (Roundheads) थे। १३ उपनिवेशोंमें विंग (Whigs) और टोरी (Tories) दल थे। ये प्रतिद्वंद्वी गुट अपने अंगड़ाका निपटारा मत गणनाके बजाय कभी-कभी एक दूसरे का सिंग तोड़कर भी करते थे। फिर भी हमारे आजकलके राजनीतिक दल इन्हीं गुटोंके विकसित स्वरूप हैं।^३

आधुनिक लोकतन्त्रकी सफलताके लिए राजनीतिक दल अनिवार्य समझ जाते हैं। राजनीतिक दलसे हमारा मतलब जनताकी एक ऐसी संगठित संस्थासे है जो देशके राजनीतिक जीवनमें कुछ सिद्धान्त और नीतियोंको अपना लक्ष्य बनाकर और उन सिद्धान्तों और आदर्शोंको लागू करके सम्पूर्ण देशको उन्नत करना चाहती है।

^१ M P Sharma Government of the Indian Republic.

^२ W B Munro The Government of the United States P 113

बर्क (Burke) ने राजनीतिक दलकी परिभाषा इस प्रकार की है 'जोगारी एक एसी मस्या जो किसी मिद्वान् विरोधको त्रिषु मस्याके सभी भाग स्वीकार कर लेते हैं आधार बनाकर अपने सम्मिलित प्रयत्नम राष्ट्रीय हितका उन्नतिके लिए संगठित होती है। पर हम यह ध्यान रखना चाहिए कि राजनीतिक दलका अर्थ गुप्त बन्नी नहा है और दलके विभिन्न नेताओंके बीच तीव्र मतभेदोंको व्यक्तितगत मतभेद या झगडा नहा समझना चाहिए। किसी भी एम राजनीतिक दलका मही अर्थमि राजनीतिक दल नहीं बना जा सकता त्रिमके निश्चिन राजनीतिक गिद्वान और कार्य नम न हों।

यह ध्यान मना जानन है कि एक ही परिवारम सम्पूर्ण भी स्वभाव और दृष्टि बोग एक दूसरेम भिन्न हाने हैं। कुछ लोग स्वभावम ही दर्याव तथा बहुत ही सावधान हाने हैं और कई भी साहस्युग योजना आरम्भ करनेम डरते हैं। साथ ही कुछ लोग निर्भीक साहसी और अपन विचारम त्रान्तिकारी हान हैं। देश कल्याण म अक्षित स्वतन्त्र जनता के बड समुदाया म इस प्रकार के मतभेद और भी बड पैमाने पर मिलते हैं।

सामान्याहीम विभिन्न नीतिया और कार्यक्रमा बाने राजनीतिक दलका बन्ना नही किया जाता। आधुनिक सामान्याहिया एक-सीम सामन है। उहे एक-दलीय सामन कहना भी चाह-म सागाके निरवुग सामनका गिण्ट नाम देना है। दूसरी ओर समनीय सामन निश्चिन रूपमे राजनीतिक दलका सामन हाना है। इस सामनम जनताका विचार और विचारकी पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है। बानें कि सावधानिय औचित्य और साधारण सिध्ताका उल्लंघन न किया जाय। फलत जनता अपने आपका एम सामे विभाजित कर देती है जैसे रूढ़िवाणी दल (Conservatives) उदारता (Liberals) और मजदूर दल (Labour) अथवा गणतन्त्रवाणी (Republicans) और सोशलिस्टवाणी (Socialists)। देशके सार्वत्रिक जीवन और उसकी विचारधाराम समय-समय पर परिवर्तन हाना रहता है। अत राज नीतिक दलोंके नाममे उन दलोंके कार्यकारण पना नहा बन पाना। इन्होंने इति हासम एह एगा समय या तब उदारता पाना या कि देशक औद्योगिक जीवनम सरकार किगी प्रकारका हस्तक्षेप म करे और तत्कालीनी नीति बरनी जान त्रकि रूढ़िवाणी दल उदागोंका पर्याप्त निषेधन करनेका और सामाजिक पुनर्निर्माण समर्थक था। पर कुछ समय बाद इन दोनों दलकी नीति और विचार विचार नया गये। मुक्त व्यापार (free trade) और सामान्य जैम मोरिष प्राना पर भी दलका पूर्णतया स्थिर नही रहा। अन्तरिके गणतन्त्रवाणिया और सामाजिक-निष्के गिद्वान म पहात बाद जो अन्तर रहा हा पर आज कई सिध्ता अन्तर नहा है।

समनीय सावधानिय अन्तर्नेका देन म राजनीतिक दलका अन्ति ब विचार मने आगेकी होना है। हमने सामाजिक और विचारका क बीच अन्त मन्त्रय कायम करनेम सहायता मिलती है। यह अन्त मन्त्रय ही दलका सामनीय सावधान

का आधार है। विधायिकामें जो दम सत्कार्ड होना है उसीसे वायपालिका वा भी निर्माण होता है। जब राष्ट्रीय संकटके समय संयुक्त सरकार बनती है तब मंत्रिमण्डल र्म दक्षाका प्रतिनिधित्व ससद के प्रथम सत्रमें उनकी शक्तिके अनुपातसे होता है। ब्रिटेनमें द्वितीय महायुद्धके समय बिस्टन चर्चिल (Winston Churchill) के प्रधान मन्त्रित्व में ऐसा ही हुआ था।

कार्यपालिका और विधायिकामें अच्छा सम्बन्ध स्थापित करनेकी सुविधा अमेरिकाके सविधानमें नहीं है। अमेरिकामें यह सम्भव है कि सरकारने इन दोनों अंगों पर विरोधी दलोंका अधिकार हो जाय अर्थात् एक अंग पर एक दल का अधिकार हो और दूसरे अंग पर दूसरे दलका। पर ऐसे देशमें भी महत्वपूर्ण सामयिक समस्याओं पर लोकमत तैयार करने में राजनीतिक दलोंका बहुत ही महत्वपूर्ण योग रहता है।

निस्सन्देह आधुनिक रा-योंकी जटिल परिस्थितियोंमें समस्याओं और नीतियों को स्पष्ट करनेमें राजनीतिक दल महत्वपूर्ण योग देते हैं। परम्पर विरोधी नीतियों और जटिल विवरणोंके मायाजानके बीच अपना मार्ग तय करनेमें व्यक्तिको राजनीतिक दलोंकी प्रणालीसे बहुत अधिक सहायता मिलती है। आधुनिक सरकारों के सामने समस्याएँ बहुत पेचीली और मुश्किलसे समझम आनवाली होती हैं। ऐसी हालतमें यदि राजनीतिक दम जनताका समर्थित मार्ग प्रदशान न करें तो एक साधारण मतदाता विकर्तम्य विमूढ़ हो जायगा। किसी मुकदमें में विभिन्न पक्षोंका समर्थन करते हुए वकील जो काम करते हैं वही काम राजनीतिमें राजनीतिक दल करते हैं। जिस प्रकार दोनों पक्षों के वकीलों की जिरह बहस आदि से न्यायाधीश मामले को ठीक प्रकार समझ लेता है उसी प्रकार राजनीतिक दलों का प्रचार से मतदाता देशकी समस्याएँ और उनका हल समझकर अपना कर्तव्य निश्चित कर लेते हैं। जैसे एक पक्षुर वकील शलतको सही और सहीको शलत सिद्ध कर सकता है ठीक उसी प्रकार एक राजनीतिक दल भी झूठे प्रचार नारों और प्रचार चित्रोंके द्वारा जनताको बिल्कुल शलत मार्ग पर ले जा सकता है। पर ऐसी धारें हमें सफल नहीं होती विशेषकर यदि मतदाता शिक्षित जानकार और समझदार हैं। राजनीतिक दलोंमें होनेवाले विवादोंसे मतदाता स्वयं सरपको सोज निकालता है। पॉबिल ठीक ही कहते हैं कि राजनीतिक दल विचारोंकी दलाली (broker of ideas) का काम करते हैं। राजनीतिक दल मतदाताओंके सम्मुख अपने-अपने कार्यक्रम और उम्मीदवार पेश करते हैं और मतदाताको उनमेंसे चुनाव करना होता है। इसमें भी अधिक महत्वपूर्ण काम राजनीतिक दल यह करते हैं कि वे लोक-सम्मतिके विकासमें सहायता देते हैं जोकि लोकतन्त्रका सार-तत्व है।

अन्तक के विवेचनका निष्कर्ष यह है कि जिन देशोंमें शासनकी सतदीय प्रणाली अपना ली है उनमें राजनीतिक दलोंसे सरकारकी सलत और स्वाधी बनानेमें सहायता मिलती है। दोनों प्रकार के लोकतन्त्रवाणी देशोंमें—जिनमें समन्वय शासन

व्यवस्था है और जिनमें एसी व्यवस्था नग है—इन राजनीतिक दलोंमें निष्ठावर्धकोंको मरना मत निमाण करनेमें सहायता मिलती है।

पर कुछ आपुनिक विचारकोंने इस दल-पद्धतिकी उरपागिता पर गम्भार आगबाए प्रकट की हैं। दल पद्धतिका कायम रखनेके विरोधिया का कहना है कि दलगत भावना प्रायः गुटबन्दीकी भावना होती है। दलोंमें घुसगारी और भ्रष्टाचार फैलता है और दलके विधायकों और सामान्य जनता दोनों पर ही व्यापक अन्यायकार होता है। इन सभी आरोहोंमें इतनी सत्यता ता है ही कि वे बाहर न सही निन्दायी दें। पर यह भी या रचना चाहिए कि इन आरोहोंका बड़ा-बड़ा कर कहना भी बहुत आसान है।

जिसी भी राजनीतिक दलका पहला उद्देश्य होता है सफलता पाना और राजनीतिक दल सफलता पानेकी घुनमें बोट पानेके लिए अनुचित साधनोंको अपनाने हैं। अधिक में अधिक बोट पानेके लिए दलोंके मन्त्रों अधिकम अधिक विन्तन और आवाहीन बना दिया जाता है। एमे-एमे बाए कर शिव जाने हैं जिनके पूरा करनेका कभी प्रयत्न ही नहीं होता। राजनीतिक विरोधिया और विरोधी राजनीतिक कार्यकर्ताओंका मजबूत उदाया जाता है और उनको गन्त इगमें पेश किया जाता है। निर्वाचक का इतने सीमित दायरे में घुसना पड़ता है कि प्रायः उग एक घन और एक मन्त्रके बीच घुसाव करना पड़ता है। दल भावना और दलगत निष्ठाका इतना अधिक उल्लास जाता है कि उत्सवना और ईश्या-पक्षी भावनाएँ प्रचल हो उठती हैं और स्थिर विम होकर विचार और काय करनेका अवसर नहीं रह जाता। जब सरकार द्वारा नियुक्तियोंका समय आता है तब दलके प्रधान समर्थकों को ही नियुक्त किया जाता है। उनको विरोधी दलों और निम्नोय मुपाय व्यक्तियोंमें भी अधिक उत्तम ममता जाता है। समुक्त राज्य अमेरिका जैसे देशमें भी राजनीतिक दल सामनको भ्रष्ट बना देते हैं। अमेरिकामें कई पीढ़ियों तक 'गुट-मसो' प्रथा (spoils system) का बोल-बाला रहा है। मन्त्र-दाताओंको घुसना जाती है उनकी गुणम की जाती है और उन्हें पगनाया तथा योग्य दिया जाता है। सॉर्टे कायम का कहना है कि दल प्रदाने 'राजनीतिको पठित और कुम्भित (sordid) बना दिया है। राजनीतिक दलोंके मन्त्रों पर इतना दृढ़ दण्ड अन्यायन रहता है कि

'संग्रहो' प्रथा (Spoils System) मन्त्रालय अन्तरिका म प्रदेक राजनीतिक दल जाम घुसाव में विरल हन और सामनारु हन के बाए मन्त्री विरलमें अधिक म अधिक नाम उगन के प्रचलन म सामनर प्रदिकता लन पर मरन जगमा नियुक्त करना था। यदि एक समय एक दल सामनारु था ता उगके बायम सरकारी पन पर थे। यदि मन्त्रालय म दल दल हार जगमा था और दुगरा दल सामनारु हाता था ता विरली दल पानन लय क मन्त्रिका को सरकारी पन म हगार उनके स्थान पर मन्त्रे आसी नियुक्त करना था। मन्त्री को संग्रहो प्रथा करने हैं।

व्यक्तिगत विवेक और स्वतन्त्र मतमानके निष्कर्ष अवसर ही नहीं रह जाता।

दलके सदस्योंको विधायकताम मूक पशुआकी भाँति काम करना होता है। उन्हें दलके सचेतक (whip) की आगाआका घुपघुप पालन करना होता है। दलकी गुप्त समाजाम विधायिकोंके बाहर निर्णय होते हैं और सदन का उपयोग उन निर्णयोंको स्वीकार करा लेने के लिए ही होता है। व्यक्तिगतको दबा दिया जाता है और सदस्योंको अपने व्यवहारम असत्य और विचारो तथा कार्योमें छिद्रला होनेके लिए उत्साहित किया जाता है। दलकी लक्ष्य कुछ स्वार्थी व्यक्तिगतके नियन्त्रणमें रहती है जो अधिपुरुष (boss) बने रहते हैं और सामान्यवान् सच्चे और चरित्रवान् व्यक्तिगतके विरुद्ध गुप्त या सूना सवप करते हैं। मार्क्सजिक कार्योंका नियन्त्रण अध्ययन करनेवाले विद्यार्थियोंके इन आलोचनात्मक में से यदि सब नहीं तो कुछकी गुह्यता का मानना हो होगा। पर सम्भव है कि वह वास्तविक कामके कारण मिश्री पेंक देनेके लिए सँवार न हा। श्री एम० एस० आयगर को विधायककी स्वाधीनता छिन जानेकी बड़ी चिन्ता है। पर हमें यह न भूलना चाहिए कि विधायक सभी बड़े गम्भीर विचारक नहीं होते। उनमें बहुतस एस होते हैं कि उन्हें प्रत्येक विवरण की स्वयं परीक्षा करनेकी अपेक्षा एक बना-बनाया कार्यक्रम और बनी बनायी नीति पानम ही अधिक सुख होता है जिसका अनकरण वे आल मूंदकर कर सकें। सम्भवतः विवरणोंकी परीक्षा करनेकी उनमें क्षमता ही नहीं होती। इसके अतिरिक्त दलकी बैठकों में होनेवाले निश्चय और दलकी नीतियों पर अपना प्रभाव डालना एक सक्रिय सदस्यके लिए सदैव सम्भव रहता है। इसमें कोई शक नहीं कि दलगत अनुशासन व्यक्तिगत सदस्योंकी अहं भावना (egoism) पर रोक लगाता है। वह उनकी महत्वाकांक्षाओं और असंगत विचारोंको दबा देता है और उन्हें अपने साथ सोचने और काम करनेवाले दूसरे सदस्योंके बीच उपयुक्त स्थान ग्रहण करनेमें सहायता देता है। भारत जैसे देशमें तथा अन्य देशोंमें भी राजनीतिक दलोंको बिल्कुल समाप्त कर देनेका तात्पर्य होगा व्यक्तिवादका आवश्यकतासे अधिक अधिकार अर्थात् प्रत्येक व्यक्तिका अलग अलग अपनी लिच्छवी पकाना। यदि आवश्यकतासे अधिक अनुशासन बुरा है तो आवश्यकतासे अधिक व्यक्तिवाद भी उतना ही बुरा है। जो साग यह आरोप लगाते हैं कि दलों के अस्तित्वसे तानाशाहीकी उत्पत्ति होती है उनको हमारा उत्तर यह है कि तानाशाही संविधानकी परिधिमें भीतर काम करनेवाली सुगमिष्ठ दल प्रणालीसे नहीं उत्पन्न होती। वह तो दल प्रणालीके विघटन जाने और टूट जाने (disintegration) से उत्पन्न होती है अर्थात् कांसिस्टेंट हटनी और नाजो जर्मनीम हुआ था। चुनावके सभी साधना से मुसगठित दलके अभावमें समर्थ और सुयोग्य किन्तु गरीब उम्मीदवारोंके चुने जाने की कोई आशा नहीं होती।

अगर हम श्री आयगर के सुझावोंका मानकर तथा विधि बनाकर राजनीतिक दलोंके कोषको बन्द कर उनके संगठनको समाप्त कर दें तो राजनीतिक दल अवश्य

ही किसी दूगरे रूपम फिरस पनौंग। उनका वह रूप और अधिक अवाद्यनाय हागा। जब राजनीतिक दनाका मुक्त तौर पर काम करना पड़ता है तब व बहुत मण्डलियो (secret cliques) बन जाते हैं और अवन स्वार्थक लिए मसप करन हैं। यहा पर यह स्मरण करना सिगायद हागा कि स्वित्जरलण्डमें भी जहाँ दसगत भावनाका सभस काम विकास हुआ है अब प्रकृति दन प्रगानीका मडबून करनेकी आर है।

राजनीतिक दलोंकी सकलताके लिए आवश्यक शर्तें जिन देगामे जो मुकुट बन होन हैं उन शर्तोंमें दस प्रगानी सभननायूक्त कार्य कर सकी है। दनाके स्वम्य काय-अवादनके लिए यह आवश्यक है कि देगामे दू सरकार हा और साथ ही उनना ही दू विरोधी शक्त हा जा सोरहितका वनलिक योजनारें जनताके सामन उपस्थित करे। यदि दनाको बहुत शक्ति पतित रूप महा प्रसंग करना है ता सरकारी बनके अतिरिक्त विरोधी दलका होना भी आवश्यक है। शिश्नम विरोधा दस गावजनिक कार्यके मवाननम बहुत ही महत्वपूर्ण योग श्रेता है। सरकारके प्रस्तावित कार्यकी उत्तरगमित्वपूर्ण आनाधना करके विरोधा दन न केवल सरकारका सचन और सावधान बनाये रखना है बल्कि जनताकी भी बहुत बड़ी सेवा करता है। इसलिए इसमें कोई आश्चर्य नहा है कि शिश्नके विरोधी रूपको सम्राट्का विरोधी दल कहा जाता है। शिश्न और बनाटा विरोधी दलक नताओंको बनन श्रेत है। केवल शकर इस तथ्यको स्वीकार किया जाता है कि विरोधी दलके नेताका काम सम्भव उनना ही महत्वपूर्ण है जितना कि सनाट्ट सरकारके किसी मन्त्रियर।

बहुनाय अस्पष्टाकी कमजोरी प्राथम श्रेण्ट रूपमे सिगार देती है। वहाँ साथ विभिन्न दलोंके सम्पर्क वाच मात भाव और मोटेबादाके बा सरकार बनती हैं। य संस्य बिना किसी सक्षीषक जरा जराक बनाने नकर एक दलस दूमरे दलम बन जात हैं। इसलिए इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहा है कि प्रायका सरकारें बिन्धुन ही अस्पष्टी हाती हैं और बिषायकोंकी कृपा पर निर्भर रहती हैं। बहुत सम्भव है कि इतिहासकार प्रायकी बहुनाय अस्पष्टाका ही नाही जमनीके हाया हुई प्रायकी पराक्रमका एक बहुत बड़ा कारण ठहरायें।

यदि सोचमगम आछ और स्वायें दनाका निमाण राकनेकी शक्ति नहीं है ता फिर बिधिवा सहारा लेना हागा। जनताको चाहिए कि हर मय दलका कुछ बरी तक परण और स्थायी तौर पर उम मान्यता प्राणत करनेक पहल अपनी सम्भार शिद्ध करनेक लिए उसे मजबूर करे। एग दलका जावित रहनका कोई अधिकार नहीं है जिनके पास बतमान दलम मौनिक रूपम शिश्न आनी पृथक राजनारें और नीतिनी म हा। हम हमारा यह शक्ति करती शक्ति कि एक दूमरग विपन-अवन ए -दू गुणाका एक दूमरमें विपन हाता जाय ताकि दलम म मडबून दनाग अघिक दन क रहें। ऐसे किनी दलका ब ित नहा करना शक्ति या दूमर सभी दनाका समन्त कर शनी दानागाली स्थापित करना चाहता हो।

राजनीतिमें एग दलके कोई स्थायी स्थान नहीं है जिनके आधार बने जाति

धम या सम्प्रदाय हा। वे राष्ट्रीय दुर्बलताके सफल कारण हैं। विभद मूल्य प्रवृत्तिया को बढ़ाते रहनेके कारण वे अपनेको स्वार्थी विंगियोंकी शृपाका पात्र बना सते हैं। ऐसे दस ब्यापक राष्ट्रीय समस्याओं पर भी जातीय या साम्प्रदायिक दृष्टिकोणसे विचार करते हैं। सामाजिक राजनीतिक और आर्थिक नीतियो तथा योजनाओंके बारेमे उनके विचार उनके जातीय और साम्प्रदायिक दृष्टिकोणके कारण दूषित हो जाते हैं। राष्ट्रिय सकटके समय राजनीतिक दलाको अपने भेद भुलाकर एक साथ मिलकर एक दलकी भांति काम करनेके लिए तयार रहना चाहिए।

किसी भी दलको किसी भी अवस्थामे अपनी निजी सना रखनेकी अनुमति नहीं मिलनी चाहिए। हम यह भली भांति जानते हैं कि जर्मनीम नासियों और इटलीम फसिस्तोने अपनी निजी सेनाओंके बल पर ही राजसत्ता पर अधिकार किया था। लोगोंको समझाने-बुझाने और उन्हें विश्वस्त करनका साधन ही यह साधन है जो किसी भी दलको अपने अनुयायी बनाने या बढ़ानेके लिए प्राप्त हो सकता है। बसिर परकी लम्बी चौड़ी बातें करना और शारीरिक शक्तिका सहारा लेना जंगलीपनकी निशानी है। लोकतंत्र तभी सफल हो सकता है जब चुनावम पराजित होनेवाले राजनीतिक अल्पमत अपनी पराजय उदारताके साथ स्वीकार करें। उनका सांविधानिक अधिकार केवल यही है कि वे लोगोंको समझा-बुझाकर और उनका विश्वास प्राप्त कर अपना बहुमत बनायें।

समगत सरकारकी सफलताके लिए यह आवश्यक है कि प्रशासनको राजनीतिक दला और राजनीतिज्ञाकी पहुँचके पर रखा जाय। एहीसे सेकर छोटी तकके सभी सरकारी अधिकारियाका चयन योग्यताके आधार पर एक एमी संस्था द्वारा किया जाना चाहिए जो अपनी निष्पक्षताके कारण हर व्यक्तिकी श्रद्धाका भाजन हो। जो सरकारी अधिकारी अपनी जाति या सम्प्रदायके लोगोंके साथ पक्षपात करनेके अपराधो पाय जायें उनके विरुद्ध कठोर कार्रवाई की जानी चाहिए। सरकारी नौकराकी भरती स्थानान्तरण और उनकी पन्नेप्रति सावजनिक सवाके स्वीकृत सिद्धान्तोंके अनुसार ही होनी चाहिए।

दलोंपरसे अवसरवादियोंका प्रभुत्व समाप्त करनेका हर सम्भव प्रयत्न किया जाना चाहिए। दलको अपने-अपने स्वार्थोंकी सिद्धिका साधन बनानेवालाको दलसे बाहर निकाल देना चाहिए। इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिए स्वस्थ लोकमतकी आवश्यकता है। असाधारण सामर्थ्य और असदिग्ध चरित्रवाले नेता राजनीतिक दलके जीवन मूल हैं।

दल प्रणालीकी विफलतासे स्वयं जनताकी विफलता सिद्ध होती है। यदि मतदाता समझदार और विवेकपूर्ण नहीं हैं और भले बुरे की पहचान नहीं रखते हैं तो देनाम दलीय तानाशाही अवश्य कायम हो जायगी। यह कहना तो मूर्खता है कि कयाकि किसीके पिता और दादाने किसी बिनाप दल या व्यक्ति को अपना मत दिया था इसलिए उस व्यक्तिको भी उसी दल या व्यक्तिको अपना मत देना चाहिए। यह भी एक मूर्खता की बात है कि भुक्ति किसी वर्ग या व्यवसायके सदस्य किसी एक विशेष दल या व्यक्ति का बोट दे रहे हैं इसलिये उस वर्ग या व्यवसायके हर सम्बन्धो उसी दल या व्यक्तिको

वाट देना चाहिए। एक समझदार मन्त्रालयका आवश्यकता पड़ने पर इस प्रकारके प्रभावका टट कर विराय करना चाहिए और उसे अपनी अन्तरात्मा और विवेककी प्रेरणाके अनुसार वास्तविकता चाहिए।

यदि राजनानिधि और माधारण जनताम परित्रहीनता है तो इन पद्धतिकी विवचना निश्चिन्त है। दनीय सामनकी समनताके लिए सबसे पहली आवश्यकता उच्च कानिची सावजनिक ईमानदारी और अन्त-भौरवकी भावना है। मन्षाई, ईमानदारी और सावजनिक कल्याणका प्रबल भावनाके बिना राजनीतिक दल कुत्सन मात्र बन जात हैं। ये जनताके परित्रका पन करते हैं और दगने जीवन तरबोका समान करन रहत हैं। मन्ताका अपनम स्वतन्त्रता और विवेक धूमधारी और ध्रष्टाचार के प्रति पणा तथा सावजनिक कर्नम्परी प्रबल भावना उपाय करनी चाहिए। दनों को सावजनिक हिन सिद्ध करनेके सहकारी सापन बनाना चाहिए। जनताम उच्चकोटिका परित्र हण बिना किसी प्रकारकी भी सरकार विद्यपकर सावजनिक सरकार विवन ही सिद्ध हागा। ईमानदार और जानकार प्रस और सावजनिक मच राजनीतिक दलका सावजनिक सगाचारक क्यार और तय रास्ते पर चलनेके लिए बहुत कुछ मजबूर कर सकन है।

कायपालिका (The Executive)

आधुनिक राज्यम कायपालिकाका स्थान इनका महत्वपूर्ण हाता है कि प्रायः उमीके लिए सरकार कायका प्रयोग किया जाता है यद्यपि वास्तवम कायपालिका सरकारका कवन एक अंग है। अन्तरात्तवानी दगामे कायपालिकाकी सत्ता ही सर्वोत्तरी हाती है। माकतनीय दगामे भी इगकी अधिहार-सत्ता जिनकी समती जाती है उसका बल अधि हाती है। फान्दर (Finer) का काना है कि विधािका और म्यान्पालिका काय सरकारके अन्त अंगोमे जब अधिहाराका बँटबाण हा ककना है तब बने हुए समस्त अधिहारोंकी सगाधिकारी (residual legatee) कायपालिका ही होती है। विधािका मारा बनानी म्यी और अमानता मारा सातु की मनी विधियाके कायपालिका के अनिश्चन और या कान म हुमर काम कायपालिका कानी है।

नाममात्रकी कायपालिका (The Nominal Executive) कायपालिका के हीन स्वक्याम प्रायः भव किया जाता है। यस्वरूप है नाममात्रकी या आर्नकारिक (ornamental) कायपालिका राजनीतिक कायपालिका और म्यान्की कायपालिका। कि नाम सम्राट् नाममात्रकी कायपालिका है प्रपन-मनी तथा उगकी मविपरिण राजनीतिक कायपालिका है तथा प्रपामन स्थानी कायपालिका है। मनी काय स्वक्यामि विटिग अनिश्चाम भी पानी जाती है। अन्तर केवन हाता है कि वहाँ सम्राट्का प्रतिनिधिक कर्ननेर जनता काना है। अनिश्चान यह अन्तर हाता काना मही है। कायपालिका प्रपामन है यह राजनीतिक कायपालिका भी है और क

अनक प्रशासनीय कार्य भी करता है। उसके द्वारा की गयी अनेक नियुक्तियाँ उसकी पदावधि तक ही रहती हैं। फ्रांस में नाममात्रकी कार्यपालिका राष्ट्रपति होता है परन्तु वास्तविक बहूत्त संसद के लिए चुना जाता है और उसका सम्बन्ध बहुधा एक राजनीतिक दल से होता है इसलिये उसका उतना प्रतिष्ठा नहीं है जितनी कि ब्रिटेन के सम्राटकी होती है। वेीमर संविधान (Weimar Constitution) के अन्तर्गत जर्मनी में राष्ट्रपतिकी स्थिति अमेरिकी और फ्रांसीसी राष्ट्रपतियोंके बीचकी सी थी। यद्यपि उसका मुकाबला फ्रांसीसी राष्ट्रपतिकी स्थितिकी आर अधिक था।

संसदीय शासनके देशों में नाममात्रकी कार्यपालिकाको देनेके वास्तविक शासन का काम बहुत कम करना पड़ता है। जैसे तो सांग गामन उमीके नाम पर होता है पर उसने सांग कार्यो पर एक मन्त्रीकी सहमति आवश्यक होती है जो मन्त्रिमण्डल विधायिका और जनताके प्रति उत्तरदायी होता है। नाममात्रकी कार्यपालिका द्वारा किये जानेवाले अनक कार्य एक प्रकारके रस्मी काम होते हैं जैसे ब्रिटेनके सम्राट द्वारा किये जानेवाले कार्य। वह संसदका अधिवेशन बुलाता है स्थगित करता है और उसे भंग करता है पर यह सब काम संवैधानिक मन्त्रिमण्डल के निश्चय के अनुसार ही होता है। सम्राट तो नाममात्रके लिए सम्प्रभु होता है। वह राज तो करता है पर शासन नहीं करता। यह सही है कि प्रधान-मन्त्रीके चुननेमें सम्राटका कुछ हाथ रहता है किन्तु वह तब जब किसी दलमें एकसे अधिक स्विकृतता होते हैं या जब निचले सदन में किसी भी एक दलका पूर्ण बहुमत नहीं होता। पर इस स्थितिमें भी वह चाहे जिसे प्रधान मन्त्री नहीं बन सकता। उसे कुछ विधायक व्यवस्थामें से एक का छोट लना होता है। सन् १७८४ ई० से लेकर आजतक कोई भी मन्त्रिमण्डल भंग नहीं किया गया यद्यपि सम्राटकी मन्त्रिमण्डल भंग करनेका अधिक अधिकार है। नियन्त्रिका (the power of veto) का प्रयोग भी १७०७ से आजतक नहीं हुआ। देशमें सम्राटकी जो शक्ति है वह उसके प्रभावके कारण और जनवर्गीयसे परे होनेके कारण है न कि प्रत्यक्ष रूपमें बरती जानेवाली उसकी अधिकार-सत्ताके कारण। वह सरकारके प्रति आदर तथा विधियोंके पालन करनेकी भावनाको जन्म देता है। बेगहाट (Bagehot) के अनुसार सम्राटके अधिक अधिकार हैं सलाह लिमे जानेका अधिकार प्रोत्साहन देनेका अधिकार और चुनावी देनेका अधिकार। जहाँ तक अंग्रेजी साम्राज्यका सम्बन्ध है सम्राट साम्राज्यकी एकताका प्रतीक और साराके विभिन्न भागोंमें फैले विभिन्न देश और जातियोंका एकत्र बाँध रखने वाला महत्वपूर्ण सूत्र है।

फ्रांस में नाममात्र की कार्यपालिका यहाँका राष्ट्रपति होता है। उसका चुनाव सात वर्षके लिए देशी संसदकी सम्मिलित बैठकमें होता है। यह संयुक्त अधिवेशन विधायकसद ही कार्यके लिए बनाया जाता है। सिद्धान्त रूपसे उसे वे सब अधिकार प्राप्त हैं जो अमेरिकाके राष्ट्रपतिको हैं—केवल एक नियन्त्रिका छोड़ कर। ब्रिटेन के सम्राटका जो अधिकार हैं वे अधिकार फ्रांसके राष्ट्रपतिको भी हैं। पर व्यवहारमें वह न ता राज्य करता है और न शासन करता है। यह कथन सत्य ही है कि वह सोहे

क विजयम बर्णित ममान है। यह ज्ञाती है कि फ्रांसक राष्ट्रपति क हर काय तथा हर आदेश पर मन्त्रां भी हुम्तागर हों और यह मन्त्री स्वयं मसजदे प्रति उत्तरदायी हुना है इति ए फ्रांसम वास्तविक शासन करनेवाली अधिभार-मन्ता मग है न कि राष्ट्रपति। फवन एक ही नाम एसा है जिसे राष्ट्रपति मन्त्रीही मजूरीक बिना कर सकता है और वह नाम है राष्ट्रपि उद्योगों समापनिका आसन ग्रहण करना। वह बचन नाममात्रका प्रधान है सस उसे कायकाल समाप्त हुनेक पहन ही त्यागपत्र देने लिए मजूबूर कर सकती है जैसे मिलर (Mullerand) के साथ हुआ था। प्रतिनिधि सभा (Chamber of Deputies) उसक ऊपर घार दंग गहका अभिप्राय लगा सकती है और सीनेट (Senate) उद्य अभिप्राय पर विचार करता है।

धीमे म विधानके अन्तगत जमनाम राष्ट्रपति नाममात्रकी कायपालिका था। फ्रांसक राष्ट्रपतिक विपरीत उस जनता चुनती थी और जनता ही को उसक प्रत्यावर्तन (recall) का भी अधिकार था। जर्मनीके राष्ट्रपतिका फ्रांसक राष्ट्रपतिकी अन्तः अधिकारोंका अधिकांश दिये गये थे। जर्मनीका राष्ट्रपति मग गरा स्वतंत्र जिन विषयोंका स्विकार नह करता था उन्हें साव-निर्णय (referendum) के लिए जनताके सम्मुख उपस्थित कर सकता था। उमे नियमाधिकार नहा प्राप्त था। वह युद्धकी स्थितिची घोषणा कर सकता था। मागिरिकी अन्तः सांख्यिक अधिकारका स्विकार कर सकता था और एक तानाशाहीकी भांति शासन कर सकता था। पर फ्रांस म बचन विधापिका ही युद्धकी स्थितिची घोषणा कर सकती है। फ्रांसक राष्ट्रपति सीनेटकी स्वीकृतिम ही नियम सन्तरो मग कर सकता है परन्तु जर्मनीका राष्ट्रपति अपने अधिकारक बाव पर ही नियम सन्तरो मग कर सकता था। पर आचारिक तौर पर हम अधिकारका बाई विषय अर्थ नही था क्वाकि प्रिन्सके मन्त्रा और फ्रांस के राष्ट्रपतिकी भांति जर्मनीके राष्ट्रपतिके बायींका भी किनी उत्तरदायी मन्त्री द्वारा प्रति हुम्तागरित (countersigned) हुना आवश्यक था। पर माय ही विधापिका का यह अधिकार नही था कि वह उसक अधिकार फगाकर उमे अने अधीन कर स और उम त्यागपत्र देने लिए मजूबूर कर स जैसाकि फ्रांसम हा करता है। विधापिका नियम सन्तक का निहाई बचनम राष्ट्रपतिको नियन्त्रित (suspend) कर सकती थी और उमे जन प्रत्यावर्तन (popular recall) के लिए जनताके सम्मुख पन कर सकता थी। फि जनता राष्ट्रपतिम अन्तः विभाग प्रक कर देना मग (Reichstag) मग कर ती जाती थी और नया मन्त चुना जाता था। राष्ट्रपतिका स्वमात्रक माग बांके लिए दूगती पन्वधि मिल जाती थी। मन्तके दा-निहाई बांके ता राष्ट्रपति पर अभिप्राय भी लगाया जा सकता था और उमके बिना मन्तके सहियानका अ-राय-भूतक उन्नयन करनेके लिए मन्तके त्यागपत्रम मन्तका भी बगला जा सकता था।

मयीं मन्त्रांय (पश्चिमी जर्मनी) क फ्रांसक मन्त्रांके अन्तः मन्तके राष्ट्रपतिका चुनाव मन्त-अधिकारम बिना बिचरके हुना है। हम अविरोधमे नियम

उपयोग सब तक नष्ट बिना जाना जब तक उसे यह विश्वास नहीं हा जाता कि उसके इस कार्यको जनताका समर्थन प्राप्त है। बिना बर्निनाइयाँ ता उस समय उत्पन्न होती है जब ससदम एक दलका बहुमत हाता है और राष्ट्रपति दूसरे श्लका सन्ध्य होता है। एसी बर्निनाइयाँ १९१६ म राष्ट्रपति ट्रुमन (President Truman) के समयम पदा हुई थी। कमी-कमी राष्ट्रपतिको बदनाम करनेके लिए अच्छ विधयक भी नामजूर कर दिये जाते हैं।

राष्ट्रपति अपने मनि-परिषदके सन्ध्याका स्वय मनोनीत करता है। मनि-गण राष्ट्रपतिके प्रति उत्तरदायी होते हैं सस (Congress) क प्रति नही। व ससद सस्य भी नही होते अनएव केवम राष्ट्रपतिके प्रति ही उत्तरदायी होते हैं। ससदम पूछ जानेवाले प्रश्नों अथवा प्रश्नातराकी सुविधाके अभावम अमरिकाकी ससदका जोच-यज्ञतालक प्रस्तावा (resolutions of enquiry) पर ही निर्भर रहना पडता है। यद्यपि संसदाम हानेवाले प्रश्नातर अनियमित प्रशासन-सम्बधी बायवाहियाका राकने और तत्कालीन महत्वपूर्ण समस्याआ पर जानकारी प्राप्त करनेके सफल साधन हैं लेकिन अमेरिकी पद्धति ता इन उद्देश्याका प्राप्त करनेकी एक टेडी-मडी प्रणाली है।

बिषायिकाके साथ बहुत कम सम्पर्क रहनेके कारण राष्ट्रपतिकी शक्ति कुछ न कुछ कम हो जाती है किंतु फिर भी वह ससारके सबसे अधिक शक्तिशाली राजनीतिक प्रमुखम स एफ है। बिल्सन (Wilson) राष्ट्रपतिके प्रभावको प्राय असीमित मानते थे। सरकारके कार्यपालक या प्रशासनीय प्रधानके रूपम राष्ट्रपतिके दलके नेताके रूपम और विधि निमाण तथा नीति निर्धारणम राष्ट्रके पय प्रदर्शकके रूपमें राष्ट्रपतिको व्यापक अधिकार और शक्तियाँ प्राप्त हैं। वही एक एसा व्यक्ति है जिसे राष्ट्रका प्रयक्ता माना जा सकता है और जिस सभा मचते वह अपन देशको सन्देश देता है वही राष्ट्रीय-मव होता है। संवट-कालकी स्थितिम उसे और भी व्यापक अधिकार दे दिये जाते हैं।

स्विटजरलैण्डकी बायपालिका निस्सन्देह अपने दगधी अनुडी है। यह सात सन्ध्योंकी एक परिषद हाती है जिसका चुनाव ससदके दाना सदनोंकी सम्मिलित बैठकम तीन वर्षोंके लिए किया जाता है। इसका नियंत्रण संसदके हायाम रहता है। अत अविश्वास या निष्ठाके प्रस्तावने कारण त्यागपत्र दे देन का प्रश्न ही नही उठता। यदि सस परिषदके बायीं अथवा उसकी नीतियाका समर्थन नही करती तो परिषद उसमें-आवश्यक संशोधन कर देती है और अपना काम चालू रखती है। यह दलीय शासन नही है और इसमें कोई प्रधानमत्री नही होता। सात सदस्योम स एक को प्रति

। लिण्डसे रॉजर्स (Lindsay Rogers) क अनुसार विधि निमाण जो राष्ट्र पतिका उपान्तर (minor) वर्तव्य या अथ उसका प्रधान कार्य हो गया है। अब यह प्रधान विधि निर्माता है। उसका मू-यांकन अब कार्यपालिकाके रूपमें उसकी सपनताकी अगेना एक विषायकके रूपमें उसकी सक्षमताके आधार पर किया जाता है।

बर्त अर्थात् चुना जाता है। यह क्षेत्र सभापति होता है। यह समान सहयोगियों में प्रथम नहा होता जैसा कि ट्रिनिदाद प्रधान-मंत्री होता है। उसे अपने सहयोगियों को अयोग्य अधिकार नहीं प्राप्त है। वह कार्यपालिका सभी रस्मों का करता है। परियोजना काय विभागों में बंटा रहता है और हर विभाग एक सचिव के सुबुर्दे रहता है। क्योंकि परियोजना नियंत्रण विधी एक के हाथ में नहीं होता इसलिये स्विट्जरलैण्ड की कार्यपालिका को बहु-कार्यपालिका (plural-executive) कहा जाता है। यद्यपि सामग्रीय बहु-कार्यपालिका के कारण एकता निर्गुण और काय हस्तांतरण का अभाव हो जाता है किन्तु स्विट्जरलैण्ड के विधान में इस प्रकार की कार्यपालिका के बहुत अधिक समय तक प्रचलित रहने में इस प्रकार के अभाव जनता में इस प्रकार की को गहन बनाया है। इसके अनिश्चित स्विट्जरलैण्ड के विधानों के स्वभाव में हम वही की साथ भावना भी नग है।

प्रांतीय कार्यपालिका सङ्घीय कार्यपालिका है। मुख्य-नीके कारण प्रांत में कार्यपालिका कई राजनीतिक दलों के मेल में बनती है और इंग्लिश प्रिटन के मंत्रिमण्डल की तुलना में यह विधानों पर अधिक निर्भर रहती है। प्रांत के मंत्रियों को सेवा सन्तान की कार्यवाही में भाग लेने और चलने का अधिकार है। प्रांत के मंत्रिमण्डल अधिक समय तक न चिक मरने के लिए बनाम है। सन् १८७८ में १९२८ तक प्रांत मंत्रिमण्डल की भोग्य यद्यपि साइ तो भाग थी। फाइनेर का बहुत है कि प्रांत में कई मंत्रिमण्डल नहा हुआ। वहाँ मंत्रिमण्डल सङ्गनमान रहता है। इन मंत्रियों को कई सामाजिक प्रमाण-सम्बन्धी अधिकार प्राप्त नहीं हो पाता क्योंकि उनका अस्तित्व हमेशा गतरेम रहता है। सरकार के वधानिक आर्थिक और प्रशासनीय कार्यों में मंत्रिमण्डलों को अयोग्य विभिन्न आयाग बहुत अधिक और सभी-सभी उनके प्रतिष्ठा की रूप में भाग लेते हैं। राष्ट्रपति के सभापति-वम मंत्रिमण्डल की घंटकों में नीति पर विचार होता है और प्रधानमंत्री के सभापति-वम मंत्रिमण्डल कार्य करने के संग पर विचार करता है (२० १०६३)।

अमेरिकी सामग्रीय सन् १९३५ ई० के संविधान के अनुसार प्रांतों के गवर्नर जनरल तथा प्रांतों के सर्वरों की नियति ट्रिनिदाद के गवर्नर जनरल तथा सर्वरों के विस्तृत भिन्न थी। ये सामग्रीय की कार्यपालिका को नहीं अधिक परिभाषित था। उन्हें एने अधिकार प्राप्त थे जिनका प्रयोग वे अपने व्यक्तिगत विवेक और निष्पक्ष आधार पर कर सकते थे। इसके अनिश्चित जनता के बहुत विचार कर्तों और सार्वजनिक कार्यपालिका के विधानों के सरकार में था।

नी नीति-वम आधार भारत के लिए संसदीय राजनीतिक कार्यपालिका का समर्थन करी था। यह भारत सरकार ने भी नीति-वम कार्यपालिका का समर्थन किया है जिसमें विधानों के विभिन्न लक्ष्यों के प्रतिनिधि हैं। हमारे विधानों में तो एक संसदीय कार्यपालिका भी है। नीति-वम कार्यपालिका की संभावनाएं हम हैं। समर्थन-वम कार्यपालिका का अर्थ है कि मंत्रिमण्डल में हर और कार्य निष्पक्ष रूप

होता रहेगा। उसका परिणाम एकता और सहयोगकी कभी ढोवाडोल स्थिति और निरन्तर लोचातानी होगा। दलमुक्त कायपालिका व्यावहारिक राजनीतिके मयमे बाहुरकी बात प्रतीत होता है। हम लोग ब्रिटिश-संसदीय परम्पराके अभ्यस्त हैं और हमारे लिए उचित यही है कि कभी उपयोगमे न लाये गये प्रयोगोंका रास्ता न अपनावें।

मन्त्रिमण्डलीय, ससदीय अथवा उत्तरदायी कायपालिका

मन्त्रिमण्डलीय कायपालिका म मन्त्रिमण्डल अपने समस्त कृताकृत कार्योंके लिए अधिक तीर पर सीप विधायिकाके प्रति और उसके द्वारा निवाचक-मण्डलके प्रति उत्तरदायी होता है।

मन्त्रिमण्डलीय कायपालिकाकी प्रमुख विशेषताएँ ये हैं

(१) नाममात्रका अध्यक्ष मन्त्रिमण्डलीय सरकारमे नाममात्रके अध्यक्ष म और वास्तविक कायपालिकाके स्पष्ट अन्तर रहता है। अध्यक्षके पास, चाहे वह बशानुगत हो या निर्वाचित नाममात्रके अधिकार रहते हैं।

(२) वास्तविक कायपालिका जनता द्वारा चुना गया मन्त्रिमण्डल सभी सरकारी कार्योंके लिए जिम्मेदार होता है। प्रणामनका सारा काम उसीके आदेशानुसार और उसीकी जैस रेखम होता है।

(३) राजनीतिक एकदमता मन्त्रिमण्डल के सभी सदस्य एक ही राजनीतिक दल के होते हैं। यह राजनीतिक दल प्रायः वह दल होता है जिसका विधायिका म बहुमत होता है। पर सकल क समय या जब किसी बिगप कारण से विशेष व्यक्तियों को मन्त्रिमण्डलमे लेनेकी जरूरत पड़ती है तब इस नियम को सिधित कर दिया जाता है। समुक्त-मन्त्रिमण्डल म उन सभी दलों के सदस्य रहते हैं जिनको मिलकर समुक्त सरकार बनती है।

(४) सामूहिक उत्तरदायित्व मन्त्रिमण्डल की सामूहिक जिम्मेदारी होती है। हमने अर्थ हैं कि नीति सम्बन्धी निर्णय मन्त्रिमण्डल सामूहिक रूप से करता है। सभी मंत्री एक साथ दूबते या पार लगते हैं। विसमत्री की गलती के कारण—यदि मंत्रियों ने सदस्य का विश्वास लो दिया है तो—एक समय युद्ध-मंत्री को भी अर्थ मंत्रियों के साथ त्याग-पम देना पड़ता है।

(५) मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व मन्त्रिमण्डल अपने सभी कार्यों के लिए संसद के प्रति उत्तरदायी होता है। यह सभी तक वासनाच्छ रह सकता है जब तक उसे संसद का विश्वास प्राप्त रहता है। इस उत्तरदायित्व को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए यह आवश्यक कर दिया गया है कि सभी मंत्री सदस्य के किसी न किसी संसद के संस्य अवश्य हों। इस व्यवस्था से मन्त्रिमण्डलीय सरकार म विधायिका और कार्यपालिका म मन और सहयोग बना रहता है।

(६) प्रधान मंत्री एक नेता के रूप में बहुमत दल के नेता के रूप में प्रधान मंत्री मंत्रिमण्डल के काम का नियंत्रण करना है और उनमें मन्तुलत कायम रगता है। वेम हा मभी मत्री बराबर होत हैं पर बराबरधानो म प्रथम हाने क नाव प्रधान-मत्री ही धाम्त्व में प्रधान कायपालिका होता है। यह तीव ही बला गया है 'प्रधान-मत्री मंत्रिमण्डल के काम का केन्द्र उनके जीवन का केन्द्र और उसकी मूल का केन्द्र होता है।

मंत्रिमण्डलीय कायपालिका के गुण

(१) मंत्रिमण्डलीय कायपालिका विधायिका और कायपालिका के बीच सामंजस्य स्थापित रखती है। इसका परिणाम यह होता है कि विधायिका और कायपालिका में मतभेद उत्पन्न नहीं हो पाता और जहां समान उद्देश्यों के लिए काम करते हैं।

(२) मंत्रिमण्डलीय सरकार लचीली (flexible) होती है क्योंकि इन व्यवस्था में विधायिका 'अव्यवस्था पड़ने पर एक दानव घुन सकती है। (कॉर्नर)

(३) यह व्यवस्था जनता की प्रतिनिधित्व को स्थापित करती है। मंत्रिमण्डल में बने नवने जनता के प्रतिनिधित्व के प्रति अपनी जिम्मेदारी की गणना में जनता का भावनाओं का परलन है।

(४) जनता को राजनीतिक तौर पर शिक्षित करने के लिए यह व्यवस्था बहुत उपयोगी होती है। विभिन्न दलों का अस्तित्व समय-समय पर निर्वाचनों का होना तथा विभिन्न दलों के और भी जिया जानेवाला प्रकार जनता को राजनीतिक तौर पर चालक बनाते हैं।

मंत्रिमण्डलीय व्यवस्था के दोष

(१) मंत्रिमण्डलीय व्यवस्था परिवर्तनों के सुपरकारण के सिद्धांत का अतिक्रमण करती है।

(२) मित्रवित्त खास का कहना है कि मंत्रियों को विधायिका के सम्बन्धित कार्य करने अधिन करने पड़ते हैं कि वे कार्यपालिका में सम्बन्धित कार्यों को टाँक प्रकार में करने करते हैं।

(३) मंत्रिमण्डलीय सरकार अस्थिर होती है क्योंकि इसका कार्यपालिका-विधायिका की अन्तर्गत अस्थिरता है। यह राजनीतिक दलों के विभाग में पर दान काम हो जाता है।

(४) विधायिका में बहुमत दल के हर काम का विरोध केवल विरोध करने के लिए करते हैं।

(५) मंत्रिमण्डलीय सरकार को अपरिपक्व लोगों या नवसिखुओं (amateurs) की सरकार कहा जाता है अर्थात् एम लोगों की सरकार जो शासन करना म विपणन नहीं जानते। मंत्रिमण्डलीय सरकार को नवसिखुओं की सरकार कहना उसकी अनुपम कहने का एक तरीका है।

(६) दलीय-पद्धति के विकास और दलगत अनुशासन के कारण मंत्रिमण्डलीय सरकार दलगत सरकार हो जाती है।

(७) मंत्रिमण्डलीय प्रणाली म संकट-कालीन अवस्था में तत्काल कारवाई करने की तत्परता और समता की कमी होती है।

अध्यक्षात्मक कायपालिका

अध्यक्षात्मक कायपालिका अपने कार्य के लिए अधिकारूप से संसद से स्वतंत्र होती है और अपनी राजनीतिक नीतियां के लिए संसद के प्रति उत्तरदायी नहीं होती। इस व्यवस्था म

(१) कार्यपालिका का प्रधान नेतृत्व नाम के लिए ही प्रधान नहीं होता वह दान्तविक कार्यपालिका होता है। वह संविधान द्वारा दी गयी समस्त शक्तियों का उपयोग करता है।

(२) वह जनता का निर्वाचित प्रतिनिधि होता है। उसका कार्य-काल पहले से छय रहता है। वह प्रधान-मंत्रियों की तरह अपने पद से आसानी से हटाया नहीं जा सकता। उस पर अभियोग (impeachment) लगाने की प्रक्रिया बहुत कठिन होती है।

(३) वह न तो विधायिका पर आश्रित रहता है और न उसके प्रति जिम्मेदार होता है।

(४) सरकारके तीन अंगोंके बीच शक्तियोंका पूर्णरूपसे पृथक्करण रहता है।

(५) कायपालिका और विधायिका म हूमेना सहयोग नहीं रहता। चूंकि कायपालिका के समस्त विधायिकाके सदस्य नहीं होते हैं इसलिए दोनोंम बहुधा संघर्ष होता रहता है।

(६) संसद को अंग नहीं दिया जा सकता।

अध्यक्षात्मक सरकारके गुण

(१) अध्यक्षतात्मक सरकार विधायिका के प्रति उत्तरदायी न होते हुए भी अपना प्रतिनिधि स्वरूप रखती है।

(२) अध्यक्ष निर्दिष्टन कर्षण के लिए चुना जाता है और उसके पुन चुने जानेकी सम्भावना रहती है। इसलिए नीतिकी अविच्छिन्नता और स्थिरताकी भावना बनी रहती है।

(३) सभी अधिकारों का ही व्यक्तिगत पाम रखने के कारण काम करने में शक्ति और निष्पक्ष करने में ठसकना होती है।

(४) विभिन्न विभागों में कार्य करने के लिए अध्यात्मिक सरकार बहुत उपयोगी होती है।

(५) अधिकारों का इस बात की परेक्षा नहीं करना होती कि उन्हें समान रूप में उपस्थित होने चाहिए। क्योंकि विभागाध्यक्ष का काम करने के लिए उनका पाम अधिक समय होता है।

(६) विभागाध्यक्ष की अनुपातमूलक काम प्रभावित होती है।

अध्यात्मिक सरकारके दोष

(१) एकीकरण का महत्ता है कि अध्यात्मिक सरकार निरुत्पन्न अनुसंधान और उत्पन्न होती है। यह कि अधिकारों का निष्पक्ष की शक्ति सीमायुक्त व सीमायुक्त रहने हुए अध्यात्मिक अधिकार होता है कि वह जा चाहें।

(२) कार्यपालिका स्वयं किसी विभाग का अध्यात्मिक नहीं कर सकता। कर्ता अधिकार नहीं है और जब शक्ति के विभागाध्यक्ष और कार्यपालिका में विरोध उत्पन्न होता रहता है।

(३) काम के अनुसार विभागाध्यक्ष बहुत-सी समितियों के बनना काम होने में देरी होती है अध्यात्मिक फलपत्नी है और विरोधी उद्देश्य के लिए काम किए जाते हैं।

(४) काम का यह भी महत्ता है कि अधिकारों के पुनर्गठन का वास्तविक परिणाम यह होता है कि स्वायत्तिक तौर पर गवर्नर यात्रों को एक दूसरे से अलग हुआ है।

(५) अधिकारों की सरकार की अनेक अध्यात्मिक सरकार अध्यात्मिक भ्रमण अधिकारों को अधिक छोड़ देती है।

(६) यदि सरकार का अधिकारों के अध्यात्मिक के कारण ही कार्य करना होता है कि अध्यात्मिक कार्यपालिका में संचालन (flexibility) में होता है।

पालिकाया स नकर जिनम सप्त्या की बीच जिम्मेदारी बँटी रहती थी नगर प्रबन्धकों (city managers) का सौंपा जा रहा है। इस नयी प्रथा में अन्तर्गत एक ही व्यक्ति का आभ्यासानुसार और उसकी देखरेख में नगर का सारा प्रबन्ध होता है और नगर प्रबन्ध से सम्बन्धित सभी जिम्मेदारी उसी की होती है।

कायपालिकाकी बहुवृत्ताका अर्थ है जिम्मेदारीका विभाजन। इससे भूलोंकी घटिपानेकी प्रवृत्ति पैदा होती है समस्याओं पर शीघ्र निर्णय लेनेमें कठिनाई पैदा होती है और सद्यमें भी विभिन्नता पैदा हो जाती है। इसमें एकात्मता और सन्निपताका अभाव रहता है। इसके पदम इतना बड़ा जा सकता है कि इसमें दक्षिणके दुरुपयोग होने और आकस्मिक राज्य विप्लवकी सम्भावना पर राक नगती है। इस प्रणालीमें एकात्मक कार्यपालिकाकी अपेक्षा राज्यकी सेवाके लिए अधिक उच्च कोटिकी सामर्थ्यवाले व्यक्ति मिल सकते हैं। पर इस प्रणालीको अनुपयुक्त सिद्ध करनेके लिए इतना ही कहना पर्याप्त है कि इसमें एकता प्रत्यक्ष कारवाई और जल्दी काम करनेका अभाव है। पर यह सम्भव है कि एकात्मक और वृत्त कायपालिकाके सिद्धान्तका समन्वय किया जा सके। आधुनिक शासन व्यवस्था इतनी जटिल और वेचीदी हो गयी है कि कोई भी एक व्यक्ति चाहे वह कितना ही योग्य क्या न हो शासनके हर विभागका विधान नही हो सकता। आवश्यकता इस बातकी है कि प्रशासनके विभिन्न स्तर पर उत्तरदायित्व बँटा हुआ हो और ऊपरी स्तर पर एकात्मक कार्यपालिका हो।

कायपालिका की कार्यवधि (Tenure of the executive) आनुवंशिक कायपालिका की कार्यवधि जीवन भर की होती है। कार्यवधि का प्रश्न केवल चुनी गयी या मनोनीत कार्यपालिकाओं के बारे में ही उठता है। आजकल यह कायवधि एक से लेकर सात वर्ष तक की होती है। अमेरिका के अधिकांश राज्यों में राज्यपाल दो वर्ष के लिए चुने जाते हैं। वहाँ का राष्ट्रपति चार वर्ष तक पदासीन रहता है। फ्रांस और जर्मनी के राष्ट्रपतियों की पदावधि सात वर्षों के समूचे समय की है। ब्रिटन और उसके उपनिवेशों में कार्यवधि पाँच वर्ष की है। बात कि मन्त्रिमण्डल में सत्ता के निश्चये सत्ता का विश्वास बना रहे। इस अवधि के पहले भी कार्यपालिका गग की जा सकती है। ब्रिटिश सामन काल में भारत में गवर्नर जनरल और गवर्नरा की नियुक्ति पाँच वर्ष के लिए होती थी।

कायपालिका के लिए सिर्फ एक या दो वर्ष की अवधि निश्चित करना निरर्थक है। यह नीति की निरन्तरता के लिए फायदा है। अनुभव प्राप्त करने बड़ी-बड़ी योजनाएँ बनाने और उन्हें कार्यान्वित करने के लिए कायपालिकाको पर्याप्त समय नही मिल पाता। जल्दी-जल्दी होनेवाले चुनाव का प्रभाव राजजनिक जीवन पर बहुत बुरा पड़ता है। बहुधा उससे भ्रष्टाचार और भ्रष्टाचार पैदा हो जाती है। कार्यपालिका को हर समय जनता की कृपा की चिन्ता रहनी है और मुरादों पैदा हो जाती हैं। कार्यपालिका को हर समय का अधिकार होता है। वह दुर्बल और अस्थिर बुद्धि रहती है और ग्राह्य और स्वतन्त्रता के साथ कोई काम करने से डरता है।

अन्तर्राष्ट्रीय करार करती है। संधियाँ या गुप्त वनाय रमने के लिए कमसे कम दुरु में विधायिका को अलग रखा जाता है। १९१८-१९ के महायुद्ध के दौरान में और उसके बाद ब्रिटन में इस नीति की बड़ी कड़ी आलोचना की गयी थी। कुछ लोगों ने तो यहाँ तक कहा कि ब्रिटन की गलत गुप्त कूटनीतियों ने उसे जर्मनी से लड़वा दिया। मद्रदूर सरकार संसद के सम्मेलन उसकी स्वीकृति के लिए सभी संधियाँ उपस्थित करने को तयार थी। द्वितीय महायुद्ध के समय कूटनीति अधिक स्पष्ट हो गयी थी। ब्रिटन और अमेरिका एक इकाई के रूप में काम करते थे।^१ पश्चिमी राष्ट्रों और सोवियत संघ द्वारा सावधानीपूर्वक प्रत्यक्ष या गुप्त साधनों से अन्ध देशों को अपना सहयोगी बनाने के प्रयत्नों के बावजूद संयुक्त राष्ट्र संघ (United Nations) ने अभी तक के गुप्त एक पक्षीय संधि और करारों को बहुत ही तक समाप्त कर दिया है।

ब्रिटेन में आज भी संधि करने की शक्ति बहुत कुछ कार्यपालिका के हाथों में है। संसदवा उसमें कोई हाथ नही रहता। संसद का सम्बन्ध संधि से तभी होता है जब संधि का पूरा प्रदान करने अथवा उसे कार्यान्वित करने के लिए विधान (legislation) की आवश्यकता होती है। कार्यपालिका ही संधियों की बातचीत गुह करती है और उन्हें पूरा करती है। अन्ध अनेक देशों में विधायिका की स्वीकृति आवश्यक नहीं है। संयुक्त राज्य अमेरिका में कुछ तत्सु अन्तर्राष्ट्रीय करार केवल राष्ट्रपति के अधिकार से ही किये जा सकते हैं उदाहरण के लिए पारस्परिक व्यावसायिक करार (reciprocal trade agreements)। अन्ध संधियों के लिए सीनेट की स्वीकृति आवश्यक है। सीनेट ने इस अधिकार का अर्थ यह लगाया है कि उसे संधियों के मसविदे को न केवल स्वीकार अथवा अस्वीकार करने का अधिकार है बल्कि उनमें संशोधन करने का भी अधिकार है। प्रतिनिधि-सभा (The House of Representatives) संधियाँ करने में अप्रत्यक्ष रूप से धन के बचने कारण ही भाग ले पाती है। संधि की शर्तों को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक व्यय विनियोगों (appropriations) को वह अस्वीकार कर सकती है। वह उन संधियों को भी अस्वीकार कर सकती है जो विदेशी व्यापार के नियमन से सम्बन्ध रखती हैं। अमेरिका में यह प्रस्ताव विचारार्थीन है कि वर्तमान पद्धति के स्थान पर संधियों को दोनो सदन में साधारण बहुमत द्वारा स्वीकृत कराया जाय। जर्मन गणराज्य में साधारण करार के अतिरिक्त अन्ध सभी संधियाँ और गठबंधनों (alliances) के लिए निचले सदन की स्वीकृति आवश्यक थी। फ्रांस में अन्ध संधियों को दोनो सदन द्वारा स्वीकृत कराने का ही रिवाज है। सन्नों का संधियाँ स्वीकार या

^१ इस युद्ध के दौरान में भी एमे करार हुए जिनमें अप्रकाशित गुप्त अभियानों की शर्तें या जैसे यादिरा यास्टा और पान्सडम के करार। इस युद्ध के बाद इन गुप्त शर्तों की बहुत अधिक आलोचना की गयी विनाशकर संयुक्त राज्य अमेरिका में रिपब्लिकन पक्ष द्वारा, जिसका उद्देश्य इन गलत आलोचना अधिक था।

कर सकता है। नागरिकों का जन्मी प्रत्यक्षीकरण (writ of habeas corpus) जसा महत्वपूर्ण अधिकार भी स्वयंसेवक विद्या का मन्त्र है। राष्ट्रपति समाचार पत्रों का बन्द कर सकता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के नाम का प्रमत्त ने कई अधिनियम बनाकर राष्ट्रपति का व्यावहारिक रूप में सत्ता गाड़ी अधिकार दे दिया था। युद्ध में सगे दूसरे देशों में भी वायपालिकाओं का ऐसे ही अधिकार दिया गया था।

(४) **याचिक अधिकार शक्ति (Judicial power)** वायपालिका का याचिक अधिकारों से एक महत्वपूर्ण अधिकार अपराधियों को क्षमा करने का है। मोंटेस्क्यू (Montesquieu) गणतन्त्र शासन में इस अधिकार को विच्छुत्त अनावश्यक मानते थे। पर याच और मानवता के विचारों में हर सविधान में चाह वह राजतन्त्रात्मक ही या गणतन्त्रात्मक क्षमा के लिए स्थान होना ही चाहिए क्योंकि विधि अपूर्ण ही होता है और अत्यधिक कठोरता से लागू की जाती है। यह सम्भव हो सकता है कि वर्तमान विधिम और याचार्थीना द्वारा उनका उपयोग किये जाने के उद्यम प्रशंसनीय हैं। या अपराध को हल्का बनाने वाली परिस्थितियों पर या उन परिस्थितियों पर जिनमें अपराध किया गया था पूरी तरह से विचार न किया गया हो यह भी सम्भव है कि सजा मुनाय जाने के बाद अपराध के बारे में नयी बातें मालूम हों। इन सभी परिस्थितियों में न्यायका तकावा है कि अपराधी को सन्देशवा लाय दिया जाय और इस परमाधिकार (Prerogative) का उपयोग करने के लिए सबसे अधिक उपयुक्त व्यक्ति सर्वोच्च कार्यपालिका ही है। ब्रिटन में इस अधिकार का प्रयोग गृह-मंत्री की सलाह से सम्पन्न करता है। अमेरिका में अनेक राज्यों में एक परामर्श दायी समिति (advisory board) राज्यपाल को इस अधिकार का प्रयोग करने में सहायता देती है। अनेक सविधानों के अनुसार महाभियोगों में अपराधियों को क्षमा नहीं किया जा सकता। अमेरिका के राष्ट्रपति का अपराध सिद्ध हानक पहलू भी और उसके बाद भी क्षमा करने का अधिकार है। वह जर्मनी का और जन्तकी हुई सम्पत्ति का वापस कर सकता है। वह प्राणदण्ड के स्थगन की और उस हल्का करने की आज्ञा दे सकता है तथा अपराध के लिए दंड बहुत से व्यक्तियों को क्षमा कर सकता है।

सोवियत संघ के अन्तर्गत कार्यपालिका के सामान्य निरीक्षण में काम करने वाले मरवाही विभाग का अर्थ 'याचिक बोर्ड' के स्थापन अधिकार दिये गये हैं। इस प्रकार ब्रिटन में स्वास्थ्य मन्त्र अपने प्रशासकीय कार्यों के मिलमिले में लोगों पर जुमाने कर सकता है और हर्जाना वसूल कर सकता है।

(५) **विधानो-शक्ति (Legislative power)** सभी सविधानों के अन्तर्गत विधायिका और वायपालिका दोनों का एक दूसरे पर नियंत्रण रहता है। संसदीय शासन प्रणाली में राष्ट्रपति कार्यपालिका का विधायिका के अधिकारों को धुलाने उस आरम्भ करने तथा उसे निश्चित या अनिश्चित समय के लिए स्थगित करने का अधिकार रहता है। कार्यपालिका का यह अधिकार अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रणाली में सीमित रहता है क्योंकि यही विधायिका के अधिवेशन अपने आप हात रहते हैं। संसदीय सविधानों में

विधायिकाओं में भग कराने और नये नुमाव करनेका अधिकार वायसराजिया की हाता है। उमरा आरम्भ भी औपचारिक तौर पर हाता है। अल्पमतका पडतिम घट नय आने नही पायी जात ।

अल्पमतका सरकारके देगोंम विधानके सम्बन्धम वायसराजिका वा अधिकार सीमित रहता है। कार्यकारिका इन सम्बन्धम पर वाय करती है। विधायिकाका देगोनी वैधिक आकषणताभारे चारम सूचना देना विधायिकाके दिवागय विधि सम्बन्धी प्रस्ताव पन करना कभी-कभी (पडति एसा घटन कम होना है) वधानिक आयोक्तनारा आरम्भ करना विधायिकां द्वारा प्रस्तुत विधेयका (bills) को स्वीकार वा अस्वीकार करना और स्वीकृत विधियारा लाग करना (२ ७२६)।

अल्पमतक प्रणालीम वायसराजिका एर असाधारण अधिकार प्राप्त हाता है जिसे निष्पाधिकार (power of veto) कहते हैं। अमरिषाम पर स्थगनात्मक निष्पाधिकार (suspensive veto) है। हर सत्रके ११ दिनाई मसक ११ अधिकार वा उल्लेखन किया जा सकता है। इन अधिकारम अल्पमतकीम और विना ठीक प्रकार सोचे विचारे बनायी गयी विधियों पर रोह लागती है। जब अल्पमत अपने निष्पाधिकारका प्रयोग करता है तब उसे विधायिकाके वायको स्वीकार न करने के लिए अपने कारण बतलान पडते हैं। विधायिकाको इन बातका मौजा दिया जाता है कि वह अपने नियम पर विरम विचार करे। प्रथम स्थगनात्मक निष्पाधिकारका व्यावहारिक दृष्टिमे कार् मूल्य नहीं रह गया है बरकि भय कहीं मसका प्रयोग नहो किया जाता।

अधिकार आपनिर शासन वायसराजिकाका अल्पमत (ordinance) जारी करनेका अधिकार रहता है। इन उप विधान (subordinate legislation) का अधिकार कहते हैं। इन अधिकारका उपयोग आततिवा आदेश नियम और अधिनियमों रूपम हाता है। उनमे कुछो लिए विधायिकाका स्वीकृत आकषण हाती है। इन अधिकारके उपयोग करतेही सामान्य मन यह है कि इनम वनमान विधि न हो। एरम्भ कर्म आथ और न स्थगित हा बकि इनम विधि का लागू करनेम साहायता मिल और विधिमे दिक्कतानी पूर्ति हा। इन और अल्पमती सुझा के लिए अधिनियम लागू करनेका असाधारण अधिकार कभी-कभी मसकरानीम अक्षरम वायसराजिकारा दे दिया जात है। यह अधिकार प्राप्त गमित होता है। इन अधिकारक अल्पमत देगम वाता मजिब-विधि (martial law) लागू वा जा सकती है।

जबन मेसक विधि अल्पमतोंमें और प्रान्त-अल्पमत अल्पमतोंमें अन्तर करत है। विधि अल्पमत नहीं विधियां बनात है वा पडमान विधिमे अल्पमत करते हैं। दूसरी ओर प्रान्तम-अल्पमती अल्पमतोंमें प्रान्ती अधिकारियोंको उनके अर्पित कमवायिकाके भाषण और कर्मके बारेमें आदेश वा निर्णय दिया जात है। उनका पर उनका कोई सीधा प्रभाव ना। एरम्भ और न कत उमर वाय हाती है।

मानव के अनुसार अल्पमत तीन प्रकारक हात है। प्रथम प्रकारके अल्पमतोंमें

एसी विधिया सामिल रहती है जिन्हें संविधि (Statute) द्वारा प्राप्त अपने सामान्य अधिकारों अनुसार प्रधान कार्यपालिका लागू करती है। इस पाटिम राष्ट्रपतिकी आज्ञाप्तिया द्वारा चलनवाना फासीमा उपनिवेशोका शासन आता है। दूसरे प्रकारके अध्यादेशों व अध्यादेश आते हैं जो कुछ विधायक विधायिका नियमन करनेके लिए कार्यपालिका द्वारा अपनी विधायनी शक्ति व अनकूल लागू किये जाते हैं। तीसरे प्रकारके अध्यादेश वे हैं जो विधायिकाक निमंत्रण पर किसी विधायक विधायिका विवरण पूर्ण और उसक कानूनव्यक लिए अधिनियम स्वीकृत करनेके उद्देश्यसे लागू किये जाते हैं। इस प्रकारके अध्यादेशोंका प्रयोग फासिम अधिका होता है क्योंकि वहाँ सगरे विधायिका सामान्य रूपरेखा ही बनाती है और विधायिका विवरणोंका अध्यादेशों द्वारा पूरा किये जानेके लिए छाड देती है। सन् १९०७ ई० तक प्रधान प्रजासी न्यायालय अध्यादेशोंकी वैधताके बारेमें हस्तक्षेप करनेस इन्कार कर देते थे चाहे अध्यादेशों संविधिके विपरीत ही क्यों न हों। पर सन् १९०७ के एक महत्वपूर्ण निणयके अनुसार अध्यादेश-शक्ति पर न्यायालयोंका नियंत्रण हो गया है।

संयुक्त राज्य अमेरिकाम अध्यादेशोंके लिए अधिक स्थान नहीं है क्योंकि वहाँ संसद (Congress) विधायिकाके पूरे विवरणके साथ बनाती है। फिर भी कार्यपालिका के हर विभागके कार्योंका नियंत्रण करनेके लिए आदेश अधिनियमों और राष्ट्रपतिकी उद्घोषणाओं की संख्या बहुत अधिक है। इनके अतिरिक्त विभिन्न विभागों द्वारा जारी किये गये विधायक नियमों अधिनियमों और निर्णयोंकी संख्या भी बहुत अधिक है।

ब्रिटेनमें अब सम्राटकी उद्घोषणाओं और अध्यादेशों द्वारा विधि बनानेका अधिकार नहीं है फिर भी सांख्यिक कार्योंके उचित संचालनके लिए अधिनियम जारी करनेका अधिकार सम्राटके सेवकों (अधिकारियों) का दिया जा सकता है। अध्यादेशोंकी रचना संविधिगत नियमों (statutory rules) और आदेशों के रूपमें होती है और वे समाज पर विधायिकाके समान ही लागू होते हैं। विवरण पूरा करनेका काम प्रायः प्रजासी विभागोंके लिए छाड दिया जाता है विशेषकर विधि और सार्वजनिक स्वास्थ्य जैसे मामलोंमें।

अच्छी कार्यपालिकाकी कसौटी (Tests of a good executive) चीघ्र निणय एकता, पूणता और कभी-कभी कार्य विधायिका गोपनीयता अच्छी कार्यपालिकाकी कसौटी है। कार्यपालिका छापी होनी चाहिए, अध्यादेशों चीघ्र निणय और तेजीसे काम करना असम्भव हो जाता है। इस मामलेमें तानाशाही शासन लोकतंत्रीय राज्योंसे अच्छा होता है। यह एक महत्वपूर्ण बात है कि संकटके समयमें अमेरिकी राष्ट्रपतिकी असाधारण अधिकार दिये जाते हैं। ऐसे ही अधिकार युद्धके दौरानमें भारतके गवर्नर-जनरलोंको भी दिये गये थे। ब्रिटेनमें चीघ्र निणय करने और तेजीसे काम करनेके लिए छ सदस्योंकी एक युद्ध परिषद बनायी गयी थी।

कार्यपालिकाकी उन्मुक्ति (Immunity of the executive) अर्थ

शासन के लिए यह आवश्यक है कि कार्यवाहिका अंगतोंके अधिकार-भंगत पर रहे।
 विन्म म ता यह सिद्धांत माना जाता है कि 'राजा का' अपराध कर ही नहीं सजना।
 अमरिकाता राष्ट्रपति अपन कार्यवाहक साधारण अंगतोंके अतिरिक्त शत्रु मक्ष
 रहना है। उमर अपराधके लिए शासन अभियोग 'जायानर' (court of
 impeachement) के रूपम उस पर मुकदमा बना सबर्ती है और अपराधी फाँसि
 टा पर उस फाँसि कर जाती है। उमर बाँ साधारण अंगतोंमें उस पर मुकदमा
 बनाया जा सकता है। राष्ट्रपति कार्यवाहक उा मिश्रित नही किया जा सकता
 और न व्यक्तिगत रूपम किया जायानर उपस्थित हानक लिए या किसी 'याविक'
 वादवादाका शासन करनेके लिए उन वाध्य किया जा सकता है। एका ही छत्र भाग
 म शासन करने और शासन का शासन भी।

प्रशासनिक सेवा (The Civil Service)

१ परिभाषा और इतिहास (Definition and History) वायुनिक
 शासन प्रशासन-सेवा ही स्थायी कार्यवाहिका है। समस्त मंत्रिमंडल और राष्ट्रपति
 को राज्य करने के लिए शासन शासन प्रशासन-सेवा ही करती है। साकप्रिय
 सम्प्रभवा मंत्रियों, गवर्नरों और मंत्रिमंडलीय नियंत्रण यात्रि के सिद्धांत शासन-वि
 शासन का अध्ययन करनेवाले विद्यार्थियों के लिए सबसे सहायिक महत्व रखते हैं
 पर प्रशासनिक अधिकारिकाओं का सम्बन्ध उनके और साधारण नागरिकों
 के जीवनम रहता है।

शासन प्रशासन-सेवा परिभाषा इस प्रकार करती है 'एक स्थायी बतन योगी
 कुशल कार्यवाहिका का। यह सभी विभागोंके वायुनिक है। बाता समय तक
 समस्त शासन भी शासन का अत्यधिक व्यक्तिगत शासन अथवा उनके
 समय पूरा किया जाता था। शासन अथवा शासनिक यन्त्र मक्ष मक्ष मक्ष थी।
 पर उमर शासन प्रशासन-सेवा एक कुशल व्यवसाय बन गया है।

प्रशासन-सेवाका यह नाम उमर और अनिष्ट तथा 'प्राचीन देशम अन्तर करनेके
 लिए दिया गया है। इस मानक प्रमाण है कि प्राचीन मिस्रम टाउनम और फ्रांस
 (Ptolemies and Pharaohs) शासन के समय किया न किसी प्रकारकी प्रशासन
 सेवा करनेवाली थी। प्राचीन एजिप्टम एक व्यवसायिक शासन प्रशासन-सेवा नही पायी
 जाती थी। एका कारण मूलतः यह अतिवाहक शासनिक विद्यालय का कि एक
 व्यक्ति मक्ष-सेवाके लिए जाता ही जाता है जिसका कि बाँ दूसरा व्यक्ति।
 अतिवाहक अथवा निराश्रित होता था। बनी-बनी भाषण (1) शासन बनाए
 दिया जाता था। प्राचीन एजिप्टम की अतिवाहक शासनिक विद्यालय का कि एक
 व्यक्ति मक्ष-सेवाके लिए जाता ही जाता है जिसका कि बाँ दूसरा व्यक्ति।
 अतिवाहक अथवा निराश्रित होता था। बनी-बनी भाषण (1) शासन बनाए
 दिया जाता था। प्राचीन एजिप्टम की अतिवाहक शासनिक विद्यालय का कि एक
 व्यक्ति मक्ष-सेवाके लिए जाता ही जाता है जिसका कि बाँ दूसरा व्यक्ति।

नियुक्त किये जाते थे। निम्न कोटि के साधारण गुप्तचरों और छोटे-छोटे अधिकारियों (subordinate officers) तथा साम्राज्य के दूरक भागों में प्रधान अधिकारियों के पदों पर नियुक्त किया जाता था। प्रचीन चीन और भारत में भी इसी प्रकार का व्यवस्थापन था।

मध्ययुग में योरोप में शिल्पा और शिल्पियों के साथ-साथ प्रशासन-सहायता विकास एक व्यवसाय के रूप में हुआ। प्रशासन-सहायके पदों सम्मान और प्रतिष्ठा पर ध्यान देने के अतिरिक्त ध्यान दिया जाता था। सामन्त-शाही कुलीन-वर्गों के अतिरिक्त मध्यवर्ग के लोग इन पदों पर अधिक नियुक्त किये जाते थे।

आधुनिक युग में प्रशासन-सेवा का प्रबन्ध करने में प्रुशा (Prussia) अग्रणी रहा है। उस देश में जन-सहायता को भर्ती करने और उनके प्रशिक्षण के बारे में बड़ी सावधानी बरती जाती थी। विस्तृत नियमावली बनाकर प्रशासन-सेवा के अधिकारों अधिक कुशल और उपयोगी बनाया गया था। आज भी जर्मनी में प्रशासन-सहायके अधिकारों और सुरक्षा की सबसे अच्छी व्यवस्था है। जहाँ तक कृतव्याका सम्बन्ध है यह कहना पड़गा कि जर्मनी की प्रशासन-सेवा में अधिकारियों प्रवृत्तिकी परम्परा अब भी कायम है। पर नाचियाँ के प्रादुर्भाव के पहले इस बात के सभी सम्भव प्रयत्न किये जा रहे थे कि प्रशासन सेवा की कठोरता को दूर किया जाय और उसकी अधिकारपूर्ण हस्तक्षेप की प्रवृत्ति को अच्छी सेवा भावना में बदल दिया जाय। फ्रांस के बूर्बोन् (Bourbon) राजाओं ने योरोप में प्रशासन-सेवा की परम्परा बनाने में कुछ योग दिया था पर नियुक्ति पर और बर्खास्त किया मनमाने ढंग से ही की जाती थी।

ब्रिटेन की प्रशासन-सेवा संसार की सर्वोत्तम प्रशासन-सेवाओं में से एक है। इसका आरम्भ गत शताब्दी के मध्य में हुआ था। फ्राइजर ब्रिटेन की प्रशासन-सेवा को संसार के लिए ईर्ष्या की वस्तु कहते हैं। इसमें कार्यकुशलता और मानवीय सेवा भाव दोनों ही गुण जितनी मात्रा में पाये जाते हैं उतनी मात्रा में किसी अन्य देश की प्रशासन सेवा में नहीं मिलने। ग्रेहम वॉलस (Graham Wallas) के शब्दों में 'इस अधिसेवा का निर्माण उसीसे ही शताब्दी के ब्रिटेन का एक महान् राजनीतिक आविष्कार था।

ब्रिटेन की प्रशासन-सेवा अपने उद्भव और विकास की दृष्टि से वह बिना मन्त्रि मण्डलीय शासन की समतुल्य आवश्यक प्रतिपूरति (counterpart) है। ब्रिटेन के मन्त्रिमण्डल के नब्बे प्रतिशत सदस्यों को जिन विभागों के प्रशासन का कार्य सौंपा जाता है उन्हें उन विभागों की भीतर ही कार्य प्रणाली का ज्ञान बहुत कम या नहीं के बराबर होता है। मन्त्री अपने काम को सँभालने में ऐसे दृष्टिकोण और बुद्धिबल का काम लेता है जो पूर्व निर्धारित भावनाओं और कर्मचारीतन्त्र की अङ्गबाजी से मुक्त होता है और प्रशासन-सेवा उस विषय के कुशल व शान्ति ज्ञान और अनुभव का सहारा उसे देती है। दानाव समन्वय का परिणाम सुदूर शासन होता है। पर लॉर्ड ह्यूट (Lord Hewart) रैम्सय म्योर (Ramsay Muir) और सी० के० एलेन (C. K. Allen) आदि लेखक इस पद्धति की आलोचना करते हैं। उनका कहना है कि इस पद्धति से स्थायी प्रशासन

गवर्ना थाप-पत्रनाम अधिन महत्व मिल जाना है। रम्ब म्यार व अनुसार विधि निर्माण प्रणालन, अथ-व्यवस्था और नीति निपारणमें प्रणालन-मेवा ही बरतुन सारा निर्माण बरती है। यद्यपि यह निर्माण अप्रमाण हाता है। यह यह दगबर आनक्तिन है। उठते हैं नि मन्त्रिमन्त्रीय टगरगधि बने नाम पर बमबारीतत्र पनपना है।

उपयुक्त आनावनाम धान ब्रितना स-बाई हा पर नन वातन द-बार नही किया जा सकता कि प्रिन्स समारक उन दगाम स एक है ब्रितना प्रणालन सर्वोत्तम दगम हाता है। कारण यह है कि उन एक नुगत विचारगोत्र और निपण प्रणालन-मेवा प्राप्त है जा नामनके नितिक बायीका पूरा करनी है।

अधुनी राज्यम भारतम भी देग के नामन म प्रणालन-मेवाका बड़ा महत्वपूर्ण हाप था। इगना बाप-नाम नतना अधिक ध्यापन था कि नामन नामने अन्तर्गत जो बुद्धभी आ जाता है वह सब सके अ-दर समता जाता था। यह प्रणालन सम्बन्धी अगनी वध डिम्भदारीको ता पूरा बरता ही था साथ ही साथ नीति निपारण और विधि-निर्माण भी उसका महत्वपूर्ण हाप रहता था। भारतम बहुधा प्रणालन अधिनारित्याका बर्मबारीतत्रने पुत्र पहा जाता था। उसका अथ यह था कि यह अधिनारी नामनत्र की परवाह किच बिना प्रनगरगशी दगन अधिनारिताका प्रयोग करने के धानी था। पर यह परिस्थिति उत्तरगवा नामनके विनासके साथ-साथ समाप्त हा गयी।

अधुना राज्य अधिनारिताम प्रणालन-मेवा का आरम्भ अण्टापत्रनक तरीकत हुआ। गवना कारण लूट-नमागरी प्रथा (spoils system) की प्रिण्ट अनुगार राष्ट्रपति के हर पुनाबने धान प्रणालन-मेवाक गैरडा पनाको पुनावम जीवनदान दनक समपनाम भरा जाता रहा है। पनाके इस बनावर्तन (rotation) तथा सावजनिक परोको सक्तीनिक का दनही इस प्रथाकी डिम्भेगरी एण्डयू जक्शन (Andrew Jackson) पर है किहा। राष्ट्रपतिने प (१८२०—३६) से यह घोषणा की थी प्रणालन-मेवाके बर्तव्य दान स-ट और कारण है कि समाजदार आन्धी आशानी स आनेको उन बतध्यावा पूरा करने के योग्य बना उपता है और य द-वि धाम करनेके लिए पूर्णत बिकर है कि एक सम्बन्धी अवधि तक सोपाके पनी पर बने रहनेके आ हाति होती है वह उनक अनुभवम हातबान नामकी अरता बही अधिन है। रिगी भी स्थितिया दूगरे स्थितिकी अर ता गायजनिक पर पर निवृत्त हावेका अधिन नगदिक अधिनार नहीं है। इस उपतरनाक नीतिका परिणाम अनुगमता दनकी भ्रष्टाचार और घुमगारी हुता। बुराई इस द- एक प-ब मरी कि दे-को १८८८ म मन्त्रपुर हाकर प्रिण्टिणी परीगाअरे आघार पर दगानी प्रणालन-मेवाका निवृत्त मानना पना। मोह-मेवा आगोगकी स्थानता की मन्त्री पर उन्की पगोपिगा इस कारण ब-ब ब-द ग-ग-ग हा मरी कि नन आरोगी को दनो प्रधान सक्तीनिक दको प्रिण्टिण्डा न भर किया गया। सन् १९३३ में गुणारकी एक

और लहर आई पर वह भी 'लूट-नाचोट' की प्रथाको निमूल न कर सकी। १९१६ के आते आते प्रशासनके आध से अधिक पत्र पर नियुक्ति प्रतियोगी परीक्षाओं के आधार पर होने लगी। कुछ विभागोंके सर्वोच्च अधिकारियोंको छोड़कर अब सभी सरकारी अधिकारी प्रशासन-संवाहक अंतर्गत हैं। दसवाँ तथा नुनवापरस्ती को मिटानेके लिए बहुत कुछ किया जा रहा है।

प्रशासन प्रधिकारियों को भर्ती और उनका प्रशिक्षण (Recruitment and Training of Civil Servants) स्वतन्त्र प्रशासन संवाहके विवाहसम भर्ती और प्रशिक्षणका प्रश्न सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। ब्रिटेन और भारत दोनों ही दशोम गत शताब्दीके मध्य तक नुनवापरस्ती और सिफारिशका बालबाला रहा है। ईस्ट इण्डिया कम्पनीके सञ्चालक मण्डलम एव सदस्य स्वयंमण्डले थे। उन्होंने अपने १० लक्षकोम से प्रायः सबके लिए किसी न किसी पदकी व्यवस्था कर दी थी। नियंत्रण-समितिके समापतिकी हैसियतसे इण्डिया ने अथक स्फाट लागवा भारत भेज दिया था। सन् १८५८ में जॉन ग्रांट ने कहा था कि ब्रिटेनकी वदेशिक नीति अपने देशके कुलीन वर्गका देशके बाहर सुविधाएँ देनेकी एव विज्ञान याजनास अधिक और क्या है।

सिफारिशकी बुराईयाँ इतनी बढ़ गयी कि नियुक्तियाँ करनेका कोई दूसरा तरीका खोजना पड़ा। सिफारिश का क्षेत्र सीमित करनेके लिए, भारतीय प्रशासन सेवाके सम्बन्धमें पहला कदम यह उठाया गया कि उम्मीदवारोंकी योग्यता परखनेके लिए एक परीक्षा चालू की गयी और हेलीवरी (विलेन) में बहुमुखी प्रशिक्षण दिया जाने लगा। सन् १८५३ में जब ईस्ट इण्डिया कम्पनीका चार्टर पार्लामेंटके सम्मुख पुनर्विचारके लिए पेश किया गया तब मकॉले ने प्रथाका समूल उखाड़ कर उसके स्थान पर प्रतियोगी पद्धतिकी स्थापना करनेमें सफलता प्राप्त की। उन्होंने कहा मुझे ऐसा भालूम होता है कि कभी कोई तथ्य इतने अधिक प्रमाणों और विविध अनुभवोंसे सही सिद्ध नहीं हुआ जितना यह तथ्य सही सिद्ध हुआ है कि जो लोग युवावस्थामें अपनेको अपने समकालीन व्यक्तियोंकी अपेक्षा एक विनिष्ट कोटिका सिद्ध कर देते हैं वे अपनी इस विज्ञापणकी आजीवन क्रायम रखते हैं। प्रशासनमें भर्ती किये जानेके लिए मकॉले ने किसी प्राविधिक (technical) या व्यावसायिक शिक्षाका समर्थन नहीं किया। उन्होंने प्रतियोगी परीक्षाओं द्वारा परखी गयी बौद्धिक क्षमता और सामर्थ्य पर अधिक जोर दिया। यह किसी विज्ञाप प्रकारकी शिक्षाकी अपेक्षा उदार व्यापक शिक्षाको अधिक महत्त्व देते थे। उनका कहना था कि कार्य सञ्चालनका प्राविधिक चानुय धादम भी प्राप्त किया जा सकता है।

भारतमें मकॉले द्वारा किये सुझावोंका पत्र रिपोर्टका सन् १८५३ में नाथकाट (Northcote) और ट्रेवेलियन (Trevelyan) की रिपोर्टके रूपमें मिला। उन्होंने भी उम्मीदवारोंके चयनमें दसवन्दीको समाप्त करने और प्रतियोगिता आरम्भ करने की सिफारिश की। उनके सुझावोंको १८५५ में आंशिक रूपमें कार्यान्वित किया

गया। उसी वर्ष प्रथम लोक-सेवा आयोगकी स्थापना की गयी। भागे चलकर अन्य सुधार भी किये गये।

भारत और ब्रिटेनम आरक्षण प्रबन्धित पद्धतिसे अनुसार भर्ती अधिकांश एक सूची प्रतियोगिता द्वारा होती है। इस प्रतियोगिताका पूरक रूपम एक मौखिक परीक्षा भी होती है। दोनों ही परीक्षाओंका संयोजन एक साह-सेवा आयोग करता है। कुछ विभागमें भर्ती सीमित प्रतियोगितासे होती है जस ब्रिटेनकी रॉयल और राजनयिक सेवाके लिए। सभी प्रतियोगी परीक्षाओंमें मौखिक परीक्षाको मुख्य स्थान दिया जाता है।

प्रशासन-सेवाआम भर्ती नियमन कम उमर ही की जाती है क्योंकि इस उमरमें नये विचारोंको ग्रहण करनेकी शक्ति अधिक होती है। ब्रिटेनमें लोक-सेवा आयोगमें तीन संस्थाएं हैं। इन संस्थाओंके नियुक्ति संस्था स्वयं-चालितमें स्वीकृत भागों द्वारा करता है। इसका तात्पर्य यह है कि यह नियुक्तिमें अधिकतर सर्वोच्च सरकारी परामर्शन करता है। लोक-सेवा आयोग बाहरी प्रशासन—विशेषकर राजनीतिक प्रशासकों—मुक्त रहता है। इसका नियम पर अभी आपत्तियां नहीं की जा सकती। इसे ईमानदारी तथा बाधनशून्यता संरक्षण समझा जाता है। यह एक बहिन कार्य को पूरा करता है। सन् १९३३ में इस आयोगन कायम २३००० पदा पर नियुक्तियां की थीं। भारतमें भी एक ही आयोग के और संख्यामें कार्य कर रहे हैं।

सर्वत्र उम्मीदवारोंको बुलावेसे बाद एक बराबर ब्रिटेनमें प्रतियोगिता किया जाता था। इस अवधिमें उन्हें कुछ विषय विषयों और कुछ सामान्य विषयोंका अध्ययन करना पड़ता था। यह विषय होने पर विधि-गठितार्थ (codes) जानून दिलाया, जिन भागों सुदृढ़कारी और स्वायत्त विज्ञान आदि।

अब अधिकांश मामलों पर एक बार फिर परीक्षा होती थी। परीक्षण अधिकांशमें हर अंश उम्मीदवारको ३०० पीछे और द्वि-दुम्पानी उम्मीदवारका ३३० पीछे कतिब मिलता था। उम्मीदवारोंके द्वि-दुम्पान आका गण संरक्षण देनी थी। इस महीने का द्वि-दुम्पानमें फिर परीक्षा होती थी। इस परीक्षा में वह विभाग सेवा का क्रियम उम्मीदवारोंके नियुक्ति होती थी।

अमरीकामें सन् १९४० के पहले सर्वोच्च आधु ब्रिटेन और भारत द्वारा नियुक्त आधुनिक रूप थी। अमरीकामें अब भी जान पर अधिकांश नियुक्ति किया जाता है पर अब सुधार अंदरूनी-उत्पत्ति अर्थात् उच्च सरकारी विभागोंकी आर है। विधि और समान रूपसेके अध्ययन पर अधिक जोर दिया जाता था। अमरीकामें लोक-सेवाके नियम का एक महत्वपूर्ण अंश एक ऐसा नियुक्त सेवा कर रहा है जिसमें वे सेवा वर्गोंका नियमोंके लिए शक्ति हैं। अमरीकामें पद्धतिसे करने वाली आयोगका यह है कि इसमें प्रशासन-सेवाकी संरक्षण है। अमरीकामें भी नियुक्ति किया जाता है।

वि. नमें प्रतियोगी परीक्षाका एक सामान्य संरक्षण और संरक्षणका संरक्षण आका

है। पर अमरिकाम य परीण्ड प्राविधिक दक्षता (technical efficiency) का परखनेके लिए हाता है। अमरिकाम अनेक निष्कृतियाके लिए प्रतियोगी परीक्षाओके बजाय उम्मादवारानके माध्य धापित करनेवानी परीणाए हाता हैं। फलत उच्च फाटि के शिक्षित व्यक्ति अमरिकी प्रशासनमे शामिल होनेकी फोगिंग नहा करते। अनेक पदाके लिए सामारण हाई स्कूल परीक्षाके साथ कुछ ब्यवहार-कृषनतासे अधिककी आवश्यकता नही होती।

३ प्रशासन सेवाकी शर्ते (Conditions of Service) यदि सरकार अपने सेवकोसे यथासम्भव उच्चनम् कोटिकी सेवा चाहती है तो उसे उनके लिए पर्याप्त वेतन और अभाव तथा असुरक्षासे मुक्ति (विनापवर दुःशापेम) की व्यवस्था करना हागी। ब्रिटेन और भारतमे वृद्धावस्थाक कारण अया य न होने (superannuation) तक सेवाविधिची सुरक्षाया सिद्धान्त स्वीकार कर लिया गया है। एक बार जब कोई प्रशासन अधिकारी अपने परीक्षा बातको छुड़तापूवक समाप्त कर नेता है और विभागीय परीक्षाओमे वद चाहे जो भी हो पास कर लता है तब उस अपनी नौकरीके बारेमे उस समय तक किसी बातकी आशा नहा रहती जब तक उसका काम सछोप जनक रहता है तथा उसकी मानसिक और गारीरिव दक्षितया पर उसका पूरा काबू रहता है। इस प्रकारकी सुरक्षाके कारण सरकारी नौकरीको जीवन पयन्त कृति (career service) माना जाता है और उसमे जीवनका सर्वोत्तम बात लगा दिया जाता है। अमेरिकाम प्रशासन अयाकी परम्पराएँ अभी बन ही रही हैं अतएव वहाँ प्रशासन अधिकारिया द्वारा दूसरी अधिव वेतन देनेवानी नौकरियाकी तलाग असा धारण बात नही है।

सन् १९४० के पहले ब्रिटेनमे प्रशासन-अधिकारियाका वेतन भारतके असाधारण रूपसे ऊँचे वेतना और भत्तोंकी अपेक्षा बहुत कम था। ब्रिटेनमे प्रधान प्रशासकीय अधिकारियाका अधिकतम अधिक वेतन ३ ००० प्रतिवय था। इन प्रधान अधिकारिया की सख्या ४० व लगभग थी। उनमे ग वृद्धताको शहरमे १० ०० पीण्ड प्रतिवय मित सकता था। भारतमे एक अग्रज अधिकारीको उसमे समु पारक वेतनवा मितकर अधिकतम २६५० रुपये प्रति मास मिलता था। पर एक बड़ी सख्या ऐसे पनाकी थी जो सेवा-अवधिसे प्रतिवय (time scale) मे मुक्त थे और ब्रिटेनवा वार्षिक वेतन २७०० पीण्ड से लेकर ३६०० पीण्ड तक था। इस प्रकारके पन्थ प्राथमिक अधिक और यायिक कमिन्तराके पन्थ प्राथमिक मुख्य सचिवाक पन्थ और भारत सरकारके सचिवोंके पन्थ आन्ति। बहुसंख्य प्रान्तीय गवर्नरका पन्थ भी प्रशासन सेवाओंके लिए सजा था। मद्रास प्रान्तमे कमिन्तरका पद न होनेक कारण वहाँके प्रशासन-सेवकाका अधिकतम वेतन अपेक्षाकृत ऊँचा रहता था। अपनी नौकरीके प्रारम्भिक वर्षमे एक प्रशासन-सेवक मायाधिवागी बन सकता था और कमरा उच्च न्यायालय (High Court) तक उपनि कर सकता था। वह राजस्व परिषद (Board of Revenue) का सदस्य बन सकता था। यह परिषद राजस्व सम्बन्धी मामलारी

उच्चतम न्यायानय भी। यह वित्त आयुक्त (financial commissioner) वन सभना था। अनेक विविध पत्रों के द्वारा उद्योगों लिये सुन हुए थे जिन आय-व्यय निरीक्षण (audit) आगम-सुलभ (customs) डाक-तार विभाग राजनीतिक विभाग प्रमुख मण्डल (tariff board) और लौहसंवा आयोगकी सन्स्यता आदि।

मौजूबीके प्रारम्भिक चार वर्षोंके बाद समुद्र पारका वेतन १० रुपये प्रति पीगडवी दरसे स्टलिंगमें परिवर्तित किया जा सकता था। अवकाश ग्रहणके समय अर्द्धी पेंशन दी जाती थी। भारतीय प्रशासन-सेवाके मंदर्य अवधिमें पहले ही अवकाश ग्रहण कर सकते थे और आनुपातिक पेंशन पा सकते थे। छुट्टियांके बारेमें भी उन्हें बहुत उदार सुविधाएं प्राप्त थीं।

कार्यावधिकी सुरक्षा (security of tenure) पुराने वेतन और छुट्टियांकी उदार सुविधाओंके अनिश्चित प्रशासन-सेवाक्रम पर इन्डिये उचित अवसर घोषणा और सामर्थ्यके अनुकूल कार्य और निष्ठापूर्वक बतव्यपावनम गुरदारी व्यवस्था भी की जाती थी। इन्डिये अभिवाचन सम्बन्धी (manipulative) सेवाओंके तथा कर्तव्यकी सेवाओंके कार्यपालिका और प्रशासनिक सेवाओं में भिन्न माना जाता है। इन दोनों प्रकारकी सेवाओंके लिए भिन्न प्रकार की प्रयोग परीक्षाएँ ली जाती हैं। उच्च बोर्डकी सेवाओंके केवल ही भर्ती नहीं की जाती बल्कि निम्न स्तरके सर्वाधिक समय बतव्यपावनका भी पत्रावधि करने उममें भर्ती किया जाता है। सन् १९२० के आरम्भमें एक विभागमें दूसरे विभागमें स्थानान्तरण और पत्रावधि सम्भव हुआ गयी है।

मौजूबीकी व्यवस्था (seniority in service) व अनुसार पत्रावधि करना अनेक परिस्थितियोंमें अस्वी नीति है। इसमें समय समय समान प्रशासनिक अनुविधान टन जाती हैं। पर वेबन व्यवस्था ही पत्रावधि नहीं है। साथ और दन स्थितियों में एक व स दूसरे पर तबोके साथ उद्योग करता अवसर मिलना चाहिए। पारदर्शक बतव्यपावन है कि काम पुगताके आधार पर प्रशासन मंदर्यका वर्गीकरण करने और कार्यपालिकाके ही आधार पर वेतनकी पत्रावधि पत्नी पत्नी पत्रावधि करनेमें सम्यक बतव्यपावनमें समय समय सुराई पैसा हुआ पत्नी है। बतव्यपावनका वर्गीकरण करनेकी बतव्यपावन अस्वीकार्यनी तबोके उद्योग की है। इन्डिये विभिन्न विभाग विभिन्न विभाग-संघोंके नामसे माने हैं उनका उद्देश्य मंदर्यकी विभागीय कार्य-पालिकाकी सुनना करना होता है। इन पत्रावधि नियमितियां बतव्यपावनका मांगे जाती है—

(क) सामान्य और (ग) विभाग सम्बन्धी नाम स्थितिव्य और बतव्यपावन विवेक सतित उद्योगपालिका निम्नकी सतित पत्रावधि सम्बन्धी (initiative), पत्रावधि बतव्यपावन और बतव्यपावन (address and tact) बतव्यपावनका नियंत्रण करनेकी सतित उद्योग और पत्रावधि व्यवस्था। यह सही है कि इन प्रकारकी विभागीय व्यवस्था में स्थितिव्य प्रभावों और स्थितिव्यका हाथ रहता है पर इन्डिये भी इन पत्रावधि पत्रावधि सम्बन्धी सुनना सुनना सम्भव हुआ जाती है।

है। पर अमेरिकाम ये परीक्षा प्राविधिक दक्षता (technical efficiency) को परखनेके लिए होता है। अमेरिकाम अनेक निम्नस्तरके लिए प्रतिशोभी परीक्षाओंके बजाय उच्च-स्तरीयके साम्य धारित करनेवाली परीक्षाएँ होती हैं। फलतः उच्च-कोटि के शिक्षित व्यक्ति अमेरिकी प्रशासनमें शामिल होनेकी कोशिश नहीं करते। अनेक पदोंके लिए साधारण हाई स्कूल परीक्षाके साथ कुछ व्यवहार-पुस्तकतरीके अधिष्ठाता आवश्यकता नहीं होती।

३ प्रशासन सेवाकी शर्तें (Conditions of Service) यदि सरकार अपने सेवकोंके यथासम्भव उच्चतम-कोटिकी सेवा चाहती है तो उसे उनके लिए पर्याप्त वेतन और अभाव तथा असुरक्षासे मुक्ति (विनापवर बुद्धापेम) की व्यवस्था करनी होगी। ब्रिटेन और भारतमें बुद्धापेमें कारण असाध्य न होने (superannuation) एक सेवाविधिकी सुरक्षाया सिद्धान्त स्वीकार कर लिया गया है। एक बार जब कोई प्रशासन अधिकारी अपने परीक्षा कायदा फलतःपूर्वक समाप्त कर लेता है और विभागीय परीक्षाओंको यह चाहें जो भी हो पास कर लेता है सब उसे अपनी नौकरीके बारेमें उस समय तक किसी बातकी जागरूकता नहीं रहती जब तक उसका काम सन्तोषजनक रहता है तथा उसकी मानसिक और धारीरिक शक्तियाँ पर उसका पूरा दबाव रहता है। इस प्रकारकी सुरक्षाके कारण सरकारी नौकरीकी जीवन पयन्त कृति (career service) माना जाता है और उसमें जीवनका सर्वोत्तम काल नगा दिया जाता है। अमेरिकाम प्रशासन सेवाकी परम्पराएँ अभाव ही नहीं हैं। अतएव वहाँ प्रशासन अधिकारियों द्वारा दूसरी अधिक वेतन देनेवाली नौकरियोंकी तलाश असाधारण बात नहीं है।

सन् १९४० के पहले ब्रिटेनमें प्रशासन-अधिकारियोंका वेतन भारतके असाधारण रूपमें ऊँचे वेतनों और भत्तोंकी अपेक्षा बहुत कम था। ब्रिटेनमें प्रधान प्रशासकीय अधिकारियोंका अधिकतम अधिक वेतन ३०,००० प्रतिवर्ष था। इन प्रधान अधिकारियोंकी संख्या ४ के लगभग थी। उनमें से कानूनी गहरम १००० प्रतिवर्ष वेतन सञ्चालना था। भारतमें एक अग्र्य निशाधीनको उसका समूह पारने वेतनको मिनाकर अधिकतम २६५ रुपये प्रति मास मिलता था। पर एक बड़ी संख्या ऐसे पदाधिकारियोंकी जो सेवा-अवधिके प्रतिबंध (time scale) में मुक्त थे और जिनका वार्षिक वेतन २७० पौण्ड से लेकर ३६० पौण्ड तक था। इस प्रकारके पदों में प्रादेशिक आधिकार और आधिकारिक शक्तियोंके पद प्रादेशिक मूक अधिकारियोंके पद और भारत सरकारके अधिकारियोंके पद आदि। बहुतसे प्रादेशिक गवर्नरका पद भी प्रशासन सेवाओंके लिए खुला था। प्रशासन प्रादेशिक अधिकारियोंका पद न होनेके कारण वहाँ प्रशासन-सेवाओंका अधिकतम वेतन असाधारण ऊँचा रहता था। अपनी नौकरीके प्रादेशिक वर्गमें एक प्रशासन-सेवा आधिकारियोंकी बन सकता था और प्रथम उच्च न्यायालय (High Court) तक उन्नति कर सकता था। वह राजस्व परिषद (Board of Revenue) का अध्यक्ष बन सकता था। यह परिषद राजस्व सम्बन्धी मामलोंकी

उच्चतम ग्यायान्तय थी। वह वित्त आयुक्त (financial commissioner) बन सकता था। धनक विनिष्पन्न करने के लिए एक नए पत्र के आवेदन-व्यय निरीक्षण (audit) आगम-गुण (customs) टाक-टार विभाग राजनीतिक विभाग प्रमुख मन्त्र (tariff board) और लोकमया आयागकी सम्पत्ति आदि।

नौकरोंके प्रार्थनात्मक चार बर्तों का समुद्र पारका वतन १० रुपये प्रति पौण्डकी दरसे प्रतिगमें परिवर्तित किया जा सकता था। अबका प्रहणके समय अन्धी पौन दी जाती थी। भारतीय प्रशासन-सेवाके सम्बन्ध अन्तर्गत पत्र ही अबका प्रहण कर सकते थे और आनुपातिक पौन या करन थे। छुट्टियाँके बारेमें भी उन्हें बहुत उदार सुविधाएँ प्राप्त थीं।

कार्यालयकी सुरक्षा (security of tenure) पत्रके वेतन और छुट्टियोंकी उदार सुविधाओंके अतिरिक्त प्रशासन-गवाहनाम पत्रके अन्तर्गत अन्तर्गत वास्तविक और सामर्थ्यके अनुकूल कार्य और निष्ठापूर्वक कृत्यप्रदानमें सुरक्षाकी व्यवस्था भी की जानी चाहिए। प्रितमें अभिमान सम्बन्धी (manipulative) गवाहनाम तथा कर्तव्यके गवाहनामके कारणसे और प्रशासकीय गवाहनाम मन्त्र माना जाता है। इन दोनों प्रकारकी गवाहनामके लिए भिन्न प्रकार की प्रयोग परोपार्ग भी जाती हैं। उच्च कार्यालयी गवाहनाम केवल मोर ही भर्ती नही की जाती बल्कि निम्न स्तरके सर्वाधिक समय कमकारियोंका भी पत्रप्रति करने उनमें भर्ती किया जाता है। सन् १९२० के बाद एक विभागमें दूसरे विभागमें स्थानान्तरण और पत्रप्रति सम्भव हो गयी है।

नौकरोंकी ज्येष्ठता (seniority in service) के अनुसार पत्रप्रति करना अनेक परिस्थितियोंमें अर्थात् नीति है। इसमें समय-समय पर प्रशासनिक अनुविधान टन जाती है। पर वेतन ज्येष्ठता ही पत्रप्रति नीति है। पत्र और पत्र स्थितिवा की एक पत्र दूसरे पत्र पर लेबोके साथ उपरि करना अवसर मिलना चाहिए। पत्रपर का जाता है कि कार्य-प्रकारके आधार पर प्रशासनिक मरका का वर्गकरण करनेमें और कार्य-प्रकारकी आधार पर जूनकी पत्रों का भी पत्रप्रति पत्रप्रति करनेमें राज्य के कमकारियोंके समय-समय में ही हो गयी है। कमकारियोंका वर्गीकरण करनेकी जनाम प्रमिता की प्रयोग उपरि की है। प्रितमें विभिन्न विभाग प्रित प्रित-प्रमिता का समय मात है उनका पत्रप्रति मरका की प्रितकी पत्र-प्रमिताकी गुणना करना पत्रा है। इन पत्रोंमें निम्नलिखित बातोंकी सुरक्षा मांगी जाती है—
(क) पत्रा और (ग) विभाग सम्बन्धी पत्र स्थिति और परिपत्रन विवरणके उत्तराधिकार निमावेकी स्थिति पत्र प्रमिता (in practice) पत्रप्रति काक-प्रति और पत्रप्रति (address and fact कमकारियोंके नियम करनेकी स्थिति उपाट और पत्रप्रति व्यवस्था। पत्रा है कि प्रशासनिक प्रित करनेमें भी स्थितिप्रति प्रमिता और पत्रिकाका पत्र प्रित ही पर प्रित भी पत्र प्रमिता पत्रप्रति सम्भवना सुधन सुधन कम हो जाती है।

प्रशासन-सेवा एक सूची और नामहीन सेवा है। संगठनके अपन स्वरूपके कारण वह खुलकर अपने उपर लगाये गये आरोपका उत्तर नहीं दे सकती। एसी हालतमें यह आवश्यक है कि निष्ठापूर्वक अपने कर्तव्य पालनमें प्रशासन-अधिकारीको सुरक्षा दी जाय। फलतया आरोपके अन्य देगान इस तथ्यको मानते हुए सन्धारी कमवाग्यि से सम्बन्धित मुकदमाकी सुनवाईके लिए विना प्रशासकीय म्यायालय कायम किये हैं। इसके विपरीत अंग्रेजी भाषी देगाम व्यक्तिगत नागरिकोंके अपराध तथा जिन अपराधोंमें सरकारी कमवारी काम करने के दोष की पद्धति और

को त्याग । पारखीक उत्तरदायित्वके सार्वजनिक का आर कमी-भी राजनीतिक स्वरूपको भी नहीं समझ पाते। इस सम्बन्धमें हम ऐसा समझते हैं कि अंग्रेजी पद्धतिकी अपवाद यागोपीय देगाम प्रचलित पद्धतिके पथमें बहुत कुछ बढ़ा जा सकता है। आगेके विपरीत प्रशासकीय म्यायालय देगामु मिल्कुत नहीं होते। यह दायासय मामलान प्रशासकीय पथ पर विचार करने हैं और इन्होंने बहुधा सुन्दर पथ दिये हैं। अपने कर्मचारियों द्वारा विदेशमें अपराधों का उत्तरदायित्व राज्य अपने ऊपर आता है।

फाइनेर के अनुसार जर्मनीकी प्रशासन-सेवाको मुनिचित अधिकार प्राप्त हैं। यह अधिकार उस विधि द्वारा नियम हैं और अन्तिम रूपसे अनन्तता द्वारा स्वीकृत हैं। एते भी साधन हैं जिनके द्वारा एक अधिकारी अपने विह्वल की गयी बार्वाई के विरुद्ध आवाज उठा सकता है। वेकन अनुशासनके सम्बन्धित छाटी कारवाइयोंके विरुद्ध कुछ नहीं कहा जा सकता।

प्रशासन सेवा न केवल एक मूल सेवा है बल्कि उसे कारण अनुशासनके अधीन भी रहना पड़ता है। अन्तिम विपरीत इस बातकी आगा भी जाती है कि जो भी राजनीतिक दल सत्ताम्बु हा प्रशासन-सेवा सम्बन्धित और तत्परतामें उसकी सेवा करे। इसलिए प्रशासन-सेवाके लोगोका राजनातिक मन्त्रिण भाग उन से रोक दिया गया है। वे चुनावमें लड़ नहीं हो सकते हैं पर जिनसे चाहें वह लड़ सकते हैं। फलतः प्रशासन-अधिकारियोंको राजनातिक पायमें भाग लेने की अनुमति है। यह दुर्भाग्यपूर्ण बात है। जर्मनीके बीमर सविधानमें प्रशासन अधिकारियोंको विधानमन्त्र भाग लेने का अनुमति दी गयी थी।

प्रशासन-अधिकारियों द्वारा सभा और हुक्ताल करनेके अधिकारके सम्बन्धमें विभिन्न देगाम विभिन्न नीतिया अपनाया जाती है। अन्तिम १९१७ तक अधिकारियोंको स्थितिगत रूपसे तथा अपने स-के माध्यमसे विनापता तथा कष्टाका सृष्टि-मन्त्र द्वारा दूर करना महत्त्व अधिकार था। स्थितिगत विभिन्न अधिकारियोंके हाथों गहरने हुए विभागीय अध्यक्ष के पास श्रीर अन्तम सरकारके पास पढ़ते थे। यह सम्बन्धमें गांधी घोषणाके विभिन्न रूपमें हानी थी और यथासम्भव व्यक्तिगत विचारों का बचाव जाता था। १९१७ में अन्तम-अन्तिम

के कारण नीति निर्धारणम उनका अप्रत्यक्ष हाथ भले हा रहता हो पर कमसे कम स्वतंत्र दायम तो प्रत्यक्ष रूपसे उनका नीति निर्धारणम कोई दखल नहा रहता।

भारत और ब्रिटनके प्रशासन अधिकारियोंके कार्योंके स्वरूपम गौणिक अन्तर है। यद्यपि ब्रिटनके प्रशासन-अधिकारी विपन्न होते हैं फिर भी वे देशकी राजनीतिक नीतिका निर्धारण नहीं करते। यह काम तत्कालीन मंत्रिमण्डल करता है। स्थायी उपसचिव (permanent under secretary) और उसके सहायक सभी प्रकारका जरूरी परामश और मुझाव देते हैं पर वे आज्ञा नहीं देते। यह सम्भव है कि प्रशासन अधिकारों एक कमखोर मंत्रीका आसानीसे नेतृत्व कर ले जाय, पर एक समय और दृढ़ मन्त्रा हुमाय अपने मनचाहू भाग पर चल सकता है।

अंग्रेजी शासनम भारतीय प्रशासन-सेवाधी स्थिति विलुल भिन्न थी। गवर्नर और वायपालिका तथा विधायिकाके सदस्योंके सलाहकारोंके रूपसे भारतीय प्रशासन अधिकारी नाति तय करने और उस लागू करनेम निष्ठात्मक भाग लेते थे। पर मॉण्टग्यू-चेम्सफोर्ड मुझारके बाद—विशेषकर प्रान्तीय स्वायत्त शासन आरम्भ होनेके बाद—प्रशासन अधिकारियाधी यह कवित बापी कम हो गयी। नयी श्रेणीके भारतीय प्रशासन-अधिकारियाधी कथा करते हुए सर ई० मण्टनेवहा था 'जहाँ उनके पूर्ववर्ती अधिकारी आताएँ देते थे वहाँ अब उन्हें सलाह देनी चाहिए। जा प्रशासन अधिकारी पत्र शासन करके जनताकी सेवा करने थ उन्हें अब सेवा करके शासन करना सीखना चाहिए।

आजकल प्रशासन अधिकारी नीतिका निर्माण नहीं करते। इनका मुख्य कर्तव्य है परामश देना और प्रशासन करना। समन्वय शासनकी सद्भावता के लिए यह आवश्यक है कि मन्त्रिमण नीति निवारित कर और अधिकारी उस नीतिको सच्चाई के साथ कार्यान्वित करें—चाहू वे उस नीतिके सङ्मत हों या न हों।

ब्रिटनका प्रशासन-अधिकारी अपना अधिकारण समय अपनी मञ्च पर भिन्नो और पालकों के थ विभागा है पर भारतके अधिकारियोंको और भी बहुत से काम करन पडते हैं। विभागीयके रूपम उग बरक तीन चार महीने जनताम सम्पर्क स्थापित करने के लिए विविध मे बिताने पडते हैं। वह विभागा राजस्व समाहता (collector of revenue) और दण न्याय (magistrate) होता है। उसे 'मौक पर की सरकार कहा जाता है। वही सरकार है। उसके अधीन परगनाधीश, डिप्टी कलेक्टर सहमीनदार आदि होते हैं। यह मान और फौजदारीके मुकदमाकी मुनवाई करता है तथा दूसरे ओर तीसरे दर्जेके मजिस्ट्रेट द्वारा दिये गये निणयोंके विपक्ष आरोपों गुनवा है।

भारतम ही नही बरन् अब दशम भी प्रशासन-अधिकारियाका एवमात्र कर्तव्य शासन चलाना नहा है। उन्हें अर्थ-व्यापिक तथा अर्थ-न्यायिक अधिकार दिये जाते हैं। विभागाके अधिकारियों को एसे नियम एउ अधिनियम बनानेका अधिकार प्राप्त रहता है वा उनके अधीन काम करनेवाले कर्मचारियों और सामान्य जनताके लिए

माय होने हैं। इनमें कुछ तो विपक्ष पर दबाव—मगर ही औपचारिक स्वीकृति पाने पर ही लागू हो जाने हैं। स्थायी वायपानिका बिस्तर से यह सब करती है कि किस प्रकार संसदीय सविधि (statutes) का आवेदनताएँ पूरा की जाय और किस प्रकार उस सविधि द्वारा प्रस्तुत अधिकारका उपयोग किया जाय। प्रस्तुत विधान (delegated legislation) के बारे में ब्रिटेन की स्थिति फ्रांस और अमेरिका के मध्य की है। प्रशासनिक विभागों को चीजें एवं प्रस्तुत विधान की बढ़ती हुई मात्रा के कारण पर प्रशासन ठाकरे हुए मरियट (Marratt) इस प्रकार लिखते हैं— अंगत औद्योगिक और सामाजिक परिस्थितियों की बढ़ती हुई जटिलता के कारण अंगत फ़ैबियन समाजवाद (Fabian Socialism) के सूत्र प्रभाव का कारण अंगत हस्तगत न करने की नीति (laissez faire theory) का सावधानी से त्याग दिया जाने के कारण तथा जीवन के सभी क्षेत्रों में सरकारी नियंत्रण और नियंत्रण की बढ़ती हुई मांग के कारण तथा अंगत विधान की बढ़ती हुई मांग का पूरा करने की अपनी असमर्थता और निराशा के कारण मरियट ने यह वृत्ति अपनायी है कि प्रशासनिक विभागों का अधिकारित रूप से विवेक के साथ सम्पन्न करने का अधिकार (discretion) दीया जाय (मरियट द्वारा संघट्ट पृष्ठ २३३)।

जैसा कि मरियट ने लिखा है अर्थ-व्यवस्था के सम्बन्ध में मरियट ने लिखा है कि एक ओर सुविधाजनक, यथ और अत्याय है वही दूसरी ओर उसके सम्बन्ध में नियंत्रण के जाने की भी मांग है। इस प्रकार के बचने के लिए मरियट ने तीन उपाय बताये हैं— (१) किन विधि निष्पाद की गति में जाय उसे पूरी तरह विपक्ष से हाता पाहिए (२) किन विधि पर प्रभाव पड़ने का ही उन पर प्रतिनिर्देशन का कारण कर ली जाय (३) प्रस्तुत अधिकार-व्यवस्था का कारण हर हाथ में से मुक्ति का भी पाहिए। १९१६ में प्रिवी काउंसिल (Privy Council) ने उपाय (c. १८८) के मामलों में यह फैसला दिया था कि संघ का अपने कौन्सिल की स्थापना के बिना प्रशासन द्वारा प्रस्तुत विधियाँ बनने का यह पर कोई अधिकार नहीं है जब तक उस पर कोई अधिकार सविधि द्वारा न दिया जाय। अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय ने १९०८ में नेशनल रेजि. एसोसिएशन (National Rejia Association) की कुछ धाराओं का सम्बन्ध में निर्णय किया था कि वायपानिका का बहुत अधिक व्यापक और अनिश्चित अधिकार प्राप्त कर विधायिका ने अपने अधिकार भंग कर अनिश्चित किया और एक मात्र संघट्ट कायम नही कर सकी किन कारणों से विधायिका के अधिकार ही रहे।

अन्य देशों में प्रशासनिक विभागों के अर्थ-व्यवस्था के सम्बन्ध में उद्घरण के लिए अमेरिका में अंतरा-राज्य-व्यवस्था-आय का अर्थ-व्यवस्था के सम्बन्ध में वायपानिका के बिना अंगत प्रशासन के अर्थ-व्यवस्था की जीव करने के लिए उपाय अधिकार दिए गए हैं। यदि आयकर (income tax) निवृत्तियों के सम्बन्ध में अधिकार अधिकारी के अपने के बिना वायपानिका कायम करने है तो इन अधिकारों की मात्रा अधिकार अधिकारी की कर गणना है।

इसी प्रकार उद्योग विभागका कोई उच्च अधिकारी ही यह निणय करता है कि कारखानाम काम करनेवाले मजदूरोंको काम करते हुए जो अगक्षति हुई है उसने किए उन्हें क्या मुआवजा मिले।

प्रशासन-कार्यके सम्बन्धम लय और विचारणीय विषय यह है कि अस्त-व्यस्त तरीके से विभाग और उनके उपविभागोंकी गह्र्याको धुरी तरह बढने से रोचना आवश्यक होता है। यदि मितव्ययिता और कार्य रणसता अच्छे लोक प्रशासनकी कर्गोटियाँ हैं तो यह जरूरी है कि सरकारके विभिन्न विभागोंका संगठन साधधानीसे किया जाय ताकि कार्यों और अधिकारोंका पारस्परिक अतिक्रमण न हो और परस्पर घनिष्ठ रूपसे सम्बन्धित विभाग एक सामान्य नियन्त्रणके अधीन लाने जा सकें। विभागोंका अत्यधिक केंद्रीकरण जसा कि फ्रांसम होता है उतना ही नुटियून है जितना अनुचित किने-द्रीकरण। विभिन्न विभागोंका परस्पर सम्बन्ध रक्षना ही मध्यम मार्ग है क्योंकि इससे प्रशासन के विभिन्न स्तरों पर समन्वय (coordination) की जरूरत पडती है और अन्तिम रूपम यह एक सञ्चालन अधिकार सत्ताम परिणत हो जाती है।

१९१७ म लॉर्ड हैल्डन (Lord Haldane) का अध्यात्मम निवृत्त शासन-यंत्र समितिने सघावे अनुरूप विभद करनेका समथन किया या। उसने विचारिका की थी कि सरकारी विभागोंका पुनर्गठन इस प्रकार किया जाय (१) वित्त (२) राष्ट्रीय सुरक्षा (३) बदेशिक मसले (४) अनुसन्धान और सूचना (५) संरक्षण (इसम कृषि जगत और मत्स्य पालन सम्मिलित हैं) यातायात और वाणिज्य (६) वस्ति नियोजन (employment) (७) रक्षण (supplies) (८) शिक्षा (९) स्वास्थ्य और (१) याय। कुछ बड विभागोंम एक से अधिक मंत्रियोंकी आवश्यकता पडगी। समितिने यह भी विचारिका की थी कि भविष्यम मन्त्रिमण्डल मुख्यतःमौन मन्त्रिमण्डल की भाँति छोटा होना चाहिए। उसका काम प्रशासन करना न होकर विभिन्न विभागोंके कार्योंका निरीक्षण करना और उनम सन्तुलन कायम करना होना चाहिए। हैल्डन समितिने एक सुझावने बहुत अधिक ध्यान आकर्षित किया। यह सुझाव यह था कि सरकारके हर विभागके लिए या सम्पूर्ण प्रशासनके लिए एक स्थायी योजना कमीशन या विचारक समिति हानी चाहिए। इसका काम प्रशासन की समस्याओंके नये हल खोज निराकरण होगा। यह भविष्यके लिए एसी योजनाएँ भी बनायगी जिससे सम्पूर्ण शासन-यंत्र कार्य कुशल मितव्ययी प्रगतिशील और जनसेवाम समर्थ हो सक।

५ प्रशासन-सेवाको अच्छी ध्यवस्थाकी कर्गोटियाँ (Tests of a good system of Civil Service) सावजनिक प्रशासनका काम वाणिज्य प्रशासनकी तरह नया कमाना नहीं है। इसका मुख्य उद्देश्य यह है कि जहाँ कहीं सेवा की सघने अधिक जरूरत हो वहाँ सेवाकी जाय। लोक सेवा करने समय प्रशासन > धूमिचारियोंका हरणक क प्रति यायपूर्ण हान् चाहिए। उन्हें किसी ध्यवित या कर्गुके

गाय बनवान नहीं करना चाहिए। प्रत्येक व्यक्तिगत प्रति उनका व्यवहार समान विधि पर आधारित होना चाहिए। उन्हें आन आका सहा अर्थों जनताका सच्चा सक्क बनाना चाहिए। भारतीय प्रशासन अधिकारियों विरुद्ध बन्धा ८१ लागू मगाया जाता है कि व जनताय गाय अपन व्यवहारम उदरम अमहिण और घन्डी हात ध। परन्तु प्रव भारतीय प्रशासन-सेवा (Indian Administrative Service) के साथ जनताय लिए अधिक गुणम है जोर उनम गन्धी भावना भी जनता अधिक नग है।

फाइनर वा कपन है कि प्रशासन-सेवाय जनता आगमनयन सक्ति जनताय आवश्यकतायका पूरा करनेकी क्षमता और उद्योगमनता जानी चाहिए। प्रशासन अधिकारियोंम एक बहुत बड़ी कमी यह जानी है कि व उनकी कफोर बन जान है और उदरम ऊपर उदरकी आवश्यक प्रवृत्ति और क्षमता उनम नहा जानी। निरमन्ट मार्कडनिक बायोंकी व्यवस्थाम घाडी बहुत फाइनरबाडी (red tapism) और रग्मी तीर तरेडा (routine) का पानन उदगी जाना है पर इनका प्रधान स्थान नहा देना चाहिए। सरकारी बायोंके सम्पादन (exclusion) म भी हमारा मानसय मूल्याका प्रमय स्थान देना चाहिए।

जनताय माधारणतया सरकारी कर्मचारियोंके विरुद्ध नय आर विरायका भावना रहनी है। उग दूर करने लिए प्रशासन अधिकारीका ययामन्त्र पदन करना चाहिए। इस सम्बन्धम फाइनर एव प्रकार नियत है 'जनता सरकारा कर्मचारियोंके प्रति विरोध भावना रखनी है उनम उरनी है उन्हें उतक समजनी है और कभी-कभी ही उनका यगहा करनी है। फाइनर का कहना है कि विरुद्ध माधारणतया आम जनता प्रशासन-सेवाके अस्तित्व और उदके बायोंके प्रति क्क उर्गम न रहती है। भारतम अगिणित प्रामीकोंके इस बातका पूरा-पूरा विरुद्ध रहना है कि सरकारी कर्मचारी माधयजनक काम करनेकी क्षमता रखता है। इसका साथ ही उग इस बात का भय भी रहता है कि उगका भाग सरकारी कर्मचारीकी ही मुग्गीम है।

प्रशासनका जहाँ एक ओर भय और फागायग रहित हावर काय करना चाहिए, वग दूसरी ओर अपने एक-एक काम जानपूरा कर माधमकी अवगना नहीं करनी चाहिए। किसी भी हानिम उग अरनवा ही सारनीयिक कायचारिका या विपादिका म समय बैनना चाहिए। उगे जानी हा सक्का ठीक माननेकी प्रवृत्ति उग रनी चाहिए। उग काय अधिक पर-व्यवहार नग करना चाहिए। उगे सम्मानका भूना नहीं जाना चाहिए और देर करनेका अर्थवायिक तराहोका नहा भान ना चाहिए।

भारत उगे नना सम्प्रदायोंने उेयम सुन्दर कामने लिए माधमिक प्रतिनिधियोंके आरम्भक माता बनाया। उग सम्बन्धमें जनता की काना माधमक है कि यदि हम हमन व्यवस्थाकी ईमानदारी और काय उदकाको सुधिय रखना चाहते हैं तो यह चाहिए है कि माधमिक प्रशासन राज्य निजके हाथका निजोना न बनने पावे। और सर काय क बराबर रहने पर एक सम्प्रदायका उरनी संस्था

के अनुपात ही प्रशासन-संस्थाओं का स्थान मिलना चाहिए। पर यह सर्व-याद रखना चाहिए कि हर सम्प्रदाय और जाति अथवा भिन्न भाषा भाषी गट्टों को प्रशासन-सेवाओं में अपनी संख्या के अनुपात में प्रतिनिधित्व पाने के अधिकार की अपेक्षा नागरिकों का यह अधिकार अधिक महत्वपूर्ण है कि वह अनुपाल और निष्पक्ष अधिकारियों के कुशलसे बच रहें।

फाइनेर के अनुसार जर्मनी के प्रशासन अधिकारियों के निम्नलिखित कथम् हैं

(१) प्रशासन-अधिकारियों को सविधान और विधियों के अनुसार अपने कृत्यों का पालन करना चाहिए। उसे अपने उपर से अधिकारियों की उन सभी आज्ञाओं का वहाँ तक मानना चाहिए जहाँ तक वे विधियों के प्रतिबन्ध न हों।

(२) उसे अपने कृत्यों का पालन पूरी ईमानदारी और सच्चाई के साथ अपने व्यक्तिगत स्वार्थ-सुविधा का विचार किए बिना एकदम निष्पक्ष होकर पूरे परिश्रम और सावधानी के साथ करना चाहिए।

(३) उसे अपने काम पर आने और वापस जाने के समय का ठीक पालन करना चाहिए।

(४) उसे ऐसे दूसरे अतिरिक्त काम करने के लिए मजबूर रहना चाहिए जिन्हें पूरा करने के लिए वह अपना माध्यम के कारण उपयुक्त है। इस अतिरिक्त काम के लिए उसे अधिक कठोरता माँग नहीं करना चाहिए।

(५) उस अपने सरकारी कार्यों में सच्चा होना चाहिए। उसे ऐसी महत्वपूर्ण बातों की मूक अभिव्यक्ति नहीं करनी चाहिए जिसका प्रकाशमान आना विभाग के लिए चिन्ता की बात हो सकती है।

(६) उस अपने ऊपर से अधिकारियों का कार्यालय में भीतर और बाहर सब स्थानों पर सम्मान करना चाहिए। मन ही उच्चाधिकारियों का अतिशय और व्यवहार आपत्तिजनक हो।

(७) अधिकारियों को जनता के साथ हमेशा नम्रता से व्यवहार करना चाहिए।

(८) प्रशासन अधिकारियों का अपमान चुपचाप धर्मोत्त नहीं कर लेना चाहिए अथवा प्रशासन-संस्था की प्रतिष्ठा गिर जाने का भय है।

(९) किसी भी अधिकारी को ऐसा अतिरिक्त पद या वृत्ति मसूर नही करना चाहिए जिसके लिए उसने उपयुक्त विभागीय अधिकारियों को अनुमति न ली है।

(१०) प्रशासन अधिकारियों को सरकारी गोपनीय बातों को गुप्त रखना चाहिए।

न्यायपालिका

(The Judiciary)

न्यायपालिका का महत्व (The Importance of the Judiciary)
मदि किसी देश में विधायिका और न्यायपालिका तो बहुत अच्छी हों पर स्वतंत्र और

निम्न न्यायपालिका न हो ता उम दारा मविधान का अधिक मूल्य नही रह जाया। हर नागरिक एक सम्य सरकार यद् आता रयता है कि वह निरदण नामन म उसकी र्या करेगी। इस मुक्तताका सबसे अद्दा मायन एक मुक्तमि न्यायपालिका ही है। नी कारण बहुधा यह कहा जाता है कि किसी देश का न्यायपालिकाकी उममता उम देशी सरकारता उतमता की धानक है अर्थात् बिजनी अद्दा न्याय पालिका हागी उतनी ही बन्नी उम दारी सरकार हागी।

जनता गठ मण न्यायपालिका का गौरवही स्थान दिया जाता इस बात म सिद्ध हाता है कि न्याय-कार्य को मना ही कुछ सिम्ब मूकाने विमर्षित किया गया है। न्याय पीठाका एक ऐसा व्यक्ति माना जाता है जा निमय और निष्पत्त हाकर गवने माय एक-मा न्याय करता है। प्राचीन समयम न्यायाधीशोंके काय का पमाध्यम का पुराहित के काय का अग माना जाता था।

जनताकी दृष्टिम न्यायपालिका का बहुत अधिक महत्व हाता म बावजू मका बिहाम बहुत ही धीरे-धीरे हुआ है। प्राथमिक कालमें जा न्याय प्रवर्तित था वह न्याय की एक अबाधती धारण थी। उमम म न कालम को अन्तर नया पटना था कि अररापी व्यक्ति का एक मिता या नहु मिता। यि अररपी अनीनका दण्ड मिता जाता था ता यह समता जाता था कि न्याय उद्म मूरा हा गया। अधिकार अररापी पर जा दण्ड दिया जाता था म अररपके जनताम बहुत अधिक हाता था। मरिण उर 'रैग को तगा' के अनुसार नया-नुया प्रनिकार सनको मावनाका आगान म्मा तर न्यायकी धारणा म निर्बिन प्रगति हुई। कुछ समय बाद यह विचार उभरत हुआ कि अररपीको शारीरिक धति पदुवानेके स्थान पर उम पर जमाना कर उमम पनाय या दण्ड वगून किया जा सकता है।

अब तर न्यायकी धारणा व्यक्तिगत और निजी था। मताका दण्ड व्यक्ति का बनीता ही न्याय प्राप्त करने क लिए जा कुछ कर सकता था करता था। इसर अगाका अनेक दण्डोंमें उमको मायु करने का दण्ड माधन नहीं प्राप्त था। बहुधा एक कही गया था दो जानी थी कि अररापीको ममाको निवान दिया जाता था। ईश्वर और बिभिन्न भूत प्रन प्राि धतिपोंका मय भी व्यक्ति मनायको मकीण और मरी रहने पर कतने के निल विरुध करता रहा है।

धीरे धीरे 'राय-शांति (king's peace) की धारणाका विहाग हुआ। धन पहन इमम के अररापी मविहित कि म्मे बिदका प्रनिकार धन देकर नया किया जा सकता था। कुछ समय बाद शोरी और उमम दिगने कृतने अररप भा 'राय-शांति की धारणा म्मे। बहुत समय तर न्याय और धर्मगत बनी-जनता न्याय धारणा पनाके छे और एक माय मर्गठ का ही उद्म पीने धीरे राज-न्यायकी स्वीकार किया।

परमि ह्य धारणा विधि (the old law) और सार्वत्रिक विधि (public law) में अे करन है पर सार्वत्रिक न्याय सर्व अगाधों का समक विरुध कि

गय अपराध माना जाता है। विभिन्न सामाजिक संस्थाएँ अपने सदस्या पर अपनी अपनी आचार-संहिता लागू करनेके लिए समझाने-बुझाने नैतिक दबाव, और सामाजिक बहिष्कारका प्रयोग कर सकती हैं। पर आगाको गिरफ्तार करना शान-दण्ड देने या इसी प्रकारकी अन्य सजाएँ देने का उन्हें कोई अधिकार नहीं है। न्याय करना राज्यका ही कार्य है।

स्वतंत्र न्यायपालिकाका सबसे बड़ा गुण स्वतंत्रताका ही है। ब्रिटेन में प्रथम दो राजाओं राजाओंके समयमें न्यायपालिकाका कार्यपालिकाके अर्थ में बनानेके प्रयत्न किये गये। कुछ तत्कालीन न्यायाधीश भी इस अपवित्र काममें शामिल रहे। बकन के अनुसार न्यायाधीशोंका निस्सह दंड सिद्धोकी भाँति स्वतंत्र होना चाहिए, पर ये सिद्ध सिंहासनके नीचे ही रहेंगे। दूसरे शब्दोंमें उन्हें कार्यपालिकाके हाथोंका विसौना होना था। ब्रिटेनके व्यवस्था अधिनियम (Act of Settlement) ने अन्तिम रूपसे उस देशकी न्यायपालिकाका कार्यपालिका से स्वतंत्र कर दिया। इस अधिनियम के अनुसार ससत्रके दोना सदस्योंकी माँग पर ही न्यायाधीशोंको उनका पदो से हटाया जा सकता था।

२ कुशल न्यायपालिका के आवश्यक गुण (Conditions required of an efficient Judiciary) न्यायपालिकाकी सुन्दर व्यवस्थाके लिए सबसे पहली आवश्यकता यह बात की है कि वह स्वतंत्र हो। न्यायाधीशोंके नियुक्त किये जानेके तरीके और उनका नौकरी की शर्तें एसी होनी चाहिए कि वे स्वतंत्र रूपसे कार्य कर सकें। कार्यपालिका या जनताके समक्ष उन पर और उनके कृतव्य पालन पर कोई असर पड़ना चाहिए।

न्यायप्रशासनमें निष्पत्ता उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी स्वतंत्रता। ब्रिटेनके बारेमें यह आमतौर पर कहा जाता है कि वही सबके लिए एक ही विधि है और विधिकी दृष्टि में सभी व्यक्ति समान हैं। धन-सम्पत्ति धरूपन और सामाजिक प्रतिष्ठाके विभेदोंका न्यायाधीशों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए। किसी भी मामले में कार्यपालिका न्यायपालिकाको यह आशंका न होनी पावे कि किसी मामलेमें क्या फैसला किया जाय विचारकर उन मामलों में जिनका सम्बन्ध कार्यपालिकासे हो।

स्वतंत्र और निष्पत्त होनेके साथ ही न्यायाधीशोंको विद्वान और अपने काममें दक्ष होना चाहिए। एक अर्थ में न्यायाधीश अर्थात् ही न्यायपालिकाकी प्रतिष्ठाको जनता की दृष्टि में घटा देता है। न्यायाधीशोंका अपने कृतव्य पालनमें एकदम निभय सचचा और दृढ़ होना चाहिए।

न्यायाधीशोंकी बात छानकर न्यायालयोंके बारेमें विचार करने हुए यह कहना पड़ता कि न्याय नीध और निष्पत्त होना चाहिए। इसके लिए यह आवश्यक है कि न्यायाधीशोंकी संस्था काफी ही बिसंग न्यायम विलम्ब न हो। गरीब राज्य अधिकारोंके बारेमें यह कहा जाता है कि वहाँ न्याय न हो पाय है। हाता है और न निष्पत्त हो ही होता है। विधि और उसकी कार्य-प्रवृत्तिमें इनकी अधिक सामियों

होती है कि एक चतुर वकील या मन्त्रिजन चापम अनावश्यक विनम्र हो कर ही सक्ता है भय ही उग एवम् राम न पाय। यदि न्यायपालिका स गरीब या लाल होना है तो यह आवश्यक है कि उस यत्नना महमा स हा जितना वह आवश्यक भाग्य तथा अनज अज न्याय स है। न्याय रक्षित करने गोपी योर कम सुखीनी हानो चाहिए। जहाँ एक ओर इस बातकी पर्याप्त ध्यान होनी चाहिए कि चापम हो जानेवाली भन्नाका गुणार बरनक निर अज्ञान का जा गये वहाँ दूसरी ओर इस बात की भी ध्यान होनी चाहिए कि लम्बा और दुर्गम या महत्त्वका न हान पाय। अज्ञान का इस बातका भरपूर ध्यान करनी चाहिए कि न्याय-सम्भव ही अल्पमम समन्वित कर बना द्वारा पचना हो पाय। समझको इस तरह दान्तिगुण रूप से गुणवानकी सिंगम भारतकी छानो अज्ञानका उपयोग क स उगाने चाहिए। पर आवश्यक एका न्याय किया जा रहा है। कबसे निर उरु दाने कि य जाने चाहिए।

३ न्यायपालिकाके कार्य (Functions of the Judiciary) (१) चाप पालिकाका मुख्य काम न्यायिकी और लौकिकी जना प्रकारके मामलोम विधि को लागू करना है। यह काम एतना आसान नहीं है जितना कि वह ऊपरसे न्यायी दता है। अन्तर्गत ही दाना जाती है जिनम विधियों स्पष्ट नहीं हाठ। अन्याय न्यायाधीश का उनका प्रथ निराकरण पन्ना है। न्यायाधीशका विधिया के अधी की ध्यान्य इतनी अधिक करता। यनी है कि न्यायकारके पत्ररूपक वहुन बड़ी मन्दा स निगम विधि (case law or judge made law का निमाण हुआ है। अंग्ल-नवमन देगाम या मुस्लिम परिधिम विधि (statute law) का परिधिम नहीं भात उनका प्रसमा करने हुए न्यायाधीश सामान्य विधि (common law) की लागू करने हैं। प्रांगम लय भय मन्तुन प्रशासी-विधि (administrative law) राज्य-परिधिम निगम द्वारा निमित्त हुई है। यह राज्य-परिधिम दानका सर्वोच्च प्रशासी न्यायालय है।

यद्यपि यह जरूरी न्याय है कि पूर्वोक्त (precedents) भाषी निर्णयों पर मान ही हैं कि भी उनका बड़ा सम्मान बिना जाता है। बरीन और न्यायाधीश जना ही उनका लागू करत हैं। अंग्ल-नवमन देगाम पूर्वोक्त के बंधन विधिके लागू ही नहीं हाते यति क विधिके मोड भी हाते हैं। पर प्रांग अमनी और अन्य पारत देगाम स दा न्यायालय तत्र साधारणतया स्वाधिक पूर्वोक्तका पालनके निर मान्यता हात।

मान्यता का ता कि पूर्वोक्तका दा प्रकारके होत है (१) के पूर्वोक्तका बिना परिधिम निर मना किती मन्ति हाती है और (२) के पूर्वोक्तका का सामान विधिको बंधन लागू हो करत है। दूसरी प्रकारके पूर्वोक्तका का संख्या का बंधन हाती है पर व कम लागू होत है। पूर्वोक्तका तत्र और बन्धितन आधिकारिक (authoritative) पूर्वोक्तका और अनुसन्धान (precedents) पूर्वोक्तका मन्ति मन्ता है। जैसा कि नाम से ही प्रकट है न्यायाधीशके लिए यह

साक्षिणी होता है कि वे आधिकारिक पूर्वोदाहरणको माने और उसके अनुसार ही अपना फैसला दें। हर न्यायालयका न्यायाधीश अपने से ऊँचे न्यायालयके न्यायाधीश के पूर्वोदाहरणको मानने का बाध्य होता है। पर न्यायाधीश अपनेसे नीचे न्यायालयके आधिकारिक पूर्वोदाहरणकी अवहलना कर सकता है यदि यह उस पूर्वोदाहरणको युक्ति और विधिके विपरीत समझता है। अनुन्यायमक पूर्वोदाहरणका माना जाना अनिवार्य नहीं होता और न्यायाधीश उस उतना ही महत्व देता है जितना वह उपयुक्त समझता है।

(२) न्यायपालिकाका दूसरा महत्वपूर्ण काम राज्यके अनिचित हस्तक्षेपसे व्यक्ति की रक्षा करना है। आंग्ल भाषा में 'लाय' या 'बेलिजियम' इसके लिए कोई अवगम्य व्यवस्था नहीं है क्योंकि इन देशोंमें विधि-शासन (Rule of Law) प्रचलित है। इसके अनुसार सरकारी अधिकारियाँ और व्यक्तिगत नागरिकोंके लिए एक ही विधियाँ और एक ही प्रकारकी अन्तर्गत होती हैं। जो विधि अदासत होती भी है वे साधारण अदासतोंके अधीन होती हैं। फ्रांस जर्मनी इटली आदि अन्य योरोपीय देशोंमें प्रभासी विधि लागू करनेके लिए विशेष प्रभासी न्यायालय होते हैं।

इस प्रश्न पर बड़ा विचार हुआ है कि विधि-शासन प्रभासी विधिसंघट्ट है या प्रभासी विधि विधि शासनसंघट्ट है। आंग्ल भाषा में 'लाय' विधि-शासनको अत्यधिक महत्व दिया जाता है और यह माना जाता है कि केवल विधि शासन ही सरकारी पदाधिकारियोंसे व्यक्तिकी स्वतन्त्रताकी रक्षा कर सकता है। इस प्रचलित मतकी दृष्टिसे 'दोरी ए० वी० डायसी (A V Dicey)' पर है। फ्रांसके प्रभासी न्यायालयोंकी जानकारी डायसी के समयसे अब हमें अधिक है। इस जानकारीके मन पर अब विचारको का विन्यास है कि प्रभासी न्यायालयों और प्रभासी विधिके अर्थ अनिवार्यतः निरकुण्ड शासन नहीं है। इस प्रचलित विन्यासका कोई ठोस आधार नहीं है कि प्रभासी न्यायालय अधिकारियोंको प्रसन्न करनेके लिए या प्रभासी सुविधाके विचारसे गलत फैसला करते हैं। प्रभासी-न्यायालय के न्यायाधीश केवल विधिनिष्ठा ही महा होते वरन् उन्हें पर्याप्त प्रभासी अनुभव भी होता है। इसलिये जिन मामलोंमें सरकारी कर्मचारी फँसे होते हैं उन मामलोंमें सावजनिक और व्यक्तिगत दोनों पक्षों पर विचार करनेमें वह समर्थ होते हैं। समय बीतनेके साथ-साथ प्रभासी न्यायालयोंके न्यायाधीश सरकार और उसके कर्मचारियोंके मनमाने अवैध कार्योंके विरुद्ध नागरिकोंके रक्षक बन गये हैं।

एक दृष्टिसे विधि शासनकी अपेक्षा प्रभासी विधि संघट्ट है। फ्रांस जैसे देशमें एक व्यक्ति राज्य पर मुकदमा चला सकता है। यदि राज्यके अधिकारियोंमें उसके साथ अन्याय किया है तो वह उसकी क्षतिपूर्ति करवा सकता है। पर विन्नाय साधारणतया व्यक्ति राज्य पर मुकदमा नहीं चला सकता। उसे उस अधिकारी पर मुकदमा चलाना होता है जो उसके साथ अन्याय करता है। यदि वह अधिकारी दिवा सिद्धा है या हर्जाना देनेमें असमर्थ है तो फिर क्षतिपूर्ति भी नहीं हो पाती। जब किसी

उन्हे पत्याधिकारी पर मुकदमा चलाना हाना है तब उसके लिए एक अधिकार याधिकार (Petition of Rights) द्वारा अनुमति प्राप्त करनी जाना है। इस अनुमति को प्राप्त कर लेना हमारा मासान नही होता।

हानक बर्योमें एक बिगय बात यह हुई है कि बिधि-नामन और प्रणामी बिधि दोनोंमें एस परिवर्तन हुए हैं कि वे एक दूसरेके नरणीक आ ग्य है और उनका अन्तर कम हा गया है। जैसा कि पहल कहा जा सका है त्रिन्तम स्वास्थ तथा धर्म जैसे अनेक प्रणामी विभागोंको अर्थ-भ्यायिक अधिकार प्राप्त है और कुछ मामलाम उच्च अधिकारियाके पास उनके निर्णयोंके विद्वद अपील भी नहा की जा सकती। दूसरी ओर योरोपीय देशोंके प्रणामी न्यायालयोंने गवाही और नियम आग्नि सम्बन्धम एव निदिष्टत बाय प्रणाली (procedure) को अपना लिया है और अधिक याधिक बन गये हैं। संसारमें एसा कोई देश नही है जहाँके प्रणामन अधिकारियाका नागरिक से अधिक मुक्तिपाएँ, अधिकार और उम्किणवाँ न प्राप्त हा। एसी हालतम प्रासोसियाके इस बिचारको साफ-साफ मान लेना अधिक ठीक जान पड़ता है कि सरकारी बाय करने के निरतिसेमें प्रणामन अधिकारीका बिती नागरिकम वा गम्भ्य रहना है वह उम सम्बन्धसे भिन्न कोटिका होता है जो सम्बन्ध एव नागरिकता अथ नागरिकस हाता है। अफ्रेड सेलक सी० के० एलन (C. K. Allen) का कहना है 'प्रासम प्रणामी राज्यक विद्वद जो प्रतिहार (remedies) प्राप्त हैं य त्रिन्तम प्राप्त प्रतिवारोंकी अनेका अधिक मासान साम्य और बहुत अधिक सत है। प्रांस की राज्य-परिषद कमबारीतनेमे जनताकी रणा करती है। वह जनताके अधिकारोंकी सन्त सदी रताह मानी जाती है। इस तप्यसे न केवल प्रांसका सोबतत्र ही मुर्ता त है अन्तु यह तप्य सविधान वेलाओंका पथ प्रदर्शक भी है।

प्रांसकी राज्य-परिषदका सम्भावति पहले न्याय मत्री हाना था पर अब इस सशोष्क प्रणामी न्यायानपका सम्भावति एव एसा ब्यक्ति हाना है त्रिसका राजनीतिमे कोर सम्बन्ध नहीं होता। एक आधुनिक सतकका कहना है कि परिषदकी सिद्धि कुछ दुलियोंने भारतके मोर-सेवा-आशानमे सिधती-जमनी है त्रिसका काम प्रणामन अधिकारियाके लिए नियम बनाना उनकी तक्षनीयताकी जोष करना और उनकी निजायतोंकी सुनवाई करना है। राज्य-परिषद इसमे अधिक और लक्ष काम दृ करती है कि जो अध्याप्य या नियम बिधादिका गरा बनाय हा नहीं हान उनका बहु न्यायिक पुनरिपोजन (review) करती है।

(३) संपादनक सविधानम न्यायन-विषयका एक सन्वृत्तों कर्ष सविधानकी व्याख्या करना और एसी बिधियोंको अर्थ पारित करना होता है वा सविधानम माप मत्री हाने। यह बिन्तुम ठीक कहा गया है कि सवजन राज्य सन्विषय में निम्नलिखित चार प्रकारकी बिधियाँ हैं और चारोंकी आधिकारिकता भिन्न बानिची है।

(क) सध-सविधान (ग) सध-परिनिधम (statute) (घ) राज्य-सविषयक और (च) राज्य परिनिधम। इन चारोंमे से प्रथम सबसे ऊपर है।

सर्वोच्च न्यायालयके न्यायाधीश सचिवानक सरदार हैं। पर उसका यह मतलब नहा है कि वे हर परिनिमम विधिकी सावधानिकताकी परस उसके लागू हानेके पहल करते हैं। विधि द्वारा सचिवानकी तथासिधा अवहनना या अतित्रमणकी सर्वोच्च न्यायालयके विचारम उपस्थित करना पीछिन व्यक्तिका काम है। जैसा कि एक लेखकने हाल ही म लिखा है "न्यायालयका तब तक हस्तक्षप करनेका कोई अधिकार नही है जब तक विधि द्वारा निधारित ढगके अनमार उसक स मुस लागे गये किती मामनम उसके हस्तक्षपकी प्रार्थना न की जाय।

सर्वोच्च न्यायालयक न्यायिक पुनर्विचन (judicial review) अधिकारने कायपालिका अथवा विधायिका द्वारा होनवाल अतित्रमणके विरुद्ध न्यायपालिकाकी सचिवानके सरदारके रूपम काम करनेका अवसर प्राप्त होता है। इस व्यवस्थाम प्रचसनीय ढगसे काय हुआ है यद्यपि एम भी अवसर आय हैं जब न्यायाधीशकी द्वेष या पणपातकी भावनाओने सचिवानकी रदाके नाम पर महस्यपूण सामाजिक विधियोंको अस्वीकार करनम काफी याग लिया है। उदाहरणके लिए अमेरिकाम नियाजन दायित्व अधिनियम (Employees Liability Act) श्रमिक दायित्व पूर्ति अधिनियम (Workmen's Compensation Act) न्यतम वेतन अधिनियम (Minimum Wages Act) बाल-श्रम निराधष अधिनियम (Act to Prevent Child Labour) आदि काप्रस (मसद) द्वारा पारित और राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृत हो जानेके बाद भी एक् न एक् धार सर्वोच्च न्यायालयद्वारा अस्वीकृत किये जा चुके हैं यद्यपि आज म अधिनियम दगकी विधि बन चुकू हैं।

(४) गार्नर ने न्यायपालिकाक अय कार्य म मतलाय है (क) विभिन्न प्रकारके मस (Writs) और अध्यापन (injunctions) जारी करना (ख) सम्बन्धित पणोंकी प्रर्थना पर यह निणय देना कि क्या ठीक उचित या अधिकार-सगत है और विधि की मांग क्या है (ग) कायपालिका अथवा विधायिकाकी प्रार्थना पर विधि सम्बन्धी प्रर्थनों के बारेमें परामस-मूलक सम्मति देना (घ) सवा मक सचिवानाम विवादप्रस्त अधिकार क्षत्रके मामलाम अपना निणय देना (ङ) न्यायालयके नुद्ध म्पानीय अधिकारियोंको नियुक्त करना कनकी तथा अय कर्मधारियोंको नियुक्त करना साइमेंस देना सरसका और न्यायधारिया (trustees) को नियुक्त करना बसीयतनामो को प्रमाणित करना मरे हुए लागोकी जायदानका प्रबन्ध करना आगताओं (receivers) का नियुक्त करना आदि।

४ न्यायपालिका का संगठन (Organisation of the Judiciary)
न्यायपालिकाका संगठन कायपालिका और विधायिकासे मिश्र प्रकारका होता है। जैसा कि गार्नर न कहा है, न्याय शक्तिका प्रयाग काई एक न्यायाधीश या काई एक सभा नहा करता है बल्कि इसका प्रयाग न्यायाधीशकी एक श्रृलना या सामहिक रूप म नीचेसे ऊपर तक मगठिन न्यायाधिकरणा द्वारा होता है। इस समस्त संगठनक दिग्बर पर एक सर्वोच्च न्यायालय होता है जिसे अपने म नीचे न्यायालयोके निर्णय

को रट करन और उनमें पश्चितन करवना अधिकार होता है (२२ ७८० १)।

अग्नि-शैलन नाम आान गुननवाला अमाननका छाडकर आमनीर पर हर अमाननमें एक ही न्यायाधीन होता है। कम अग्नी और कम बद्ध वारतीय शीम एक न्यायालय एक अधिक न्यायाधीन रखनका प्रथा है। यह विधान किया जाता है कि न्यायालयमें न्यायाधीन का मन्दा एकन अधिक हानम न्यायालयका प्रमत्ता मनमाना नही हाता। पर यह प्रथाभी बहुत अधिक सुबोसा है। इति और अमरिका की निवना अमाननोय न्यायाधीनकी मन्दा अमाहत कम रहती है।

अग्नि-अमरिका और जोरानाय न्यायालयमें एक अलग और है। इति और अमरिका क न्यायालय एक प्रथा दूगर प्रथा दारा करन ए मूहननवालीकी मुकियाके निण विभिन्न न्यायालय मन्दा वा गुनवाई किया करन है पर वारानाय मन्दा एक स्थान म ही रहती है और मन्दाववाला वही जाना पटना है।

अमेरिकाक राज्य-न्यायालय वा गुननामें वारतीय न्यायालय की एक मन्दावा विधानता यह है कि वारानाय न्यायालयकी वाय प्रथमी एबीहृव और मन्दिण (integrated) है। यह वाक्यनक है कि राज्यके सभा न्यायालयका संगठन एक ही मन्दावाक अन्वयन हा ताकि न्याय एक बहा न्यायालय हा तिसक अधान उसकी अनेक वागार्प हा।

अमरिका वा मन्दावक नाम ए नकारक न्यायालय हात है। एक वा अधिकार-वाय वारानाय हाता है और दूनरेवा न्यायालय (७८)।

वा प्रकारके न्यायालय हाता वाक्यनक नाम है। वाकर मन्दिणक अन्वय अग्नीमें सब और वारानाय न्यायाधी एक ही पद्धति थी (२२ ७८३)। सब और उसके वारानाय वीच न्याय नदका वार्द विभाजन नाम हा और न विधिमें ही कोई विधानता थी। इसके विरुध अमेरिकाक हा वक वारानायके मन्दावमें मुद एक-अवता और समानता हाते ए की वारानायके न्याय-अमान और न्याय प्रथमीमें विभिन्नता है। इसके मन्दाव यह नाम है कि विभिन्न वारानायी अमानन एक दूगरेकी विधी मानती है। इसके विरुध वे एक दूगरेक अधिकारी वार न्याय प्रथमीकी विधान और मन्दावकी दधिम देली है।

अनर न अमानन के वा मन्दाव विधान विद है मन्दाव अमानन और अवापालन वा विधान अमानन। अवापालन और विधान अमाननमें विधानविध अमानन वाक्यनक न्यायाधीनवाक्यनक मन्दिण न्यायालय और अवापालन न्यायालय अधिक एक न्यायालय वार मन्दावा न्यायालय (Court of Claims) मन्दाव-न्यायालय Court of Claims, मन्दिण न्यायालय (Courts of Impeachment) अन्दिण वारानाय - अमेरिका न्यायाधीन अधिकार मन्दिण वारानाय (Supreme) वा अवापालन मन्दिण वारानाय (Court of Claims) है।

अमेरिकाकी वा - वाक्यनक न्यायाधीन विधान अमानन वार अमानन अमानन और मन्दिण वारानाय है। मन्दिण विधान अमानन विधान अमानन थी हाती है।

सर्वोच्च न्यायालय एक प्रधान न्यायाधीश और आठ न्यायाधीश होते हैं। छः का कोरम होता है। सर्वोच्च न्यायालयके मौलिक (original) न्यायभक्तका निर्धारण संविधान द्वारा हुआ है और इसमें वही मामले आते हैं जिनमें धात्री प्रतिवाणी रूपमें राजद्रुम या राज्य होते हैं। सर्वोच्च न्यायालय के अपील क्षेत्रका निर्धारण मुख्यतः परि नियम (statute) द्वारा होता है। निम्न प्रकारके मुकदमे इसकी परिधिमें आते हैं राज्य न्यायालयोंके वह सब प्रसंग जिनमें राज्य विधि और सघीय विधिके बीच सघर्षका प्रश्न हो वे सब मामले जिनमें सघीय संविधान अथवा संधि या किसी भी सघीय विधिकी व्याख्याका प्रश्न हो वे मामले जिनमें किसी राज्य संविधान और सघीय संविधानके बीच सघर्ष हो और वे सब मामले जिनमें क्षेत्रीय अदालतके नियम अन्तिम नहीं होते (५८ दूसरा भाग ३०१)। कुछ दूसरे प्रकारकी अपीलें भी सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सुनी जाती हैं पर उन पर विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। ब्रिटनमें न्यायाधीशको संविधानकी व्याख्या करनेके लिए कभी नहीं कहा जाता पर अमेरिकामें सर्वोच्च न्यायालयके न्यायाधीशोंको बहुधा ऐसा करना पड़ता है। उन्हें विधियोंकी वधता पर नियम देनेका अधिकार है और इस प्रकार वे सघर्ष संविधानके सरदार हैं। उन्हें राष्ट्रपति नियुक्त करता है पर सिनेट की स्वीकृति आवश्यक होती है। एक बार नियुक्त हो जाने पर वे आजीवन पद पर बने रहते हैं क्योंकि कहा अबकाग ग्रहण करनेके लिए कोई निश्चित अवस्थाका नियम नहीं है। महाभियोग (impeachment) द्वारा ही उन्हें उनके पदसे अलग किया जा सकता है।

संधि विधियोंकी भांति सघ-न्यायालय का अधिकार क्षेत्र भी व्यक्तिगत नागरिकों पर सीधा होता है (५८ ३०७)। इसके विपरीत स्वीटजरलैण्ड में कार्यपालिका द्वारा बनायी गयी विधियाँ और जारी की गयी आज्ञावतियों (decrees) को कार्यान्वित करनेका कार्य प्राथमिक प्रशासकों और न्यायालयों पर छोड़ दिया जाता है।

न्याय प्रशासन का विभाजन इसना पूरा है कि राज्य न्यायालय (state courts) सघ न्यायालयोंसे बिल्कुल पृथक् होते हैं। हर राज्य में नीचे से ऊपर तक अपने न्यायालय होते हैं। इन न्यायालयोंसे सघ-न्यायालयोंमें तभी अपील जा सकती है जब मुकदमे से सघ विधिका कुछ सम्बन्ध हो या मुकदमेका कोई पक्ष किसी दूसरे राज्यका नागरिक हो (५८ ३८)।

ब्रिटनमें कर्तीय और स्थानीय न्यायालय होते हैं। केन्द्रीय न्यायालय सदन में स्थित है और स्थानीय न्यायालय देश भर में फैले हैं। स्थानीय न्यायालयोंमें ग्रामीण क्षेत्रोंके न्यायालय अपमरणा-वेधक न्यायालय (Crown Courts) एसाइजर्स न्यायालय (Assizes Courts) और क्वार्टर सेशन न्यायालय (Quarter Sessions) आदि हैं। सदन के उच्च न्यायालयमें पचीस न्यायाधीश होते हैं। यह न्यायालय एक ही निकायके रूपमें काम नहीं करता। इसकी तीन शाखाएँ होती हैं राज-न्यायापीठ (The King's Bench) चांसरी न्यायालय (Court of Chancery) और द्वातीयत,

तलाह तथा नौमना सम्बन्ध न्यायालय। इन न्यायालय मौलिक मकसद या मुलते हैं और उनकी अज्ञान भा। प्रीति अज्ञानका काम विनम सरकार नागरिकोंकी उन अज्ञानका मुनवाई करना है विनम मुकामा पर एगो अज्ञानका गारा पहल विचार किया जा पछा हुआ है। प्रिया कौमिनकी न्यायिक-समिति (Judicial committee) मामला-दके विभिन्न भागमें आनवाणी अज्ञानकी मुनवाई करती है।

स्थानीय न्याय प्रणालिक निम विनम आठ मण्डलोंमें बग हुआ है और पहलाठ मण्डल कर्नाटकीमें बग हुआ है। छान-छान अरराधोंमें ठानानिक नियम दे दिया जाता है। एम समयमें जूरिया गारा मुनवाई महा हाती। इन अज्ञानकोंका प्रधान एक अज्ञानिक मजिस्ट्रेट हुआ है। उसकी सहायता एक बनके करता है या विधिको बगला तरा आनता है। बडे अरराधकी मुनवाई एमण्डल न्यायालयों और विधिक न्यायालय द्वारा गता है। इन न्यायालयन जूरी न्यायालयकी मण्डल करने हैं। अरराध पर प्रमाण निरनक बाण ही अरराधका दण्ड दिया जाता है।

प्रीतिगाराके मण्डले सरकार की आर से बनते जाते हैं। सरकार ही मण्डल या बाण होती है। पर दोबानी के मकसद निजी हैसियत म दूसरे व्यक्तिपर पर दानर किये जात है। नम मण्डल और मण्डलय या बाणी और प्रविवासी दानों ही निजी व्यक्ति हाते हैं। अथन न्यायालय अथवा एमण्डल न्यायालय दोबानी मुकामोंकी भी मुनवाई करत है पर उनकी बाण प्रणामी और स्थान निम-निम हाते हैं।

प्रथम नीच म नगर नम मापारण और प्रणामी दाना प्रकार की अज्ञानमें होती है। ब मौलिक मकसद भी मुनत है और उनकी अर्थमें भी। प्रथम राज्य-परिषद सर्वोच्च प्रणामी न्यायालय है। उसके नीच अधिवासी परिषदें (Councils of Prefectures) होती हैं जो उन मामलोंकी मुनवाई करती हैं विनका सम्बन्ध प्रथम कर्-निर्धारणमें और नागरिकोंके साथ एग अधिकाधिक व्यवहारमें रहता है (१२ ३२६)। प्रणामी-न्यायालय बुनाब अधिवासीकी भी मुनवाई करने हैं।

प्रथम सामान्य विधिक दण्ड न्यायालय न्याय-विचरण न्यायालय (Court of Cassation) बहताता है। एट अर्थमें मुनवेका सर्वोच्च न्यायालय होनेके साथ ही ऐसी विधिक के विरतीन नियम निर्देशता रद करता है। प्रणामी न्यायालय ब साधारण न्यायालय ब बीच अधिकाधिक गण्डोंका निबन्धन करनेक निम एक बनत न्यायालय है विनका नाम विवा-न्यायालय (Court of Conflicts) है। प्रथम क विमोंमें अज्ञानिक मजिस्ट्रेट किसी मकसदमें में पैगवा देने की अज्ञान पणोंमें और-गुन आनकी समताका बरानेकी कोणिक करत है।

विद्वानोंकी एगो न्याय-विचारकी उन्ना मण्डल-स्थान गारा मण्डल है विनका अररितने सर्वोच्च न्यायालयको प्रण है। एके अरर की-बा' क परिनिमों (statu ts) और अधिवासीके न्यायिक मुनविचरण करनेक अधिवासर है एष

इससे फैसलामें एकरूपता नहीं रहती। एकही क्रिमिने मामलमें कोई मजिस्ट्रेट कुछ फसला देता है और कोई कुछ। ब्रिटेनमें जस्टिस आफ पीसका 'याथ अय्यवस्थित' हाता है एकरूप नहीं हाता। दूसरी ओर इस व्यवस्थासे सम्पन्न लोगोंको जिनके पास पर्याप्त समय है राजनीतिक शिक्षा और सामाजिक सेवाका अवसर मिलता है यद्यपि अधिकारके दुरुपयोग किये जानकी सम्भावना रहती है।

अवतनिक मजिस्ट्रेटोंकी व्यवस्थासे मिलती-जुलती व्यवस्था जूरियोंकी है जो अनेक देशोंमें प्रचलित हैं। इसका उद्देश्य न्यायाधीशको मुकदमों के तथ्योंको समझनेमें सहायता देना है। इस व्यवस्थाका श्रावणश ब्रिटेनमें हुआ था और बादमें इसे अनेक देशोंमें अच्छी तरह अपनाया। इस व्यवस्थाके पक्षमें यह कहा जाता है कि इससे पूरा छोरी और 'यायाधीशको प्रभावित करनेवाले अन्य भ्रष्ट प्रभावों और उपायों पर रोक लग जाती है। इस व्यवस्थाको नागरिक कतब्या और दायित्वोंकी शिक्षाका महत्त्वपूर्ण साधन भी बनाया जाता है। इस व्यवस्थाके पक्षमें यह भी कहा जाता है कि अपनी निष्पत्त भावना और अपने व्यावहारिक ज्ञानके कारण जूरी मुकदमोंके तथ्योंको ठीक ठीक समझनेमें 'यायाधीशको सहायता दे सकते हैं।

पर व्यावहारिक तौर पर जूरी प्रणाली बहुत अधिक सफल नहीं हुई है। ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिनमें पक्षपात और रागद्वेषपूर्ण जूरियोंके कारण अच्छे 'यायाधीशके काममें बाधा पड़ी है। इस दोषके कुख्यात उदाहरण वे मुकदमों हैं जिनमें अमेरिका में नीचा लोग पर लगाये गये अभियोगोंकी सुनवाई केवल दवेताम जूरियोंके सामने हुई है। जब कोई मुकदमा कई दिनों या सप्ताहों तक लगातार चलता है सब अवैतनिक जूरी अपना समय देना पसन्द नहीं करते। जिन मामलोंमें प्राविधिक तथ्यों पर विचार करना होता है उनमें जूरी विस्तृत ही व्यय होते हैं।

भारतमें जूरी प्रथा १८६१ में शुरू हुई थी। अनेक वर्षों तक इसका परीक्षण होनेके बाद भी यह कहना पड़गा कि यह पद्धति सफल होनेकी अपेक्षा विफल ही अधिक हुई है।

एक और पद्धति असेसर या परामर्शकों (assessors) की है जिसका औचित्य जूरी प्रथासे भी कम है। भारतकी फौजदारी अदालतोंमें असेसरों की प्रथासे कोई लाभ नहीं हुआ है। एक प्रसिद्ध 'याथ शास्त्रीके अनुसार न तो असेसर अपने पक्ष पर रहनेको इच्छुक है और न न्यायाधीश ही असेसरोंको रक्षनेको इच्छुक हैं।

५ न्यायाधीशोंकी नियुक्ति कार्य काल और पदच्यवि (Appointment Tenure and Removal of Judges) न्यायाधीशोंकी नियुक्तिके निम्न लिखित तीन मुख्य ढंग हैं (१) विधायिका द्वारा निर्वाचन (२) जनता द्वारा निर्वाचन और (३) कार्यपालिका द्वारा नियुक्ति। जहाँ तक कार्यपालिका द्वारा 'यायाधीशोंकी नियुक्तिका प्रश्न है यह नियुक्ति कार्यपालिका या तो स्वयं अपने मनसे बिना किसीकी सिफारिश या स्वीकृतिके करती है या फिर कार्यपालिका यह नियुक्ति

न्यायालय द्वारा ही प्रस्तुत नामावली से या प्रतिपक्षी परीक्षाएं आयोजन पर या विधायिकाके ऊपरी सभ्यत्री स्वातंत्र्य बरती है।

अब हम इन तीन ढंगा पर विचारने विचार करेग

(१) विधायिका द्वारा नियुक्ति का प्रचलन स्विट्जरलैण्ड है। मध्य-न्यायालयके न्यायाधीश जिनकी संख्या २४ है विधायिका क दोना सभ्यत्रीके सपुत्र अधिवेशनमे छ सालके लिए चुन जाने हैं। एक 'यायाधीश' जिनकी ही बात चना जा सगता है। अमेरिकामे प्रान्तिके बाद कुछ वर्षों तक यही प्रथा प्रचलित थी। उमके बादमे बार राज्याको छोड़कर सब सभ्यी राज्य ने इन प्रथाको छोड़ दिया है। इन प्रथाकी बुरादया य है कि न्यायपालिका अनुचित रूपमे विधायिका पर आश्रित हो जाती है और नियुक्तिमें राजनीतिक दलाकी गुप्त छानगी अन्तरंग समिति (caucus) द्वारा होती है। नियुक्तिमें प्राथमिक मायनाअधी अगता राजनीतिक और भोगातिक कारणको अधिक् महत्व दिया जाने लगता है। इनमे बराबर बावजू जा कि अमेरिकामे विधाय और पर पामी जाती है स्विट्जरलैण्डमे य व्यवस्था सफलतापूर्वक काम करती आ रही है। इन सफलताका कारण यह है कि स्विट्जरलैण्डमे विधायिका का आकार छोटा है और वहा की राजनीतिक दलकी भावनाका अभाव है।

(२) जनता द्वारा निर्वाचन जनता द्वारा 'यायाधीश' चुने जानेकी प्रथाका पीगता १७९० मे पांगम हुआ था। १७९३ मे इन प्रथाका बहुत ही दुर्दवाग हुआ और प्यार काटनेवाला चुनको मानिया और साधारण मठूनोंके न्यायाधीश बना गया। मैनेनियन ने इन प्रथाको प्राप्त गमाया कर दिया।

आजकल यह प्रथा स्विट्जरलैण्डके कैंटनमे तथा अमेरिकाके कई एक राज्योंमे प्रचलित है। सुयोग्य और कुशल न्यायाधीशको प्राप्त करनेका यह सबसे बुरा तरीका है। जनता द्वारा चुने गये न्यायाधीशोंमे स्वाधीनता और अधिक जानके अभावकी आशंका रहती है। जनतामें इनका विवेक और ज्ञान नहीं होता कि वह कुशल न्यायाधीशोंको चुने। जब न्यायाधीश दुबारा चुनावक लिए लड़ हो सके हैं तो यह प्रथा और भी बुरी हो जाती है। जनताका बात पानेके लिए न्यायाधीश एम पंगे देने हैं जिनमे जनता प्रमत्त हो। समय तथा निष्ठा न्यायाधीश बंधुया चुनावमे हार जाते हैं। इन व्यवस्थाकी निष्ठा धर्मर रूप प्रचार करते हैं 'इसमे न्यायाधिकारका पारितोषिक एतद होता है यह व्यवस्था न्यायाधीशका राजनीतिक बनानेकी कल्पा करती है और न्यायाधीश पर कुछ ऐसा दबाव डालती है जिनका विरोध बंधु हमारा नहीं कर पाते (७९२ ९९)।

इन व्यवस्थाकी बगलवाकी मयक राज अमेरिकामे अतः इन प्रकार प्रचलित किया गया है कि दलकी प्रथम प्राथमिक सभ्यत्री 'अधी'वालाका नामकरण करती है और बचीन वर्ग निहायकाके उपरुक्त उम्मीदवालीकी निराशता करता है।

() कार्यकारिका द्वारा नियुक्ति यह व्यवस्था सबसे अच्छी जान पड़ती है। बिने बिटिंग निवेदों, अमेरिकामे सब प्रमाण और गये छ गाममे य प्रथा

प्रचलित है। यद्यपि 'यायाधीश'को नियुक्त करते समय राजनीतिक बातोंका भी ध्यान रखा जाता है पर एक बार नियुक्त हो जानेसे बाद 'यायाधीश' स्वतंत्र रहते हैं और कायपालिकाका उन पर कोई दबाव नहीं होता। फ्रांसमें कार्यपालिका न्यायाधीशोंको अपने मनसे नियंत्रण नग्न कर सकती है। नीचना अगह्राके लिए प्रतियोगी परीक्षा होती है और वहाँसे पदोन्नति बरिष्ठता (seniority) का आधार पर होती है। ब्रिटेन और अमेरिकामें वकील बहूना न्यायाधीश बनाने जाते हैं।

सबसे देकर कायपालिका द्वारा नियुक्ति ही सबसे अच्छी पद्धति है। नियुक्त किए जानेवाले न्यायाधीशोंकी योग्यताकी परख विधायिका अथवा जनताकी अपेक्षा कायपालिका अधिक अच्छे ढंगसे कर सकती है। इस व्यवस्थासे न्यायपालिकाकी स्वतंत्रता सुरक्षित रहती है वय कि 'यायाधीशोंका कार्यकाल उनके सदाचरण पर्यन्त रहता है। फ्रांसमें यह गिनायत की जाती है कि वहाँका 'यायमत्री' 'यायाधीश'की नियुक्तियाँ करते समय जब देखा तब द्विष्टियों (संसदके सदस्यों) के असहमे आकर उनकी सिफारिशोंके अनुसार ही नियुक्तियाँ करता है। यह और इस प्रकारकी अन्य बुराइयोंको दूर करनेके लिए कुछ लोगोंका यह मुझाव है कि कायपालिका 'यायाधीशों' का चुनाव एक एनी सूचीसे किया करे जो उस 'यायालय' द्वारा तैयार की जाय जिसमें न्यायाधीशोंकी नियुक्तिकी जानेवाली हो।

न्यायाधीशोंकी कार्यधि अमेरिकाकी सरकार में न्यायाधीशोंकी नियुक्ति साधारणतया अपाधिके लिए होती है। कार्यकाल दो से २१ वर्ष तक का हुआ करता है। पर आमतौर पर सात से नौ वर्ष तक का होता है। स्विट्जरलैण्डमें सघीय-न्यायाधीशोंका निश्चयन विधायिका के दोना सदन द्वारा छ सालके लिए होता है पर वे कितनी ही बार निर्वाचित किए जा सकते हैं। अमेरिकासे बाहर प्रायः सब कहीं 'यायाधीश' उस समय तक अपने पदों पर बने रहते हैं जब तक उनका आचरण गलत नहीं पाया जाता। यह बहुत अच्छी व्यवस्था है क्योंकि इससे 'एक दुइ सम्बन्ध' और निष्पन्न विधि-शासनकी स्थापना होती है और इससे अनुभव ज्ञान और 'यायिक' पूर्वोक्तहरण भी प्राप्त होते हैं।

सकल राज्य अमेरिकाके सर्वोच्च न्यायालयके 'यायाधीश'के अवकाश ग्रहण करनेकी कोई निश्चय आयु सीमा निर्धारित न करनेकी प्रथाका समर्थन नहीं किया जा सकता। इसमें अनेक एक बहुत-से व्यक्ति 'यायाधीश' बन रहते हैं जो अत्यन्त रुढ़िवादी होते हैं औ अपनेको नयी परिस्थितियोंके अनुकूल नहीं बना पाते।

'यायाधीशोंकी पदभ्युक्ति (Removal of Judges) प्रत्येक संविधानमें अच्छे और अयोग्य 'यायाधिकारियोंको पदभ्युक्त करनकी व्यवस्था अवश्य होनी चाहिए। ब्रिटेन में समन्वये जाना सन्नाकी भाग पर संसद न्यायाधीशोंका पदभ्युक्त कर सकता है। संवत्त राज्य अमेरिकामें निश्चय संसद महाभियोग लगाता है और ऊपरी सदन अधियागकी मुनवाई करता है और इस प्रकार महाभियोग द्वारा 'यायाधीश' पदभ्युक्त किए जाते हैं। यह तरीका बहुत ही गंभीर (cumbersome) है। इसका उपयोग

दलगत उद्योगिके लिए किया जा सकता है। पर इस दुष्परभावों का रोकना तब तक
 यह है कि एक असाधारण व्यक्तित्व ही यादाग पाका पश्यन किया जा सके।
 अमेरिका के बाद राष्ट्र गणराज्य विधायिका जायागी पाका पश्यन कर सकती है और
 नौ राष्ट्रों में विधायिका की मांग पर राष्ट्रपति उन्हें पश्यन कर सकता है। इनके
 राष्ट्रों में जायापांगो और निराचार सम्बन्धित साक्ष्यप्रदायन (recall) की पद्धति
 प्रचलित है। इस पद्धतिसे अलग उनका निश्चित अनुमत जायापांगो उनका
 पश्यन हुआ सकता है और उनका निराचार रद्द कर सकता है। पारापर कई देशों में
 जायापांगो को बचाने वही जायापय पश्यन कर सकता है तब तक व स रूप है अथवा
 सर्वोच्च जायापय एक अनुशासन अपिकरण (Disciplinary Tribunal) के रूप में
 नियमित रूप से विचार करने के लिए विधायक सम्बन्धित बनाय गया जायापांगो
 का पश्यन कर सकता है (२२ २००)।

शक्तिशक्ति व्यवस्था का सिद्धान्त (Theory of the Separation of Powers)

सरकारके अंगों का परस्परानुपपन्न विधायिका कार्यपालिका और न्यायपालिका
 इन तीन विभागों में हुआ है। पर एक पृथक्करण इनका करने समझा जाता है कि
 आपुनिक परिस्थितियों के लिए तब तक नही बनाया।

पार्लियामेंट की शक्ति के अंगों में अलग विचारणात्मक (deliberative)
 पासकीय (magisterial) और न्यायिक (judicial) शक्तियाँ विभक्त करती हैं।
 यद्यपि अलग के लिए इन तीनों शक्तियों में मिश्रित रूप से विभक्त करना सामान्य
 किर भी व्यवहार में प्राचीन युगों में तीनों शक्तियों एक ही व्यक्ति द्वारा प्रयुक्त
 होती थीं।

अलग के लिए रोमन विचारका शक्तिशक्ति शक्तिशक्ति के लिए इनकी उ जाय
 गय युवांनी पार्लियामेंट तथा सिमराने शक्तिशक्ति के संतुलित साम्य (balanced
 equilibrium of powers) की शक्ति पर बहुत धार किया है। शक्तिशक्ति
 कुलीनता और साक्ष्यक त हीं का ब वचन रोमक कोमिता ग नेर और
 जनप्रिय एग्रेगतिवा में मान्य है तब तक सरकारका प्रत्येक अंग दूसरे अंगों पर
 अक्षरों में समान था। इनमें अलग शक्तिशक्ति विंग सरकार के एक एक शक्तिशक्ति
 शक्तिशक्ति आवश्यक समझा है तब तक अक्षरों और अनुपन (checks and
 balance) की व्यवस्था हो।

सम्यक्पणे शक्तिशक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त का प्रतीक नही।

शक्तिशक्ति का शक्तिशक्ति पृथक्करण शक्तिशक्ति शक्तिशक्ति तथा शक्तिशक्ति
 शक्तिशक्ति पृथक्करण शक्तिशक्ति शक्तिशक्ति है। शक्तिशक्ति शक्तिशक्ति पर शक्तिशक्ति
 की शक्ति ही शक्तिशक्ति शक्तिशक्ति शक्तिशक्ति शक्तिशक्ति शक्तिशक्ति शक्तिशक्ति

एक स्वतंत्र न्यायाधिकरण (tribunal) को सौंप देनी चाहिए। उनका कहना है कि यदि न्यायपालिका और न्यायपालिकाकी शक्तियाँ एक दूसरेसे अलग नहीं होंगी तो न्यायके सिद्धान्त पर दुकतासे अमन नहीं किया जायगा। 'गसक' जब चाहगा तब न्याय संगत निष्पन्न करेगा और जब चाहगा तब दयाका प्रदर्शन करेगा। वह अपनी इच्छा अनुसार कभी न्यायका पालन करेगा और कभी न्यायको ताकम रखकर मनमाना फसला करेगा।

लॉक ने अपनी पुस्तक *Civil Government* में शक्ति पृथक्करणके सिद्धान्तका उल्लेख सरमरी तौर पर किया है। उनके अनुसार जीवन स्वतंत्रता और सम्पत्तिकी रक्षाके लिए नागरिक समाजकी स्थापना की गयी थी और इन उद्देश्योंको पूरा करनेके साधन भी उतने ही मुनिश्चित हैं जितने कि स्वयं उद्देश्य। ये साधन सरकार के कार्यक्षेत्रके तहर् या चौहरे विभाजन द्वारा व्यक्त होते हैं। यह विभाजन है विधान—जिसमें इन अधिकारको निश्चित करनेवाले प्राकृतिक नियमकी 'प्रामाणिक व्याख्या' करनेकी व्यवस्था होती है सरकारी कार्य कलापका न्यायपक्ष अर्थात् समाजके व्यक्तियोंके बीच प्राकृतिक नियमोंकी उपयुक्त व्याख्या लागू करनेके लिए न्यायपूर्ण और निष्पन्न अधिकार-सत्ताकी व्यवस्था कार्यपालिका अर्थात् दण्ड विधान द्वारा विधियोंके आदेशको लागू करनेके लिए समाजकी शक्तिका प्रयोग करनेकी व्यवस्था। समाज और उसके व्यक्तियोंके हितको दूसरे समुदायके हितसे सुरक्षित रखनेका जो कार्य है उस लॉक 'संघात्मक (Federative) कल्पना कहते हैं।

लॉक के शक्ति पृथक्करण सम्बन्धी सिद्धान्तमें एक नयी विचारधारा मिलती है। उनका कहना है कि विधायिका और कार्यपालिकाके कार्य अलग-अलग होने ही चाहिए। विधि बनाने वालोंकी ही विधि लागू करनेका भार सौंपना बहुत ही अविवेकपूर्ण होगा क्योंकि ऐसा करनेमें यह सम्भावना है कि वह अपने का विधियोंसे मुक्त कर ले या फिर ऐसी विधियाँ बना ले जिनसे उनके स्वार्थों की सिद्धि होती हो। लॉक ने शक्तिके पृथक्करणके सिद्धान्त का विवेचन करते हुए इसकी चर्चा विधायिका और कार्यपालिका के पारस्परिक सम्बन्धोंका निश्चित करने वाले सिद्धान्तके रूप में की है। सरकारके कार्योंके उस त्रिवर्गीय विभाजन—विधायिका, न्यायपालिका और न्यायपालिकाकी जिससे आज दिन हम इतने परिचित हैं और अवरोध तथा सन्तुलनके सिद्धान्त को जो इस विभाजन का अनिवार्य परिणाम है, लॉक की विचारधारा में स्थान नहीं मिला है। इन त्रिवर्गीय विभाजन और अवरोध तथा सन्तुलनके सिद्धान्तों का विकास अग्रज दार्शनिक के मुस्ताबोने आधार पर फ्रांसीसी दार्शनिक मॉण्टेस्क्यू ने किया है।

प्रसिद्ध फ्रांसीसी सत्तक मॉण्टेस्क्यू (१६८९-१७५५) ने ही अपनी पुस्तक *Esprit des Lois* में इस सिद्धान्तको अपनाया है। यह एक विचित्र बात है कि मॉण्टेस्क्यू ने ब्रिटेनमें दो वर्षों तक बहूँके सविधानको कार्यान्वित करते हुए अपनी आँखों देखनेके बाद अपना यह सुविचारित मत प्रकट किया कि अग्रजों सविधानकी स्थिरताका कारण यह है कि उसमें शक्तियों का पृथक्करण किया गया है। आज सभी मानते हैं कि

अपेक्षी सविधान का उक्त अर्थ मॉन्टेस्क्यू ने जनत लगाया था। मॉन्टेस्क्यू ने अपनी पुस्तक अंगरहू का राजनीति में लिखी थी। यद्यपि उस समय ब्रिटेन में सक्ति के पुषकरण का अतिप्रमण करने वाली मंत्रि-मण्डलीय पद्धति का विकास नहीं हुआ था पर साथ ही सक्तियों का स्पष्ट पयकरण भी नहीं हुआ था। बीस वर्ष पश्चात् अर्थात् 'याय' वारसी ईस्टइन्ड न भी यही भूमि जो मॉन्टेस्क्यू ने की है। उनका भी कहना है कि विधायिका कार्यपालिका और यायपालिका के बीच सक्तियों का स्पष्ट पुषकरण अपेक्षी शासन पद्धति का आधारभूत सिद्धान्त है। असतियत का यह है कि मॉन्टेस्क्यू और ईस्टइन्ड दादा ने ही अपेक्षी सविधान के सिद्धान्तिक रूप में ही अपना सम्बन्ध रखा उनके व्यावहारिक रूप में नहीं। इस प्रकार वे गहराई में नहीं गये और इस कारण सोना जो यह मौरा मिला कि वे इनके विरुद्ध दिखला होने का आरोप लगाते।

मॉन्टेस्क्यू अपने स्वभाव और शिक्षा शीला दोनों में ही कुलीन-वर्ग के थे फिर भी उनके हृदय में स्वतन्त्रता के प्रति गम्भीर श्रद्धा थी। वह स्वतन्त्रता का सर्वोच्च मानवीय निधि मानते थे। इन निधियों को प्राप्त करने के लिए ही मॉन्टेस्क्यू ने सक्तियों के पुषकरण का समर्थन किया। उन्होंने महगूण किया कि सत्ता स्वभावतः अपना दुरुपयोग करने लगती है। अतः यदि सत्ता पर स्पष्ट प्रतिबंध नहीं लगाय जाते हैं तो निरंकुश शासन अवश्यभावी हो जाता है। उनके विचारों में सत्ता के प्रयोग में संयमों का भी लिया जाना गुणमन के लिए आवश्यक था। इसीलिए ही उन्होंने सक्तियों के पुषकरण का अपना प्रसिद्ध सिद्धान्त प्रतिपादित किया जिसके अन्तर्गत प्रत्येक प्रकार के सक्ति का प्रयोग सरकार के एक पुषक अंग द्वारा किया जाना चाहिए और सरकार के विभिन्न अंगों या विभागों के बीच अन्तर्गत सत्ता सन्तुलन की व्यवस्था होनी चाहिए जिसमें कोई भी एक विभाग या अंग सर्वोच्च माना न बन जाय। मॉन्टेस्क्यू ने स्वयं अपने सिद्धान्तों पर इस प्रकार व्यक्त किया है

अब विधायिका और कार्यपालिका की सक्तियों एक ही व्यक्ति या संघों में केन्द्रित हो जाती हैं तब स्वतन्त्रता असम्भव हो जाती है यदि न्यायिक और विधायी सक्तियों एक में मिल जायें तो प्रजा के जीवन और स्वतन्त्रता में निरंकुश नियंत्रण लग जायगा और यदि न्यायिक और कार्यपालिका की सक्तियों एक में मिल जायें तो न्यायाधीश अन्तर्गत ही सक्ति का प्रयोग कर सकता है।

मॉन्टेस्क्यू ने कार्यपालिका और विधायिका की सक्तियों के पदकरण पर विचार करने से आगे किया था। विधायिका में भी वह दो सक्तियों के अन्तर्गत अन्तर्गत करने के लिए आश्चर्य मानते थे।

असतियत सविधान निर्माण और उसके सक्तियों पर इस सिद्धान्त का अर्थ द्वारा प्रकाश पड़ा था। अन्त में ही यह सिद्धान्त समान हो गया और केवल प्रजा की सक्तियों के अन्तर्गत रूप में ही यह सिद्धान्त के अन्तर्गत रूप में ही १८३५ ई० के सविधान में मंत्रि-मण्डलीय पद्धति का अन्तर्गत किया गया परन्तु अन्त में सक्ति

में यह सिद्धांत अब भी माना जाता है। आज भी अमेरिका में विधायिका कायपालिका और न्यायपालिका संगठन एक दूसरेसे स्वतंत्र रूपमें होता है। अमेरिका का राष्ट्रपति जो कायपालिका का प्रधान होता है और उसका मन्त्रिमण्डलके सदस्य विधायिका के संसद नग्री होते हैं। अंग्रेजों का संसद-पद्धति अपनाएवाले देशों में विधायिका और कायपालिकाके बीच जो घनिष्ठता रहती है वह अमेरिका में अज्ञात है। विधायिका केना सदस्यों का संगठन भी पृथक् रूपमें होता है और उनका कार्यकाल व शक्तियाँ भी भिन्न भिन्न हैं। सर्वोच्च न्यायालयके न्यायाधीशोंका नियुक्ति कायपालिका सीनेटकी सहमतिसे करती है परन्तु नियुक्तिकी शक्ति ऐसी है कि वह कायपालिकाको सरकार का स्वतंत्र एक अंग बना देती है।

सरकारके विभाग कबल एक दूसरेसे अलग ही नहीं हैं बल्कि हर विभाग दो-दो विभागों पर कुछ निश्चित अधिकाधिक भी लगाता है। उदाहरणार्थ राष्ट्रपति द्वाराकी जानेवाली प्रधान अधिकारियाँ नियुक्तियाँके लिए सीनेटकी स्वीकृति आवश्यक होती है। युद्ध और शान्तिवी घोषणा कायस करती है और कायपालिका द्वाराकी गयी शक्तियोंके लिए सीनेटकी स्वीकृति आवश्यक है। राष्ट्रपतिको इस बातका अधिकार है कि वह अपने विधायी कार्यक्रमोंको स्पष्ट करते हुए कायस (संसद) का अपना सदन भेजे। परन्तु संविधानकी परम्पराके अनुसार न तो राष्ट्रपति और न उसके मन्त्रिमण्डल का कोई सदस्य ही सरकारी नीतिका समर्थन करनेके लिए कायस (संसद) में उपस्थित हो सकता है। राष्ट्रपतिको विधायिकाके कार्यों पर निषेधाधिकार (veto) प्राप्त है पर यह पूर्ण निषेधाधिकार (absolute veto) न हाकर स्थगन निषेधाधिकार (suspensive veto) ही है।

आलोचना

यद्यपि संवित्तयंत्रि पृथक्करणका सिद्धान्त आमतौर पर ठीक माना गया है तथाकि इसमें विभिन्नताका शान्तिव सिद्धान्त निहित है किन्तु भी इसकी व्यावहारिक कठिनाइयोंने इस सिद्धान्तके महत्त्वको बहुत ही कम कर दिया है। समस्त राज्य अमेरिका में भी शक्तिवाला अत्यन्त पृथक्करण नहीं मिलता है। आधुनिक सरकारोंमें प्रत्येक विधायिका कायपालिकाके कुछ कार्य और कार्यपालिका न्यायपालिकाके कुछ कार्य करती है। इस सिद्धान्तका मुख्य महत्त्व यह है कि इसमें न्यायपालिकाकी स्वाधीनता पर जोर दिया गया है। परन्तु न्यायपालिकाकी यह स्वाधीनता अधिक आसानीसे दूसरे तरीकेसे प्राप्त की जा सकती है। ये तरीके हैं—न्यायाधीशोंके कार्यकालकी सुरक्षा यथेष्ट बतल जा कि सर्वोच्च आध्यात्मिक व्यवस्थाओंमें मुक्त हो और न्यायधीशोंकी राजनीतिक दायवनी और नियंत्रण मुक्ति।

इस सिद्धान्तका दूसरा महत्त्व यह है कि इसमें इस बात पर जोर दिया गया है कि सरकारको भली भाँति प्रतिष्ठित नियमों और विधियोंकी अनुकूल कार्य करना

वाहित। निरतुंग शासन सुशासन नहीं है। यह सिद्धान्त वायपानिवा और प्रगाप्ती अधिकारियोंको भावधान करता है कि वे न्याय और विधिके काम में हस्तक्षेप न करें। प्रान्सर के यामि यह सिद्धान्त हर गतिजको अपन बायींरा औचित्य सिद्ध करनेके लिए विवग करता है।

इस सिद्धान्तक पथम बुद्ध साणोंने यह तक निया है कि बायों को तो सम्मिलित किया जा सकता है पर गतिजनोंका हमेशा पथक-पथक सर्वोच्च रहना ही चाहिए। इस भेदम तो हम कोई अन्तर नहीं जान पड़ता है। यह समझना बटिन है कि आकाशक अधिकार-शक्तिने बिना काम कस दिय जायेंगे।

गतिजोंके पुनर्करणका यह सिद्धान्त एक समय राजाशाही निरतुंगताके विरुद्ध और आत्म शासितिकी निरतुंगताके विरुद्ध बहुत ही महत्वपूर्ण था। पर आज इन दो पथे किमी भी निरतुंगताका हर महा है। संवर्तनात्मक देवामे हम राज नीतिक कामके प्रमुख और प्रशासन अधिकारियोंकी निरतुंगताके विरुद्ध और तानाशाही देवाम राजनीतिक दल और उसका मता की तानाशाहीके विरुद्ध रणाकी आवश्यकता हो सकती है। इनमेंसे किसी प्रकारके भी प्रमुखके विरुद्ध गतिजोंके पुनर्करणकी आवश्यकता महत्त्व नहीं हो सकती। यह स्वभावतः बहुत अधिक यानिक है। संवर्तनात्मक देवाम आनवार और आगमक निर्वाचक-मण्डल वैयक्तिक स्वयंशतका सर्वोत्तम रसाव है।

आधुनिक परिस्थितियोंमें सरकारके ठीक प्रकारसे काम करनेके लिए गतिजोंके पुनर्करणकी उठनी आवश्यकता नहीं है किन्तु आवश्यकता इस बातकी है कि सरकारके विभिन्न गतिजोंमें समन्वय और समुन्नत हो। सरकारके हर विभागकी अपनेको अनशाका सेवक समझना चाहिए। और अनत उद्देशको पूरा करनेके लिए उने परस्पर सब बुद्ध करना चाहिए। एष० जे० सास्की इस सम्बन्धमें लिखते हैं

विधानिका बनना काम तक तक पूरा नहीं कर सकती जब तक उसमें विधिके तापू करनेकी प्रविद्यामे हलानव करनेकी सामर्थ्य न हो और इस बातकी सामर्थ्य न हो कि आवश्यकता पड़ने पर परिनिमम (state) द्वारा स्वाधीनताएमे निवेशका रद्द कर सके जिन्हे परिणाम स्वरुप अपने अस्तित्वजनक सिद्ध हो उठे हा। वायपानिवा विधि को तापू करनेके निमित्तमेमें सामान्य सिद्धान्तका भी विवरणसे इजनेके लिए विवग होनी है। आजकल हम कार्यकी सीमा अपनी विस्तृत है कि बहुधा इसमें और विधानिकारे काममें अन्तर करना बटिन हो जाता है। अन्तः-स्वाधीनिका जो या तो कार्यनिवाही गतिजकी निरिच्छत जाती है अथवा दो भागदिके बीच के विधानको तन करती है वास्तवम एक एका काम करती है जो स्वभावतः वैयक्तिक है। स्वाधीनिका की शक्ति निरिच्छत करनेमें स्वाधीनिका विधि-निमाव सम्बन्धी इच्छाके तावका निरिच्छत जाती है और दो भागदिके विधानको तन करनेम स्वाधीनिका या तो राज्यके वैयक्तिक अंगोंके अन्तर नदरनेके लिए उठे विस्तृत जाती है या इस बात को अंगीकार करती है कि किसी विनोद विधानम जो शक्ति रिपिट है वह उन भागों की परिधिमे रहकर है (२२ ६१)।

वास्की के मतके विपरीत शक्तियोंके पृथक्करणका सिद्धान्त जहाँ एक ओर शायद शक्ति बढ़ाता है वहाँ दूसरी ओर ईर्ष्या, अविश्वास और आन्तरिक संघर्षको भी जन्म देता है। अधिकार-शक्तिका स्वभाव ही यह होता है कि जिस किसीके हाथमें इसे सौंप दिया जाता है वह उसका निरंकुश प्रयोग करना चाहता है और दूसराका अपनी अधिकार शक्तिका प्रयोग करनेसे रोकता है। शक्ति पृथक्करणके सिद्धान्तमें जो बहुत बड़ी कमी है वह राष्ट्रपति बुद्धो विल्सन के दूसरे कार्यकालमें उस समय स्पष्ट हो गयी थी जब राष्ट्रपति द्वारा की गयी सचिको स्वीकार करनेसे सीनेटने इन्कार कर दिया था। यह कमी बादमें उस समय भी स्पष्ट हुई जब राष्ट्रपति ट्रूमेन की अनेक राष्ट्रीय कल्याण मूलक योजनाओं विरोधकर १९४६ और १९४८ के बीच मूल्य नियंत्रण और संचित आजीविका व्यवस्था-सम्बन्धी उनकी योजनाओंको असहयोगी शील विधायिकाने समाप्त कर दिया था। फ्राइजर की मुन्दर भाषामें शक्तियोंके पृथक्करण का सिद्धान्त सरकारको कभी बेहाशी की ओर कभी प्रलाप की अवस्थामें डाल देता है।' आधुनिक लोकतन्त्रात्मक राज्यामें जनताका प्रतिनिधित्व करनेवासी विधायिका का स्थान कामपासिका अथवा कार्यपालिकाकी अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है।

निस्सन्देह ब्रिटनकी शासन-पद्धतिमें शासन-शायद अमेरिकी शासन-पद्धतिके शासन-शायकी अपेक्षा अधिक कुशलतापूर्वक चलता है यद्यपि उसमें शक्तिशाली कोई ऐसा पृथक्करण नहीं है जैसा मॉण्टेस्क्यू समझते हैं। ब्रिटनकी शासन-पद्धतिमें विधायिका और कार्यपालिकाके बीच बराबर घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। इसमें शासन केन्द्रीभूत हो जाता है। इन दोनों अंग्रेजी और अमेरिकी शासन-पद्धतियोंकी तुलना करते हुए रमसे म्योर इस प्रकार लिखते हैं 'यदि शक्तिया का पृथक्करण अमेरिकी संविधानका शाब्दिक सिद्धान्त है तो उत्तरदायित्वका केन्द्रीकरण अंग्रेजी संविधान का।' एक दूसरे सेलखने कहा है शक्तियोंके पृथक्करणका मतलब शक्तियोंमें सम्मेलन है।

बुद्ध-कुछ भिन्न दृष्टिकोण रखनेवाले बिन्नेबी का कहना है कि अंग्रेजी शासन पद्धतिमें शक्तियोंका विभागीय पृथक्करण तो है परन्तु उनमें व्यक्ति-भरक एकता है। अमेरिकामें शक्तियोंकी विभागीय एकता है पर व्यक्ति-भरक पृथक्करण है। ब्रिटनमें इस सिद्धान्तका दृढ़तापूर्वक पालन किया जाता है कि शक्तियोंके प्रयोगका अधिकार विभिन्न विभागोंको पृथक्-पृथक् तौर पर सौंप दिया जाय। प्रत्येक अधिकार एक पृथक् विभाग के सुपुर्ण रहे। परन्तु अमेरिकामें इस सिद्धान्तकी अवहेलना की जाती है। अमेरिकामें शक्तियोंका व्यक्ति-भरक पृथक्करण है विभागीय पृथक्करण नहीं।

ब्रिटिश मंत्रिमण्डल व्यक्तियोंकी एकता और विभागीय पृथक्करणका एक अच्छा उदाहरण है (२८ २५४)। मंत्रिमण्डल कार्यपालिका विधायिका और प्रशासक मण्डल तीनोंके रूपमें काम करता है। जब वह एक रूपमें काम करता है तब अपने अन्य रूपसे सम्बन्धित अपनी शक्तियोंको उतने समयके लिए रोक रहता है। इस सम्बन्ध में बिन्नेबी का कहना है कि जब मंत्रिमण्डल कार्यपालिकाके रूपमें काम करता है तब

यह पानमिच्छये स्वयं सभाके प्रतिनिधिये रूपमें काम करता है। जब वह विधायिका के रूपमें काम करता है तब वह विधायी क्षत्रके भीतर ही रहता है और कामपातिका अथवा प्रशासनकी समस्याओं हाथमें लेनेका प्रयत्न नहीं करता। जब वह प्रशासनिक सगठनके रूपमें काम करता है तब वह कार्यपालिका अथवा विधायिकाकी शक्तिपूर्वक प्रयोग नहीं करता और अपने आगके प्रशासनकी समस्याओं तक ही सीमित रहता है।

एक प्रकार अग्रणी संबिधानमें सरकारके विभिन्न अंग अलग रूप में परस्पर बँई अंगों एक ही व्यक्ति-समूहके हाथमें सौंप कर उन्हें यह बताया जाता है कि वे एक ही सामान्य सगठनक अंग हैं।

अमेरिकी संबिधानके सम्बन्धमें विरोधी निम्नलिखित हैं कि बहुत-से लोग यह मानते हैं कि अमेरिकी जनताकी स्वतंत्रताकी रक्षा संविधानके पृथक्करण द्वारा होता है परन्तु सत्य तो यह है कि वही संविधानोंका पर्याप्त एकीकरण है। अमेरिकी संबिधान लागू करनेमें जो कठिनाई होती है वह संविधानोंके पृथक्करणके कारण नहीं है बल्कि दो या अधिक अधिकारियों द्वारा शक्तिपूर्वक सम्मिलित प्रयोगके कारण है।

विरोधी कहते हैं कि अमेरिकी संबिधानमें न तो संविधानके पृथक्करण और न संविधानोंके एकीकरणका ही दृढ़तासे पालन किया जाता है। वस्तुतः कार्यपालिका और विधायिका में निरन्तर मध्य होना रहता है। यह मध्य इसलिए और भी ठेका हुआ गया है कि अमेरिकी संबिधान प्रशासनिक महात्तों सरकारकी एक पृथक् शाखाके रूपमें स्वीकार नहीं करता।

मोटे तौर पर संविधानके पृथक्करणका सिद्धान्त एक बहुमूल्य सिद्धान्त है। पर यह सिद्धान्त करने सहयोगी, अथवा और संतुलन (checks and balances) के सिद्धान्तके साथ भी अपनेको स्वतंत्रताका बहुत बड़ा मरणाक सिद्ध नहीं कर सका है और न इनके साथ काम मुश्किल हुई है और न सहायता मिली है। उदाहरणके लिए मैकार्थी (McCarthy) और मैकार्थीबाबू अमेरिकी जनताकी स्वतंत्रताकी रक्षामें सहायक सिद्ध नहीं हुए। दूसरी ओर अनेक अने और निरन्तर संविधान विधायी अधिकारियोंके अर्थ और आनन्द से पीड़ित रहते हैं। ये समितिनां साधारण जातिगत पाठने और बोट कर प्राप्त हो जाने की नीति बरती है। इन समितियोंके प्रशासनमें बहुत अधिक हस्तगत किया था। उनके काममें राष्ट्रपति ट्रूमैन ने करने १९४८ के निर्वाचनमें प्रतिनिधिगणको भीषण सिंगाने और इन भाँटीमें सौंकेनेमें बँई बसर जारी नहीं रणी। सरकारके कार्यमें एका और सेम पैदा करनेक बयान संविधानोंके पृथक्करणके सिद्धान्तने बताया मध्य और एक ही की है। इसी प्रकारके तर्कों पर विचार करने हुए मैकार्थी कहते हैं कि यदि स्वयं ने 'उप्योके अति उत्तम अँकेनेका अन्वय किया था।' उन्होंने अपने सिद्धान्तको स्वतंत्रताके सांख्यिक सिद्धान्तों के एक सिद्धांतके सिंगानेके साथ किया था।'

क्राइनर ने अनुभव किया है कि आधुनिक परिस्थितियोंमें शक्तियोंके पुन्यकरण के सिद्धान्तको दृढ़तापूर्वक लागू करना व्यर्थ है। इसलिये उन्होने सरकारी शक्तियों को संकल्पात्मक शक्तिया (resolving powers) और कार्याकारिणी शक्तियों (executive powers) में विभाजित किया है। वह संकल्पात्मक शक्तियोंमें निर्वाचक मण्डल, राजनीतिक दलों ससद मन्त्रिमण्डल और राज्यके प्रधानको शामिल करते हैं। दूसरे में वह मन्त्रिमण्डल राज्यके प्रधान, राजकीय लोक प्रशासका और न्यायालयोंको शामिल करते हैं।

SELECT READINGS

BLUNT E — *The I C S*

DICEY A. V — *The Law of the Constitution*

FINER H. — *The British Civil Service*

FINER H — *Theory and Practice of Modern Government—Vol. 2*

GARNER, J W — *Political Science and Government.*

GETTLE, R G — *Introduction to Political Science*

GILCHRIST R. N — *Principles of Political Science*

IVENGAR S S — *Problems of Indian Democracy*

MARRIOTT J A. R — *The Mechanism of the Modern State—Vol 2*

RAMAVER — *Politics*

लोकतंत्र (Democracy)

१ लोकतंत्र पर पुनर्बिचार (Democracy Under Revision)

आमतौर पर यह कहा जाता है कि आरंभ में संसार लोकतंत्र की सफलता के सम्बन्ध में उतना आशावादी नहीं है जितना कि कृष्ण पीढ़ियों पहले था। लोकतंत्र के सम्बन्ध में साधारण मनुष्यों की प्रवृत्ति आलोचनात्मक नहीं तो कमसे कम उसकी ओर से राय पान रहने की सम्भावना है। वुड्रो विल्सन (Woodrow Wilson) के शासन में महायुद्ध सशान्तिकी 'लोकतंत्र के लिए सुरक्षा' बनाने के उद्देश्य से लड़ा गया था। परन्तु महायुद्ध के बाद से मुख्य समस्या यह हो गयी है कि संसार की लोकतंत्र के किस प्रकार सुर्धारा रता जाय। दूसरे बिन्दु-मुद्दे इसके बजाये बताने में यह सिद्ध कर दिया है कि लोकतंत्र शांति समुदाय और प्रगतिके लिए जादुई मंत्र नहीं है। यह आवश्यक नहीं है कि बहुसंख्यक लोगों की चिन्तनाओं में कोई बुद्धिमत्ता निहित हो। अब हम बचपन की भाँति यह मानना नहीं करते कि सर्वत्रगणराज्यों की स्थापना करके इस बुद्धिमत्ता के शीतल पत्र पर सुधार ला सकता है। वर्तमान जगत में लोकतंत्र के मानासि स्वरूप का पता यदि बिस्तृत हमारी आँख से नहीं हट गया है तो हमसे कम हम इस सम्बन्ध में पहले से अधिक विवेकीय तो हो ही गये हैं। लुडोविगी (Ludovici) ने अपने इन आलोचनात्मक प्रश्नों में लोकतंत्र के प्रति वर्तमान पीढ़ी के असाधारण अविश्वास का उल्लेख किया है— लोकतंत्र कोन लोकतंत्र के विनाश करता है? कौन मनुष्यिक सरकार, बिन्दु-मुद्दे या बदलक मानाधिकार के विनाश करता है? वह तो एल्जिबाइडस (Alcibiades) की भाँति लोकतंत्र को 'सोचने योग्य पागलपन' (acknowledged madness) मानते हैं।

आजकल लोकतंत्र की अनेक प्रकार की आलोचना की जा रही है। प्रतिक्रियात्मक शक्तों और शांतिवादीय शक्तों ने ही उस पर आँसू बिये हैं। एकतरफ़ और जनता की समर्थक ने लोकतंत्र की बड़ी आलोचना की है। इनमें अनेक हिमायत या आलोचनाकार कार्य करते हैं। ताकि सुसंगत और बुद्धिमत्ता के अभाव में लोकतंत्र के अभाव का पड़ने पर निर्भीक आलोचना द्वारा निम्नलिखित कारणों से लोकतंत्र पर अपनी हमला मार लेंगे। जॉर्ज टॉलर क्रॉवेल (George Crowell) के आलोचनात्मक विचारों को, दूसरे पक्ष में, इस प्रकार व्यक्त किया है— लोकतंत्र के कि

उनका (जनसाधारणका) कल्याण किस बातमें है, न कि यह कि उन्हें क्या अच्छा लगता है। प्रत्यक्ष कार्रवाईमें विश्वास रखनेवाले प्रत्यक्ष कार्रवाईके समर्थनमें जो तर्क देते हैं उन तर्कोंको हर्नशा (Hearnshaw) ने इस प्रकार बतलाया है —

(१) पालमिष्ट मजदूर वर्गका पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं करता।

(२) औद्योगिक प्रश्नोंको मुलमानेके लिए राजनीतिक तरीके उपयुक्त नहीं होते।

(३) प्रत्यक्ष कार्रवाई अविश्वस्य और राजनीतिक कार्रवाईकी अपेक्षा अधिक शीघ्र की जा सकती है और वह अधिक प्रभावशाली होती है।

(४) अल्पसंख्यक वर्ग साधारणतया ठीक और बहुसंख्यक वर्ग गलत काम करते हैं।

इसलिए यह बहुसंख्यकोंके हित में ही है कि उनकी अवहलनाकी जाय और उन्हें दबाया जाय। प्रत्यक्ष कार्रवाईका एक रूप यह भी होता है जिसमें औद्योगिक दक्षिण का पूरा-पूरा प्रयोग किया जाता है। यह अल्पसत्त (oligarchy) और निरकुशताके परस्पर विरोधी सिद्धान्तोंकी स्पष्ट घोषणा है।

एच० जी० वेल्स (H G Wells) का विश्वास है कि संसदीय लोकसत्त (parliamentary democracy) के राजनीतिक तरीकों और राजनीतिकोंके प्रति अविश्वास और असन्तोष बढ़ता जा रहा है। उनका कहना है कि अब काम चुनावों द्वारा सरकार बनानेकी पद्धतिका आद्द समाप्त हो गया है और सोक्रेत्र प्रयालोचनके एक ऐसे युगमें प्रवेश कर रहा है जिसमें हमारी आजकी संसदों संसदात्मिक संस्थाओं और हमारे वर्तमान राजनीतिक जीवनका समाप्त हो जाना अनिवार्य है। वेल्स इसका मूल कारण सार्वजनिक मसलोंके प्रति जनसाधारणकी उदासीनता, अज्ञानता और असमर्थतामें पाते हैं। उनका विश्वास है कि साधारण गतदाताको अपने मसकी बिल्कुल परवाह नहीं होती।

सोक्रेत्रके विरोधियोंमें वे लोग प्रमुख हैं जो 'सर्वोत्तम' (elite) द्वारा शासनके सिद्धान्तमें विश्वास रखते हैं। उनका कहना है कि लोकसत्तकी नींव एकदम गलत मान्यताओं या आदतों पर आधारित है। सोक्रेत्र यह मान लेता है कि सामान्य नागरिक राजनीतिक मसलों और उनकी जटिलताओंको समझता है और उसमें स्वयं अपना शासन करनेकी क्षमता है। सर्वोत्तम द्वारा शासन सिद्धान्तको माननेवाले इन दोनों बातोंको गलत बताते हैं। उनका कहना है कि समादातर लोग राजनीतिक प्रश्नोंको नहीं समझते और वे स्वयं अपना शासन करनेमें बिल्कुल अयोग्य होते हैं। इसलिए शासनकी बागडोर थोड़ेसे बुद्धिमान् और समय सागोंके हाथोंमें ही होनी चाहिए।

इन सब आलोचनाओंके डाले हुए यह मान लेना मूर्खता होगी कि लोकसत्तका अविष्य उज्ज्वल है और हमारी सभी सामाजिक और राजनीतिक बुराइयोंके लिए लोकसत्त रामबाण सिद्ध होगा। यह निम्नबोध कहा जा सकता है कि यदि हम

सौक्ष्मिक उन दावाका दूर नहीं करने जो अधिकाधिक रूप से सामने आते जा रहे हैं तो सौक्ष्मिकी अर्थ ही अपना स्थान किसी अन्य प्रणाली-प्रणाली को देना होगा।

२ सौक्ष्मिकी अर्थ (The Meaning of Democracy)

सौक्ष्मिक केवल सरकार या शासनका स्वरूप ही नहीं है। यह राज्यका एक प्रकार और समाजकी एक व्यवस्था भी है। सौक्ष्मिकी के समर्थकोंने भी कभी-कभी उसकी व्याख्या केवल शासनके एक प्रकारके रूप की है। उदाहरणार्थ ज० आर० लोवेल (J. R. Lowell) कहते हैं कि सौक्ष्मिक शासनके दोनमेकेवल 'एक प्रयोग है। निम्न इसकी परिभाषा जनताके लिए, जनता द्वारा जनताका शासन' कहकर करते हैं। सीले (Seeley) कहते हैं कि सौक्ष्मिक वह शासन है जिसमें हर व्यक्ति भाग लेता है। डिसी (Dicey) सौक्ष्मिकी सरकारका एक ऐसा स्वरूप बताते हैं जिसमें जनताका एक बड़ा भाग शासन करता है। अपन महत्त्वपूर्ण प्रायः आधुनिक सौक्ष्मिक (Modern Democracies) में सॉट वादस्य भी सौक्ष्मिकी सरकारका एक प्रकार ही मानते हैं। इस सबको देखते हुए हम कह सकते हैं परमात्मा हमारे मित्रकी रण मानी करे हम अपने शत्रुकोसे निबट सग।

सौक्ष्मिक केवल सरकारका स्वरूप नहीं है। ऐसा भी नहीं है कि सौक्ष्मिक पहले सरकारका स्वरूप हो और बाद में कुछ और। सौक्ष्मिकीय सरकारके लिए सौक्ष्मिकीय शासनका होना जरूरी है। सौक्ष्मिकीय शासनके बिना सौक्ष्मिकीय सरकार नहीं हो सकती। पर सौक्ष्मिकीय शासनके लिए सौक्ष्मिकीय सरकार जरूरी नहीं है। एक सौक्ष्मिकीय शासनमें सरकार सौक्ष्मिकीय निरक्षर अथवा राजतंत्रिय किसी भी प्रकार की हो सकती है। वह चाहे तो सर्वोच्च अधिकार-सत्ता किसी एक अधिनायकके हाथमें सौं दे जैसा कि अदिकारम सभ्य-जातन राष्ट्रपति को अधिकार देकर किया जाता है। जैसा कि हुनां ने कहा है सौक्ष्मिकीय शासन का मतलब केवल इतना है कि पूरे समाजको अन्तिय शासनमें प्रति भाग लेनी है और वह सभी मामलों पर अन्तिय नियंत्रण रखता है। 'शासन एक प्रकारके रूप सौक्ष्मिक किसी सरकारको नियुक्त करने अथवा नियंत्रण करने और उसे बरताने करनेकी एक पद्धति मात्र है।

शासनकी एक पद्धति और शासनका एक प्रकार होनेके साथ-साथ सौक्ष्मिकीय शासन की एक व्यवस्था भी है। एक सौक्ष्मिकीय शासन वह शासन है जिसमें सत्ता और अधिकारकी भावना प्रयत्न होती है। पर यह जरूरी नहीं है कि गण शासनमें सौक्ष्मिकीय शासन का सौक्ष्मिकीय सरकार ही हो। मुस्लिम शासन आदि पर सौक्ष्मिकीय शासन है यद्यपि शासनका शासन न सौक्ष्मिकीय शासन का शासन है और न सौक्ष्मिकीय शासन। शासनशासनका शासन शासन करनेका शासनकी शासन करना है परन्तु शासनकी शासनकी शासनमें शासन और शासन का सौक्ष्मिकीय शासन के विरुद्ध है।

लोकतंत्र शासन व सरकारकी एक पद्धति राज्यका एक प्रकार तथा समाजकी एक व्यवस्था होनेके अतिरिक्त और भी बहुत कुछ है। उसका सम्बन्ध उद्योगके क्षेत्रसे भी रहता है। आज अनेक लोग ऐसे हैं जिनका कहना है कि लोकतंत्रकी विजय तब तक पूरी नहीं होगी जब तक कि उद्योगोंका भी पूरा-पूरा लोकतंत्राकरण नहीं हो जाता। उनका कहना है कि सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रमें तो लोकतंत्र ने बड़ी प्रगति की है पर आर्थिक या औद्योगिक क्षेत्रमें उसकी प्रगति बहुत कम है। इनमें से कुछ लोग समाजवादको लोकतंत्रकी अगली अवस्था बताते हैं। उनका यह कहना चाहे ठीक हो या गलत इतना तो हमें मानना ही हागा कि कोई भी समाज अपनेको तब तक पूर्ण रूपसे लोकतंत्रीय नहीं कह सकता जब तक जीवनके कुछ क्षेत्रोंमें वह लोकतंत्रीय पद्धति का उपयोग करता है और अन्य क्षेत्रोंमें स्वैच्छाचारी पद्धतिका।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उसके सम्बन्धमें मैक्सी (Maxey) लिखते हैं कि २०वीं शताब्दीय लोकतंत्र एक राजनीतिक मिथान्त एक शासन-पद्धति या एक सामाजिक व्यवस्था मात्र नहीं है। यह एक ऐसी जीवन-पद्धतिकी खोज है जिसमें म्यूनतम मतप्रयोग या दबावसे व्यक्तिकी स्वतः प्रति स्वतंत्र बुद्धि और उसके काम-कलापका मेल बैठाय जा सके और यह विश्वास है कि ऐसी पद्धति समग्र मानव जाति के लिए आदर्श पद्धति होगी जो मनुष्यकी प्रकृति और विश्वकी प्रकृतिके साथ अधिकतम सामंजस्य स्थापित करेगी (Political Philosophies पृ० ६९०)।

लोकतंत्रके प्रत्यक्ष और प्रतिनिधिमूलक स्वरूप संकीर्ण अर्थात् लोकतंत्र अनेक लोगों द्वारा शासन है।^१ लोकतंत्रका आरम्भ यूनानके प्राचीन नगर राज्योंमें हुआ था। इन सभी नगर राज्योंको पूर्ण स्थानीय स्वशासन प्राप्त था। यूनानके इन नगर राज्योंने राजतंत्र निरंकुश शासन कुलीनतंत्र बर्गतंत्र और लोकतंत्र आदि सरकारके विभिन्न रूपोंके प्रयोग किये थे। इस प्रश्न पर भी पर्याप्त विचार किया गया था कि इनमें कौन सबसे अच्छा है। सभीके पक्ष और विपक्षमें दिये गये तर्कों पर विचार करनेके बाद अरस्तू ने अपना निर्णय नगर राज्योंमें प्रचलित लोकतंत्रके सममित स्वरूप (polity or a moderate form of democracy) क पक्षमें दिया था। यूनानके नगर राज्योंका लोकतंत्र भूद्वयवा प्रत्यक्ष लोकतंत्र था। सभी स्वतंत्र व्यक्ति (free men) आम समाजमें एकत्र होते विधियाँ बनाते और उन्हें कार्यान्वित करते राजभूता से मिलने और जूरियोंकी भाँति काम करते थे। इस प्रकारके लोकतंत्रका पुनर्जन्म मध्ययुगमें इटलीके नगर राज्योंमें हुआ था। स्विट्ज़रलैण्डके फॉरेस्ट कॅन्टन (forest cantons) में भी प्रत्यक्ष लोकतंत्र था और आधुनिक समय तक बना हुआ है। १८ वीं

^१ इस प्रकार वाइस लोकतंत्रका अर्थ है 'एक ऐसी सरकार जिसमें योग्य नागरिकों के बहुमतकी इच्छासे शासन होता है' के अर्थमें करते हैं। यह योग्य नागरिक जनता का बहुत बड़ा भाग—माटतौर पर तीन चौथाई भागसे अधिक—होते हैं जिससे कि जनताकी शारीरिक शक्ति उससे मत देनेकी शक्तिसे बराबर हो जावे (Modern Democracies, ल० १ पृ० २६)।

शासकीय हस्तोक्त प्रकारके शासनके प्रबन्ध समर्थक थे। वह अप्रत्यक्ष अथवा प्रतिनिधिमूलक सोवतंत्रको बुरा मानने लगे। पर अधुनिक परिस्थितियोंमें प्रत्यक्ष शासनकी बड़े पैमाने पर लागू करनेके मार्गकी कठिनाइयोंको वह महसूस करते थे। वह कहते हैं कि गठ सोवतंत्रके लिए अनेक चीजों की एक साथ आवश्यकता है और इन चीजोंका एक साथ होना कठिन है। ये आवश्यकताएँ निम्नलिखित हैं

(१) एक छोटा राज्य जिसके नागरिक आसानीसे एक जगह एकत्र हो सकें और जिसमें हर नागरिक दूगरे नागरिकोंको आसानीसे पहचान सकें

(२) व्यवहारकी आर्थिक सामग्री

(३) एक प्रतिष्ठा और सम्पत्ति पर्याप्त समानता और

(४) बहुत कम विलास या विलास-हीनता।

हमारा अनुभव यह सिद्ध करता है कि गठ और प्रथम सोवतंत्र एक ऐसा मस्य है जो प्राप्त नहीं किया जा सकता। अप्रत्यक्ष या प्रतिनिधिमूलक सोवतंत्र ही आज हमारे लिए सम्भव है। इसके अनुसार वास्तविक शासन जनताके हाथोंमें लेकर उनका प्रतिनिधित्वके हाथोंमें सौंप दिया जाता है। कुछ आधुनिक राज्याय प्रथम सोवतंत्र (referendum) लोक आदेश (initiative) और प्रत्याख्यान (recall) की प्रणालियाँ ही आजकल प्रथम आवश्यकता निरस्तम स्वरूप हैं। परन्तु ये तरीके सब जगह काममें नहीं लाये जा सकते। कुछ अन्य प्रणालियाँ जो वहाँ अपि प्रथम हैं ये हैं—निर्वाचक-मन्त्रोंको ब्यापक बनाना बहुमत दलके प्रति सरकारको द्वाभेदार बनाना बार-बार चुनाव करना और स्थानीय स्वाशासनकी व्यवस्था। सोवतंत्र और स्थानीय शासन अनिवार्य एक ही चीज नहीं है यद्यपि द्वितीय और उत्तरे राजनीतिक आन्दोलनोंके अन्तर्गतके दूसरे देशोंमें सोवतंत्र और मस्य एक दूसरे से अविच्छिन्न रूपमें जुड़े हुए हैं।

सरकारके प्रकार राजतंत्र कुलीनतंत्र और सोवतंत्रमें सरकारोंके प्राचीन बर्गीकरणका आज हमारे लिए अपि महत्व नहीं है। आजकलकी अधिकतर सरकारें विधिवत प्रजातन्त्री होती हैं। उनमें राजतन्त्रीय कुलीनतन्त्रीय और मातृतन्त्रीय तत्त्व मिला मिला पायाये गये हैं। द्वितीयक अवस्थान उपरले लेखन पर राजतन्त्रात्मक मान्यता है पर मौलिक रूपमें वह सोवतन्त्रात्मक है और साथ ही कुलीनतंत्र की भी उस पर चट्टी टपन है। अनुभव यथातः है कि एक स्वयं शासनतंत्र कुलीनतंत्रकी भी स्थान मिलना चाहिए। एक कुलीनतंत्रका आधार सम्यक्ति नहीं अपितु बहिः सामर्थ्य और शक्ति होना चाहिए। आज का चर्चा है कि आजकल सभी सरकारें कुलीनतन्त्रीय होती हैं क्योंकि पहले काय ही शासनका संभार करते हैं।

आजकल सोवतन्त्रात्मक सरकारें विभिन्न प्रकारकी हैं। आजकल है

१. मातृतन्त्रीय सरकारें स्वयं या नायकत्वक राजतंत्रके अधीन गूँसती हैं।

२ वे नम्य (flexible) या अनम्य (rigid) सविधानके अधीन रह सकती हैं।

पर उन सबका आधार सार्वजनिक सम्प्रभुताका सिद्धान्त ही होता है। इसके परिणाम स्वरूप इन सबमें राजस्व वसूल करने और राज्यकी विभिन्न सेवाओंमें उसे खर्च करनेका अधिकार जनताके प्रतिनिधियोंको ही रहता है।

लोकतन्त्रका व्यापक अर्थ अपने व्यापक अर्थमें लोकतंत्र 'एक राजनीतिक व्यवस्था' एक नैतिक धारणा और एक सामाजिक परिस्थिति है। लोकतंत्रका अर्थ सामान्य मनुष्यमें विश्वास और निष्ठा है। अथवा ए० डी० लिण्डसे (A.D. Lindsay) के कथनानुसार इसका अर्थ है कि सभी मनुष्योंका महत्त्व होता है। कोई भी किसी दूसरेकी उद्देश्य सिद्धिका साधन-मात्र नहीं है। इस सम्बन्धमें काण्ट का प्रसिद्ध सूत्र यह है 'ऐसा व्यवहार करो जिसमें तुम्हारे अपने या किसी अन्य व्यक्तिके मनुष्यत्वका उपयोग हर हालतमें एक उद्देश्यके रूपमें ही सके और उसका उपयोग एक साधनके रूपमें कदापि न हो। १७ वीं शताब्दीके एक कम प्रसिद्ध लेखकके शब्दोंमें ब्रिटनके गरीब से गरीब व्यक्तिको भी वंसा ही जीवन व्यतीत करना है असा कि सबसे धनी व्यक्ति को। (५१)

व्यक्तित्वका महत्त्व लोकतंत्रका सार है परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि सभी व्यक्ति एकसमान या बराबर हैं। लोकतंत्रमें समानताके सिद्धान्त या समानताकी भावनाका प्राकृतिक असमानताके साथ सामंजस्य करनेका प्रयत्न किया जाता है। लोकतंत्र इस बातकी कोशिश करता है कि एक ऐसी सामाजिक व्यवस्थाकी स्थापना हो जिसमें व्यक्तित्वके विकास और अभिव्यक्तिके लिए अनुकूल अवसर प्राप्त हो सकें।' सी० डी० बर्न्स (C. D. Burns) कहते हैं कि व्यवहारमें लोकतंत्र यह मानता है कि सभी व्यक्ति समान हैं और इस भावनाका प्रयोग सर्वोत्तम व्यक्तियोंकी ओरके लिए किया जाता है।

प्रो० स्टीम का कहना है कि इस दृष्टिसे देखने पर लोकतंत्र एक धार्मिक सिद्धान्त है और लोकतंत्रीय जीवन ही सच्चा धार्मिक जीवन है। हमारा विश्वास है कि लोकतंत्र मानवताके प्रति हमारे उसाहका व्यापहारिक प्रदर्शन है। स्वतंत्रता, समानता और बहुत्वके परस्पर विरोधी प्रतीत होनेवाले सिद्धान्तके सम्बन्धकी ओर यह एक ठोस प्रयत्न है। इसका सद्य समाजके हर व्यक्तिके लिए यह सम्भव बनाना है कि वह ध्याशक्ति अपने लिए सर्वोच्च कल्याणकी सिद्धि कर सकें। हम सर फ़िट्जजम्स स्टीफ़ेन (Sir Fitzjames Stephen) के इस कथनसे सहमत नहीं हैं कि 'स्वतंत्रता समानता और बहुत्वके द्वारा जिस विचार क्रमकी ओर संकेत किया गया है उसके प्रति विवेकपूर्ण उसाहके लिए कोई अवसर छेप नहीं रह जाता क्योंकि अनेक ऐसी बातें हैं जिनके बारेमें मनुष्यको स्वतंत्रता मिलनी ही नहीं चाहिए। मनुष्य मौलिक रूपसे असमान हैं वे परस्पर बहु तो हैं ही नहीं और यदि हैं तो ऐसे प्रतिबन्धोंके साथ कि उनके बहुत्वका दावा महत्वहीन हो जाता है।

३ लोकतंत्र के समयन में ग्रास्रीय तर्क (The Classical Case for Democracy)

सोकतंत्रके व्यावहारिक दार्श्यों पर धीरे-धीरे देखने लिए ध्यान न देकर हम यह देखें कि सोकतंत्रिक सिद्धान्तके पगमें कौनसे तर्क दिये जा सकते हैं। ये तर्क ये हैं

- (१) पूर्ववधान-मूलक तर्क (The precautionary reason)
- (२) मनोवैज्ञानिक तर्क (The psychological reason)
- (३) शिक्षा सम्बन्धी तर्क (The educational reason)
- (४) नैतिक तर्क (The moral reason) और
- (५) व्यावहारिक तर्क (The practical reason) ।

प्रथम तीन तर्कोंकी पूरी-पूरी विवेचना प्रो० हॉकिंग (Prof W E. Hocking) ने इस प्रकार की है

(१) पूर्ववधानमूलक तर्क : लोकतंत्र हम इस बातकी गारण्टी देता है कि समाजके हर व्यक्तिकी इच्छा पर समोचित विचार किया जायगा और सरकार द्वारा जो कुछ भी किया जायगा उसमें किसी भी व्यक्तिकी बराहतेना नहीं की जायगी पर इसका अर्थ यह नहीं है कि लोकतंत्र हर व्यक्तिकी इच्छाओंको पूरी करने का बचन देता है क्योंकि यह तो किसी भी समाज में सम्भव नहीं है। इसका मतलब तो यह है कि 'शरीर से शरीर व्यक्ति' को भी अपनी इच्छा प्रकट करने की उतनी ही स्वतंत्रता मिलेगी जितनी 'धनीसे धनी व्यक्ति' का। यदि दगता ही अच्छी सरकारकी एकमात्र बसौगी होती तो कर्मचारीतंत्र या तानाशाही लोकतंत्रकी अनेका अधिक अच्छी व्यवस्थाएँ होतीं। पर कार्यदगता ही एकमात्र बसौगी नहीं है। नागरिकोंको क्या सम्भव सर्वोत्तम बनानेवाली सरकार ही सर्वोत्तम सरकार है। यदि हम अपने शासकों या बचन ठीक-ठीक कर सके तो निरंकुश-शासन या कर्मचारीतंत्र बहुत सन्तोषजनक बचने काम कर सकता है। पर इस प्रकारकी सरकारमें कठिनाई यह है कि वे समाज के किसी वर्गके विरुद्ध अपने महानुमूर्ति नहीं रखतीं। निरंकुश शासन या कर्मचारी तंत्रमें व्यक्तियों और व्यक्ति मनुष्योंकी जगह-जगह बच हो सकता है पर तब समाज पर उगता कोई प्रभाव नहीं पड़ता। पर दृगरी और लोकतंत्रमें अपने-अपने सैद्धान्तिक रूपमें यदि एक व्यक्तिका भी बच होना है तो योग समाज को भी बच उठाना पड़ता है। दूसरे वर्गोंमें निरंकुश शासन या कर्मचारीतंत्रमें समाजके कुछ भागोंकी उन्नति की जाती है। इसके विरुद्ध यह कहा जाता है कि लोकतंत्र अपने सभी वर्गोंकी इच्छाओं और उनके बचोंका अनुभव करता है। निरंकुश शासन तथा कर्मचारीतंत्रमें सरकारकी ओरसे जनताको अनेक आने और बिना-बिना आने हैं बिना शासन करता उसके लिए बिना-बिना होता है पानु जनताको इच्छा और सम्मतिको बनानेका प्रयत्न बहुत कम किया जाता है। प्रो० हॉकिंग का कहना है कि लोकतंत्र लोक व्यक्ति और देशके बीचका सम्बन्ध मजबूत कर देता है। उसके बहिर्दानी व्यवस्थाओंकी

जितनी सख्या हाती है उसनी अन्त गामा सम्बन्धोंकी भी होती है। अर्थात् केन्द्र और व्यक्तिके बीच सम्बन्ध सूत्रोंका आदान प्रदान होता रहता है। एक पूर्ण लोकतन्त्रम कोई भी यह शिकायत नहीं कर सकता कि उसे अपनी बात बहनेवा अवसर नहीं मिला। (ए० एल० लविल)

(२) मनोवैज्ञानिक तक जैसा ऊपर कहा जा चुका है कार्यक्षमता ही प्वाप्त नहीं है। हृदयदीन कार्यक्षमता ने ही रोमको समाप्त कर दिया था। हर प्रकारकी सरकारमे हम इस बातका प्रयत्न करते हैं कि शासन विषयज्ञा द्वारा हा। पर विगपज्ञ अनन्ताकी पूरी इच्छाओ व सम्मतियोंको नहीं जानने। विषयज्ञता मस्तिष्कको जकड़ देती है। विगपज्ञ विषयके अपने पक्षको भली भाँति जानता है। पर उसे हमेशा इन बातका ज्ञान नहीं रहता कि उसकी तदबीराका जनता पर सामान्य रूपस क्या प्रभाव पडता है। दद सो वही समक्षता है जिसके पैरमे काटा चुभता है। एक अच्छे शासन के लिए तो यही आवश्यक है कि विगपज्ञो और सार्वसाधारण मनुष्योंके बीच सहयोग और सामंजस्य हा। लोकतन्त्र इस आवश्यकताको सबसे अच्छे ढंगसे पूरा करता है। प्रो० हॉकिंग तो यहाँ तक कहते हैं कि केवल अत्यन्त उच्चकोटिके गिलित मनुष्य द्वारा शासित होना एक मकड़ है। ऐसे शासकके लिए एक भावसूक्ष्म सिद्धान्तवादी हो जाना और जीवनकी ठोस परिस्थितियोंसे परे दूरकी ऊँची उठान लना बहुत स्वाभाविक है।

यदि एक क्षणके लिए हम विभिन्न व्यवसायोंकी ओर ध्यान देते हैं तो हम पता चलता है कि इन क्षणके विशेषज्ञ जब सामान्य जनता पर अधिकधिक भरोसा करने लगते हैं। जो डॉक्टर जब तक एक अधिनायककी भाँति काम करता था वह अब रोगी को सहयोगी बनाकर इस बातका प्रयत्न करता है कि रोगी स्वयं अपनेको अच्छा करने का प्रयत्न करे। इसी प्रकार संगीतका विशेषज्ञ एक और जनताको संगीत-शास्त्रके नियमोंको सिखाता है। साथ ही दूसरी ओर इस बात पर भी ध्यान देता है कि जनता जैसा संगीत पसन्द करती है और जनतासे यह नहीं बहता कि वह जैसा संगीत पसन्द करे। और इसी प्रकार लोकतन्त्र भी साधारण व्यक्तिका सावजनिक समस्याओं के सार्वजनिक हिस बूझनेमें सरकारसे सहयोग करनेके लिए आमन्त्रित करता है। सावजनिक पटला काम यह है कि वह जनताके प्रदान 'शक्ति' का समाधान करे और जब वह ऐसा कर देता है तभी सरकार और जनताके बीच एक सद्दानुभूतिपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। व्यक्ति चुपचाप हीनताके देनवालेके बजाय एक सक्रिय सहयोगी बन जाता है। प्रो० हॉकिंग कहते हैं 'लोकतन्त्र चेतन और उपचेतन मनकी एकता है (Democracy is the union of the conscious and subconscious mind)।

(३) शिक्षा-सम्बन्धी तर्क लोकतन्त्र सार्वजनिक शिक्षाके क्षेत्रम एक व्यापक प्रयोग है। यह जनसाधारणम अधिष्ठान पैदा करता है और उसका ज्ञान बढ़ाता है। लोकतन्त्र उन साधन एक उच्चकोटिकी मनोवृत्ति पैदा करता है जिन पर वह शासन

करता है। जब आम चुनाव होता है तब सभी युक्तिगत मतोंको अपना अपना प्रचार करनेवा अवसर मिलता है। समस्याआका सभी दृष्टिकोणोंसे विवेचन होता है और आ बातें निजी या वे मात्रात्मिक हो जाती हैं। भाषण श्रिय जाते हैं सेख मिल जाते हैं कार्यकर्ताकी स्वरूपगत तयार की जाती है और विभिन्न नानिया पर प्रकाश डाला जाता है। फलत मरकार व शासन-सम्बन्धी समस्याआके विषयमें जनताका मान बढ़ा बढ़ जाता है। कुछ ही ना या सप्ताहमें जनता स्वतन्त्रीन समस्याओंमें भली नीति परिचित हा जाती है। काफी विचार विमर्श सोच विचार और निष्पत्ति या मतगणना निष्पत्ति करने हैं कि किसके पक्ष में मत श्रिया जाय। सभी क दृष्टिकोण और विचार परिवर्तित स्पष्ट और शुद्ध हो जाते हैं। आरम्भमें यदि जिनके व्यक्ति उनमें ही विचार होत हैं ता अन्तमें हम एक साक्षर-सम्मति या साव अनिष्ट इच्छा तब पहुँच जाते हैं। हर व्यक्तिका मस्तिष्क अधिक व्यापक और विवक्षित हा जाता है। साक्षरताय शासनका घामा घीमा प्रभाव उसमें भाग लेने काय। पर यह होना है कि उनका मानसिक स्तर ऊपर उठ जाता है। सी० डी० बर्न विमर्श हैं सभी प्रकारका शासन शिशा प्रदान करनेकी एक पद्धति है पर आम शिशा ही सर्वोत्तम शिशा है इसलिए सर्वोत्तम शासन स्वशासन है जो साक्षरता ही है।

(४) नतिक तर्क सोचनेय जनताका नैतिक उद्योग करता है। सोक्षरता इस शिदान्त पर आधारित है कि किसी व्यक्तिके लिए स्वयं अहित वस्तुका मूल्य दूसरे द्वारा दी गयी वस्तुके मूल्यसे बड़ी अधिक है। सोक्षरता स्वायत्तम्बन पक्ष-श्रामी और व्यक्तिगत उत्तरदायित्वकी भावनाको सबसे अधिक बल देना है। जे० एम० मिन कहते हैं कि सोक्षरता सबसे बड़ा गुण यह है कि अत्यन्त भी शासन प्रणालीकी ओगा साक्षरता एक उत्तम और उच्च जाटिके राष्ट्रीय चरित्रका विभाग करता है। संयुक्त राज्य अमेरिकामें सोक्षरताके कारण मानव सहानुभूतिका विस्तार और विभाग हुआ है। साक्षरताके विभागके परिणाम स्वल्प अल्पेकाम साक्षरताकी भावना बड़ी है और साक्षरताके अनुसार जनताके लिए शिशाकी सुविधाजनक व्यवस्था की गयी है। प्रगतिश्रम सचिव टील ही कहते हैं कि किसी भी सरकारकी उत्तमताकी बगौनी शक्ति और व्यवस्था अधिक शक्ति या श्रिय नहीं है बल्कि यह बगौनी है राज्य व्यवस्थाकी विषय समनेकाला आधारितोंका बल चरित्र शिशा निर्माण सामन प्रणाली करनी है। अन्तमें करने सबसे अपना सामन यह है जो जनताकी नैतिकता, ईमानदारीकी और समने परिधम आमनिर्धारण और शासनको दृढ़ बनाता है। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि सोक्षरता अपनी सर्वोच्च शक्तिमें हम बगौनी पर बला उतरता है। साक्षरता कहते हैं कि साक्षरताके मतविचार तब शक्तिश्रमों की शक्ति बल जाती है। हम यह कहते हैं कि सोक्षरता अनुष्कके सर्वोच्च विभाग में गहारा है। शिशा भी अत्यन्त सरकारके सामनय आम-निर्णय इनकी सामन नहीं है शिशा की साक्षरता में।

(५) व्यावहारिक तर्क व्यावहारिक दृष्टिकोणसे लोकतंत्रके निम्नलिखित साम हैं

(क) लोकतंत्र का प्रमकी भावनाको बढ़ावा है। जिस व्यक्तिका मताधिकार प्राप्त नहीं होता है उसका राजनीतिक प्रश्नोंकी ओरसे उदासीन हो जाना स्वाभाविक है। साधारण मनुष्य अपने देशकी समस्याओंके प्रति सच्ची रुची इसलिए लेता है कि वह जानता है कि यदि तत्कालीन सरकार लोकमतकी ओर ध्यान नहीं देती है तो उसे सुरन्त ही बदला जा सकता है। लेबलेये का कहना है कि फ्रांसके लोगों को क्रान्तिके बाद जब शासनमें भागीदार बनाया गया तभीसे उन्होंने फ्रांसको सख्ब हृदयसे प्यार किया उसके पहले नहीं। अन्तिके बादसे ही फ्रांसकी जनता कट्टर देश भक्त है।

(ख) लोकतंत्र देश प्रमकी भावनाको दृढ़ करता है और इस कारण क्रान्तिके सतरेको कम करता है। लोकतंत्रका आधार जनताको समझा-बुझाकर उसकी स्वीकृतिसे शासन करना है। हर दूसरे प्रकारका शासन शक्ति पर ही आधारित होता है शक्तिका प्रयोग चाह कम मात्राम हो या अधिक मात्राम। लोकतंत्र बिचार विमर्श और पर्यालोचनमें विश्वास करता है और यही ढंग अन्तम सफल होगा। जैसा हुनेशां कहते हैं 'जनताको शिक्षित करनेमें और अपने मतानुकूल बनानेमें समय चाहे जितना लग जाय पर केवल शिक्षा और मत्वपरिचर्चनक द्वारा ही कोई उद्देश्य अन्तिम रूपमें सफल हो सकता है। जनप्रिय सरकारके लिए यह एक अनन्त गौरवकी बात है कि उसका आधार भाषण-स्वातन्त्र्य समा करनेकी स्वतन्त्रता और सामूहिक कार्य है।

इसके अतिरिक्त लोकतंत्र ही एक ऐसी शासन पद्धति है जिसमें व्यवस्था और प्रगति दोनों साथ-साथ आसानीसे चल सकती है। इसका क्रान्तिकी सम्भावना पर एक और रोक लगती है। एताना ग्राहीमें व्यवस्था तो रहती है पर अधिक प्रगति नहीं होती। जो कुछ थोड़ी बहुत प्रगति होती भी है उसमें केवल एक व्यक्ति या एक अल्प-संख्यक वर्गका ही हाथ रहता है और उसके पीछे सम्भवत जनताका कोई समर्थन नहीं होता।

लोकतंत्र क्रान्तिको एक ओर ढंगसे रोकता है। वह ढंग है समानताके सिद्धान्त पर जोर देना। लोकतंत्रमें कोई गहरा सामाजिक विभेद नहीं होता और प्रतिभाके लिए बिधासका रास्ता खला रहता है। अय प्रकारकी शासन व्यवस्थाओंमें जो सामाजिक असमानता और सामाजिक असन्तोष रहता है वह उचित अवसर पाने पर क्रान्तिकारूप धारण कर सता है।

(ग) कुछ लेखकोंका दावा है कि अय किसी प्रकारकी शासन प्रणालीकी अपेक्षा लोकतंत्रमें कार्यदक्षता अधिक होती है। उनका तर्क यह है कि 'अन्य किसी प्रकारकी शासन प्रणालीकी अपेक्षा आमचुनाव साधजनिक नियंत्रण और सार्वजनिक उत्तराधिकारके उच्चकोटिकी कार्यदक्षता अधिक सम्भव है (२३ ३९)।

(घ) साधजनिक इच्छा या लोक-सम्मतिके सिद्धान्तका व्यावहारिक अर्थ यही है

किं यह अपनेरा सोकृतनात्मक संगठनके रूपमें अभिव्यक्त करे। हम इस बातको अस्वीकार नहीं करते कि कुछ विनाय परिस्थितियोंमें लोक-सम्मतिकी सर्वोत्तम अभिव्यक्ति केवल एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियोंके मतसे हो सकती है पर, सामान्य रूपसे लोक-सम्मति या सार्वजनिक इच्छाके विना लोकतंत्रीय शासनकी आवश्यकता है।

४ लोकतंत्र के विरुद्ध तर्क

(The Case Against Democracy)

वैद्वान्तिक रूपसे लोकतंत्रम चाह जितने गुण हूँ पर इसमें सन्देह नहीं कि दैनिक व्यवहारमें इसमें अनेक बराहियाँ भी मिलती हैं। इसके समर्थकोंने आरम्भमें इससे जो आगाएँ की थी वे पूरी नहीं हुई हैं। लोकतंत्रकी जो अनेक आलोचनाएँ उसके अनुजों और मित्रों दानाके द्वारा की गयी हैं उनका मूल्यांकन हम इस समय नहीं करेंगे। हम केवल उनमें महत्त्वके अनुसार उनकी पचा करेंगे।

(१) आरम्भमें लोकतंत्र पर कुलीन वर्गोंमें प्रहार हुए। बहुत-से लोगोंकी धारणा थी कि लोकतंत्रका मतलब 'उत्तरदायित्वहीन भीड़का शासन' है अस्तु लोकतंत्रको सार्वधानिक शासनका प्रष्ट रूप मानते थे। मिन बहुमतकी निरकुण्ठासे मयभीत थे। लेकी (Locky) का विचार था कि लोकतंत्र स्वतंत्रताके विरुद्ध है। आज भी ऐसे बहुत-से लोग हैं जो कहते हैं कि लोकतंत्रम गुल्बी अन्धा मूल्यांकन अनावश्यक और अनुचित महत्त्व दिया जाता है। मत गिने जाते हैं परल नहीं जाते। विनाय प्रतिगण विवेकपूर्ण निर्णय और विद्यमताको बहुत कम महत्त्व दिया जाता है। हर व्यक्तिका हर दूसरे व्यक्तिसे बराबर मानना ही लोकतंत्रका आधार है। हमका व्यावहारिक परिणाम यह हाता है कि शासन मून अनजान अतिगिठ और आयोग्य व्यक्तियोंके हाथमें चला जाता है। लोकतंत्र मस्याका अत्यधिक महत्त्व देता है। हममें लोगोंके सिर ही गिने जाते हैं और हम बातकी बिना मद्दा की जाती कि शासकियोंके भीतर क्या है। लोकतंत्र भीड़का शासन है। यह सामान्यता और हीनता को बढ़ावा देता है (it exalts mediocrity and inferiority) लोकतंत्रमें बहुमत सर्वोपरि हाता है। मये ही बहुमतकी अल्पमतके मोट ही मत अधिक मिन हों। अल्पमतके पास अधिक ज्ञान और विवेक हाता भी उसकी अबरहेननाही जाती है। लोकतंत्रम प्रयाकर्तुं उत्तरदायित्वकी व्यवस्था कर लयता कश्चि है। आम जनता अल्प कार्यज्ञान और काली-कालीन पणधितार आदिसे उत्तरदायित्वका एकात्मतामें गहायता नहीं मिलती। लोकतंत्रका अल्प सामान्य व्यक्तियों द्वारा अर्थात् सीमित दक्षिणोपयाने व्यक्तियों द्वारा शासन है। इसमें भीड़-मनोवृत्ति प्रकट करनेका पूरा पूरा अवसर मिल जाता है। शासन सर है कि कबन कटिकाने अनुसरणीय आवाजोंमें बहु आनेवान और बुद्धिहीन लोगोंका शासन करनेका इन्में पूरा-पूरा अवसर रहता है। म तत्रम लोकतंत्रका मतलब अज्ञान शासन है (democracy in short, means anonymity)।

(२) कुछ अम लोग भिन्न दृष्टिकोणसे तर्क करते हैं। उनका कहना है कि लोकतंत्रका परिणाम होता है निरुप्ट कोटिका घगतत्र। टल्लौरण्ड (Talleyrand) लोकतंत्रका दुष्ट लोकाका कुलीनतत्र (an aristocracy of blackguards) मानत हैं। लोकतंत्रमे अधिकार सत्ता जनताको प्रभावित करन बाल चतुर ब्यक्तियां इधर उधर दाव-पच करनवालो और दनाके अधिपुरुषोक हाथाम रहती है। उच्च नाटिक नेता नहा चुने आत। नाग अपन स अच्छे लोगास ईप्या रखते हैं इसलिये वे समर्थ ब्यक्तियोंके बजाय जनप्रिय लोर्गोको अपना नेता चुनत हैं। इतिहासमे ऐसे उदाहरण भरे पड़े हैं जबकि लोगाने बुद्धो विल्सन और वेनजुलस (Venezelos) जैसे उच्च कोटिके ब्यक्तियोंका अस्वीकार करके मध्यम और निम्न कोटिके ऐसे ब्यक्तियोंको चुन लिया जो अपनेको लोकप्रिय बनानेमे बहुत चतुर थ। इसस यह सिद्ध होला है कि लोकतंत्रमे नेता बननेके लिए अपेक्षित गण यही है कि वह एक अच्छा मनोवैज्ञानिक हो समझोटा कर सकनवाला हो और आवश्यकता पड़ने पर स्वयं अपने सिद्धान्ताको छोड़ सकता हो। प्रायः समय और सामोदा ब्यक्ति पीछ छाड दिय जात हैं। परिणाम यह होता है कि योग्य और कुशल ब्यक्ति घनावके लिए सठे ही नही होले। लोकतंत्र के विरुद्ध निम्न हुए मक्सी (Maxey) कहते हैं कि लोकतंत्र बडी आसानीसे उत्तज नामक प्रचारको अधिपुरुषों और दबाव डालनेवाली कुटिल राजनीतिका शिकार हो जाता है।

लोकतंत्रके विरुद्ध यह भी कहा जाता है कि साधारण मतदाताको रायके मसलो में कोई रुचि नही हाती। जिन विषयों पर विचार हाता है उनमे से अनक विषयके बारेमें कोई साक-सम्मति या सामान्य दृष्टिकोण नही होता। अनेक लोकतंत्रीय देशोम मतदाताओंकी उदासीनता प्रसिद्ध है। जब कभी कोई चुनाव होता है तब लोगोको उनके कार्यालयों या दफतरोंसे जबरदस्ती मत देनेके लिए लाया जाता है। यह हिसाय लगाया गया है कि अमेरिकामें मताधिकार प्राप्त लोगोम स लगभग पचास प्रतिशत ही मत देते हैं।^१ अमेरिकाके एक राज्यमें किसी एक चुनावमे केवलछ प्रतिशत मतदाताओंने मत दिये थे। इस प्रकारकी उदासीनताका नतीजा यह होता है कि शक्ति कुछ ऐसे अधिवेकी सांगिके हाथमे घली जाती है जा लम्बे चौड़े बादों और झूठ-सच्चे तर्कोंसे जनता को बहलाने और उससे अनुचित लाभ उठानेके लिए हममा तैयार रहते हैं।

(३) इसी तर्कसे मिलता-जुलता एक दूसरा तर्क यह निया जाता है कि व्यावहारिक तौर पर लोकतंत्रका अम है राजनीतिक दलबन्दीस पैदा होनेवासी बुराईयां। राजनीतिक दल वास्तवमे एक अदृश्य घगतत्रका ही निर्माण करते हैं। लोकतंत्रके लिए दल ब्यवस्था अनिवार्य है पर इससे

^१ द्वितीय विश्व-युद्धके दिनोके बादसे आत्रके युगकी वर्तमान तनापनी-पूर्ण परिस्थितिके कारण स्थिति कुछ सुधार गयी है।

(क) धार्मिक शासन और अस्पृश्यता का प्रत्यान्त मितता है

(ख) राष्ट्रीय विनयोंको स्थानात् पुनरावम भी पयोग जाता है

(ग) मूट-मामाकी प्रथा पनपता है और

(घ) नतिक मान्यताका पठन हाता है (७ ख० १ प्र० ११)।

एतन् व्यवस्था दृष्टी मुमगटित हाता है कि जा ध्यस्ति अतन् विवेकका उपयान करना चाहता है उम एसा करन की स्वतंत्रता या ता मितनी ही नग या यून कम मितना है। उम न या अपिब एमे उम्मात्कारोंमे म विनी एकटा बनना हाता है जा या ता दुष्ट या मूल हात हैं और विनय स विमा एक का भी व पम महा करना। उम अतना विनय न या सीन एमी समस्याआका नकर करना हाता है विनयमे विमा एकका भी बहु समर्पन नहा करना। ए आर० लॉड (A R. Lord) का कहना है 'प्रतिनिधित्वके आलोचकोंका एत प्रथा सात्का राम जाननक नि ए इतनी अपिब यातिब जान पडता है कि उममे विमा ना अगमे मावजनिक इच्छाका सगे-सही प्रतिनिधित्व नहा हा सकता (२४ १६२)।

(४) पामीमी मगरक पगर सासनन की अयोग्यता का उपासना (cult of incompetence) मानत है। यनी विचार कुद एमे धीर नागाका भी है किमके हृदयमे सासननके विरुद्ध काद विरुद्ध एम भावना नहा है। कुद सात ता सन काम कहन है कि सासनन अप उभरणादि-वहान साकार है। बर यह भा करन है कि सासनन विवेकपूर्ण नीति निवारित नहा कर सकता। सासनन मविनाका पापता राष्ट्रीय मुलाका बनेतिक सम्बन्ध और बृत्नातिक मनमोमे विनय अतन बतन कमकार रता है। यह ता नीतिविद्या या पुनन अतिरिपत्र मात्का मानन है। सासननका आधार बत ही कमकार हाता है बरकि इयका आधार सामान्य भीड़ है जा मृतक तथा भादुक हाता है और भावनकी बाइमें बहु जनी है। साधारण लोग बतन अपिब सर्व-विरुद्ध महा करने। आत्र बे किमी अविष्का प्रत्या करके उमे काइमान पर बहा सासन है तो दुमरे नि उमे बूढकी मापीमें बजतनेको तदार हो जाने है। विद्वानों और अविद्यता दोनोंके ही बारेमें उनका धारणाएं बर अस्मिन् और अचन हाता है। किमी सिपर और सामान्य-मूलक प्रत्याम व प्रतिप महा हात। कर्मी-कपी के आर्माका और बीर-मुवाकी भावनमे प्रति हाते है 'राष्ट्राक मातम विनय' रैन सासनन मुषों और 'उ सरकी काँग' न उमे मात्के अचन्य के सिपर महा रताते। कपी के गुपार विरापी बन जत है और कपी प्रचारकी प्रवृत्तिका विरोध करते है। के मधीन बडिके हात है। ए अन्वेषकोंका कुदमातमान दर्जे की अतमान विनया (mandates) पाबिबकों और विरोध पनों नाग एतनके शिवराम एतान करतेकी प्रवृत्ति और दुमरे एताम अरजा और अराजकताकी प्रवृत्ति विनाही एनी है। नेगाका की कने मुनी-अनपुनी बर दी जनी है और उनक आनेके विरुद्ध काय दिने जाने है। एतना का करना है कि नेगाका की एतन उन आन्वेषकोंकी होती है किनी विनया विचारियों द्वारा होती हा और या विचारिया हाता

और पदच्युत किये जा सकते हों। यह आरोप लगाया जाता है कि बहुमत शासनकी प्रवृत्ति हमेशा बहुमतकी निरंकुशतामें बदल जाने की होती है।^१

(५) कुछ लोग मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोणसे लोकतंत्रका विरोध करते हैं। उनका तर्क यह है कि लोग (मैक्सी के कथनानुसार) भेदों घन्दरा और भ्रष्टियोंकी मनोवृत्ति बान होते हैं। दूसरे शब्दोंमें वे सहज ही विश्वास कर लेनेवाले भावावेशम बह जाने वाले डरपोक असहिष्णु अविवेकी निदयो अयायी मूर्ख आदि सब कुछ होते हैं केवल विचारवान नहीं होते। यह भी कहा जाता है कि लोकतंत्रीय सरकारमें निश्चयहीनता दुर्बलता अस्थिरता और मूर्खताकी प्रवृत्ति होती है और इसका कारण जनताकी घबलता विचार-शून्यता और अरुचि है।

(६) लोकतंत्रके समर्थक इसे जनताका शासन बतलाते हैं परन्तु आत्माथक पूछते हैं कि क्या वास्तवमें ऐसा ही है? वे कौन लोग हैं जिन्हें बुद्धिमत्ता 'याय और शक्ति का मूर्तिरूप माना जाता है? क्या इसका अर्थ निर्वाचकाने बहुमतसे है? यदि यही बात है तो उन लोगोंको हम क्या उत्तर दे सकते हैं जिनका यह कहना है कि यह जरूरी नहीं है कि मतदाताओंका बहुमत जनताके बहुमतका प्रतिनिधित्व करे। ब्रिटेनम त्रिदलीय पद्धति^१ के कारण और कुछ अन्य देशोंमें प्रचलित गुट पद्धति (group system) के कारण जो लोग शासन करते हैं वे वास्तवम बहुधा अल्पमतका ही प्रतिनिधित्व करते हैं न कि बहुमतका। और यदि यह मान भी लिया जाय कि मत दाताओंके बहुमतका मतलब देशके बहुसंख्यक लोगका मत है तो दूसरा प्रश्न यह उठता है कि क्या यह आवश्यक है कि बहुमत ठीक ही हो? बहुत सम्भव है कि जनताकी आवाज घटानकी आवाज हो। यह समझना गलत है कि प्रतिनिधि सदा जनताकी इच्छाका ही प्रतिनिधित्व करते हैं। वे जाने या अनजानेमें जनताकी इच्छाके विपरीत मार्ग अपना सकते हैं और जनताकी इच्छाका गलत प्रतिनिधित्व कर सकते हैं। वे सदैव स्वतंत्र नहीं रहते। दसगत अनुशासनका अंकुश उन पर हमेशा रहता है और वे अपने निर्वाचकाने अपेक्षा कभी-कभी समाचार-पत्रा और निहित स्वार्थसे अधिक भयभीत रहते हैं।

(७) लोकतंत्रके विरुद्ध फौगवे का एक प्रभावगाली तक यह है कि जीव-विज्ञान की दृष्टिसे लोकतंत्र अनुपयुक्त है। उनकी आलोचनाका मतलब यह है कि लोकतंत्र का विकासकी प्रक्रियामें मेल नहीं बैठता। उनका कहना है कि विकास तमम हम ज्यो-ज्यों ऊपर चढ़ते जाते हैं हमें अधिकाधिक मात्रामें केन्द्रीकरण मिलता है। शरीरके विभिन्न अंगोंकी विभिन्न कार्य सौंप दिये जाते हैं। लोकतंत्र विकास विरोधी सिद्धान्त

^१ लोकतंत्रकी विस्तृत आलोचनाके लिए हर्नॉग की पुस्तक 'लोकतंत्र निर्णयके द्वार पर' (Democracy at the Crossways) पढ़िए।

^२ हालके कुछ वर्षोंमें उदार दलके समाप्तप्राय हो जानेसे वस्तुतः त्रिदलीय पद्धति की पुनः स्थापना हो गयी है।

है क्योंकि उसमें कोई कर्त्तव्य स्नायुविक व्यवस्था (nervous system) है ही नहीं। शरीरक एक अंग मस्तिष्कको एक निश्चित स्थान पर मानकर और उसे ही सम्पूर्ण शरीरके लिए विचार करने और योजना बनानेका कार्य न सौंप कर सोवतत्रम यह आशा की जाती है कि मस्तिष्क वहीं भी और सब वहीं हो सकता है। सीप-साथे सम्पूर्ण म फंगवे का तापदं यह है कि शासनका काम ब्रिटिशान वर्गवत्र पर छोड़ देना चाहिए और बाड़ी लोगका उसकी आज्ञाका पूर्णरूपण पालन करना चाहिए। सावतत्रात्मक शासनका अर्थ यह अत्यधिक विवेकीकरण और असमयता लगाने है।

जीव विज्ञान और जानिमुसक तर्क देनबान कभी-कभी यह दावा करने हैं कि गरी जातियोंकी मनगा गैर-गोरी जातियां सोवतत्रको अरनानेम अंगम हाती हैं।

(८) सोवतत्रके विरुद्ध एक गम्भीर आरोप यह लगाया जाता है कि यह एक बहुत ही तर्कीनी शासन प्रणाली है। सावतत्रका अर्थ है सावतत्रका निर्माण प्रचार और वार-वार चुनाव। इन सब कार्योंमें बहुत खर्च होगा है। उदाहरणके लिए अमरिकाम हर चौथ साल राष्ट्रपतिके चुनावम सामों डानर खम हो जाने हैं। अभी हाल ही म चीनके एक सदस्यके चुनाव म ही पाँच लाख डानर खम हुए थे। जो धन रचनात्मक कार्योंमें लगना चाहिए वह चुनाव प्रतियोगितामें और 'निर्वाचन-पत्र को अनुकूल बनाने' म व्यय किया जाता है। सावतत्रमें धनकी बर्तनी एक एसी शक्तिविक्रता है जिसम इन्कार नहीं किया जा सकता। इसमें धनका ही नहीं समय और अक्षयता भी अपभ्यय हुना है। एक भाषुनिक सेनक ने सोवतत्रका बर्तन एक 'अतिवर्धित समिति (exaggerated committee) के रूपमें की है और समिति की परिभाषा हास्यरसक लगेसे यह ही है कि जो काम एक व्यक्ति एक दिन कर सकता है वही काम सात आर्त्तमिया द्वारा सात दिनमें किये जानेका नाम समिति है। यह परिभाषा सावतत्रम निर्हित अपभ्ययके सामान्य गिडान्तकी ओर इतिन करती है। मनगात्मक सरकारका काम बहुत धारे-धारे हुआ है क्योंकि उन सागाको सफल बसाकर बहुमत प्राप्त करना होगा है। अंकी का कहना है कि कुछ विचारक तो यहाँ तक बटत हैं कि सावतत्र सबसे अधिक अनुमान और खर्चमि सबसे अधिक दमकनी और अगहनशीलनमे बरा हुमा और प्रगतिका सबसे अधिक विरोधी म उसकी भार म उगामीन रूना है।

(९) कुछ सागने सावतत्रके वैदिक महत्व पर भी गम्भीर आशका प्रकट की है। आलोचकाका कहना है कि सावतत्रम सर्वंग अक्षय प्रगती प्रकृति रानी है। यह कहना है कि त मूल है और 'अ इत्या प्रत्युतर' क को और भी बडा मूल यह कर देना है। जनताको प्रभावित करनेके लिए जनसाधारणको सेवाक कर देकर जनविम बनना जाता है। शक्ति और शक्तिमि इन्ने मयागाका पर विचार नहीं किया गया। उन पर इन इंदने विचार किया जाता है जिससे अधिक मय दिन

सकें। सत्य या ग्यामकां तो बहुत कम अवयवा बिन्दुल ही ख्याल नहीं किया जाता। वोटों द्वारा जनताका समर्थन प्राप्त करना ही प्रथम लक्ष्य रहता है।

धूसखोरी और भ्रष्टाचारको लोकतन्त्रकी बहु प्रचलित बुराईयां बनसाया जाता है। ब्राइस ने 'राजनीतिमें धनका बल (The Money Power in Politics ९ म० ६९) शीर्षक अध्यायमें कहा है कि ऐसे अनेक उदाहरण हैं कि निर्वाचको विधायको प्रशासकीय अधिकारियों और 'यायाधिकारियों तक न धनके लोभके सामने सिर झुका दिया है। पर यह बुराई आजकल कम हो रही है। फिर भी भारतमें स्वाधीनताके बादमें अवध आमदनीके अवसर बढ़ गये हैं और इसलिए उन अबसरोसे लाभ उठाने वासोंकी संख्या भी बढ़ गयी है।

(१०) लोकतन्त्र के विरुद्ध एक आरोप यह लगाया जाता है कि यह शिक्षाके स्थान पर अनिश्चया या कुशिक्षाका साधन है। इसमें जनताकी चापलूसी की जाती है। इसमें एक अहंकारपूर्ण सर्वहारा वर्गकी उत्पत्ति होती है। इसमें जनताके दोषाको जनतासे ही छिपाया जाता है। जनतामें समानताकी एक झूठी भावना पैदा हो जाती है क्योंकि हर व्यक्ति यह सोचता है कि अपने देशके शासनके लिए वह उतना ही योग्य है जितना अन्य कोई व्यक्ति। इसमें किसी विनाय प्रमास या प्रशिक्षणकी आवश्यकता नहीं समझी जाती। इससे मानदण्ड गिर जाते हैं। लोग अपनेको विज्ञान साहित्य और कलाका पारखी समझने लगते हैं। भीड़ मनोवृत्तिकी उकसाया जाता है और जनताकी शोधी प्रवृत्तियोंमें योग देनेका प्रयत्न किया जाता है। अपने समष्टि रूपमें जनता गिदा, विज्ञान साहित्य और कलाक विकासकी यदि विरोधी नहीं होती तो उस ओर से उदासीन अवस्था ही रहती है। विशिष्ट वर्गोंकी अपेक्षा सामान्य जनता वैज्ञानिक निष्कर्षोंका अधिक विरोध करती है। लोकतन्त्रसे जिस सम्यक्ताका उदय होता है वह निम्नवाटिबी, साधारण और जड़ सम्यक्ता होती है। (बर्न्स)

लोकतन्त्रीय देशोंमें साक्षरताका व्यापक प्रचार तो रहता है पर इसका मतलब यह नहीं है कि उन देशोंकी जनता बुद्धिमान हो जाती है और ठीक प्रकारसे सोचने समझने लगती है। आजकल चिन्तनके स्थान पर अधिकाधिक पढ़ने की प्रवृत्ति है। लॉर्ड ब्राइस का कहना बिन्दुल ठीक है कि जिस लोकतन्त्रमें केवल पढ़ना ही सिखाया जाता है और सोचना तथा नियंत्रण करना नहीं सिखाया जाता उसमें पढ़नेकी सामर्थ्यसे कोई लाभ नहीं हो सकता। सी० डी० बर्न्स व्यंग्यात्मक ढंग से कहते हैं कि कुछ लोग शिक्षाका उपयोग जूट सम्बन्धी समाचारों और स्वास्थ्य सम्बन्धी सूचना पत्रोंके पढ़नेमें करते हैं ताकि वह और अधिक मादक पेय पी सकें।

(११) लोकतन्त्र के विरुद्ध यह भी आरोप लगाया जाता है कि यह स्वतन्त्रता और व्यक्तिगत्य के प्रति र्थनीपूर्ण नहीं है। इसमें हस्तभय करने की प्रवृत्ति होती है जिसका सबसे अच्छा उदाहरण है हालके वर्षोंमें अमेरिकाका मैकार्थीवाद (McCarthyism)। अनेक आलोचकोंने इस लक्ष्य की ओर ध्यान आकषित किया है कि लोकतन्त्रमें ऐसी विधियांकी संख्या अधिक होनी है जो बिना अच्छी तरह सोचे

विषादे जल्दबाजीमें बनायी जाती है (१४ ६१३)। एक शीघ्र प्रतिनिधि बहुधा यह सोचता है कि अपने अस्तित्वका औचित्य सिद्ध करना केवल यही तरीका है कि उसके नामव कोई न कोई नयी विधि परिचय पुराना म दर्ज हो जाय। उसे इस बातकी चिन्ता नहीं रहती कि एसी कोई विधि पक्ष कभी पारित हुई है या नहीं या यह बहुत आवश्यक और उचित है या नहीं और यह कार्यान्वित हा सकेगी या नहीं। उसे केवल बाह्यवाही सुटने और जिन लोगों म उसे अपना प्रतिनिधि चुना है उनके सम्मुख अपनेको याम्य सिद्ध करानकी चिन्ता रहती है। निम्नलिखित प्राथमिक विधानिका

(१२) सावतंत्रीय देयाम एसे अन्तक उदाहरण है जब राष्ट्रीय हितोंका स्थानीय

हितोंके लिए बलिदान किया गया है (१४ १६५)। पक्ष अधिकार और सहायत्व की होयम कुछ पाइये लोगोंके सामक लिए समय राष्ट्रके हितोंकी उपाय का जाती है। प्रतिनिधियामे जा कुछ मिन सब उसीको धीनन-सम्पन्नकी आपसम होय सगी रहती है। वे इस बातकी परवाह नहीं करते कि राष्ट्रके हित पर उपाय क्या प्रभाव पड़ेगा। उनका उद्देश्य केवल अपने निर्वाचक-मंडलका समर्थन प्राप्त करना होता है। सामुदायिक

समूची जनताके हितोंका ध्यान रखना तो किसीका काम ही नहीं होता। सामुदायिक भावना का अभाव रहता है शिगये राष्ट्रीय एकता सम्बन्ध पर जाती है। पार्ष्णय देयोंमे एक प्रवृत्ति अधिक जोर पकड़ती जा रही है—सगण्य सम्पत्त्यक सम्मान बनने उद्देश्यकी सिद्धिके लिए जनहितकी अहमता करते हैं। हात ही म भारतभरमे राग्योके मायावार पुनर्गठनके प्रान्तको लेकर जो बकाइर उठा या बहु इस बातका उदाहरण है कि किस प्रकार कुछ शोइसे लोग सब पर हामी होनको कोणिय करते हैं और देयका एक भाग दूसरे भागके विरुद्ध सड़ाई घट देगा है।

(१३) प्रेसीडेंट सक्ति का कहना है कि अमेरिकी सोवतंत्रकी सबसे बड़ी विपत्तया उसके बहु तगरोका बुपासन है। यह बड़ी पुरानी बुराई है और अभी तक इसका कोई स्थायी हसात्र नहीं सोजा जा सका है।

प्राथमिक सोवतंत्रीय राग्योमें पायी जानवासी बुराईयोको साईं बाराय न निम्न रूपमें इस प्रकार बजाया है

(१) 'प्रगामन और विधानको दूणिय करनम बनकी लक्ति।

(२) 'राजनीतिको एक सामन्त व्यवसाय बननकी प्रवृत्ति।

(३) 'प्रदागतम बनाबापक ध्यान।

(४) 'समानताके सिद्धांतका दुर्लभ और प्रयागवान कर्त्तव्यका मह्य

परधनपर विरतन।

(५) 'समानताकी अनुचित अधिकार लक्ति।

(६) 'विधानों और राजनीतिक लक्षिकारिया हाय एसी विधियोंका बनना जाना जिनके अन्तया गण रह और उनका समर्थन करनी रह। इसी उद्देश्यके लक्षिक बन करनेवाली कानूनका का हूत किया जाना। (१ म० २ प ४ ८)

५ लोकतंत्रकी आलोचनाओंका मूल्यांकन (Evaluation of the Criticisms Against Democracy)

निस्सन्देह उपर्युक्त आलोचनाओंमें से अनेक कुछ न कुछ सही हैं पर अधिकतर वे एक व्यंग चित्र मात्र हैं। इन आलोचनाओंके बारेमें एक ध्यान देने योग्य निष्कर्ष बात यह है कि इनमें से कई आलोचनाएँ एक दूसरेके विपरीत हैं और इन तरह एक दूसरेको गलत सिद्ध करती हैं। कुछ लेखकोंके अनुसार लोकतंत्रका अर्थ है धीरे धीरे प्रजा तथा मूर्ति-पूजा और कुछ दूसरे लेखकोंके अनुसार उमका अर्थ है अवज्ञा और अराजकता। एक ओर कुछ आलोचक कहते हैं कि लोकतंत्र आदर्शवादी और सुधम सिद्धान्तवादी उपासक है तो दूसरी ओर कुछ अम लेखकोंका आरोप है कि लोकतंत्रमें भावनावाद और सिद्धान्तोंके लिए कोई स्थान ही नहीं है। इन पारस्परिक विरोधी तर्कोंमें ही एक दूसरेका सख्तन दिया हुआ है।

(१) यदि लोकतंत्र एक दोषपूर्ण शासन प्रणाली है तो यह पूछा जा सकता है कि दूसरा रास्ता क्या है? क्या कोई ऐसी दूसरी शासन प्रणाली है जो यदि लोकतंत्रसे ज्यादा अच्छी न हो तो कम से कम उसनी ही अच्छी हो? हमारा उत्तर नहीं में है। संसारमें कुलीनतंत्र और बर्गतंत्रकी परव समय-समय पर की गयी है और उन्हें आम तौर पर विफल पाया गया है। हम अब उन तक वापस नहीं जा सकते क्योंकि सी० डी० वॉर्स के प्रभाव-पूर्ण शब्दोंमें 'कोई भी इस बातको अस्वीकार नहीं करता कि वर्तमान प्रतिनिधि सभाएँ वायपूर्ण हैं पर यदि एक मोटरकार ठीक ढंगसे काम नहीं करती तो भी उसके स्थान पर बैलगाड़ीको स्वीकार करना मूर्खता है ऐसा करना चाहे जितना भी अद्भुत क्यों न मानूम पड़े (९, ८०)। संसार अभी इस योग्य नहीं है कि एक ऐसे समाजकी स्थापनाकी जाय जिसका बहुत समयसे दार्शनिक अराजकतावादी स्वप्न देखते आ रहे हैं। पिछले कुछ वर्षोंसे प्रकृति अधिनायकवादकी ओर है। अधिनायकवाद चाहे जितनी अच्छाइयाँ हों पर यह तो मानना ही पड़ेगा कि उसमें व्यक्तिगत स्वतंत्रता और पहलकदमीका अभाव रहता है और इस दृष्टिसे वह उस व्यक्तिवके विकासके प्रतिकूल है, जिसे हम मनुष्यका सर्वोच्च लक्ष्य और उद्देश्य मानते हैं। अधिनायकवादी शासन सभी प्रकारकी आलोचनाओंको दबा देता है। वह उन सभी सगठनाको कुचल देता है जो खुद उनके अपने नहीं होते। लॉर्ड लोथियन (Lord Lothian) व शब्दाम अधिनायकतंत्र तत्वाधीन संघटकी परिस्थितियोंमें शान्ति और व्यवस्था तो कायम करता है पर यह अस्वापी ही होती है

(२) लोकतंत्र आजकल उन अनेक बुराइयोंके लिए दोषी ठहराया जाता है जो विद्यत दो महायुद्धोंमें उत्पन्न हुई हैं। इस 'तात्कालिक' तीसरे दशककी मन्दी और आर्थिक मंदी स्फीति और महंगाई संसारकी अव्यवस्थित परिस्थितियोंके परिणाम स्वरूप हैं जिसके लिए अनेके लोकतंत्र ही उत्तरदायी नहीं हैं। संसारकी वर्तमान आर्थिक और राजनीतिक दुष्परिणाम लोकतंत्रके गुणाना निष्पन्न रूपमें मूल्यांकन नहीं किया जा

सकता। जैसा ए० एन० मर्विन कहते हैं यह उचित नहीं है कि किसी व्यक्तिकी निराश-वृद्धि पर उस समय की जाय जब वह बूढ़ मर रहा हो या नाम हो या उपश्रित हो। सोहनत्रकी परम भी हम अत्यन्त असाधारण परिस्थितियोंमें होनेवाली घटनाओंके आधार पर नहीं कर सकते।

(३) पंडित सोहनत्रको जीव विज्ञानके सिद्धान्तोंके विपरीत व्यवस्था बतानाते हैं। उनका कहना है कि साहनत्रमें मस्तिष्कको सामाजिक सपत्नमें कहा भी किसी भी अंगमें सोहनत्र निकालनेकी आशा की जाती है। यह आशयना स्वस्थ नहीं है। सोहनत्र अधिभार-समाका दुग्धपाय करनेका समयन नहीं करता। जैसा कि पहले कहा जा चुका है मुख्यवस्थित सोहनत्रमें मुख्यवस्थित कुलीनत्रक लिए भी स्थान रखा है। मर्विनी (Mazzini) का कहना है 'सोहनत्रमें सर्वोत्तम और सर्वाधिक बर्द्धमान मागोंके नेतृत्वमें सबके माध्यममें सबकी उपजति होती है। आधुनिक मात्र संकीर्ण राज्य यह स्वीकार करन है कि सामन एक कला है और यह काय उह मागों को सीधा जा सकता है जो इसकी विद्या मायता रखते हों। हम दाह्यता चाहते हैं कि सोहनत्रमें विभाजता द्वारा सामन बिचे जानकी व्यवस्थाका स्थान है। कुलीनत्र में विभाजक अपने आपका जनतासे दूर रहता है सोहनत्रमें उक्त उन सामाजिक सद्गुणाका आगा की जाती है जो 'से उन लोगोंका आना माननमें समर्थ बना सकते हैं जिन पर —हें रायन करना होता है। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि कुलीन उन और सोहनत्रके इस अन्तरसे सोहनत्रका ही समथन होता है। द्विष्टि साहनत्रमें योग्य और समथ व्यक्तियोंका बाहुल्य है यद्यपि द्विष्टि मंत्रिमन्त्रीय शासनको प्रत्येक शक्तिपूर्ण शासन' कहा जाता है।

ऊपर जो कुछ कहा जा चुका है उस सबको ध्यानमें रखते हुए हम सोहनत्रको एक अयोग्य शासन प्रणाली माननेको तैयार नहीं हैं। कुछ तथ्योंका यह कहना है कि बहुत बड़ी शासन व्यवस्थाओंमें सोहनत्रकी भावना भरना असम्भव है और यद्यपि सोहनत्रकी संरचनाका वेबन एक यही माग है कि उसमें उद्योगोंकी एक संकीर्ण प्रणालीको आरम्भ किया जाय। हम इस दृष्टिकोणको स्वीकार नहीं करते कि प्रथममें डॉ० ए० डी० लिण्डने (A. D. Lindsay) के अनुसार आशा ही से शासनको बर्द्धन निश्चयन की आशा की जाती है। डॉ० लिण्डने का भी कहना है 'उद्योगों में माग को मजदूर बना दिया जाता है उसमें हीन बशास व्यवस्थाकी आवश्यकता होती है समूह व्यक्तियोंकी नहीं।

जीव विज्ञान और जति विज्ञानके आधार पर बनी इस धारणाके अर्थमें कि सोहनत्रकारी आशयका विचार गुन है देवकी का यह कथन विज्ञान के विरुद्ध है कि 'इस बातका कार्य विज्ञानकी बर्द्धनिक प्रमाण नहीं है कि देवीकी आशय कायन कि प्रविष्टन या अन्य द्विष्टि बर्द्धनिक विज्ञानमान वाणी देवीका बूढ़े अर्थमें अर्थ होता है। प्रकीर्ण भारत और चीन में समीचन व्यवस्थाकी प्रविष्टि का प्रमाण विज्ञान और मन्त्रान किना का।

(४) जो लोग लोकतन्त्रके कट्टर विरोधी हैं वे साधारण जनता की ओर घुणा पूर्वक संकेत करते हुए कहते हैं कि जनता अपना शासन अपने आप कर सकेनेमें असमर्थ है। हम इसके विरोधी हैं। हम यह स्वीकार करते हैं कि लोकतन्त्रमें हमेशा ठीक ही व्यक्ति नेता नहा चुना जाता पर इसके लिए जनताको ही सारा दोष नहीं दिया जा सकता। आयोग्य नवाओके चने जानका आतिव कारण लोकतन्त्रके बजाय एकतन्त्र हो सकता है। समाजमें अब भी सम्पत्ति शक्ति और पदसे सम्बंधित प्रतिष्ठा की भावना समाप्त नहीं हुई है। इसका इलाज लोकतन्त्रको सीमित करना नहीं है बल्कि उसे और अधिक व्यापक बनाना है। समर्थ व्यक्तिप्राके नेता न चुने जानेका एक और कारण यह है कि उनमें सामाजिक विनम्रताकी कमी होती है और वे अपनी बात जनताको समझान योग्य सरल नहीं बना पाते। सी० बी० बर्न्स कहते हैं 'प्रतिनिधि को ऐसा होना ही चाहिए कि उसे समझा जा सके। यदि वह समझदार भी हो तो यह सोमाग्यकी बात है पर उसे समझा जान लायक तो होना ही चाहिए। यह साधना भूल है कि लोग हमेशा गलत आदमियोंको ही चुनते हैं। लोकतन्त्रीय देशोंका अनुभव यह सिद्ध करता है कि निम्नलिखित बातोंके सम्बन्धमें जनता अधिक सही निर्णय देती है (क) विधियाकी अपेक्षा मनुष्योके सम्बन्धमें (ख) आदेशमूलक विधियोंकी अपेक्षा नियमात्मक विधियोंके सम्बन्धमें (ग) उन प्रश्नोंके सम्बन्धमें जो प्राविधिक और विवरणयुक्त मसलाकी अपेक्षा सामान्य नीतियोंके सम्बन्धित होते हैं (घ) भावनाओंको जगानेवाले प्रश्नोंकी अपेक्षा ऐसे मसलोंके सम्बन्धमें जिनमें नैतिक सिद्धान्तोंकी बात होती है (उदाहरणके लिए वैदेशिक नीति सम्बन्धी प्रश्न)।

यदि हम चाहते हैं कि जनता समझदारीसे चुनाव करे तो हमें एक समय एक ही प्रश्न उसके सामने रखना चाहिए और इस प्रश्नको सीधे-साधे सरल शब्दोंमें जनताको समझाना चाहिए। अनेक विवरणों और प्राविधिक बातोंसे जनता को आदना उचित नहीं है। जो लोग यह कहते हैं कि साधारण मनुष्यको अपना शासन स्वयं करनेमें रुचि नहीं होती और लोकतन्त्रमें सबसे बड़ी बुराई मतदाताकी उदासीनता है उनसे हम यह कह सकते हैं कि दूसरी शासन पद्धतियोंसे भी जो परिणाम निकलते हैं वे लोकतन्त्रके परिणामसे अच्छे नहीं होते। यदि लोकतन्त्रमें जनता कभी-कभी उदासीन रहती है तो कभी-कभी वह अत्यन्त सत्रिय और निष्ठावान भी हो जाती है। लोकतन्त्र से भिन्न सरकार जब तक जनता पर सुख-सुविधाकी वर्षा करती है तब तक निश्चित रूपसे उसे उसका सहयोग प्राप्त रहता है पर जैसे ही वह जनता पर कोई भार डालना आरम्भ करती है वैसे ही गहरा असंतोष फैल जाता है।

(५) यद्यपि लोकतन्त्रके कुछ आधुनिक आलोचक प्रतिनिधित्वके सिद्धान्तको बुरा कहते हैं, फिर भी वे अपने मस्तिष्कको उसमें भली भाँति मुक्त नहीं कर पाये हैं। कोई भी प्रसिद्ध विचारक आज मात्र एकतन्त्रको उचित कहनेके लिए तैयार नहीं है। यह ध्यान देने योग्य निगाहों का है कि अधिनायक तन्त्रके अत्यन्त प्रबल समर्थक भी इसका औचित्य इस आधार पर ही बताते हैं कि वह जनताका सही-सही प्रति

निधित्व करता है। मजर वेटस ब्राउन (Major Leas Brown) का कहना था कि फ्रांसिस्टवाद आधुनिक सार्वजनिक जीवन जनताका अधिक प्रतिनिधित्व करता है। उनका कहना था कि लोकतन्त्र अधिनायकतन्त्रका विरोधी नहीं है बल्कि आधुनिक जीवनकी कठिनाइयाँ निम्न वह अनपेक्षित है। हम उनसे हम बचनेके सहमत हों या न हों पर प्रतिनिधित्वके आधार पर अधिनायकताका सिद्धान्त आजकल राजनीति दानका एक स्थायी अंग बन चुका है। यदि हम इस बातका स्वीकार कर लेते हैं तो फिर प्रश्न यह उत्पन्न है कि जनतन्त्र प्रतिनिधित्वका सबसे अधिक सफल तरीका क्या है? हम इस विचारको स्वीकार नहीं करते कि अधिनायकतन्त्र जनताका सच्चा प्रतिनिधि है किन्तु जब हम यह देखते हैं कि उसमें आलोचना और स्वतन्त्र विचारों को कुचल दिया जाता है।

(६) इस आरोपका कि लोकतन्त्रम दसगल शासन आयाजक होता है और दसगल शासन मठविभाजनका एक अम्लायजनक तरीका है हमारा उत्तर इस प्रकार है

(क) दस अनिवाय है क्योंकि उनके दिना लोकतन्त्रीय सरकारका चलना असम्भव है। दस अपवस्थापन व्यवस्था कायम करत है। वे लोकतन्त्रका निर्माण करते हैं और उसे गिराते करत हैं। जसा कि शासन का कहना है कि जिस प्रकार ग्यार भाटकी सहरे सागरकी समीप साहिबाके जनक। स्वच्छ रक्षनी है उती प्रकार राजनीतिक दल राष्ट्रके दिमागका सत्रक और स्वच्छ रगत हैं।

(ख) शासन के शासनमें ही दसगल अनुशासन स्वायंभारता और भ्रष्टाचारको रोकता है।

(७) लोकतन्त्रका अर्थ बुद्धिमान है—इस आरोपका तथ्योंके आधार पर सापेक्ष कोई अनुपपन्नक उत्तर नहीं है। लोकतन्त्रम जनताके कहाने किये जात हैं और उसकी सुगमदर्शी जाती है। सरसाधारण लक्ष पढ़ेलेके निम्न मान्यते दिख दिखे जाने हैं। लोग अपने आपको जसा बिज्ञान और साहित्यका पारंगत मानने लग जाते हैं। यह सब ठीक है पर प्रश्न यह है कि इससे बचनेका रास्ता क्या है? दूसरी शासन प्रणालियोंमें तो जन गिणाका इगन भी कम अवसर रहता है। और फिर उचित दिनप्रति लोकतन्त्रम असम्भव नहीं है। जनताकी बुद्धिगारी जसा उगक भीतर गिगिन किये जानेकी भावना भर कर दूर बिना जा सकता है। इस गिगामें प्रगतिके लक्ष्य मिलने लग हैं। साधारण विराधितों का आराधना हम स्वीकार करत हैं कि लोकतन्त्रम चलना बहुत अधिक आसान और सस्ती होती है। पर हमारा कहना यह है कि यह बराई साहजके निम्न अनिवाय नहीं है। हम बराईको दूर बिना जा सकता है। लोकतन्त्रके गिगिन हो जानेक बहुत अधिक आसान यह बराई समाप्त हो जायगी।

(८) आसन्न और बदलनेके साथ साथ अधिनायकतन्त्रकी शासनम बुद्धिमती और भ्रष्टाचारक प्रचलित है। पर प्रश्न बराई है कि हम देखके शासनिक जीवनको दान देना साहिब न कि बराई साहजक है। यदि न का यह कहना किन्तुम

ठीक है कि व्यापारिक जीवनमें जिन बुराईयोंको हम सहन करते हैं उनके लिए हम लोकतंत्रको 'यायपूर्वक दायी नहीं ठहरा सकते। उचित और अनुचितता अस्तित्व हमेशा रहा है और रहेगा। सार्वजनिक जीवनमें सच्चाई व ईमानदारीका अभाव कोई नयी बात नहीं है। अठारहवीं शताब्दीके योरोपमें पदाधिकारियोंमें जितना भ्रष्टाचार था उसकी अपेक्षा आज निस्सन्देह कम है। जन प्रिय सरकारें भ्रष्टाचारसे तब तक बिल्कुल मुक्त नहीं हो सकती जब तक यह चलते साधारण नागरिकका नतिक स्तर ऊँचा नहीं होता और भ्रष्टाचारियोंका सामाजिक बहिष्कार नहीं किया जाता।

(९) आजकल यह धारणा करना एक फगन-सा हो गया है कि 'लोकतंत्र समाप्त हो चुका है। सम्भव है अनेक फगनान्की तरह इस फगनका भी कोई ठोस आधार न हो। कुछ समय तक अधिनायकतंत्रका प्रयोग करनेके बाद स्पेन लातनकी ओर वापस आया। यद्यपि अब वह फिर अधिनायकतंत्रकी ओर लौट गया है। ब्रिटेन और अमेरिका जैसे देशोंमें जहाँ लोकतंत्रका विकास हुआ है और वह एक सम्बन्ध समयसे सफलतापूर्वक प्रयोगमें आया आ रहा है उसे त्यागनेके कोई लक्षण नहीं दिखायी देते। अधिनायकतंत्रके प्रति उन्साह केवल यही संकेत करता है कि लोकतंत्रको अपने आपको बदनी हुई परिस्थितियोंके अनुकूल बनाना चाहिए। फ्रांसीसी लेखक आन्ड्रि-मोरो (Andrie Maurois) का कहना है कि यदि कोई देश ससदात्मक शासनके अधीन है तो इसका अर्थ यह नहीं है कि निश्चित समयके लिए और एक निश्चित उद्देश्यकी सिद्धिके लिए वह एक व्यक्तिके नेतृत्वको स्वीकार न करे। लोकतंत्रको परिस्थितियोंके अनुकूल बनानेका अर्थ यह नहीं है कि अधिनायकतंत्रके लिए द्वार खोल दिया जाता है बल्कि उसका अर्थ यह है कि अधिनायकतंत्रका मार्ग बंद कर दिया जाता है (५३ ३१ ३२) जैसा कि डॉ० ए. डी० सिण्डसे ने कहा है एक आत्मविश्वासपूर्ण लोकतंत्रिय समाज अपनी कार्यप्रणालीमें बहुत अधिक नम्य हो सकता है, वह आवश्यकतानुसार अपनी प्रणालीमें परिवर्तन कर सकता है। वह अपनी सरकारके हाथों अपरिमित शक्ति दे सकता है जैसा कि सकटकालमें किया जाता है और सुधी-सुधी इस विश्वासके साथ दे सकता है कि सकटकाल टल जाने पर वह उन अधिकारोंको वापस ले सकता है (५२ १७)। ब्रिटेनमें अविन और अमेरिकामें राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने थोड़े ही समयमें जा अपरिमित शक्ति प्राप्त कर ली थी और उनके देशवासियोंने जिस शक्ति और विश्वासके साथ उनके अधिकारकी वृद्धि स्वीकार कर ली वह देशवासियोंकी दुर्बलताका नहीं बल्कि उनकी शक्ति और लोकतंत्र पर उनके विश्वासका प्रमाण है। लगभग यही बात श्री जवाहरलाल नेहरू के सम्बन्धमें भी कही जा सकता है जिन्होंने पिछले वर्षोंमें भारतीय जनता पर बिलगण प्रभाव डाला है।

(१०) कुछ लोगका कहना है कि लोकतंत्र एक मिथ्या धारणा है और वास्तव में सत्तारमें लोकतंत्र जैसी कोई चीज ही नहीं। इस आलोचनाका एक सम्भव उत्तर यह है कि मनुष्य मिथ्या-धारणाओंके सहारे ही जीतें हैं। यदि यह सही है तो फिर प्राकृतिक अधिकार, मनुष्यकी समानता और लोक सम्मतिधी मिथ्या धारणाओंके

सहारे ही क्यों न दिया जाय। डबो (Dewey) कहते हैं लोकतन्त्री नीचे मानव प्रकृति की समता का अनुबन्ध पर विश्वास और सचित तथा सहभागमूलक अनुभव की शक्ति पर आधारित है।

६ उपचार और निष्कर्ष (Remedy and Conclusion)

अब हम आवश्यक रूपसे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि लोकतन्त्री केवल शारीरिक मूल्य (conditional value) है। समाज की सभी बुराइयों का दूर करने के लिए वह कोई रामबाण नहीं है। लोकतन्त्री केवल बड़ी बुराई का बचत उपकरण के कारण है और अनुभव बढ़ाने का साधन-माध्यम के दूर ही रहेगा। उसका मूल्य बड़ा महत्व नहीं और शक्ति है। मानव ध्यस्तित्व के माध्यम से जिस आधार पर लोकतन्त्री का विकास हुआ है वह अल्प है। हमारा विश्वास है कि दूरे टोड़ने का यह कथन सत्य है 'लोकतन्त्री प्रगति अनिश्चित प्रतीत होता है क्योंकि यह दृष्टिगत मित्रवत्ता के सबसे अधिक एकत्र प्राचीन और स्थायी प्रवृत्ति है। एक शारीरिक व्यवस्था कहना है 'सैद्धांतिक रूप से लोकतन्त्री सामाजिक जीवन के अर्थ सिद्धान्तों का विकल्प नहीं है। वह समाज का ही सिद्धान्त है ... लोकतन्त्री अपना पूरा स्थिति का प्रदान करेगा क्योंकि लोकतन्त्री स्वतंत्र व समुद्रिय ससंगता ही नाम है।

हमारा विश्वास है कि लोकतन्त्री एक उचित व्यवस्था है जिसमें एक मुक्त सिद्धान्त निहित है। हमें उम्मीद जो दोष लगाया देते हैं वह एक नहीं है कि दूर न बिचे जा सकें। शिवा विस्तार और अनुभव द्वारा जनता उन दोषों को स्वयं दूर कर सकती है। हम उन लोगों से सहमत नहीं हैं जो यह कहते हैं कि लोकतन्त्री के कारणों को दूर करने का एक ही मार्ग है कि लोकतन्त्री ही समाप्त कर दिया जाय। यदि किसी लोक के समाप्त बिचे जाने की आवश्यकता है तो वह लोक के अन्दर ही समाप्त होता है। एक अन्तर्राष्ट्रीय अराजकता का निम्नलिखित साधन न दूर दिया जा सकता है— एक प्रभावशाली विश्व-सरकार, एक सुनिश्चित अर्थ नीति निष्पक्षीकरण एक लोकतन्त्री नियंत्रण तथा जातीय विभेद की समाप्ति।

यदि लोकतन्त्री समाप्त करने के बजाय उस और अधिक नहीं के समाप्त करने की आवश्यकता है और हमारा विश्वास है कि सभी आवश्यकता है तो प्रत्येक यह है कि इसके लिए निश्चित उपाय बनाए जायें। अन्तः-संगठन इस अर्थ पर विश्वास दिया है। कुछ लोगों ने लोकतन्त्री शिवा और शक्ति गुणवत्ता लोकतन्त्री के समाप्त के लिए आवश्यक माना है और इन लोगों का यह मत है कि लोकतन्त्री समाप्त के लिए उचित कार्य-विधि का प्रारम्भ निश्चित गुणवत्ता बिचे जाने चाहिए। एक शक्ति-संगठन के लिए आवश्यक उपाय कहे जा सकते हैं।

कि वह किस हद तक ऐसे व्यक्तियोंका निर्माण कर पाती है जो उसे आग पाली सकें और किस हद तक वह नेतृत्वके लिए सबसे अधिक ममयं व्यक्तियोंको धागे ला पाती है। क्या लोकतन्त्र एक ऐसे राष्ट्रका निर्माण करती प्रवृत्ति है जो अपने आर्थिक हिताधी अपेक्षा सामाजिक कल्याणको अधिक महत्त्व दे जिसके विभिन्न वर्गों में ईश्या की भावना न होकर परस्पर महानुभूति हो जो भावी कल्याणके लिए वर्तमान कठिनाइयोंका दूरदर्शिता और साहसके साथ झेल सकें? क्या लोकतन्त्र अपने प्रतिनिधियों और मजिस्ट्रेटोंके पदा पर ऐसे व्यक्तियोंको चुनता है जिनमें ये सब गुण विद्यमान हों? यदि लोकतन्त्र यह सब करता है तो जो भी तूफान उठेगा वे उसकी जड़ोंको न हिला सकेंगे और वह अद्विग्न रहेगा भले ही दूसरे देशोंमें उपात मर्चें और यदि वह ऐसा नहीं करता तो उसका आधार अस्थिर समझना चाहिए।

लोकतन्त्रीय व्यवस्थाका सुधारनेके लिए जो सुझाव दिये गये हैं उनमेंसे निम्न लिखित सेखकोंके विचार उल्लेखनीय हैं

लॉर्ड सादियन का कहना है कि

(१) सरकारका शासन-यंत्र इस गारण्टीके साथ चले कि धर्मिकके लिए भाषण, आलाचना और राजनीतिक तथा आर्थिक उद्योगकी स्वतन्त्रता हों और

(२) बयस्क विवाधक-मण्डलके अन्तिम निर्णय पर सरकार बिना किसी प्रकार की सुन-शरार्थीके बदली जा सके।

आ दू मोरो तानाशाहीका अवरोध करनेके लिए एक निश्चित अवधि और निश्चित उद्देश्य सिद्धिके लिए व्यक्तिक नेतृत्वका सुझाव देते हैं। कुछ दूसरे लोग दक्षिणगाली कार्यपालिकाका सुझाव देते हैं। लॉर्ड पूर्यस पर्सी (Lord Eustace Percy) का दावा है कि ब्रिटेनका मजिस्ट्रेट राजतंत्रात्मक प्रधान मंत्रित्व द्वारा अपनी रक्षा करता है और जिस दिन प्रधान मंत्री दसगत सलाहकारियों के दबावमें आ जायगा उसी दिन अधिनायकत्वसे बचनेके लिए कोई रास्ता बाकी न रह जायगा। इसलिए पार्लामेंटका मुख्य और प्रथम कर्तव्य यह है कि वह संसद प्रधान मंत्री बनाये। प्रधान मंत्रियोंकी स्वतन्त्रता संसदकी स्वतन्त्रता और उनकी दक्षिण उसकी शक्ति है।

लॉर्ड पर्सी के अन्य सुझाव ये हैं

(१) संसदकी नीति सम्बन्धी व्यापक प्रश्नों पर विचार करना चाहिए, छोटे छोटे विवरणाम नहो पड़ना चाहिए। नीति-सम्बन्धी व्यापक प्रश्नोंके रूपमें उसे कर लगाने और व्यय करनेकी व्यवस्था पर विचार करना चाहिए और अनुचित व्यय और करोंसे पैदा होनेवाली शिकायतोंको दूर करना चाहिए। 'संसदकी कार्य-प्रणालीकी उस अर्थहीन प्रणालीका समाप्त कर देना चाहिए जिसके अनुसार प्रायः सभी साधारण विवादोंमें विधानसे सम्बन्ध रखनवाले प्रश्नोंके पूछ जाने पर प्रतिबन्ध लगाया जाना है।

(२) विधायकोंकी रचनामें संसदकी क्रम उठाना चाहिए। विधायी प्रस्तावोंकी

रचनाके लिए सदस्यों सरकारों पर बहुत अधिक निर्भरता रहना चाहिए और इस कामके लिए संसदको कई समितियाँ बना लनी चाहिए। इन समितियोंको केन्द्रीय तथा स्थानीय सरकारों और व्यक्तियोंके बीच सम्बन्धों पर पुनर्विचार करना चाहिए।

(3) विभिन्न विभागके प्रशासकीय कार्यना निरीक्षण करनेके लिए ज़ारी होने वाली विभागीय आजादा और विनियमित जांच करनेके लिए व्यक्तिगत विभागों का पना सदातक लिए और विनियमों का ध्यान उनकी आर आकर्षित करनेके लिए संसदीय समितियोंका निर्माण किया जाना चाहिए।

(4) संसद द्वारा मनानेवाले संसदीय एक अध्यापक होने चाहिए जो सदा सम्भव अधिक सम्पत्ति बचाय व्यापक धर्मिता प्रतिनिधित्व कर सक। सरकार और संसदको अपने विधान-निर्माणकी सहायता इस परिषदका उपयोग करना चाहिए। इस परिषदको सरकार और उद्योगोंके पारस्परिक सम्बन्धोंकी पूरी जांच करनी चाहिए।

(5) संसदको आजीवन साई (life peers) बनानेका स्वतंत्रता रहनी चाहिए। साई संसदका विधानकी पुनर्विचारमें पूरा-पूरा भाग लेना चाहिए।

सर स्टाफ क्रिप्स (Sir Stafford Cripps) ने अपनी पुस्तक 'संसदका आदर्श स्वरूप (Parliament as it Should Be) में साक्षरताक निम्नलिखित तीन बिन्दुओं का उल्लेख किया है

(1) जनताका ध्यान प्रतिनिधियोंके चुननेकी पूरी-पूरी स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। जनताको निर्बन्ध समय पर करने प्रतिनिधियोंके प्रत्यावर्तन (recall) करनेका अधिकार होना चाहिए।

(2) जनताको स्पष्ट रूपसे यह बताना चाहिए कि वह कौन-सी नीति कार्यान्वित करना चाहती है।

(3) प्रतिनिधियोंके अपनी योग्यता और सामर्थ्य हानी चाहिए कि वह वांछित नीतियोंके अन्तर्गत बिना बिना और बिना किया भी स्वयं या व्यक्तिगत रूपसे इन व्यावहारिक कार्यों का कार्य कर देतेके लिए सरकारें बिना निर्माणात्मक साधनोंकी शिष्टाचार करते हैं।

(4) विधान निर्माणके उद्देश्यका सहीमान संसदीय तरीकाका स्थापना करना।

(5) कामना सदा शांत जब उसे देना सम्भव न हो एक सहाय-सूची बनाने का प्रयत्न करना और अनावश्यक-सूची बनाने सरकारी पदवीय न आकर दे-के विचार की प्रवृत्ति और पद्धति का प्रभावपूर्ण नियंत्रण किया जाना।

(6) विनियमोंके विभागीय तथा प्रशासकीय कार्यका निरीक्षण करनेके लिए कार्यविधायी परिषद (functional committee) का निर्माण करना।

एच० साइडबोथम (H. Sidebotham) का विश्वास है कि संसदात्मक पद्धति का समितियाकी लाना-गाहीसे ठीक मेल बैठ सकता है।

लोकतंत्रके गुण आपका विवेचन लॉड ब्राइस ने निम्न रूपमें इस प्रकार किया है यदि आशावादिपोंने लोकतंत्रके नैतिक प्रभावका बढ़ा चढ़ावर कहा है तो निराशावादियोंने उनकी व्यापहारिक क्षमताको बहुत कम समझा है। अन्य शासन-पद्धतियोंमें जो भी बुराइयाँ या उनमम अधिवास लोकतंत्रमें किरल गिखायी दे रही हैं यद्यपि उनका रूप बदल गया है। जानव गेप लोकतंत्रम गिखायी दे रह है वे इतने गम्भीर नहीं हैं जितन गम्भीर पुरानी सरकाराके वे दाप थ जिनसे लोकतंत्र पूरी तरह मुक्त है।

(१) व्यक्तिगत नागरिककी स्वतंत्रता सुरक्षित रखते हुए भी लोकतंत्रने सावजनिक व्यवस्था कायम रखा है।

(२) लोकतंत्रका नागरिक प्रशासन उतना ही अच्छा है जितना कि किसी अन्य प्रकारकी सरकारका।

(३) अन्य प्रकारकी सरकाराकी अपेक्षा लोकतंत्रीय सरकारोके विधानोंमें गरीबोंके हितोंकी ओर अधिक ध्यान दिया जाता है।

(४) लोकतंत्र अस्थिर और अट्टतज्ञ नहीं रहा है।

(५) लोकतंत्रने देशभक्ति और साहसको कम नहा किया है।

(६) लोकतंत्र प्रायः अपव्ययी और आपत्तोर पर बहुत अधिक सधीला रहा है।

(७) लोकतंत्रने प्रत्येक राष्ट्रम सावजनिक सत्ताप पैंग नही किया है।

(८) लोकतंत्रने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धोंकी सुधारने तथा शांति स्थापित करने का प्रयत्न बहुत कम किया है इतने वागवत स्वार्थोंको कम नहीं किया विश्व-बुद्ध और मानवताका प्रसार नहीं किया और न विभिन्न वर्णोंके प्रति घुणा भावको ही कम किया है।

(९) लोकतंत्र अष्टाधारको और सरकार पर सम्पतिके अवांछनीय प्रभावको दूर नहीं कर सका है।

(१०) लोकतंत्र ज्ञान्तियाके भयको दूर नहीं कर सका है।

(११) लोकतंत्र राज्यका सेवाम पर्याप्त सख्यामें सबसे अधिक ईमानदार और समर्थ नागरिकाका नहा सगा सजा है।

(१२) फिर भी लोकतंत्रने सब मित्राकर एक व्यक्तिके शासन या एक वर्णके शासनकी अपेक्षा उत्तम व्यापहारिक परिणाम दिलाये हैं क्योंकि इतने कम-से-कम उन अनेक बुराइयोंको समाप्त कर दिया है, जिनके कारण ये शासन-पद्धतियाँ बिनष्ट हो गयीं।

लोकतंत्रकी सफलताके लिए आवश्यक बातें

(Conditions for the Successful Working of Democracy)

(१) लोकतंत्रकी सफलताके लिए सबसे पहली आवश्यकता इस बातकी है कि

कुछ मौखिक सांख्यिक सिद्धान्तों पर जनताका विश्वास उत्पन्न किया जाय। इन सिद्धान्तोंमें प्रत्येक मनुष्यके महत्त्वे सिद्धान्तका बहुत ही गौरवपूर्ण स्थान है। कम-से कम भौतिक रूपमें सोचनेका अर्थ यह है कि प्रत्येक व्यक्ति जनता ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि बार्नू द्वारा व्यक्ति और सरकारके बिन्धी भी काममें किसीरी भी उपाय नहीं होती चाहिए। दूसरा महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त जिमिन्स द्वारा भारतमें बिनाप रूपमें ध्यान म रचना चाहिए, यह है कि सोचनेका अर्थ परस्पर विचार विमर्श या परामर्श द्वारा सासन है। सासन महत्त्व या अनुमति द्वारा सासन है। हिंसा और प्रयोग बारवाइका इगम काद स्थान नहीं है। सोचनेका अर्थमन्त्रों एक महत्त्वपूर्ण अधिकार महत्त्व है कि वह सांख्यिक उपायोंमें अपनेका बहुतम परिश्रम करे। बिनाप परिश्रमनिधाम अल्पम सत्यापहका सहारा भील सकता है पर सत्यापह एव औपधि है जा कभी-कभी ही ली जा सकती है दैनिक गुरावकी तरह उसका प्रयोग नही किया जा सकता।

(२) सांख्यिक विचारके अभावमें कोई भी सासन बहुत समय तक टिक नहीं सकता। यह दावा ठा नही किया जा सकता कि कवन विचार ही सासनका सारम बना सकती है पर इनमें सोचनेके सारम होना बहुत लकी सत्यापना अभाव मितकी है। इतिहासमें गिगित कुशिल व्यक्ति देग हैं। परन्तु आमतौर पर यह कहा जा सकता है कि विचार व्यक्तिको बहुतभूत सन्तुलित और विवेकीय बनाता सहायता देती है। भारतकाको ८०-८२ प्रतिशत जनता निरक्षर है। यदि इन निरक्षरताका पत्नी दूर नही किया जाता है तो सोचनेका भविष्य बहुत उज्ज्वल नहीं है।

(३) सांख्यिक विचारके साथ-साथ जनतामें उच्चशिक्षाकी आवश्यकता और बिधिमानताकी भावना भी हानी चाहिए। जब तक जनता और जनताके नेता दोनों क साथ और भावना निष्पन्न और गूढ़ न हाय तक तक सोचनेके अधिक समय तक बने रहनेके सम्भावना कम है। सासनकी सारमनाके लिए यह बहुत आवश्यक है कि सासन व्यक्ति नागरिक जीवनमें अपना भाग अंग करनेके लिए तैयार रहे। उसे दूसरोंके अधिकारोंकी रक्षाके लिए तैयार रहना चाहिए और निरक्षरता समाप्त करके सासन हुए जनताका भी देना चाहिए। सोचनेमें समाचार सांख्यिक व्यक्तिगत सासन होने की भी यही कीमत है। सोचनेमें समाचार सांख्यिक व्यक्तिगत सासन पर हानि करने लगी प्रचारक सासनके बिन्दु तक रहना चाहिए—यह सासन पाह सारकारकी ओरम है। चाहे समाचार नरोंकी ओरम चाहे सबदूर रीषों और धर्म गवाही औरम या ऐसे ही किसी अन्य मन्त्रों की ओरम।

(४) वर्तमान समय सांख्यिक समासन और अन्वयकी समासन पर समासन अधिक बार विचार जाता है। सांख्यिक समासनका यह सासन नहीं है कि हर सासन का समासन परिश्रमिक या वेतन मिले है। यह सासन उच्च है कि सोचनेकी अन्वय अन्वयिक समासनका न होने पावे। सांख्यिक समासन में कवनने सारम समासनके यह अन्वयिक है कि एक और बहुत अधिक समासन और समासन आर

गरीबी न होने पाये। आजसे सत्रह वर्ष पहले अरस्तू ने जब यह कहा था कि एक सबल मध्यम वर्ग लोकतन्त्रकी रीढ़ है तब उन्होंने एक महत्वपूर्ण सत्यकी खोजकी थी। सबल मध्यमवर्गसे स्थिरता और दृढ़ताके साथ-साथ प्रगतिको भी बढ़ावा मिलता है।

(५) अपने एक महत्वपूर्ण पहलूमें लोकतन्त्रका अर्थ सामाजिक समानता है। जाति और वर्गके भेद और व्यक्ति-व्यक्तिके बीच सामाजिक दूरीका अर्थ लोकतन्त्रवा विनाश होता है। आधुनिक भारतमें सबसे अधिक उदाहरणके बावजूद यह हो रही है कि शिक्षित और शहरीमें रहनेवाले लोगोंमें जातीय भेदभावकी भावनाका साधारण तया लोप होता जा रहा है। देहाती शत्रुमें अब भी जातीय भेदभावकी भावना पायी जाती है पर वहाँ भी थोड़ा ही समयमें इसका विलुप्त लोप हो जायगा। परन्तु माया और प्रान्त सम्बन्धी विभेद अभी पर्याप्त मात्रामें विद्यमान हैं। लोकतन्त्रमें प्रतिभाके विकासका माग खना रहना चाहिए और अक्षरके अभावमें प्रतिभाको नष्ट नहीं होने देना चाहिए। निशुल्क शिक्षा उदार धानवृत्तियोंकी व्यवस्था और राजकीय पदों पर क्षमता और चरित्रके आधार पर ही नियुक्तियाँ करके ऐसी स्थिति उत्पन्नकी जा सकती है। दुल्लके साथ यह स्वीकार करना पड़ता है कि अन्तिम बात अभी भारतमें सामान्य नियम नहीं बन पायी है।

(६) यदि लोकतन्त्रको सफल होना है तो सावधानीके साथ चुने गये नेताओंकी आवश्यकता है। एक बार जब वे चुन लिये जायें तब जनताको उन पर विश्वास और उनका सम्मान करना चाहिए। नेताओंकी बात न मानना उतना ही बुरा है जितना उनके पीछे आँख मूद कर चलना। कभी कोई राष्ट्र सत्तास्व व्यक्तिगतीका पापभूती और पूजा करके महान नहीं बन सकता। फिर भी भारतमें सामान्य नियम यही है कि 'देवता बर्ष सकते हैं पर उपासक बही बने रहते हैं।' आवश्यकता इस बातकी है कि जनता राजनीतिक सिद्धान्तों और नीतियों तथा व्यक्तियोंके बीच भेद करना सीखे और अनुचित रूपसे व्यक्तियोंके साथ बंधी न रहे। दूसरी ओर नेताओंको भी अपनी आस्थाओं और अपने विश्वास पर दृढ़ रहना चाहिए। उन्हें लोकमतके हर क्षणके साथ बह नहीं जाना चाहिए। संयुक्त राज्य अमेरिकामें आइज़नहावर और भारतमें नेहरूजी के इतना अधिक जनप्रिय होनेका एक कारण यह भी है कि ये लोग भीड़-मनोवृत्तिके प्रवाहमें बह जानसे इन्कार कर देते हैं। लोकतन्त्रमें उन्हीं व्यक्तियोंका नेता होना चाहिए जिनकी निष्ठा-बुद्धि स्वस्थ हो जिनकी क्षमता मौलिक हो जिनमें उम्बकोटि की पहलकदमी हो और जिनका चरित्र निष्कलक हो। यदि एक बार ऐसे नेता मिल जायें तो जनताको उनके कार्यमें बहुत अधिक हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

(७) जल्दी-जल्दी होने वाले आम चुनाव लोकतन्त्रके सफल संचालनमें सहायक नहीं होते। इस सम्बन्धमें संयुक्त राज्य अमेरिकामें बहुतसे राज्यात्मक प्रचलित न्यायाधीशों और विभागीय अध्येताके घोड़ी घोड़ी अधिभेद लिए होनेवाले चुनाव तथा स्कूल बार्डोंके चुनाव आदिको हमें सन्देहकी दृष्टिसे ही देखना चाहिए।

(८) यदि एक ओर निर्वाचक-मण्डल पर अत्यधिक आम चुनावोंका प्रभाव नहीं

रामा जाना चाहिए तो दूसरी ओर तमाम तय्यारी समझाएँ भी उनके सामन न रखी जानी चाहिए। पर सभी मौलिक और प्रमुख प्रश्नों पर जनताकी राय अवश्य ली जानी चाहिए। किसी भी सदस्यको या सदस्ये किसी भी सदनको इस बातका अधिकार नहीं है कि वह विद्यने चुनावके समय या अन्य किसी एने ही प्रभावका दबावे पक्ष का गया निर्वाचकोंकी इच्छाओंके विरुद्ध कार्य करे। जब यरा हो तब मध्य या मन्त्र सभका निरस जनताकी समाप्ता (mandate) प्राप्त करनी चाहिए।

(९) प्राय यह समझा जाता है कि युद्ध और शान्ति अन्तर्राष्ट्रीय मनों और समन्वय एवं साम्रज्यिक एकता सर्वोच्च नित्य सिद्धान्तोंमें सम्बन्ध रखनवाले प्रश्नों पर जनता सही न्याय देती है। परन्तु हालकी घटनाओंमें इस विचार पर आश्चर्य प्रकट होन लगी है। फिर भी यह सम्भव है कि जिन असाधारण परिस्थितियोंमें मानव जाति मात्र यह रही है उनके सुधर जान पर निरस यह विचार दुर्लभ प्राय।

(१०) लोकतन्त्रका अन्तर्गतके लिए यह जरूरी है कि राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मन्त्राके बारेमें सही-सही निष्पन्न जानकारकी सुविधा जनताको हो। दुनके साथ यह मानना पडगा कि सभारके काजी बह हिस्सेमें यह सुविधा नहीं है। विचार स्वातन्त्र्य भाषन न सतन स्वातन्त्र्य और संपन्न स्वातन्त्र्य का साहित्यकी जीवनरक्षित हा है।

लोकतन्त्रके सम्बन्धमें हुनारे सम्पूर्ण विचार-विमर्शका निष्पन्न नहीं है वा कि एडवर्ड कारपेन्टर (Edward Carpenter) का है 'हे अदभुतानि लोकतन्त्र' में मुम प्यार करता हू। टी० बी० स्मिथ (T. B. Smith) के शब्दोंमें यह हम स्वयं नहीं मिन सक्ता ता नरकने बचनक साधन हायम रहते हुए ह्राय हाता पूर्वता है।

लोकमत पर टिप्पणी (A Note on Public Opinion)

इस बातमें कोई सन्देह नहीं हो सक्ता कि प्राबुनिक लोकतन्त्र और लोकतन्त्र दोनों परस्पर पूंज हुए हैं। व्यापक मताधिकार, राजनीतिक दलाभा सभान और लोकमत के आधार पर सभान विधानिका इन सबन साधनोंकी मदताको संचालित करती है। हमारे समय में कोई भी राष्ट्रिय प्रश्नो की सभान निर्देश दीन संचालना नहीं है। हमारे ऊपर सभी ओरों प्रभाव पडते हैं। समाचार-पत्र सभान सब रचना मिनमा और करे-करी टीवीविजन इन सबका प्रभाव हमारे ऊपर पडता है। इन सबका सम्मिलित प्रभाव हमारा अधिक और व्यापक हाता है कि हमस न बाउ हा कम मात्र उद्यम बच सक्ते हैं। बहुत-से लोग लोकमतका अनुमान करते हैं और यह मानते हैं की कि लोकमत सभी कार्यो की है जो उनके जीवनमें उनके सभाना सभान का जाती एक क रीन सगा है। उनके इच्छित तैलक मोड बाउ सभाने ही है

'लोकमत' अतिरिक्त अथ किसी वस्तुको अपन शासनका भौतिक आधार बनाकर धरती पर कोई कमी भी शासन नहा कर सका।^१

यद्यपि राजनीतिज्ञ तथा अथ सौग 'लोकमत' शब्दका प्रयोग राजनीति-शास्त्रके अथ शब्दाकी भाँति व्यापक रूपमें करते हैं फिर भी इस शब्दके विविध और कभी कभी विराधी अर्थ किये जानेकी सम्भावनाएँ हैं। जैसा कि एक आधुनिक लेखकने लिखा है यह एक अस्पष्ट शब्द है जिसका प्रयोग लेखक और व्याख्याता राजनीतिक और आर्थिक मसलानकी खचा करते समय मनमाने ढंगसे किया करते हैं। रूसके इस कथनमें एक चेतावनी है लोकमत और प्रचारकी धारणाको स्पष्ट करनेमें सतर्कता बरती जानी चाहिए। इस बातको हमारा ध्यानमें रखना चाहिए कि लोकमत शब्द ऐसा है जिसकी परिभाषा देनेके बजाय उसका अध्ययन अधिक होना चाहिए।^१

लोकमतकी परिभाषा देनेके अनेक प्रयत्न किये गये हैं पर अथ ऐसे प्रयत्नोंकी भाँति इस सम्बन्धमें भी परिभाषाएँ रूपनिश्चि बहूत कम कर पायी हैं। लोकमतके सम्बन्धमें दो महत्वपूर्ण विचार यह हैं (१) लोकमत निश्चित धारणा या सिद्धान्त न होकर विचार है। (२) लोकमतकी उत्पत्ति समय जनतासे होती है। एल० डब्ल्यू० ह्यू लिखते हैं 'लोकमतका अर्थ एक ही सामाजिक गुटके सदस्योंके रूपमें जनताका किसी प्रश्न या समस्याके प्रति दृष्ट या विचार है।' रूसके का कहना है कि 'लोकमत किसी विषय समय या स्थानमें प्रचलित प्रभावपूर्ण विरोधी विचारधाराके आधार पर बना हुआ सावजनिक मन होता है सम्पूर्ण गुटसे सम्बन्धित विवादमूलक समस्याओंके बारेमें गुटके समस्या द्वारा अभिव्यक्त धरीयता ही लोकमत है।

विल्हेम डॉवर गुट लोकमत और जनतामें अभिव्यक्त मत में अन्तर बतलाते हैं। जनता द्वारा अभिव्यक्त मत तो तत्काल व्यक्तित्व होता है जबकि लोकमत एक अत्यन्त व्यापक आंगिक शक्ति (deeply pervasive organic force) है। मनुष्य आदि वास्तु ही विभिन्न सामाजिक गुटोंमें संगठित होता आया है। इन गुटोंके कुछ सिद्धान्त होते हैं और कुछ भावनाएँ होती हैं। सिद्धान्तों और भावनाओं की अन्तःप्रक्रियासे लोकमतका गहरा सम्बन्ध रहता है। लोकमत सामुदायिक सहित (collectivity) के भीतर पाये जाने वाले विचारधारा तरकोंके सक्रिय विवेक का तो निर्माण और अभिव्यक्ति करता ही है साथ ही जनता की उस सामाज्य इच्छा को भी प्रकट करता है जो धीरे धीरे बिलीन हो जाती है और जिसमें जनता की जब सब उमड़नेवाली भावनाएँ और निष्ठाएँ भी सामिल रहती हैं।^१

1. WILHELM DOER.

^१ Wilhelm Bauer : Public Opinion (Article contributed to the Encyclopaedia of Social Sciences, Vol. XII P 670)

प्रसिद्ध समाज-शास्त्री मॉरिस गिन्सबग कहते हैं 'सोवियत अथवा सवित्रणों के अन्तःप्रतिस्पर्धा उत्पन्न एक सामाजिक तन्त्र है।' अमेरिकी समाजशास्त्री हिम्बॉस यंग लिखते हैं 'किसी एक निश्चित समय पर जनता के जो मनु होते हैं उनमें सोवियत बनता है।'

रुद्र का कहना है कि इन विभिन्न मतों का विधान करना मुश्किल काम है कि सोवियत में पार बाँटने निहित है। पृथ्वी बात यह है कि संस्थाओं का गुण एक 'जनता' होती है। दूसरी बात यह है कि पृथ्वी इन संस्थाओं के अर्थात् जनता के कुछ सामान्य विषयों पर समझौता होता है बिना संस्कारण के एक दूसरे के बिना विचार विमर्श करने हैं मन ही मनी-मनी किसी एक एक एक दूसरे के मनमानी रहें। तीसरी बात यह है कि एक या अधिक जनता होती हैं बिना काम समय-समय पर उत्पन्न मनना पर मनना पर स्थिर करना और फिर पृथ्वी संस्था के अर्थात् जनता का ध्यान 'मं मनकी और माकूल' करना होता है। चौथी और अन्तिम बात गुण के संस्था पर इस मनना स्वीकार किया जाना है और इन मनुमें उत्पन्न आकांक्ष के कारणों का समर्पण करना है।

एक दूसरे समझना करना है कि मनुमें सोवियत का अर्थ है। परन्तु विरोधी विचारों और परिस्थितियों की अन्तःप्रतिस्पर्धा सोवियत का निर्माण हुआ है। जब किसी मनुको जनता के अधिकार प्राप्त हुए हैं। तबिन जब मनी मनुओं और मनी मनुओं द्वारा लिए गए मामुम हाने मनुता है। तबिन जब मनी मनुओं और मनी मनुओं द्वारा इस संस्था का स्थापन होता है तब वह फिर एक 'मनु' बन जाता है। इस प्रकार समय पर सोवियत संघ और मनुके बीच रसबाजी चलती है अन्तःप्रतिस्पर्धा यह है कि 'संस्था के अन्तःप्रतिस्पर्धा का स्थापन करना जाता है मनुको केवल विचारों के अन्तःप्रतिस्पर्धा'।

सोवियत संस्था के अन्तःप्रतिस्पर्धा का स्थापन करना बहुत ही जटिल काम है। फ्रेंच भाषा में इन मनुम विनो-मनुम समाचारों का अन्तःप्रतिस्पर्धा प्रहृत्ये होता था। एयेनोसमी 'ओसा' (Ossa) 'परमा' (Perma) और 'नामस' (Name) तथा सोवियतमी 'परमा पॉयुनीसिस' (Perma Poynisiss) और 'बॉसिस पॉयुनी' (Oss Poynisiss) जैसे मनुमि काम मने थे। मन्वकीनीन एसा 'जानेवमस' (Gensaruss) के परम्परागत मनुम प्रचलित मनुम काय हुआ था। मन्वकीनीने 'परमा' मनी 'नामस' मनी 'ओसा' मनुमि काम मने थे। मन्वकीनीने 'परमा' मनी 'नामस' मनी 'ओसा' मनुमि काम मने थे। मन्वकीनीने 'परमा' मनी 'नामस' मनी 'ओसा' मनुमि काम मने थे।

1. M. G. Ginsburg: The French Labor Society P 115
 2. M. G. Ginsburg: Social Psychology
 3. M. G. Ginsburg: Social Psychology P 115

अपने निबंध 'Essay Concerning Human Understanding (१६९०) में उन्होंने लिखा है

अपने कर्मोंकी नैतिकता और अनैतिकताका निर्णय करनेके लिए जिन विधियों का सहारा प्रायः लोग लेते हैं वे ये तीन हैं (१) दैवी विधि (२) नागरिक विधि, (३) मत विधि या यश की विधि यदि उसे यह नाम दिया जा सके। स्वतो का दण्ड कोसोती जनरेल (volonte generale) और जर्मनीके क्रांतिकारी साहित्यकों और कलाकारों (Romanticists) का दण्ड 'वाक्सजीस्त' (Volkgeist) 'लोकमत' दण्डसे मिलते-जुलते हैं। फ्रांसीसी क्रांतिके ठीक पहले ओपीनियन पब्लीक (opinion publique) का अर्थ अत्यधिक प्रचलन हो गया था।

अनेक लेखकाने लोकमतकी रूपहीनताकी आलोचना की है। मॉरिस गिन्सबर्ग ने लोकमतकी तुलना एक ऐसी वीणासे की है जिसमें लाखों तार लग हैं। इन तारों को हर दिशासे खानेवाला झोका छेड़ता है और जो स्वर निकलते हैं वे हमारा संगीतारमक नहीं होते। सिसरो लोकमतको असंगत अशुभकी और अविचारकी बतलाते हैं। फ्लॉबर्ट (Flaubert) की रायमें लोकमत एक शिगु है जो सामाजिक विकासकी सीढ़ीमें हमारा नीचे ही खड़ा रहगा।

एसा लगता है कि लोकमतमें एक स्वामाविक अन्तर्विरोध है। जैसा कि एक लेखक ने लिखा है जहाँ एक इसका 'लोक' पक्ष है यह अच्छा है पर 'मत' के रूपमें यह बुरा है। इसी कारण लोकमतको कुछ मोग भ्रामक असंगत रूपहीन और बालूके कणों की भांति दिन प्रतिदिन पलायमान बताते हैं। फिर भी इस विविधता और अस्पष्टता के बीचसे ही कुछ ऐसे स्पष्ट विचारनिकल आते हैं जिन्हें लोकमत कहा जा सकता है और जो किसी देशके बहुसंख्यक नागरिकोंके कार्योंका निर्देशन करते हैं। ध्यान देनेकी एक बात यह है कि प्रसिद्ध लेखक वाल्टर लिपमन (Walter Lippmann) ने १९२२ में प्रकाशित अपनी पुस्तक *Public Opinion* में जनताको अविचारशील बताया था परन्तु तीन वर्ष बाद इन्होंने अपनी नयी पुस्तक *The Phantom Public* (१९२५) में अपने विचार जनताके पक्षमें बदल दिये।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि लोकमतका स्वरूप शिजामूमक होता है। अनेक बार सोचकर ही जनता सोचना सीख सकती है। आज कोई भी सरकार साधारणतया लोकमतकी अवहेलना नहीं करेगी क्योंकि ऐसा करनेका अन्तिम परिणाम जनताका कोपभाजन बनना ही सकता है।

सरकारको लोकमत पर ध्यान देना चाहिए, इस रायके पक्षमें एक एक यह निया जाता है कि जिसके नाँदा लगता है वही उससे होनेवाले दण्डको महसूस करता है। कोई वस्तु अच्छी है या बुरी यह उस वस्तुका प्रयोग करनेवाला ही बता सकता है न कि उसे बनानेवाला। अरस्तू की भाषामें रसोद्भये की अपेक्षा अतिथि ही परते गये भोजनके बारेमें सही निर्णय दे सकता है। अन्तकारकृत भाषाको दोहरा साधारण

साम्राज्य जनताका राय ही मध्य बिना रायका बिना जनता का अधिक मतार्थ कर
 सक्ता है और अधिक समय तक शासन ए सहजता है।
 सोवमनका मूल्यरुप साकमतकी पहचान हमारा बावनाम नहीं होगी और
 पहचान मन पर ना यह निर्बन्ध करना बाघान नहीं होगा कि उसमें नाह और
 मय' दनों ही हैं। यह हम चाहते हैं कि सोवमनव सपमूव जनताको मान हो तो
 हम सही नाकमत और प्रत्य साकमतमें अन्तर करना होगा। बावकल जो कुछ
 साकमत मान बिना जाता है उसका बहुत बड़ भाका निना' अन्तर्गत इतिम परि
 स्थितियाम होता है। यह बहुत है जिसका निर्माण और मन्त्र किसी न किसी प्रकार
 क' बाव शासनवान ग'ों और निहित स्वामी' गरा हुआ है। यह गुण और निहित
 स्वाय प्राय' इतनी घुंटा और धातानी स काम करते हैं कि जनता उनके बनय
 हुए मनका न कलत माना मन ही मानने मग्नी है बल्कि इस अरन लिए कला'ण
 कारी भा मानने मग्नी है। जबकि बाल्यमें यह मत्र कुछ इने-इने माग'रा करन
 स्वापका निहित लिए जाता है। जो सो' इस प्रकार सोवमतका निर्माण करन हैं वे
 जन-मनाविधानने जान-भूम ग'वाये मान ल'गते हैं। क माग जनतामें कनी मय पण
 द्वय धार नियममूवक भावनाअये मान ल'गते हैं। कभी के जनताकी धानमी करते
 हैं और कभी उनकी निर्णय करते हैं।

साकमतका निर्माण करनवानी परिस्थितिमें पहला स्थान समाचार-पत्रोंका प्रािण
 जाना चाहिए। सा'की विचारधारा प्राय' उनके प्रािण समाचार-पत्रोंके प्रभावित
 हुानी ए'ती है। विचारजन पाठक ठा समाचार-पत्रको पढ़ते समय इस बा'को ध्यान
 में रखते हैं कि समाचार-पत्रके समाचार प्रकाशक या मालिक किस विचारधाराके
 सनर्पक हैं और समाचार-पत्र किस हित या स्वार्थ का पो'क है। इस बातकारी
 की पृष्टिभूमिमें ही विचारजन पाठक समाचार-पत्रके विचारों और समाचारों का
 मूल्यरुप करते हैं। पर अधिकतर पाठक अपने साकमत नहीं ए'ते। वे समाचार-पत्र
 म प्रकाश दिने का विचारों और समाचारोंको सही मालकर उनके बा'वार पर मग्नी
 याय कल्पम करते हैं। इस प्रकार समाचार-पत्र और ट'र (Review) तथा प्रेस
 ट'र अ'क' ए'दिना प्रेमी समाचार ट'रमिना पाठकोंके मन और कल्पन पर
 समाचारका निर्माण करते क'नी परिस्थितिमें समाचार-पत्रके मन्तन ही महाभूमं
 समाचार ट'रमिना क'म समाचारिक मू' और विभिन्न प्रकारके ट'रम ट'रनेक'ने
 मू' है। समाचार क'म जनताके कुछ प्रतिपन मा' है। समाचारकी इनके म'ल' है
 एव म'य निपनय हा है और व मा' समाचारकी ट'रक म'य के सनर्पक हा भी स'त
 है और म' भी हा स'त है। ट'र भी उस दे'ने किन सोवमत क'रा व म'य म'य
 है क'ला' साम्यकारी इनके भी'ती मू'के ही विचार होते हैं। ट'रि'ट'र क'य इ'ती
 हा'क म'ल'क बा'ने'टी'क' नहीं हो स'ता। ट'र भी यह क'हा जा स'ता है कि क'ल'न
 म'य म'यका'के बा'ने'के सोवमत क'ने'क' हा'ई क'न'ग'क' विचारोंका ट'र'क'र्ष हा' म'य

और सार्वजनिक बनके कुछ भागों पर उनका कुछ कुछ स्वतंत्र नियंत्रण रहता है।^१

स्थानीय शासन और राज्य या केन्द्रीय शासनका यह अन्तर स्थानीय और केन्द्रीय शासनका द्वारा शासित क्षेत्रके क्षेत्रफल या जनसंख्या पर आधारित नहीं है। उदाहरणार्थ मोनाको राज्यका क्षेत्रफल केवल आठ घण्टे की दूरी है और उसकी जनसंख्या केवल २३ ००० है। कनकसा कॉरपोरेशनका अधिकार हमसे कहीं अधिक बड़े क्षेत्र और जनसंख्या पर है। लेकिन मानाको एक स्वतंत्र राज्य है और कलकत्ताका कॉरपोरेशन स्थानीय शासनकी एक इकाई मात्र है।

लेकिन स्थानीय शासन और राज्य या केन्द्रीय शासनमें एक महत्वपूर्ण अंतर उनके द्वारा किये गये कार्योंके आधार पर किया जा सकता है। एक राज्यकी केन्द्रीय सरकार बाहरी सत्तरासे राज्यकी रक्षा करती है, देशमें शान्ति और व्यवस्था कायम रखती है, वैदेशिक सम्बन्धोंका संचालन करती है, मुद्रा चलती है, सेना का संग्रहण करती है, वाणिज्य और व्यापारका नियमन करती है और संचार और परिवहन आदिके साधनोंका नियंत्रण करती है। दूसरी ओर स्थानीय शासनकी इकाइयोंके पास इस प्रकार के जल बिजली और गैसका प्रबंध ट्राम और नौकाकी सेवाएँ नगरकी नालियाँ और सफाईकी व्यवस्था स्कूल पुस्तकालय रद्यानों अस्पतालों आदि का प्रबंध। इस प्रकार स्थानीय शासनको सम्बन्ध स्थानीय मामलोंसे होता है जिनके लिए स्थानीय विवरणका ज्ञान और स्थानीय अनुभवकी आवश्यकता होती है। दूसरी ओर केन्द्रीय शासनका सम्बन्ध राष्ट्रीय महत्वके मामलोंसे या उन विषयोंसे होता है जिसमें पूरे देश और समूची जनसंख्याका हित निहित हो।

स्थानीय स्वशासनकी व्याख्या स्थानीय शासनके अर्थके बारेमें ऊपर जो कुछ कहा गया है उससे स्थानीय शासनकी व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है स्थानीय शासन केन्द्रीय सरकार (या संघ राज्यमें राज्य सरकार) के अधिनियम द्वारा निमित्त एक ऐसी शासकीय इकाई है जिसमें नगर या गाँव जैसे एक क्षेत्रकी जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि होते हैं और जो अपने अधिकार क्षेत्रकी सीमाओंके भीतर प्रदत्त अधिकारोंका प्रयोग लोक-कल्याणके लिए करती है।

स्थानीय स्वशासनका महत्व स्थानीय शासनका अर्थ समझनेके बाद उसके महत्वका विस्तार करना उचित होगा।

(१) स्थानीय शासनका पहला लाभ यह है कि हमसे कार्यक्षमता बढ़ती है। स्थानीय शासनके क्षेत्रमें रहनेवाली जनता स्थानीय समस्याके कारणोंसे दिनचर्या सेने लगती है। वह कार्यमें भाग लेनेके अवसरका उपयोग करती है। वह स्थानीय समस्याओं और आवश्यकताओंको सबसे अच्छी तरह समझती है और वह ही यह जानती है कि स्थानीय समस्याओंका किस प्रकार हल किया जा सकता है और स्थानीय आवश्यकताओंकी पूर्ति किस प्रकार की जा सकती है। स्थानीय शासकीय संस्थानोंमें

जनताकी इस विश्वसनीय कारण दासकीय काय प्रस्तावपूर्वक किय जाने है। सम्भव है कि केन्द्रीय सरकारके प्रतिनिधि स्थानीय समस्याओंको स समझ सर्व ओर स्थानीय समस्याओंका हल ईद निकालमा उनके लिए सम्भव न हा। दूरस्थ त्रामि काय करने में उन्हें अवश्य ही बड़ी कठिनाइयोंका सामना करना पडता है। इन कायोंको स्थानीय शासन आसानीस दशतापूर्वक कर सकता है।

(२) स्थानीय शासनस सरकारके प्रथम कमी होता है। जब कुछ लाभप्रद काय कवन एक विंगय क्षत्रक लिए किय जात है तो यह उचित ही है कि उन कायोंका लक्ष बहु क्षेत्र ही उठाये। फलतः केन्द्रीय सरकार कुछ खर्च करनेमे बध जाती है। स्थानीय शासनका अपना लक्ष पूरा करनेके लिए कर लगानेका अधिकार हाता है। केन्द्रीय सरकार स्थानीय संस्थाको कुछ आर्थिक सहायता दे सकती है पर उसका लक्ष तो कम हा ही जाता है।

(३) स्थानीय शासन केन्द्रीय शासनका कुछ बोझ अपन ऊपर ल सता है। केन्द्रीय शासन अपने कुछ कार्य स्थानीय शासनको सौंप दता है। फलतः स्थानीय शासन केन्द्रीय या राज्य सरकारोंका बहुत-स कायों या जिम्मेदारियामि मुक्त कर देता है।

(४) स्थानीय शासनस जनताका राजनीतिक प्रशिक्षण सने का अवसर मिलता है। स्थानीय शासनके कायोंस भाग लेकर जनता स्वयं शासनकी रीति-नीतिका देग ओर समझ सकती है। जनता राजनीतिक तौर पर सजग रहती है ओर कराके औचित्य चुनावके तरीक ओर शासनके कायोंमे समझ सकती है कि शासन अपन फर्जस्य पूरे कर रहा है या नही। नागरिक सांख्यिक मामलाके परिचित हा जाना है। स्थानीय संस्थाएँ नागरिकाका गज्य ओर देगकी राजनीतिक भाग लेनके योग्य बनाती है।

(५) यह केन्द्रीय या राज्य-शासनको परामर्श देनेवासी संस्थाकी भूमि काम करता है। किसी प्रस्तावित विधिक सम्बन्धमें केन्द्रीय सरकार स्थानीय संस्थाओंके महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकती है। स्थानीय संस्थाओंको स्थानीय परिस्थितिया का ज्ञान होता है ओर इस कारण वे केन्द्रीय सरकारको परामर्श दे सकती है।

(६) इससे जन-सहयोग मिलता अधिक आसान हो जाता है। सारजन्य शासकीय कायोंस जनताका सहयोग अनिवार्य हाता है। स्थानीय शासनक जग जनता शासनक कायोंस सक्रिय भाग सने लगती है। जब जनता निश्चय स्वरा पर सहयोग करना आरम्भ कर देती है तब राज्य और केन्द्रीय शासनस जनताका उच्च स्तरीय सहयोग आसान हो जाता है।

(७) स्थानीय शासन जनताको सुविधाएँ देनेवालेका एक साधन है। स्थानीय शासन सगई सडको स्वार्थ्य जन बिजली आदि की समस्याएँ हल करके जनता को सुविधाएँ पहुँचाना है। जनताके लिए भी यह अधिक सुविधाजनक हाता है कि उसका समस्याएँ केन्द्रीय शासनके प्रतिनिधि द्वारा हल न हा जाकर स्थानीय शासन हाता हल की जायें।

शहरी क्षेत्र भारतमें शहरी क्षेत्रोंके स्थानीय शासनका ढाँचा ब्रिटेनके स्थानीय शासनके ढाँचेसे मिलता-जुलता है।

निगम (Corporation) भारतमें कलकत्ता बम्बई मद्रास दिल्ली पटना सलनऊ और कानपुर जैसे बड़े नगरोंमें निगम स्थापित किये जा चुके हैं। निगमोंकी संख्या तबसे बढ़ रही है। हर राज्य विभिन्न बनाकर छोटे-बड़े नगरोंमें निगमोंकी स्थापना कर रहा है। भारतमें निगमोंकी प्रगति दिन-प्रति-दिन बढ़ने वाली शहरी आबादी और शहरोंके शीघ्रोगीकरणका परिणाम है। नगरी आबादीकी आवश्यकताएँ बढ़ती गयी हैं और पहलेसे बहुत बढ़ गयी हैं। इसलिए शहरी निगमोंकी आवश्यकता हो गयी है। निगमोंके कार्य और अधिकार नगरपालिकाओंके कार्यों और अधिकारों से अधिक होते हैं—(कर आदि कमीशनकी रिपोर्ट)। दूसरे दृष्टिकोणसे निगम नगरपालिकाओंके विकसित और विस्तृत रूप हैं। साथ ही साथ निगमोंमें जनसंख्याका स्तर एकसा नहीं होता। उदाहरणके लिए बम्बई और सिकन्दराबाद नामक निगम हैं। बम्बईकी जनसंख्या १८ लाख से अधिक है पर सिकन्दराबादकी जनसंख्या २ लाखमें भी कम है। निगमोंके क्षेत्र भी एक समान नहीं होते। निगमोंपरिपक्व होने जानेवाले संस्थानोंकी संख्या भी विभिन्न निगमोंमें विभिन्न होती है। पर सभी राज्योंमें निगमोंका ढाँचा और उनके कार्य लगभग एकते होते हैं।

नगरपालिका (Municipal Board) भारतमें नगरपालिकाओंकी स्थापना ऐसे नगरोंमें की गयी है जिनकी जनसंख्या ५ हजार से अधिक होती है। नगरपालिकाओंकी रूपरेखा अधिकार और कार्य राज्य सरकार द्वारा बनायी गयी विधियाँ पर निर्भर करते हैं। कुछ नगरपालिकाओंमें सभी सदस्य निर्वाचित ही होते हैं, पर कुछ नगरपालिकाओंमें मनोनीत सदस्य भी होते हैं। भारतमें लगभग ६०० नगरपालिकाएँ हैं।

नगर क्षेत्र समितियाँ (Town or Notified Area Committees) छोटी जनसंख्याके शहरी क्षेत्रोंमें नगर क्षेत्र समितियाँ स्थापित की जाती हैं। इस प्रकारकी यह समितियाँ पंजाब उत्तर प्रदेश और बिहारमें पायी जाती हैं। इन्हें छोटी नगरपालिका कहा जा सकता है। इनके कुछ सदस्य चुने जाते हैं और कुछ उनी क्षेत्रके जिला बोर्ड द्वारा मनोनीत किये जाते हैं। इन समितियोंकी आमनी नगरपालिकाओंकी आगदनीसे कम होती है। इन समितियों पर जिलाधीन या हाकिम-परगनावा नियंत्रण भी अधिक रहता है। नगर क्षेत्र समितियोंकी सूचना ब्रिटेनके शहरी जिला (urban districts) से की जा सकती है।

इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट (Improvement Trust) इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट की स्थापना मुख्यतः नगरोंमें रहनेवाली जनताकी सफाई, स्वास्थ्य और अन्य सविधाओंमें सुधार करनेके लिए की जाती है। इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट इमारतोंका बेसिलसिलवार बनानेसे शहरके नगरका व्यवस्थित विकास करते हैं। नगरमें खुले स्थानों पाकी चौड़ी सड़कों बाजारों सार्वजनिक पाठशाला आदिकी व्यवस्था करना इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्टोंका

नाम है। इन्प्रुवमेण्ट ट्रस्टोंकी स्थापना एब निर्मित उद्देश्यके लिए की जाती है इनको तत्प सम्पाए (ad hoc bodies) भी कहते हैं।

बन्दरगाह ट्रस्ट (Port Trust) बलवत्ता बन्दई मन्त्र विभागपालनम और कानूनम स्पानीय सस्थाअबि रूपम बन्दरगाह ट्रस्ट होते हैं। इन ट्रस्टके मन्त्र्य विभाग और व्यापारकी सस्थाओ द्वारा चुने जाते हैं। कसु सम्म्य सरकार भी मनोनीत करती है। इन ट्रस्टका बन्दरगाहों पर अधिकार होता है और ये बन्दरगाहों के डॉकयार्डों (Dockyards) और गोदामोंका नियन्त्रण करते हैं।

छावनी बोर्ड (Contonment Board) छावनी बाइ उन स्थापना पर पाये जात हैं जहा सैनिकबि अग्रे होने हैं। इन बोर्डोंका काम छावनी क्षेत्रकी देख रान करना होता है। इसका मुख्य कामनोर पर चुन हुए हात हैं पर अग्रेका अध्याप सरकार द्वारा मनानीत अधिकारी होता है। छावनी बोर्डोंका निर्माण और नियन्त्रण सैनिक नियमबि अनुसार होता है।

ग्रामीण क्षेत्र भारतके ग्रामीण क्षेत्रबि स्थानीय सामन्तता कांचा विन्तक ग्रामीण क्षेत्रबि स्थानीय शासनके ढांचके भिन्न होता है। भारतमें यह ढांचा सामान तन्त्रीय होता है। विन्तक एगा नहा है। भारतम स्थानीय बोर्डों (Local Boards) और ग्राम पंचायत पर जिला बोर्डोंका नियन्त्रण रहता है।

जिला बोर्ड (District Board) भारतके हर राज्यम जिला बोर्ड होत हैं। पर आगामम जिला बोर्डके स्थापन पर स्थानीय बोर्ड होते हैं। भारतम लगभग १८७ जिला बाइ हैं। भारतमें जिला मुख्य प्रशासनकी इकाई है। जिलेके स्थानीय विषयों और समस्याओंके निपटनके लिए जिला बोर्डोंकी स्थापना सर्वप्रथम १८७० म लॉर्ड मेयो (Lord Mayo) द्वारा की गयी थी।

स्थानीय बोर्ड (Local Board) यह स्थानीय इकाईया जिला बोर्डके निर्देशानुसार होती हैं। इन्हें स्थानीय बाइ और कुछ शहरोंमें सामुदायिक बाइ या सार्वजनिक बोर्ड कहते हैं। इनका स्थापन जिलेके परामर्शमे होता है। इनका स्थापन अधिकार नहीं होता। उनके बजट जिला बाइ द्वारा निर्दिष्ट किये जात हैं। ग्रामीण क्षेत्रमें स्थानीय सामन्तको शक्ति करनेके लिए स्थानीय बोर्डोंको गमनाय करनेका प्रयत्न है।

यूनिऑन बोर्ड (Union Board) यूनिऑन क्षेत्रोंकी स्थापना बर भारत म पा गाओके एक समुहम की जाती है। ये स्थानीय बाइके समन्त होते हैं। ये बाइ उपग्रामीण गिष्ट नहा हुए हैं।

ग्राम पंचायत ग्राम पंचायत भारतम स्थानीय स्वशासनका निम्नतम स्तर है। एक बड़ा गांव या कुछ छोटे गांव मिलकर एक ग्राम पंचायतका स्थापन करने है। ग्राम पंचायतके लिए कयोंके काम एक एकाग्रकी आवश्यकता आवश्यक है। पर यह मुख्य विभिन्न शक्तोंम विभिन्न हा सकती है। एक बड़ी जनसंख्या वाले बड़े गांवों का ग्राम पंचायत भी हो सकती है। भारत काय का देत है अग्रे अधिकतर गांव सार्विक बाइ बनते हैं। इन्हें ग्राम पंचायतका स्तर रहता है। भारत की जाती है कि ग्राम

SELECT READINGS

- CLARKE—*Outlines of Local Government.*
 G MONTAGUE HARRIS—*Comparative Local Government*
 G D H COLE—*Local and Regional Government*
 R N GILCHRIST—*Principles of Political Science*
 H SIDGWICK—*Elements of Political Science*
 W A ROBSON—*The Development of Local Government*
 M P SHARMA—*Local Government in India*
 DR GYAN CHAND—*Local Finance in India*

लोक कल्याणकारी राज्य (Welfare State)

कल्याणकारी राज्यका अर्थ कल्याणकारी राज्यकी धारणा राजनीतिशास्त्रके निम्न नयी है। यह अभी प्रयोगकी अवस्थामें ही है। भावी सरकारें कल्याणकारी राज्यका लक्ष्य प्राप्त करनेके अपन मापनों और तरीकोंका बनानी रहेंगी। फिर भी इस धारणाको आधुनिक युगका आधिपत्य मानना भ्रम होगी। राज्यके कर्तव्य कर्ताओं द्वारा जनताका कल्याण करनेका विचार राजनीतिक विचारकी सभी अवस्थाप्राम पाया जाता है। यह हमका अनुभव किया जाता रहा है कि सरकारका कुछ न कुछ कल्याणकारी कार्य करने चाहिए। सरकारें भी समय-समय पर यह विचार करती रही है कि उन्हें मोह-कल्याणके कुछ कार्य करने चाहिए। भाग्यवत राम राज्यकी धारणा लोक-कल्याणकारी राज्यकी ही धारणा है। यह धारणा का हजार वर्षों में अधिक पुरानी है। राम राज्यका अर्थ है राज्य (अथवा राजा) द्वारा सभी परिस्थितियोंका निम्न किया जाना जिनमें प्रत्येक व्यक्ति स्वस्थता स्वतंत्र रूपसे सङ्गीण विकास हो सके। इसका अर्थ है जनताका कल्याण या प्रत्येक व्यक्तिका कल्याण। इसी प्रकार अर्थ देगों में भी वर्तमान कल्याणकारी राज्यके विचार की इतिहासीय पृष्ठभूमि मिलती है। पर अभी कुछ वर्षों में ही लोक-कल्याणके कर्तव्य को अधिक स्पष्ट और व्यापक रूप दिया गया है। जिन प्रति जिन पर जनमत दिया जा रहा है कि राज्यको अपने कार्य-क्षेत्रका विस्तार करना चाहिए। एका जनमत दिये जानेके मुख्य कारण लोकतंत्रीय आन्दोलनका विकास और समाजवाद, सामाजिक औद्योगिक विकास है। लोकतंत्र और औद्योगिक क्रान्तिके परिणामके सामाजिक गुणवत्ताकी आवश्यकता और आन्दोलन का जन्म लिया। धीरे-धीरे यह विचार दृढ़ होता गया कि राज्यको लोक-कल्याणके कार्य करने चाहिए। सामाजिक राज्य प्रयोग केबाद राज्यका रूप पहलू करना गया। इस प्रकार कल्याणकारी राज्यके विचारने एक निर्दिष्ट रूप धारण किया।

कल्याणकारी राज्यके अर्थको गीत प्रकार समझनेके लिए यह आवश्यक है कि पहलू लोक-कल्याणका अर्थ ठीक प्रकार समझा जाय। लोक-कल्याणकी व्याख्या कार० इन्सु० कैंबो' ने इस प्रकार की है सामाजिक कल्याण का अर्थ यह है

‘कार० इन्सु० कैंबो (R. H. Kello) लोक-कल्याण विचार (The Science of Public Welfare)।

व्यक्तिको और साथ ही अन्य व्यक्तियोंको विचार करने और कार्य करनेकी उच्चतम स्वतंत्रता देता है। इसी प्रकार एच डब्ल्यू ओडम^१ ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है नाकतंत्रीय सरकारकी वह निश्चित सेवा जो अममान स्थानोंमें लोकतंत्रको प्रवाहपूर्ण बनानेके लिए समठन बना बिना न और साधनाकी व्यवस्था करती है। यह कहा जा सकता है कि एक राज्य तभी कल्याणकारी राज्य होता है जब वह लोक कल्याणके एक विस्तृत कार्यक्रमको कार्यान्वित करनेका प्रयत्न करता है।

साथ ही हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि राज्यके प्रायः हर कार्यको लोक कल्याणकारी कार्य कहा जा सकता है। इस कारण हर राज्य कम या अधिक मात्रामें सम्पत्तिकी सुरक्षाके कार्यको भी सावजनिक नागरिकोंके जीवन स्वतंत्रता और समता है और इस कार्यको एक कल्याणकारी राज्यका कार्य माना जा सकता है। पर यह कार्य एक कल्याणकारी राज्यकी विशेषता नहीं है यद्यपि हर कल्याणकारी राज्य हमेशा लोगोंके जीवन और उनकी स्वतंत्रता तथा सम्पत्तिकी रक्षा करेगा। इसलिए कल्याणकारी राज्य वह राज्य है जो राज्य द्वारा किये जानेवाले साधारण कार्योंके अतिरिक्त नाक-कल्याणके निम्ननिर्वाहन कार्य करता है सावजनिक शिक्षा, स्वास्थ्य बीमा योजनाएँ, मकानोंकी दूर करना दुर्बलकी पेंशन और सुरक्षा तथा अन्य सहायता कार्य।

दूसरे दृष्टिकोण से कल्याणकारी राज्यका अर्थ है राज्यके कार्य-क्षेत्रका विस्तार ताकि (यदि समुची जनताका नहीं तो) अधिक से अधिक लोगोंका कल्याण अवश्य ही हो सके। राज्यके कार्य-क्षेत्रके विस्तारका अर्थ प्रायः यह होता है कि व्यक्तिके निजी कार्य-क्षेत्र पर भी बाधन लग जाता है। पर कल्याणकारी राज्यका सत्य होता है राज्यके कार्य-क्षेत्रका इस प्रकार विस्तार करना कि व्यक्तिकी स्वतंत्रता पर कोई विशेष बाधन न लगे। व्यक्तिकी अपनी कार्य-क्षेत्र हो जिसमें काम करने या कोई निर्णय करनेकी उसे पूरी स्वतंत्रता हो।

साम्यवादी या अधिनायकवादी राज्याभि सभी कार्य राज्य द्वारा ही आरम्भ किये जाते हैं। व्यक्तिगत नागरिकको कोई काम करने या न करनेकी स्वतंत्रता नहीं रहती। उसे राज्यद्वारा आरम्भ किये गये कार्य-क्षेत्रमें योग देना पड़ता है। शिक्षा, स्वास्थ्य लोगोंको काममें लगाने का आरम्भ या कृषि आदि जीवनके सभी क्षेत्रोंकी विस्तृत रूपरेखा राज्य द्वारा निश्चित की जाती है और व्यक्तिको उसीके अनुकूल काम करना पड़ता है। सभी क्षेत्रोंके सभी अधिकार राज्यमें ही निहित रहते हैं अतः राज्य जनताके कल्याण करनेका साधन होनेका दावा करता है। व्यक्तिगत पहलूबन्दी और निजी उद्योगका कोई स्थान नहीं रहता।

^१ एच. डब्ल्यू. ओडम (H W Odum) और डी. डब्ल्यू. विलार्ड (D W Willard) लोक कल्याणकी प्रणालियाँ (Systems of Public Welfare)।

दूमरी और व्यक्तिवाद पर आधारित राज्यका काय भव 'यूननम' होता है। अधिकांग वान तत्राम व्यक्तिवादी प्रग स्वतन्त्रता रहती है। फलतः परिणाम और साधनगत लोग दूमरा पर आश्रित रहते हैं और उनसे व्यक्तिवादी विनाश स्व जाता है। कम राज्याम कल्याणकारी काय निजी संगठनों अथवा व्यक्तिवादी द्वारा नियोजित है। फलतः कल्याणकारी काय गरीबोंके प्रति अमीरोंकी कृपा और उदारता समझ जाते हैं। व्यक्तिवादी या निजी संगठना द्वारा किये गये कल्याणकारी कार्य इनसे व्यापक और विस्तृत नहीं होते कि व समा नागरिकाकी आवश्यकताओंका पूरा कर सकें।

व्यक्तिवादी राज्य और कल्याणकारी राज्यमें अंतर. कल्याणकारी राज्यम परिस्थितिया साम्यवादी और व्यक्तिवादी दाना साधन भिन्न होती हैं। कल्याणकारी राज्यम कल्याणकारी काय राज्य द्वारा किये जाते हैं। इन कार्याम दया या शनकी भावना नहीं रहती है। जनताको जा लाभ पहुँचाया जाता है वह उमरा अधिकार होता है। इनके बारेम कोई अनिश्चितता नहीं होती। कल्याणकारी राज्यम से लाभ उठानका दावा समा कर सकत हैं। उपाहरणार्थ विस्तृत राष्ट्रीय स्वास्थ्य योजना (National Health Scheme) के लाभ समा व्यक्तिवादी प्राप्त हैं। व अधिकारकी भाति प्राप्त है दान स्वरूप नही। लाभ उठानकालाम हरिनाका भावना नहीं होती। व्यक्तिकी क्षतिपूर्ति दूर हा जाती है। उमरी अशक्तता (disability) का देगभान की जाती है परन्तु उमने निज उम अपनी स्वतन्त्रता बलिदान नहीं करना पड़ता।

राज्य व्यक्तिवाद और साम्यवादके न्यायोंके बीच समझौता है। पर यह समझौता अभी बहुत ही अस्पष्ट है। कुछ ने काम साम्यवादके तन्त्रोंके और अन्य देशोंके व्यक्तिवादके तन्त्रोंके विषय महत्व हो सकता है। पर फिर भी इतना तो है ही कि दोनों तन्त्रोंकी कुछ कुछ बातोंको लेकर राजनीतिक क्षेत्रमें नयी दिशाकी बार एक मांग प्रगस्त किया गया है।

कल्याणकारी राज्यकी विशेषताएँ यद्यपि कल्याणकारी राज्यका नया प्रयोग विकासकी प्रारम्भिक अवस्थामें ही है फिर भी इसकी कुछ बिगड़ताएँ बतलायी जा सकती हैं।

(१) पहली बिगड़ता है स्वतन्त्र उद्योगका अस्तित्व समाप्त किये बिना सभी व्यक्तियोंके लिए न्यूनतम जीवनस्तरकी गारण्टी। हरेक व्यक्तिको एसा काम करनेका अवसर मिलना चाहिए जिससे वह अच्छा जीवन बिता सके। यह न्यूनतम जीवन स्तर इतना तो होना ही चाहिए कि एक परिवार अच्छी प्रकार रह सके। पर सबसे लिए 'न्यूनतम जीवन स्तरकी गारण्टीसे व्यक्तिगत उद्योग और पहलकदमीमें बाधा नहीं पड़नी चाहिए। व्यक्तिगत पहलकदमी तथा स्वतन्त्रताके लिए पयाप्त अवसर रहना चाहिए। यही कल्याणकारी राज्य और साम्यवादी प्रणालियामें मुख्य अन्तर है। साम्यवादी प्रणालियामें 'न्यूनतम स्तरकी गारण्टी तो रहती है पर व्यक्तिगत पहलकदमी और चरण (selection) की गुआहग नहीं होती। कल्याणकारी राज्य और निजी पहलकदमीके लिए पूरा अवसर रहता है पर न्यूनतम जीवन स्तरकी गारण्टी नहीं होती।

(२) कल्याणकारी राज्यकी दूसरी बिगड़ता यह है कि आयके सीमित पुनर्वितरण के लिए ऐसे ँके कर लगाये जाते हैं जो आयके साथ बढ़ते जाते हैं। इस तरह प्रणाली से निजी उद्योगोंकी आमदनियाके अन्तर कम हो जाते हैं। व्यक्तिवैकी आयका अन्तर कायम रहता है पर यह अन्तर कम और सीमित हो जाता है।

(३) कल्याणकारी राज्यकी एक महत्वपूर्ण बिगड़ता है सभी जरूरतमन्त्र लोगोंको सहायताका आवासन। बृद्ध लोग ऐसे लोग जो प्राकृतिक सबन और नह जाते बीमार अनाथ माधनहीन विधवाओं एसे लोग जो प्राकृतिक सबन और दुपटनाओंके शिकार हो जाते * तथा इमी प्रकारके अन्य लोगोंको राज्य आवश्यक सहायता देता है। पर यह सहायता दानक रूपमें नहीं होती। यह तो अधिकारकी नीति में जानी है।

(४) सांस्कृतिक गिना कल्याणकारी राज्यमें आधारभूत आवश्यकता है। सभी नागरिकोंके लिए एक निश्चित स्तर तक गिनाकी व्यवस्था रायको करनी होती है। कल्याणकारी राज्यकी गिना प्रणाली साम्यवादी राज्यकी गिना प्रणालीमें भिन्न होती है। कल्याणकारी राज्यकी गिना-प्रणाली उदार होती है। जिसमें व्यक्तिवैयोंक

बाध्य नही किया जाता और उन्हें अपना मनचाहा पान प्राप्त करनेका बहुत अवसर रहता है।

(२) मावजनिज स्वाम्य्य योजना भी अनिवाय है। बन्धावकारी राज्यमें राज्यकी सभी नागरिकोंके स्वाम्य्यकी विभाजना करनी पड़ती है। राज्यकी आत्म शासकनिज अन्तर्गत मान जान है टाकर नियत किय जान है और बांधारका दवाग्या भी जानी है। मना नागरिक स्वाम्य्य और पौष्टिक भाजनकी देगनाउ करना राज्यका कर्तव्य हा जाना है।

(३) बन्धावकारी राज्यका एक दूसरी बिगाना है बंधारोंका कामम लगाना। जो भाग काम करनेके बाध्य हान है मकिन उन्हें काम नही मिलता ऐसे भागाका काम म लगानाकी व्यवस्था राज्यकी करनी जानी है। कामकी इस व्यवस्था और पधि नायकवाण राज्यकी उस व्यवस्थासे बडा अन्तर है जिसम भागाका काम करनेके लिए मजदूर किया जाता है। राज्यकी आत्म सबका काम करनेका अवसर म पा जाना है और एक व्यक्तिका इस बांधा मोहा रहना है कि वह अपना मनचाहा काम पकर कर म।

(७) सब व्यक्तियोंके लिए कामका व्यवस्था एक और अनिवार्य बिगाना है। हर व्यक्तिको सुमान्यता दुपटनाओंके बजानकी व्यवस्था जानी चाहिए। किमी भी समय मयु हा गहना है या काम भी व्यक्ति काम करनेके अवसर हा मबना है। लमी गहनर लिए राज्यकी आरने बीनेकी व्यवस्था जाना है।

(८) अनिज बन्धाकी देगनाउ करना बन्धावकारी राज्यकी एक और बिगाना है। हर राज्य ऐसे बहुतसे उपनिठ बच्चे होते हैं जो या ता अनाप्य करन मन्ते हैं या विचर देगनाउ और निगाके अनाबक कारण बिगड जान है। एम बन्धाकी देगनाउ करना उनका पानन-पोषण करना और फिर उन्हें कामम लगाना राज्यका कर्तव्य होता है।

आधार घम ६२ राजनीतिक चेतना
 ६३ राज्य निर्माणके ६० वश
 सम्बन्ध ६०
 आन्द्रे-मोरो लोकतन्त्रको परिस्पष्टितयो
 के अनुकूल बनाना आवश्यक ३७८
 व्यक्तिगत नतुत्व ३८२
 आयगर ए० ए० एक विधायक
 द्वारा दो बारसे अधिक जनताका
 प्रतिनिधित्व अनुचित २८२
 द्विसदनवाद एक जीर्ण-दोर्ण
 सिद्धान्त २७६ मतदाताओंकी
 शिक्षा सम्बन्धी योग्यता आवश्यक
 २८७ विधायकका वेतन २८३
 ऑस्टिन जॉन सम्प्रभुता सम्बन्धी
 सिद्धान्त २४२ आलोचना
 २४३

इच्छा व्यावहारिक और वास्तविक
 इच्छामें अन्तर ९२ ९४
 इतिहासीय या विकासवादी सिद्धान्त
 ५९
 इमर्सन राजनीति-शास्त्र ५६
 इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट ४०२
 इलियट राज्यके जीवनका मौलिक
 सिद्धान्त ३७

ईसाई, धर्म-संघ ७०

उत्पत्ति इतिहासीय या विकासवादी
 सिद्धान्त ५९ देवी उत्पत्ति
 सिद्धान्त ५५ पितृसत्ताक एवं
 मातृसत्ताक सिद्धान्त ५६
 प्रारम्भिक या प्रागैतिहासीय ५४
 बल-सिद्धान्त ५४ राज्यकी, ५४
 सामाजिक सविदा सिद्धान्त, ४८
 उद्देश्य सांस्कृतिक और अन्तिम
 उद्देश्य अन्तर ११२ उद्देश्य
 ११६ राज्यका उद्देश्य ११२
 ११९ राज्यका उद्देश्य-सांस्कृतिक
 मूल, ११४ व्यवस्था बनाये रचना

११५ साध्य या साधन ११६
 सामाजिक सेवा ११५

एकवाइनस आत्म-हत्या १८३ राज्य
 का उद्देश्य ११४
 एस्मीन अध्यक्षतामक सरकारके दोष
 ३१३ एकसे अधिक वोट देने
 की प्रणालीका विरोध २९२
 महिला मताधिकारका समर्थन
 २९१ लिखित सविधान २६३

एंग्रिक्स राज्य धर्म का मूर्तिमान
 स्वरूप, ०४ समाजवाद का
 सबहारा आन्दोलनका रूप १५५
 एक्टन साइ दूसरा सदन आवश्यक
 २७५ राजनीति-शास्त्र और
 आधार-शास्त्र या नीतिशास्त्र ११
 ऐसन सी० के० प्रजा को राज्य के
 विरुद्ध प्रतिकार ३३९

ओडम० एच० इत्य० साकबल्याण
 की व्याख्या ४०८
 ओपेनहीमर राज्य एक वग-व्यवस्था
 २९

औचित्य, अराजकतावादी दृष्टिकोण,
 १०० १०३ आदर्शवादी दृष्टि
 कोण ११० १११ आलोचना,
 १११ ११२ उपयोगितावादी,
 दृष्टिकोण १०७ १०८,
 आलोचना १०८ १०९ पामिक,
 दृष्टिकोण १०३ आलोचना,
 १०४ मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोणसे
 आलोचना १०९ ११० राज्यका
 औचित्य १०० ११२ धर्म
 सिद्धान्त १४ आलोचना
 १०४ संगठनकी आवश्यकता
 १०९ आलोचना १०९ सविदा
 सिद्धान्तका दृष्टिकोण, १०९
 आलोचना १०६ १०७

कर्तव्य हत्या न करनेका १८४ १८५
 कल्पयिष्यम शासन-कृता १
 काय-नैतिक स्वतंत्रता १९६
 सामाजिक सविनया सिद्धान्त
 ४८

काय-आत्र अन्य सिद्धान्त १४० १४१
 आत्मवाणी सिद्धान्त १३२ १ ६
 आनाचना १३६ आधिकारिक
 १२३ गांधीवाणी अर्पनीति १३७-
 १४० नैतिक तर्क १२२ राज्यका
 उचित काय-आत्र १२० वंशानु-
 तर्क १२२ व्यक्तिवाणी और समाज
 वाणी सिद्धान्ताकामुपादन १३१
 व्यक्तिवाणी सिद्धान्त १२१
 व्यावहारिक कारण १२४
 आनाचना १२४ समाजवाणी
 सिद्धान्त १२९ सावजनिक
 कल्याण १४०

कायपालिका अंगी कायपालिकाकी
 कमी ३२० अल्पशासनक
 कार्यपालिका ३१२ गुण ३१२
 दाय ३१३ एकान्तक तथा
 कटून कार्यपालिका ३१३
 कायपालिकाकी उत्पत्ति ३२०
 कायपालिकाकी कार्यक्षमि १४
 लक्षित और कार्य ३१५ सामान्य
 की कायपालिका ३० ३०६
 प्रशासकीय-सवा ३२१ ३२६
 प्रशासन-सम्बन्धी अधिकार ३१७
 न्यायिक अधिकार-क्षमि ३१८
 विधाननी-क्षमि ३१८ नैतिक
 अधिकार लक्षित ३१७ नतिप-
 लीय संश्लेष अथवा उभरवाणी
 कायपालिका ३१० नतिप-
 लीय कायपालिकाकी विवरण ३१०
 गुण ३११ दाय ३११ राज
 नीतिक कार्यपालिका ३०६ ३१
 राजनयिक या कूटनीतिक लक्षित
 ३१५

कारण एवम् मातृपुत्र ३८७

केन्द्रीय सम्प्रभुताकी अविभाज्यता
 २३३

कटलिन राजनीति शास्त्र और आचार
 या नाति-शास्त्र १२ राजनीति
 शास्त्र और मनाविज्ञान १३

कृत्सा आर० इन्सू साक्षरत्वान
 की व्याख्या ४०७

काल राज्य स्वाभाविक ९८ सावजन
 एक सत्ता सिद्धान्तके रूपम १२

कौटिल्य (चाणक्य) शासन कथा १
 क्रॉमवेल आतिवर प्रत्यक्ष कारबाई
 का सिद्धान्त ३२७

क्रॉस अधिकार बाहरी परिस्थितियों
 १७७

क्रिमि सर एल्फ्रेड सावजनक विधि
 तत्व ३८३ साधनोंका सिद्धांत
 ३८३

क्रेनवर्ड राजनीति-शास्त्र और समाज
 शास्त्र १० सम्प्रभुताकी परिभाषा
 २३० सामाजिक सविनय-सिद्धान्त
 की आलोचना ४६

क्रोन्ग्विड अराजकतावादा दृष्टि
 कोण १ १

गांधी महात्मा गांधीवाणी अर्पनीति
 १३७-१४० शासन समुदाय ३३

राजनीतिका आध्यात्मिकरण १२
 गार्नेर अमानताके दो सामान्य बिन्दु

३६१ अमानताके प्रकार ३१०
 अंगित्तवा सम्प्रभु २६६ काय

पालिकाकी लक्षित विभाजन
 ३१५ शासनपालिकाके काय

३६० पूर्वशासन ३३७ राज्य
 का उद्भव ११९ राज्य और

सार्वभौम मित्र ३५ राजका
 कार्य-क्षम १६१ राजकी

परिभाषा २३ मोहनदासराव
 २३६ मोहनदासकी मरणादिके

निष्ठा अनिवार्य कर्तव्य ३८१
 संवैधानिक राज्य ७६५

गिडिंग राजनीति शास्त्र और समाज
शास्त्र ९ सम्प्रभुताका परिभाषा
२३०

गिन्सबग मॉरिस लोकमत सामाजिक
तत्त्व ३८९

गिन्सक्राइस्ट जीवनका अधिकार
१८३ राजनीति शास्त्र और
समाज शास्त्र १० राजनीतिक
सम्प्रभुताकी परिभाषा २३५
राज्यका वर्गीकरण २५१ २५५
राष्ट्रकी परिभाषा २८ लोकप्रिय
सम्प्रभुता २३७ सम्प्रभुताकी
सावर्भौमिकता २३२ हॉब्स और
लॉक के राजनीतिक और धार्मिक
सम्प्रभुतामें अंतर ९१

गुडनाऊ राजनीति-शास्त्रके भाग ६
गैटल अपरिवर्तनीय विधि २३१

जैविक सिद्धान्तका महत्त्व और
सीमाएं ४२ राजनीति-शास्त्रकी
व्याख्या ३ राजनीतिक चिन्तन
५ राजनीतिक सम्प्रभुता २१५
राज्यके विचारके अध्ययनसे
निष्पन्न ७५ राष्ट्र और जातिमें
अन्तर २८ लोकप्रिय सम्प्रभुता
२३७ सम्प्रभुताकी भविष्यता
२३२ सम्प्रभुताकी स्थिति, २४
२४१

गैसेट लोकमत ही शासनका आधार,
३८७-३८८

ग्राम पंचायत ४०३

ग्रीन टी० एच० इन्ड दनेका
प्रतिशोधार्थक सिद्धान्त, २१५
निरोधार्थक सिद्धान्त २१६
नैतिकता और राजनीतिक अधीनता
का मोत एक ही ११० प्रतिरोध
का फलस्य, १७२ बहु पक्षीय
२१९ मुद्रका कारण १८६
राज्य और नैतिकता, ३५ राज्य
का कार्य-क्षेत्र ११६ राज्यका
आधार इच्छा २९ राज्यका

प्रतिरोध करनेका अधिकार
२१३ २१४ दायित्व-सिद्धान्तकी
आलोचना १०५ सम्प्रभुता
सम्बन्धी सिद्धान्त २४२
सामाजिक सविन्य सिद्धान्तकी
आलोचना, ५२ ५१ स्वतन्त्रता
और विधि, १९८

ग्रे ऑन विपरीत सम्प्रभुता २८४
ग्रोशियस राज्य एक कल्याणकारी
व्यवस्था ३० सम्प्रभुताकी
परिभाषा २२९

ग्रेको प्रा० अधिकारोंका निरुपम हिता
के सत्तुमनस १७५

घावती बोर्ड ४०३

जनसंख्या राज्यके मूल तत्त्वके
रूपमें ३६

जिलाबोर्ड ४ ३

जैक्स आधुनिक राज्याका वर्गीकरण
२५६ पितृपूजा ६२ मातृमत्ताक
सिद्धान्तका समर्थन ५७

जनेट, पॉल राजनीति शास्त्र समाज
विज्ञानका अंग ३

जेमीसन यायापीन लिखित
सविधान २६३

जेम्स प्रथम राजाका दायी अधिकार
सिद्धान्त ४६

जैलिनैक दाय्यावधी, २

जैविक सिद्धान्त महत्त्व और सीमाएं
४२ राज्यका ३८ सिद्धान्तमें
समापन ८०

टॉएवी एन्विमो २२

टॉनी आर्थिक स्वतन्त्रता १९५

टॉल्सटॉय बराजकतावाद दृष्टि
कोण, १०१

टर्लीन्ड लोकतन्त्र दुष्ट सोगोवा
कुनीनतन्त्र ३६८

गणेशोत्सव का कार्यक्रमकी प्रगति
अनिवार ७ स्वतंत्र राष्ट्राधी
वर्षिका स्थानान्तर सम्पन्न ४०२
स्वतंत्रता और समानता १००

बनाहा और आत्मनिर्भरता ३४४
विप्लवका ३४८ पदमत्ता ४
भारतकी ६४ स्वतंत्रता की

हादसा लोकतंत्रका परिभाषा २५९
विधि पासतका महत्ता ३८
सामाजिक राज्य २६२ गांधीजी
संगठनका अधिकार २०८
द्विधा सामाजिक शिक्षा विज्ञानकी
आनाथना २२
दूर एत इन्फ्यू लोकतंत्रका अर्थ
८८
इसी लोकतंत्रका नाव ३७०

न्यायिक पुनर्निर्माण ८
नाम स्थाना ७२
निगम ४०२
नीम राज्य वस्तुता मतिमान
स्वतंत्र १०४

सुसनामक सरकार १
नीम राज्य एक वस्तु प्रवस्था १९

पदविधि इतिहास १७ जननाम
१८ सामान्य १ पत्रिका
१८ राजनीति प्रवस्था १३
प्रयोगात्मक १६

दश राज्यनेका सामाजिक २१४
दश देवक विज्ञानका वर्गीकरण
२१६ निराशामक विज्ञान १६
प्रयोगात्मक विज्ञान १४
सुधार-भूतक विज्ञान १७
दुसरी समस्यकी परिभाषा २२०
अभिव्यक्ति सम्पन्न २४२

परमाणु ३०९
प्रमाणन प्रमाणकाय सेवा १
परिभाषा और परिभाषा ३१
३६ प्रमाणन अतिरिक्तकी
भर्ती और उच्च प्रमाण ४
३० प्रमाणन-संस्थाकी ३६
३९ प्रमाणन प्रविष्टि
३१० ३३४

मगर मगर राज्य १ मगरपरिभाषा
४०२ मगर-राज्य समिति ४ २
मननक मगर राज्य ६६
मननिका सरकारका अर्थ ३३४
कुलन सामाजिक आर्थिक
३३६ सामाजिक नाव
निर्दिष्ट ३४७-३४८ सामाजिक
की वस्तु ३४८ ३४
सामाजिक का अर्थ ३३४
सामाजिकका अर्थ ३४
३६ सामाजिक निर्दिष्ट
कार्य-कार्य और कार्य ३४६
३४७
सामाजिक, अमेरिकाकी ३४६

परीक्षा लोकतंत्रका सुधारक विधि
सुधार ३८२
पति मन्त्र विवरणपर विचारकी का
वर्षिका तरीक ८ हीन वर्णिक
विज्ञान ४२
विमलताक विमलताक मन्त्र कार्यके
समाजिक विमलता - विमल ११
समाजिक प्रमाण ३७ विज्ञान
३६

पुनरुत्थान ७१
पुनरुत्थान का अर्थ - ६४
पुनरुत्थान ३३७
पुनरुत्थान का अर्थ ३३६
पुनरुत्थान का अर्थ ३३६
पुनरुत्थान का अर्थ ३३६
पुनरुत्थान का अर्थ ३३६

पोलक स्वतन्त्रता और समानता १९९

२००

पालीबियस राज्योंका वर्गीकरण
२५३

प्लेटो, आत्मा राज्यम रहनेवालों
की सहाय ३६ जनताकी सेवा
स्वतः पुरस्कार २२४ राजनीति
शास्त्र और आचार या नीति शास्त्र
११ राज्यकी तुलना बड़े डील
डोल बाने मनुष्य से ३८ राज्य
एक अणु विश्व ११२ राज्याका
वर्गीकरण २५

प्रत्यावर्तन २२७

प्रसंगान २६८

प्रॉविडेंस करार ४९

प्रोटोस्टेंट रिफॉर्मेशन दकी उत्पत्ति
सिद्धान्त ४५

पाहनर, कार्यपालिकाके अधिकार

३०३ जनताकी सुरक्षा, ३२९

जनताकी प्रशासन-सेवा ३२८

जनताके प्रशासन अधिकारियों

के कर्तव्य ३३४ द्विसत्तनवाद

का समर्थन २७६ प्रशासन

सेवाकी परिभाषा ३२१

प्रशासन-सेवाकी क्षमता और

उद्योगशीलता ३३३ ब्रिटेनके

मन्त्रिमण्डलकी महत्ता ३०७

शक्तियोंका पृथक्करण ३५४

शक्तियोंका विभाजन ३५६

फ्रॉन हालर सामाजिक सविदा

सिद्धान्तकी आलोचना ५३

फ्रॉनेट कुमारी एम० पी० आत्मा

का निवास राज्यम ३१ राज्य

की अन्तियता ३४

फिन्ले व्यक्ति और समाज एक दूसरे

पर आधित ३९

फ्रिगिस मध्य युगमें बंध राज्य सत्ताके

स्थान पर ७१

फ्रिलमोर, राज्यकी परिभाषा, २३

फ्रगवे लोकतन्त्र आयोज्यताकी उपासना

३६० लोकतन्त्र जीय विधानकी

दृष्टिसे अनुपयुक्त ३७०

फर्माबर्ट लोकमत एक सिंग ३९०

फी मेसस २३१

बकल टॉमस राजनीति-शास्त्र और

भूगोल १४ १५

बटसर सीमुबल सम्भाव्यता गान १६

बन्दरगाह ट्रस्ट ४०३

बक एडमण्ड अधिकारोंका इतिहास

सीय सिद्धांत १७४ राजनीतिक

दलकी परिभाषा २९७ सामाजिक

सविदा सिद्धान्तकी आलोचना

५१

बर्गेस इतिहासीय या विकासवादी

सिद्धान्त ५९ राज्यकी परिभाषा

२३ सम्प्रभुताकी परिभाषा २२९

२३०

बन्दी प्रत्यक्षीकरण ३२९

बर्न्स सी डी प्रतिनिधि समझा

जान योग्य हो ३७६ लोकतन्त्रका

व्यापक अर्थ ३६२ लोकतन्त्रकी

सम्यता निम्नकोटिकी ३७०

लोकतन्त्रको छोड़ना मूर्खता ३७४

लोकतन्त्र सर्वोत्तम शासन २६५

व्यक्तिवाद १२९ व्यक्तिवाद और

समाजवादका मूल्यांकन १३१

बल-सिद्धान्त ५४

बहुलवाणी दृष्टिभोग ३२

बाहुनिन अराजकतावाद १०१

बार्कर अर्नेस्ट मनोवैज्ञानिक तरीक

की छामियाँ १३ राजनीति-शास्त्र

और मनोविज्ञान १२ राज्य और

समाज २५, २६ राज्यका जविक

सिद्धान्त ४० राज्यकी परिभाषा

२४

बार्गोड चार्ल्स सविधान की

परिभाषा २५८

बॉवर, बिस्लेम, शुद्ध लोकमत और

जनतामें अभिव्यक्ति मसल अन्तर ३८८
 अधिव्यक्ति, अधिव्यक्ति की परिभाषा २५८
 बहुरंगीय भाषायोग की स्वतन्त्रता ३३६
 बंगलादेश सम्प्रदाय के अधिकाधिक अधिकार ३०४
 बंगलादेश के अन्तर्गत राजनीति की परिभाषा ३
 बंगलादेश राज्य एक कुराई ३१
 राज्य का उद्देश्य अधिक से अधिक लाभ का अधिक से मुक्त ११४
 बंकीमती बंगलादेश ७१
 बंगलादेश राजनीति शास्त्र और भूगोल १४
 राज्या का वर्गीकरण २५४
 सम्प्रभुता की परिभाषा २२९
 दक्षिणपंथ का पुनर्करण ३४९
 शासक अधिकारों का अधिक और नैतिक दाना पक्ष १७३ इच्छा देने का प्रतिपाद्यमक सिद्धान्त २१४ २१५ सामूहिक इच्छा दक्षिण पर आधारित मतांक रूपम १३३
 साक्षरसम्मतिकी परिभाषा १४
 सन्निभ स्वीकृति १९८ सत्यापन १६८ १६९ सुधारमूलक सिद्धान्त २१७
 सशक्त भारतीय प्रशासन अधिकारी ३१०
 संसदीय राज्य की परिभाषा २३
 राज्य का अधिक सिद्धान्त ३९
 राज्य साध्य और साधन दोनों ११७ राज्य का उद्देश्य ११८
 राज्य महानिश्चयमान महा २४७
 राज्या का वर्गीकरण २५३
 बयस्क मताधिकार का विरोध २९०
 शासन मार्ग अध्यात्मिक सरकारके दाय ११३ अधिनियम अधिव्यक्ति २६२
 आपत्तिक राज्यों का वर्गीकरण २५६ मताधिकारों

नागरिकोंकी प्रतिष्ठा म सुद्धि ६४
 पयवसण पद्धि १९ राजनीति शास्त्र और इतिहास ८
 निर्मित अधिव्यक्ति २६० तीव्रतन्त्रके गुण दोषाका विवेचन ३८४ साक्षरसम्म प्रचलित बंगलादेश ३७२
 साक्षरसम्म सरकारके प्रकार ३६१ साक्षरसम्म सरकारका एक प्रकार ३५१
 वास्तव्य म सभी सरकारें कुलीनतन्त्रीय ३६१ सम्प्रभुताके गुण २६८
 शासन माह्वार राजनीति-शास्त्र और अर्थ-शास्त्र ९
 शासन मन्त्र यन्त्र पार्लियामन्ट जनताका अधिक प्रतिनिधित्व ३७७
 मू-संघ राज्यके मूल तत्त्वके रूप म ३७
 मताधिकार निराशर-सम्प्रभुता २८४
 २८९ मताधिकारक सिद्धान्त २८९
 बयस्क मताधिकार २१०
 २९१ एक अधिक मन्त्र ६६६ प्रणामी २९१ आपत्तिया २९२
 बहुमत मताधिकार २९३
 सम्प्रभुताके प्रतिनिधित्व २९३
 आनुवंशिक प्रतिनिधित्व २९३
 २९६ सीमित मन्त्र २९३
 मनसो इच्छा ० की राजनीतिक दक्षिण की आकाशकता २९६
 महान् मन्त्र ७१
 मार्क्स वार्म आपत्तिक समाजवादके पयवसण १३३
 राज्य मताधिकारके शीघ्रतासाधन १०
 राज्य शासन का प्रतिमानसम्प्रभुता १४
 मातृसत्ताक-सिद्धान्त ५८
 आभाषना ३९
 मातृसत्ताके राज्योका वर्गीकरण २५३
 दक्षिणों का पुनर्करण ३४०
 कामदेवी शर इ सम्प्रभुता की परिभाषा, २१०

मार्सीलियो ऑफ प्रदुभा लोकप्रिय
 सम्प्रभुता २३६
 मिल एकसे अधिक मत देनेका समर्थन
 २९२ कार्य-स्वातन्त्र्य २०७ दूसरे
 सदनकी आवश्यकता २७५ महिला
 मताधिकारका समर्थन २९१
 साक्षरतासे उच्च कोटिके चरित्रका
 विकास ३६५ विचार भाषण
 और निष्पत्तिकी स्वतन्त्रता पर
 विचार २०३ व्यक्तिगत कार्य पर
 विचार, २०७ स्वतन्त्रता पर विचार
 १९१
 मकियावेली राजनीति-शास्त्र और
 आचार या नीति-शास्त्र ११ राज्य
 एक शक्ति व्यवस्था २९
 मेन सर, जेरी दूसरा सदन आवश्यक
 २७५ पितृसत्ताक सिद्धांत ५६
 वयस्क मताधिकार २९०
 आस्टिन के निर्दिष्ट उच्चतर मनुष्य
 की आलोचना २४३
 मेसपील्ड लाड ग्रिनमे प्रेसकी
 स्वतन्त्रता २०६
 मेपनावर कगर ४९
 मेरियट जे० ए० आर० आधुनिक
 राज्या का वर्गीकरण २५६
 सवियानका वर्गीकरण २५५
 मकडुगल समाजम काम करनेवाली
 प्रवृत्तियां १३
 मकफसेन डॉ संस्थाओं और पद्धतियों
 का परीक्षण २०
 मकावर मातृसत्ताक सिद्धान्त ५८
 राय एच सच ३८ राज्यका
 कार्य-मात्र १४१ १४५ राज्यकी
 परिभाषा २४ राज्य सम्बन्धी
 प्रचलित विचार का सफल २९
 रामम नागरिक और राजनीतिक
 अधिकार में भेद ६८
 मैकार्थीवाद २५५
 मकास लॉर्ड वयस्क मताधिकारका
 परिणाम व्यापक सट २९०

मैकसी गोरी जातियां थप्टनही ३७५
 लोकतन्त्रका अर्थ ३६० लोकतन्त्र
 बड़ी आसानीसे कुटिल राजनीति
 का शिकार, ३६८
 मग्ना वाटा १७४
 मडिनी लोकतन्त्रम सबके माध्यमसे
 सबकी उपति ३७५
 मडिसन सम्प्रभुताकी स्थिति २४०
 मेरियट प्रशासकीय विभागको सीमे
 गये प्रदत्त विधानकी बढती हुई
 मात्रा ३३१
 म्मोर रैमजे अगली और अमरिफो
 शासन पद्धतियोंकी तुलना २५४
 युद्ध गुलाबाके ७२ शतवर्षीय ७२
 सामाजिक ६८
 मुनियन बोर्ड ५०३
 रक्तहीन राज्यशान्ति ८२
 रसेल बर्टेण्ड रचनात्मक प्रेरणा १५९
 व्यक्तिगत स्वतन्त्रता १९३
 रसेल डोनेल्ड एक अमरिकाम
 सम्प्रभुताकी स्थिति २४१
 सम्प्रभुताकी धारणा २३०
 राउसक सम्प्रभुताकी धारणा २३०
 राजनीति आधुनिक प्रयोग ३
 पारिभाषिक शब्दावली १
 राजनीति-ज्ञान ४ राजनीतिक
 विन्तनका महत्त्व ५ राजनीति
 शास्त्रके अध्ययनकी उपयोगिता
 ६ विस्तार और अर्थ शास्त्रोंसे
 सम्बन्ध ६ अध-शास्त्र ८
 इतिहास ७ समाज शास्त्र ९
 आचार शास्त्र या नीति-शास्त्र
 ११ मनोविज्ञान १० भ्रमोत्प
 १५ विधि १३ राजनीति-शास्त्र
 की पद्धतियां १५ विचार धारा
 का आरम्भ १ विभाजन २
 व्यवहारिक राजनीति, २ सैद्धा
 न्तिक राजनीति, ३

राज्य राज्यमिदाल ५ स्वल्प
 २२ राज्यकी परिभाषाए २२
 राज्य और समाज, २४ राज्य और
 सरकार २६ राज्यका अन्तित्व
 समाप्त होनेके तरीके २७ राज्य
 राष्ट्र और राष्ट्रीयता २७ राज्य
 के सम्बन्धमें एकतरफा का भ्रामक
 विचार २९ राज्य एक भाषायक
 घुसाई १ राज्य एक निम्न २
 राज्यकी स्थान विषयमें व्यंग्या २३
 राज्यकी प्राथमिकता ३ राज्य
 इच्छा और धर्म-रूपम ३ राज्य
 के रूपम प्रति ३६ राज्यकी
 अन्तियता ३४ राज्य मानव
 सम्बन्धोंका व्यवस्थापक ४ राज्य
 और सार्वभौम ३५ राज्य
 और नैतिकता ३५ राज्यके मूल
 तत्व ३६ राज्यका जति मिदाल
 ३८ जैविक मिदालमें मयाग
 ४ महत्व और मीमांसा ४०
 राज्यकी उत्पत्ति ४४ राज्य
 निम्नका आधार ६ राज्यका
 परिहास्य विभाग ६७ भाषापरि
 मणका राष्ट्रीय राज्य ७१ उद्भव
 और मौखिक १० १११ विभाग
 की सामान्य रूप या ७५ राज्य
 का उचित कार्य-कार्य १२० १४७
 राज्य और युद्ध १४४ एकात्मक
 तथा मयागत राज्य २६३
 एकात्मक राज्य २६ मूल
 २६४ राज्य २६४ प्रगणना
 २६८ मयागत राज्य २६४
 मय राज्यकी आधार-कार्य २६७
 मय राज्यका २६७ मय २६८
 मय कार्य-कार्य या ४ ७
 ४१०

राज्य समाजशास्त्रके अन्तर्गत ११६
 लिपी की प्री० नन्दिका विचार
 की परिभाषा १७३ सांख्यिक
 अधिकार १९९ सांख्यिक तथा

करनेका अधिकार २०८ स्वा
 यानता और विधि ११७
 स्वक अधिकारम सम्प्रभुताकी स्थिति
 २६ सांख्यिक ३८८ सांख्यिक
 निम्न याने ३८
 समा यामिक विभाग और व्यवहार
 की स्वतंत्र १ २११ नागरिक और
 प्रजासभ २६ ७ सांख्यिक
 परम ४५ राज्याति राज्य और
 भूगोल १४ राज्यका जैविक
 स्वल्प ९ राज्यम रहन शानकी
 मन्दा ६ राज्य और सरकारके
 प्रकार ८५ ८७ राज्य मनुष्यके
 मयागत मन्त्री उद्भवमें अति
 अति ११४ लोकशासन १६
 नित-मिदालकी अन्तियता १ ४
 सम्प्रभुताकी अन्तियता २३०
 सामाजिक मयाग मिदाल ७८
 १८ स्वतंत्रता ११३ स्वायत्तता
 और विधि ११८

रेवक विचार-व्यवस्था ०४
 २१ सांख्यिक मयाग ३
 राज्यका मयाग प्रगणनामय
 मिदाल २६
 रोम धर्म-शास्त्र ७२ रोम शास्त्र
 के पन्नाके कारण ६९ विच
 शास्त्र ६७

माक राज्य और सरकारके प्रकार
 ८५ ८७ राज्यका उद्भव ११४
 राज्य का स्वतंत्रता ११४ मय
 मयाग विधि और सांख्यिक मय
 स्वतंत्रता २८१ ११० सांख्यिक
 या मयागत १४० सांख्यिक
 मयाग मिदाल ४८ ७८ १८

मोर्से अधिकारका अन्तियता मय
 १७१ मय-कार्य विधि मय
 मय-कार्य मयाग मय मयाग
 मय-कार्य मय ६९ मय-कार्य
 अधिकार मिदाल १ की अन्तियता

१६९ राज्य का स्वरूप ३४
 व्यक्तिस्व भागरिकता से अधिक
 १७२ सम्प्रभुता की अविभाज्यता
 २४५
 लॉरियर शादी करनेका अधिकार
 १८७
 लॉबल ए एन० अमेरिकी लोकतंत्र
 की सबसे बड़ी विफलता बड़े नगरो
 का कदासन ३७३ राजनीतिक
 दल का काम विचारो की दलासी
 २९८ लोकतंत्र शासन के सत्र म
 केवल एक प्रयोग ३५९ लोकतंत्र
 का समर्थन ३६४ लोकतंत्र की
 परत ३७५ लोकतंत्र के लिए
 आवश्यक बातें ८१ सम्प्रभुता
 की अविभाज्यता २३३
 सास्की अधिकार के तीन अनिवार्य
 स्वरूप १७९ आधिक स्वतंत्रता
 १९५ काम पाने का अधिकार
 १८० १९० व्यक्तिगत सम्पत्ति
 २२४ सम्पत्तिकी वर्तमान व्यवस्था
 २२५ सम्पत्ति का समपन २२३
 सस्था-संगठनका अधिकार २०९
 सरकार की आलोचना करने का
 अधिकार २०५ स्वतंत्रता का अर्थ
 १९१ स्वतंत्रता और समानता
 २०० सार्वधानिक स्वतंत्रता १९४
 हड़ताल करनेका अधिकार २१०
 असीमित और अनन्त सम्प्रभुताके
 सिद्धान्तकी आलोचना २४८
 डॉस्टिन का सम्प्रभु २४५
 उपयोगितावाद अधिकारों की
 कसौटी १७६ प्रतिरोध का
 अधिकार १७२ राज्य की
 परिभाषा २४ राज्य और
 सार्वभौमसिद्धि ३५ राज्य की
 शक्ति का औचित्य १०८ लोक
 का स्वीकृति सिद्धान्त ९१ विन्व
 संरका समपन ७४ अधिक
 अधिकार सिद्धान्त, १७२, व्यक्ति

वाणी सिद्धान्तके विरुद्ध सर्क १२८
 वाकित सिद्धान्त की आलोचना
 १०५ शक्तियों का पृथक्करण
 ३५३ सम्प्रभुता ३७
 लिण्डसे ए० धर्म-सभ २११ ३६५
 लोकतंत्र ३७५ लोकतंत्र का
 व्यापक अर्थ ३६२ लोकतंत्रीय
 समाज ३७८
 लिबन लोकतंत्रकी परिभाषा ३५९
 लिपमैन वास्टर जनता ३९०
 लीकॉव पितसत्ताक और मातसत्ताक
 सिद्धान्त ५९ राजनीतिक
 सम्प्रभुता २३५ राज्यों का
 वर्गीकरण २५५ संघ राज्य के
 दोष २६८ स्थानीय शासन और
 केन्द्रीय शासन में अन्तर ३९७
 लुइस सम्प्रभुता ३७-३८ संविधानकी
 परिभाषा २५८
 लुफूर सम्प्रभुताकी परिभाषा २३०
 लुवा राजनीति-शास्त्र और मनो
 विज्ञान १२
 लुवाले एमिस वयस्क मताधिकारका
 विरोध २९०
 लूपर माटिन राज्यका औचित्य
 १०३
 लेकी लोकतंत्र स्वतंत्रताके विरुद्ध
 ३६७ वयस्क मताधिकारका
 विरोध २९०
 मैबनेय लोकतंत्रसे देश प्रेमकी वृद्धि
 ३६६
 लोक आदेश २३७
 लोक-कल्याणकारी राज्य ४०७
 ४१२ कल्याणकारी राज्यका
 अर्थ ४०७-४०९ कल्याणकारी
 राज्यकी विशेषताएँ, ४१० ४१२
 भारत और कल्याणकारी राज्यकी
 धारणा ४१२ व्यक्तिवाद और
 साम्यवादि में समसोता ४०९
 व्यक्तिवादी राज्य और कल्याण
 कारी राज्यमें अन्तर, ४०९

साम्यवादी राज्य और अध्यापकी
 राज्यमन्त्र ४०९
 साक्षरता टिप्पणी ३८३ ३९१
 मूल्यांकन ३९१ ३९४ स्वल्प
 साक्षरताके निमाणके लिए आवश्यक
 कार्य ३९४
 साक्षरता आलापनाओंका मूल्यांकन
 ५७४ ३७९ उपचार और निष्पत्ति
 ५७९ ३८४ प्रकार ५६१ प्रयोग
 और प्रतिनिधि मूलक स्वल्प ६
 ३६१ समा द्वारा प्रयोग लोकतन्त्र
 का समयन ८३ लोकतन्त्र ३५७
 ३९४ साक्षरताका अर्थ ३४०
 ३६० साक्षरताका व्यापक अर्थ
 ३६२ लोकतन्त्रके समयनम तथा
 ३६३ पूर्वावधान मूलक ३६३
 मनावगतिक ३६४ नतिक
 ३६५ व्यावहारिक ३६६ शिक्षा
 सम्बन्धी ३६४ साक्षरताके विरुद्ध
 तर्क ३६७ ३७३ लोकतन्त्रकी
 सफलताके लिए आवश्यक कार्य
 ३८४ ३८७ साक्षरता पर पुन
 विचार ३५७ ५९
 लोक निर्माण २३७
 लोकसम्मति सिद्धान्त १२ १४
 आशाचना १६ १७ कसे बनती है
 १४ परिभाषा १४ विनियमण
 ११ सिद्धान्तम साधना १७-१८
 सार्वजनिक सड़ि अधिनायकता
 अस्थापित है ३७४ लोकतन्त्रकी
 सुधारनेके लिए सुझाव ३८२
 लोकतन्त्र प्रतीकके पथके पक्ष १८
 स्थितिवादी साक्षरताके प्रति बंधमान
 कीड़ाका अर्थनाय ३५७
 वर्गीकरण अस्तु व कार्य ३३३
 आकाशक कार्य १४२ एकात्मक
 तथा गणतन्त्र राज्य १६३
 एकात्मक राज्यके लिए १४ १५
 १४, आधुनिक राज्य ७४३

धेटा और अस्तु द्वारा वर्गीकरण
 २५० अस्तु द्वारा २५२
 राज्याय कार्यका १६५ राज्यों
 तथा संविधानाका वर्गीकरण २५०
 २६९ गणतन्त्र २५ २५७
 वर्गनिक कार्य १४६ संपात्मक
 राज्य ६५ संविधानाके स्वल्प
 तथा परिभाषा ७४७
 वाइड एन तक-मन्त्र स्वाधानता
 का दावा १७७-१७८ राज्य
 अधिकारोंका रक्षक १७१
 विधायिका क्या दूसरे मन्त्र आवश्यक है
 २७५ ७७ निरायक-मन्त्र
 २८४ ९६ राजनीतिक दल
 २९६ ३ १ राजनीतिक दलकी
 सफलताके लिए आवश्यक कार्य
 ३ १ ३ ३ विधायिकाका
 सगुण २७३ विधायिकाके
 अधिकार और कर्तव्य ७७-२७९
 विधायिकाकी कार्य प्रणाली ७
 २८१ धर्मिक प्रणाली २८१
 विधायकका कर्तव्य ८
 विधानसभा विधायिकाके २८३
 विधायिका और कार्यकारिणके
 पारस्परिक सम्बन्ध ८४ सहा
 की अवधि ८१-८२ सरकार
 का अर्थ २७
 विधि अमरिकाय कार प्रचार की
 विधि ३३९ प्रयोग द्वारा
 विधि निमाण ७१ निष्पत्ति
 विधि ३३७ प्रकृतिक ७८ कर्तव्य
 प्रकृतिक विधि ७०२ विधि
 की सामान्य विधि ७०७ विधि
 और नीतिगत १४२ विधि और
 धर्म १६३ विधि और प्रयोग
 १४३ विधि और प्रयोग १८३
 विधि और प्रयोग १४८ विधि
 प्रयोग ३३८ सरकारके
 प्रयोगकी विधि तथा कार्य
 की विधि १७१ कार्यका

स्वतंत्रता २०८ संवैधानिक
स्वतंत्रता १९४ स्वतंत्रता का
अधिकार १९० २२ स्वतंत्रताके
विभेद १९२ स्वतंत्रता और सत्ता
१९६ स्वतंत्रता और समानता
१९९ स्वतंत्रताका राजकीय
नियमन, २ १ आत्म रक्षा २०१
विचार भाषण और लिखनेकी
स्वतंत्रता २०२ सीमाएं २०४
स्वाधीनता और विधि १९७

हर्नशा प्रत्यक्ष कार्रवाईके समयमें
तर्क ३५८ नाकतत्रकी सफलता
के लिए नैतिक सुधार आवश्यक
३८ लोकतन्त्रम दिशाकी
आवश्यकता ३६६ लोकतन्त्रमें
नेताओंकी हालत ३६९

हॉकिंग लोकतन्त्रका समयन ३६३
लोकतन्त्र चेतन और अचेतन मनकी
एकता ३६४ विचार स्वातन्त्र्य
२ ४ विधिके वास्तविक और
आदर्श स्वरूपमें अन्तर १७१
शक्तिकी लालसा या आत्म
अभिव्यक्ति १५९ सम्पत्तिका
अधिकार, २२१ सम्पत्तिका
वितरण २२५ स्वतंत्रता और
सत्ता १९७

हॉब्सनडॉफ राज्यके व्यावहारिक एवं
आदर्श उद्देश्योंके बीच भेद ११८

शब्दावली २

हॉब्सवस सम्पत्तिका अधिकार २२१
हॉब्स आत्म रक्षाका अधिकार १७०
राज्यका जैविक सिद्धान्त ३९
राज्यका उद्देश्य ११४ राज्य
और सरकारके प्रकार ८५ ८७
राज्योका वर्गीकरण २५४
सविदा सिद्धान्त ७८ ९८
हारकार्ड सर विलियम समाजवाद,
१९१

हॉसैण्ड राज्यकी परिभाषा २३
वैधिक दृष्टिकोणसे अधिकारकी
परिभाषा १७३

हीगा अपराधीको दण्ड पानेका
अधिकार ३४ यद्ध १८६ राज्य
की परिभाषा २४ राज्य आत्मा
का सत्कार ३१ राज्य स्वयं
साध्य ११७

हेरिंगटन एव म्योरहेड राज्यका
उद्देश्य-न्याय ११६

हेमिल्टन सम्प्रभुताकी स्थिति २४०
हैलोवेल जे एच० राजनीति-दशम
४ राजनीति शास्त्र और विधि
१४ सामाजिक शास्त्र और तर्क
संगत सिद्धांता पर आधारित
विश्वास २० शक्ति सिद्धान्तकी
आलोचना ३ हॉशमकी पद्धति
७९

हैल्डन समिति ३३२

